CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

3555

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

3555

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर प्रदेशीय सरकार ने विश्व की सभ्यताएँ पर विश्व इतिहास की हिन्दी में सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ पुस्तक होने के कारण लेखक **पाँच सौ रुपये** का पुरस्कार प्रदान किया है।

विश्व की सभ्यताएँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास जीवन की थाती है । उसमें हमारे उन गुणों का सञ्चय होता है जिसके कारण हम ऊपर उठे और हमारी उन भूलों की गाथा होती है जिनके कारण हम गिरे । इतिहास हमें पुकारकर कहता है, संभलो, ये तुम्हारी भूलें थी; इनसे बचों और अपनी उन गुणों की, ओर देखो जिनमें तुम्हारा गौरव प्रकाशित हुआ था । इतिहास हमारे निराशा के थके हुए मन के अन्धकार का प्रकाशस्तम्भ है । वह हमसे कहता है, श्रेय को लो और प्रेम को छोड़ो । यही इतिहास का उपयोग है और यही उसका गौरव है ।

—श्री रामनाथ 'सुमन'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्व की सभ्यताएँ

[अतीत के खण्डहरों से]

लेखक

डा० विमलचन्द्र पाण्डेय, एम० ए० (प्रयाग)

[सम्पादक 'प्राची ज्योति' कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र]

प्राप्ति स्थान

साधना सदन

लूकरगंज, इलाहाबाद–१

मूल्य : आठ रुपये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य संग्रहालय ... लखनऊ
क्रम : 3555
प्राप्ति तिथि 7-2-68
State Museum, Library, Lko.

901.9
प व
Vol. I

प्रकाशक : नवभारती प्रकाशन, इलाहाबाद—१

•

अगस्त : १९६६

•

मुद्रक : कैक्सटन प्रेस १-ए/१ बाई का बाग, इलाहाबाद—१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गान्धी-दर्शन के प्रकाण्ड प्रतिपादक

एवं

विश्व-बन्धुत्व के प्रबल प्रचारक

पण्डित चतुर्भुज शर्मा

उप-मन्त्री

सार्वजनिक निर्माण-विभाग, उत्तर प्रदेश

के कर-कमलों में

सादर समर्पित

—डा० विमलचन्द्र पाण्डेय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाहूतापि पुर : पदं रचयति प्रातिप्तोपकण्ठं हठात्,
पृष्टा न प्रविवक्ति कम्पमयते स्तम्भं समालम्बते ।।
वैवर्ण्य स्वरभङ्गमभ्चति बलान्मन्दाक्षमन्दानना
कष्टं भोः प्रतिभावतोऽप्यभिसमं वाणी नवोढायते ।।

प्राक्कथन

वर्तमान युग सार्वभौमता की उदीयमाना सम्मान्यता का युग है । देश, राष्ट्र, जाति, धर्म, भाषा आदि की विभेद-सीमाओं का अतिक्रमण कर सार्वभौम भावना अपने अंचल में सम्पूर्ण मानव-जाति की निर्विशेष कल्याणेच्छा का सुप्रसाद छिपाये, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का चिर-पूत मन्त्र गुनगुनाती, समस्त जगतीतल पर अविराम गति से प्रसरित हो रही है। विश्व के बाह्य रूपान्तर में अन्तरित कतिपय शाश्वत जीवन-मूल्यों का अभिज्ञान उन विच्छेद-भित्तियों को ढहा रहा है जो सहस्रों वर्षों से मानव मानव के बीच कृत्रिम अवरोध के रूप में खड़ी थीं । युग-युग के वैभिन्य-विभ्रम में फँसे हुए मानव ने आज अपना सुपथ देख लिया है ।

विश्व-कुटुम्ब अब स्वप्न नहीं, सम्भावना है । इस सम्भावना को सत्यरूप देने के हेतु हमें राजनीतिक उपकरणों की अपेक्षा सांस्कृतिक उपकरणों का उपयोग अधिक करना होगा । राजनीति की अपेक्षा संस्कृति अधिक विग्रह-विहीन है । विभिन्न देशों की संस्कृतियाँ चाहे जितनी भिन्न क्यों न हों परन्तु उनके मूलतत्व साधारणतया समान ही होते हैं । इन मूलतत्वों को हृदयंगम करने के लिए विश्व की प्राचीन सभ्यताओं के सम्यक् अध्ययन, विश्लेषण और चिन्तन की आवश्यकता दिनानुदिन बढ़ती जा रही है । अतीत के खण्डहरों में मानव की अक्षय निधि अन्तरित है जिसका उत्खनन, शोधन और प्रकाशन हमारे नव-निर्माण में सुयोग प्रदान करेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

—डा० विमलचन्द्र पाण्डेय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

१. सभ्यता-वास्तविक स्वरूप एवं उत्पत्ति ... १७–२१

[सभ्यता का स्वरूप, सभ्यता को उत्पत्ति—भौगोलिक विचारधारा, प्राचीन असभ्य जातियों की विचारधारा, विश्व की प्राचीनतम सभ्यता, सभ्यता के प्रमुख तथ्य-आर्थिक समृद्धि, राजनैतिक समृद्धि, नैतिक तथ्य, बौद्धिक तथ्य]

२. पूर्वेतिहासिक कालीन सभ्यता ... २२–४०

[सभ्यता के तीन वर्ग—पूर्वेतिहास, प्रागैतिहास, इतिहास, पूर्वेतिहासिक काल की प्रमुख जातियाँ, पाषाण काल, पूर्व-पाषाण काल, चेलियन अथवा अशूलियन कला, अबीवीलियन कला, माउस्टीरियन कला, औरिगनेशियन तथा साल्यूट्रियन कला, मध्य-पाषाण काल, आकार-विहीन एवं भाण्डों से युक्त, उत्तर-पाषाण काल, कृषि कर्म, पशु पालन, मृण्भाण्ड कला, वस्त्र-निर्माण, गृह-निर्माण, अन्य आविष्कार, अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य सामग्री, निष्कर्ष, ताम्र-काल काँस्य-काल, लौह-काल]

३. नील नदी की घाटी की सभ्यता ... ४१–८२

[मिस्र सभ्यता, भौगोलिक अवस्था, जाति, प्री-डाइनिस्टिक काल, प्राचीन राज्य, मध्य-राज्य, साम्राज्यवादी काल, मिश्र की शाशन-व्यवस्था, कला-विशालता, सुदृढ़ता उपयोगिता, भव्यता, रुढ़िवादिता, धर्म-प्रधानता, वास्तु कला, स्थापत्य, चित्रकला, लघु कलायें, लेख और साहित्य, विज्ञान, धर्म, सामाजिक संगठन, आर्थिक जीवन, मिस्री सभ्यता की देन]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४. दजला-फरात नदियों की घाटियों की सभ्यता
या
मेसोपोटामियन सभ्यता ... ८३–११७

[मेसोपोटामियन सभ्यता का महत्व, अर्द्ध-सभ्य युग, सभ्य युग, (१) सुमेरियन सभ्यता, राजनैतिक इतिहास, लिपि, सुमेरिया का बौद्धिक विकास, राजनीतिक अवस्था, आर्थिक अवस्था, सामाजिक अवस्था, व्यवस्था, धर्म, (२) बैबीलोनिया की सभ्यता, बैबीलोनिया का उत्कर्ष, हम्मूराबी और उसकी संहिता (कोड), सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक अवस्था, धर्म, साहित्य-शिक्षा, विज्ञान, कला, (३) असीरिया की सभ्यता, शालमनेसीर, टिगल्थ-पिलेसर प्रथम, असुरबानी पाल द्वितीय, शालमेनसीर तृतीय, सम्मूरमत, टिगल्थ पिलेसर तृतीय, सार्गन द्वितीय, सेनाब चेरिब, एसरहेडन, असुरबेनीपाल, सैनिक शक्ति, राजनीतिक अवस्था, न्याय व्यवस्था, आर्थिक अवस्था, सामाजिक अवस्था, धर्म, विधान, कला, (४) चैल्डिया की सभ्यता, चैल्डिया का उत्कर्ष, धर्म, विज्ञान, साहित्य और कला]

५. सिन्धु नदी की घाटी की सभ्यता ... ११८–१३८

[सभ्यता का विस्तार, जाति, सिन्धु सभ्यता की तिथि, भौगोलिक प्रभाव, विदेशों से सम्बन्ध, आधारभूत विशेषताएँ, नगर योजना, आर्थिक संगठन, सामजिक व्यवस्था, कला, धर्म—द्विदेववाद, देवताओं का मानवीकरण, मूर्ति-पूजा, अनुष्ठान, अन्य विश्वास, पशु-पूजा, पादप पूजा, जल-पूजा, शव-विसर्जन-पूर्व समाधिकरण, आंशिक समाधिकरण दाह कर्म, सिन्धु सभ्यता का विनाश, सिन्धु सभ्यता का भारतीय सभ्यता को देना]

६. ईजियन सभ्यता ... १३९-१७०

[अनुसंधान, भौगोलिक अवस्था, उत्तर-पाषाण काल, मिनोअन काल,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्व-मिनोग्रन काल, मध्य-मिनोग्रन काल, उत्तर-मिनोग्रन काल, जातीय विशेषताएँ, मिनोग्रन, शासन-व्यवस्था, सम्मिलित परिवार व्यवस्था, महिला-समाज, धर्म, पाषाण पूजा, श्रायुध-पूजा, वृक्ष-पूजा, पशु-पूजा, देवी की कल्पना, देवता को कल्पना, पवित्र चिह्न, पूजा-गृह, पूजा-विधि, ललित कलायें—सर्वाङ्गीणता, व्यक्तित्व, साधनों का प्रभाव, ललित कलाओं के विभिन्न विभाग में सम्पर्क एवं सामन्जस्य, सारग्राहिता, मौलिकता, रुढ़िविहीनता, प्राकृतिकता, सांगोपांगता, सजीवता, लघुता, चित्रकला, तक्षण तथा स्थापत्य कला, कुम्भकार कला, वास्तु-कला, मक़बरे, लिपि, साहित्य, विज्ञानादि, ईजियन सभ्यता का उद्‌भव, क्रीट का पतन, ईजियन सभ्यता की देन]

७. हिब्रू सभ्यता ... १७१-१८०

[हिब्रूओं की उत्पत्ति, राजनैतिक उत्थान तथा पतन, यहूदी (हिब्रू) सभ्यता-धर्म, धार्मिक क्रान्ति, कला, न्याय-विधान, साहित्य]

८. हिटाइट सभ्यता ... १८१-१८३

[हिटाइट भाषा एवं विज्ञान, श्रार्थिक उन्नति, बौद्धिक प्रगति, कला, धर्म]

९. भारतीय सभ्यता ... १८४-२७७

[भारतीय सभ्यता की कुछ विशेषताएँ—प्राचीनता, सक्रमता, समन्वय-शीलता, सारग्राहिता, धार्मिकता, वर्ण एवं जाति, वर्ण-व्यवस्था के स्थायित्व के कारण, विकृतियाँ, ब्राह्मण : धार्मिक संगठन, आश्रम, बौद्ध धार्मिक संगठन, जैन धार्मिक संगठन, निवृत्तिमार्गी विचारधारा—लौकिक धर्म, स्त्री-समाज, आर्थिक संगठन, वेष-भूषा, दर्शन-सक्रमता, विचार-स्वतन्त्रता, एकता, धर्म के साथ अविच्छेद्यता, दो रूप-आस्तिक दर्शन, नास्तिक दर्शन, आस्तिक दर्शन-पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा,

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, नास्तिक दर्शन—चार्वाक, जैन, बौद्ध, विज्ञान, चित्रकला, रेखा प्रधानता, आध्यात्मिकता, व्यक्तिवादिता, उद्भव-असाम्प्रदायता, प्राचीराङ्कन, अनामता, भाव-प्रसन्नता, अभिव्यक्ति-प्रधानता, सांकेतिकता, चित्रकला के ६ अंग—रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्य योजना, सादृश्य, वर्णिक भेद, भारतीय चित्रों की चार कोटियाँ—भित्ति-चित्र, चित्रपट, चित्रफलक, धूलि चित्र, वास्तुकला, स्थापत्य, गुप्त-काल, आध्यात्मिकता, नैतिकता, समानुपातिता, सुन्दरता, समन्वयशीलता, विविधता, गुप्तकालीन स्थापत्य कृतियाँ—मथुरा की खड़ी हुई बुद्ध-मूर्त्ति, सारनाथ की आसनस्थ बुद्ध-मूर्त्ति, ताम्रनिर्मित बुद्ध-मूर्ति, सारनाथ संग्रहालय की लोकेश्वर (शिव) की मूर्त्ति देवगढ़ के मन्दिर का स्थापत्य, साहित्य—संस्कृत-साहित्य, वृहत्तर भारत, प्रसार-क्रम, लंका, उपरला हिन्द, तिब्बत, परला हिन्द, हिन्द चीन के राज्य, फूनान, कम्बुज, चम्पा, मलाया द्वीप समूह (सुवर्ण द्वीप), जावा, बालि, बोर्नियो, सांकृतिक प्रभाव]

१०. चीन की सभ्यता ... २७८-३३७

[प्राचीन राजनीतिक इतिहास, चाऊ-वंश, चिन-वंश, हान-वंश, उत्तर हान-वंश, समीक्षा, तंग काल चीन का स्वर्ण काल, राजनीतिक अवस्था, कला, ग्रंथ, विदेशीय कला-कृतियाँ, चित्रों, एवं उत्कीर्ण आकृतियों से सहायता, चित्रकला, वास्तु कला—कृतिम चबूतरे का प्रयोग, प्राङ्गण की प्रधानता, प्राचीर-वेष्टिका का प्रयोग, लकड़ी का प्रयोग, उतुङ्गता विहीनता, स्तम्भ योजना, छतें, आकार, रंग, स्थापत्य, तक्षण एवं धातु-कलायें, साहित्य, चीनी-धर्म, लिपि, सामाजिक जीवन—१. अध्यापक वर्ग, २. कृषक वर्ग, ३. व्यवसायी वर्ग, ४. व्यापारी वर्ग, आर्थिक जीवन, चीन की बौद्धिक-क्रान्ति, कन्फ्यूशियस का चरित्र (ई० पू० ५५१—ई० पू० ४७९) कन्फ्यूशियस के सिद्धान्त, कन्फ्यूशियस के राजनीतिक विचार, कन्फ्यूशियस की शिक्षाओं का प्रभाव, लाओत्से,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लाओत्से के सिद्धान्त, मैन्सियस, मोत्सू (ई० पू० ५००-४२० ई० पू०), लीगलीस्ट, चीन में बुद्ध धर्म, चीनी सभ्यता की विशेषतायें—(१) शान्तिप्रियता, (२) सहिष्णुता, (३) व्यापकता, (४) गुणग्राहिता, (५) विद्यानुराग, चीन की देन]

११. पारसीक सभ्यता ... ३३८-३७३

[वीरगाथा काल, ऐतिहासिक काल, मीड़ीज, साइरस, साइरस का चरित्र, केम्बीसस, दारा, पारसीक-यूनानी युद्ध, युद्ध के परिणाम, जरक्सीज, पारसीक पराजय के कारण, पारसीक साम्राज्य की अवनति के कारण—(१) विभिन्नता (२) केन्द्रीय दौर्बल्य (३) प्रान्तीय शासकों का अत्याचार (४) उत्तराधिकार के हेतु संघर्ष (५) असंगठित सैन्य बल (५) नैतिक पतन (६) यूनानियों से युद्ध, शान्ति पत्र, राजा, राजसभा, सामन्त वर्ग, सेना, न्याय विभाग, प्रान्तीय शासन, राजमार्ग, समाज, शिक्षा, साहित्य, भाषा और लिपि, चिकित्सा शास्त्र, कला, मकबरे, धर्म, धर्म ग्रन्थ, जरथुस्त्र-धर्म के सिद्धान्त—(१) एकेश्वरवाद (२) द्वन्द्वात्मकता, (३) आशावादिता, (४) सदाचारिता, (५) प्रवृत्तिमार्गीयता, (६) आगामी जीवन, (७) शरीर और आत्मा (८) सृष्टि-रचना के तत्व (९) उपासना]

१२. यूनानी सभ्यता ... ३७४-४४८

[यूनानी सभ्यता की विशेषताएँ, भौगोलिक अवस्था, प्राकृतिक विभाजन —(१) उत्तरी यूनान (२) मध्य यूनान, यूनानियों का नामकरण तथा आगमन—(३) दक्षिणी यूनान, यूनानी सभ्यता की उत्पत्ति—(१) मिश्र संबंधी विचारधारा (२) एजियन संबंधी विचारधारा (३) फोनीशियन संबंधी विचारधारा, यूनानियों की उपशाखायें—(१) एकीअन (२) आयोसियन (३) आयोनियन (४) डोरियन, होमर काल (१२०० ई० पू०-८०० ई० पू०)—(१) पूर्वैतिहासिक (२) ऐतिहासिक, महाकाव्य, महा-

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काव्यों का रूप, होमर कालीन यूनान, राजा, समाज, साहित्य और कला, धर्म, नगर-राज्यों का उदय, नगर-राज्य (पोलिस), नगर-राज्यों का लघुत्व, स्पार्टा, लाइकर्गस स्पार्टा का विधान, राजा, सीनेट, असेम्बली, डाइरेक्टरी, संविधान की अन्य विशेषताएँ, स्पार्टा के संविधान की आलोचना, उत्थान-पतन, स्पार्टा के पतन के कारण—(१) स्पार्टा की उग्र नीति, (२) फारस और स्पार्टा का युद्ध (३) अविश्वास की भावना (४) हस्तक्षेप-नीति (५) थेबीज़ से युद्ध (६) मेसोडन का उदय (७) विलासिता (८) नागरिकता की हानि (९) स्पार्टा (१०) स्पार्टा का शासन अनुदार था (११) विधान की कठोरता, एथेन्स, ड्रैको का अधिनियम, असन्तोष, सोलन, सोलन के राजनीतिक सुधार, आर्थिक सुधार, अन्य सुधार, लाइकर्गस और सोलन, क्लीस्थेनीज, पेलोपोनेसस युद्ध (ई० पू० ४३१--४०४ ई० पू०), यूनान का स्वर्णयुग (पेरेक्लीज काल), पेरेक्लीज, पेरेक्लीज का साम्राज्यवाद, एथेंस का पतन, पेरेक्लीज़ कालीन प्रशासन, जनतन्त्रात्मक विकास, असेम्बली, ब्यूल, एरिओपेगस, आर्कन, प्रशासन की समालोचना, यूनानी कला, स्थापत्य, वास्तुकला, चित्रकला, धर्म, बाह्य जगत् से सम्बन्ध-स्थापना, अन्तर्जगत् से सम्बन्ध-स्थापना, धर्म का व्यापक रूप, देवी-देवता, धर्म का विकास एवं उसकी विकृति, धार्मिक आन्दोलन, दर्शन और विज्ञान, पेरिक्लीज-कालीन दर्शन, अणुवादी, सॉफिस्ट-सम्प्रदाय, सुकरात, प्लेटो, अरस्तू, विज्ञान, चिकित्सा-शास्त्र काव्य, पेरिक्लीज-काल के पूर्व का साहित्य, पेरिक्लीज-काल का साहित्य, नाटक, सुखान्त नाटक, दुखान्त नाटक, इतिहास, समाज, यूनानी संस्कृति की देन]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १

सभ्यता—वास्तविक स्वरूप एवं उत्पत्ति

सभ्यता का स्वरूप—साधारणतया मानव जाति के इतिहास की विभिन्न दशाओं को 'सभ्यता' कहा जाता है। परन्तु यह अपने वृहद् स्वरूप में अनेकों अर्थों की जन्मदात्री है। प्रारंभिक वर्षों में उन मानविक दशाओं को सभ्यता कहते थे जिन्हें बौद्धिक, कलात्मक एवं साहित्यिक ज्ञानों से परिचय नहीं प्राप्त था अतएव प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक इतिहासकार ओस्वाल्ड स्पेन्गलर ने सभ्यता को मानव जाति के पिछड़े अध्यायों को बताया उनके अनुसार किसी भी मानव जाति के चरमोत्कर्ष का प्रतीक संस्कृति एवं अवनति का प्रतीक सभ्यता है।

प्रसिद्ध अंग्रेजी इतिहासकार टॉयनवी ने भी मानव जाति के इतिहास को विभिन्न अवस्थाओं में विभाजित करते हुये सभ्यता को प्रारंभिक स्वरूप एवं संस्कृति का विकसित स्वरूप वाला बताया है अधिक विवाद में न पड़कर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि संस्कृति का नाम सभ्यता की ही उच्चतम अवस्था है। जहाँ सभ्यता उसके बाह्य एवं सांसारिक अवस्थाओं का चित्रण करती है वही संस्कृति उसके अन्तरंग पटल का प्रतीक है। यदि एक फूल की पंखुड़ी है तो दूसरा उसकी सुगंधि है।

सभ्यता की उत्पत्ति

यद्यपि यह प्रश्न विवादग्रस्त रहा है, फिर भी मुख्य विचारधारायें निम्न हैं —

(१) भौगोलिक विचारधारा—इस मत के प्रमुख समर्थक इतिहासकार बर्न्स, ल्यूकास एवं विलड्यूरेन्ट हैं जिनके अनुसार किसी भी सभ्यता के उदय में वहाँ के भौगोलिक तथ्यों का प्रमुख हाथ होता है। वास्तव में सभ्यता किसी स्थान विशेष की भौगोलिक दशाओं के प्रतिक्रिया का ही परिणाम है। इसके

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्वलन्त उदाहरण गंगा-यमुना घाटियों की प्राचीनतम सभ्यताएँ तथा आधुनिक दक्षिणी अमेरिका की मायान सभ्यताएँ हैं।

भौगोलिक तथ्यों में प्रमुख स्थान जलवायु का है। अगर किसी स्थान की जलवायु एवं तापक्रम मानव मस्तिष्क के विकास के अनुकूल है, तो निश्चय ही सभ्यता का विकास होगा। इसके विपरीत परिस्थितियों में सभ्यता का ह्रास होगा। इसके उदाहरण पश्चिमी देश हैं, जिन्होंने इन्हीं परिस्थितियों का लाभ उठाकर आज सर्वोच्चि शिखर पर पहुँचने में सफल हुये। इसके प्रमुख समर्थक प्राचीन दार्शनिक अरस्तू से लेकर मध्यकालीन विचारक मोटेस्क्यू एवं आधुनिक भूगोल वेत्ता हेरिन्गटन एवं लाश हैं जिनके अनुसार मानव मस्तिष्क का सर्वोच्य विकास एक निश्चित "जलवायु एवं ताप-सीमा" के अन्दर होता है जिसका नाम उन्होंने "Climate optima" रखा है। इसकी परिधि ६४° फा० से ३८° फा० तापक्रम रेखा होती है तथा केन्द्र ७५% वाली नमी एवं समान वातावरण हैं।

इसके विपरीत कुछ विद्वानों ने कहा है कि प्राचीन रोम एवं मेसोपोटामिया उपर्युक्त अवस्थाओं की अनुपस्थिति में भी सभ्यता के जन्मदाता रहे हैं। परन्तु यह एक अपवाद है।

भौगोलिक तथ्यों में स्थल एवं उसकी बनावट का भी विशेष हाथ सभ्यता की उत्पत्ति में होता है। फलस्वरूप भारत की यही भौगोलिक बनावट है जिसने उसे सदियों से बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रखकर सभ्यता का निरन्तर विकास करने की शक्ति प्रदान की। इसका द्वितीय भव्य उदाहरण प्राचीन यूनान है जहाँ कि पेरीक्लीज के काल को 'स्वर्ण-युग' कहा जाता है। इसके प्रमुख समर्थक आधुनिक भूगोल वेत्ता कार्ल रिटर, रैटज़ैल फिन्च एवं ट्रिवार्थ हैं।

(२) प्राचीन असभ्य जातियों की विचारधारा—इसके प्रमुख समर्थक फ्रेन्ज आपेनहीमर के अनुसार सभ्यता के प्रारंभिक निर्माता प्राचीन काल के बनजारे या Nomads थे जिन्होंने विभिन्न स्थानों पर मानव-समूहों को एकत्रित करके एक निश्चित सभ्यता का जन्म दिया। विभिन्न समूहों पर अधिकार करके सभ्यता के विभिन्न अंगों जैसे कला, साहित्य एवं वाणिज्य का विकास किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसे बनजारों में मेसोपोटेमिया एवं नील नदी की घाटियों के निवासी प्रमुख हैं जिन्होंने वेबीलोनियन एवं सुमेरियन जैसी प्राचीन सभ्यताओं का जन्म दिया। इसी प्रकार मध्य एशिया के मेडीज़ एवं पर्सियन ने भी विशेष हाथ बटाया।

विश्व की प्राचीनतम सभ्यता

विश्व की प्राचीनतम सभ्यता के प्रश्न पर भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान नील नदी घाटी, कुछ दजला-फरात की घाटी एवं कुछ अन्य लोग एलम तथा फारस की खाड़ी को सभ्यता के प्राचीनतम केन्द्र कहते हैं। जहाँ तक नील-घाटी का प्रश्न है यहाँ की भौगोलिक दशायें निश्चय ही सभ्यता के पूर्ण अनुकूल थीं। यहीं से प्राचीनतम औजार प्राप्त हुये हैं तथा कला एवं विज्ञान का प्रथम उदय हुआ है।

परन्तु इसके समकक्ष मेसोपोटामिया की घाटी भी न्यून नहीं है। यहाँ की भी भौगोलिक परिस्थिति अनुकूल थी। दजला-फरात नदियाँ नाड़ियों की भाँति जल-सिंचन करती थीं। निवासी उनके तटों पर विभिन्न काफिलों में रहते थे। उनका प्रारंभिक रूप छोटे-छोटे समुदायों में था जो बाद में चलकर विशाल अर्द्ध-चन्द्राकार रूप में विकसित हुआ जिसकी किरणें अनेकों दिशाओं में प्रसारित हुईं।

संक्षेप में विद्वानों का मत अधिकतर नील-नदी के ही पक्ष में है जो कुछ सीमा तक उचित भी प्रतीत होता है क्योंकि मेसोपोटामिया में पूर्णतया भौगोलिक परिस्थितियाँ नील की अपेक्षा विपरीत थीं। वहाँ की जलवायु भी शुष्क एवं मानव-मस्तिष्क के विकास के विपरीत थी। साथ ही साथ वे प्रारंभिक वर्षों में धातुओं के प्रयोग से भी अपरिचित थे जबकि उनके समकालीन नील निवासी इनका अच्छा प्रयोग कर सकते थे। आधुनिक पुरातत्त्व की खुदाइयों में भी इस बात को सिद्ध कर दिया है कि नील सभ्यता की छाप मेसोपोटामिया पर अवश्य पड़ी थी। इसके प्रमाण वहाँ से प्राप्त मुहरें, कलात्मक वस्तुएँ एवं निर्माण-शैलियाँ हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ्यता के प्रमुख तथ्य

इतिहासकार विलड्यूरेन्ट के अनुसार सभ्यता एक ऐसी सामाजिक आधार-शिला है जिसके चार स्तंभ हैं तथा जिसका मुख्य उद्देश्य सांस्कृतिक विकास है। ये स्तंभ आर्थिक समृद्धि, राजनैतिक संगठन, नैतिक उत्थान एवं बौद्धिक तथा कलात्मक विकास हैं।

(१) आर्थिक समृद्धि—जैसा कि मानव की वाह्य वेश-भूषा उसके चरित्र का दर्पण माना जाता है उसी प्रकार किसी भी देश की सभ्यता का प्रथम परिचय उसकी आर्थिक समृद्धि से होती है। इस अर्थ में प्राचीन असभ्य जातियाँ भी सभ्य कही जा सकती हैं क्योंकि उनका भी कुछ न कुछ आर्थिक आधार अवश्य होता है। यह विकास किसी एक दिन की क्रिया नहीं वरन् शताब्दियों का परिणाम है। हम देखते हैं कि अपनी प्रारंभिक अवस्था में मनुष्य किस प्रकार अपने विकास के लिए हिंसक जन्तुओं से युद्ध करता था। उसने पहले शिकार पर जीवन-निर्भर किया। पुनः अस्त्र-शस्त्रों के विकास एवं आग की खोज की जिसका सम्बन्ध प्रारंभिक कृषि एवं पशु-पालन से हुआ। तत्पश्चात् धातुओं का प्रयोग प्रारंभ हुआ। छोटे-छोटे ग्राम-समूह बने। व्यापारिक उन्नति के साथ इनका विकास हुआ वे विशाल नगरों में परिणत हुये जिनका चरमोत्कर्ष आधुनिक वैज्ञानिक प्रतिभा से परिपक्व हुआ। अतः सभ्यता के प्रमुख तथ्यों में आर्थिक तथ्य सुप्रसिद्ध हैं।

(२) राजनैतिक तथ्य—जैसा कि अरस्तू ने कहा था 'मनुष्य एक सामाजिक जीव है' उसकी आधार शिला सामाजिक एवं राजनैतिक विचार ही होते हैं। व्यक्तिगत इकाई समष्टिगत इकाई से सम्बन्ध स्थापित करके राष्ट्र के एक वृहद वर्ग का विन्यास करती है। ऐसे वर्ग में विभिन्न राजनैतिक विचार तथा उनसे सम्बन्धित विभिन्न धारायें उत्पन्न होती हैं। इसके प्रमाण आदिकालीन मानव के छोटे समुदायों में मिलता हैं। पहले पैतृक समुदाय आया जिसका परिवर्तन कई ऐसे समुदायों को जोड़कर किया गया जो एक विशिष्ट जाति वर्ग या clan कहलाया। पुनः अनेकों समुदायों से मिलकर विश् की स्थापना हुई, जो अन्ततः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नगर एवं राष्ट्र में फलित हुआ। इस राष्ट्र की आधार शिला राजा एवं उसके मंत्रिगण हुये जिनकी नीतियाँ राष्ट्र की शक्तिदायिनी सिद्ध हुईं। राट्र में शांति एवं समृद्धि के लिए कानून बने तथा विजगीषु नीति का पालन हुआ।

(३) **नैतिक तथ्य**—सभ्यता की वास्तविक नींव उसके नैतिक विचारों एवं आदर्शों में डाली जाती है। जहाँ एक तरफ आर्थिक तथ्य उसके ऐहिक जीवन के प्रतीक हैं वहीं नैतिक तथ्य उसकी पारलौकिकता, सुदृढ़ता एवं अमरत्व का संकेत करते हैं। ये नैतिक तथ्य प्राचीन काल से ही समाज को बाँधे हुए हैं। इनमें विवाह, संस्कार, आश्रम-प्रथा, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की कल्पना इत्यादि प्रमुख हैं।

(४) **बौद्धिक तथ्य**—सभ्यता के उग्र स्वरूप के प्रदर्शक उसके बौद्धिक विकास हैं जिनमें भाषा साहित्य, विज्ञान एवं धर्म प्रमुख हैं। वास्तव में ये तथ्य सभ्यता की गंभीरता एवं उसकी प्रगति के सच्चे चिन्ह हैं इनके अभाव में सभ्यता केवल नाम-मात्र सी ही रह जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय २

पूर्वैतिहासिक कालीन सभ्यता

जैसा कि 'इतिहास' शब्द का तात्पर्य 'खोज' से होता है, मानव-जाति का इतिहास किसी एक देश जाति अथवा काल की देन नहीं वरन् वह सम्पूर्ण मानव जाति की अगराय वर्षों की सतत् साधना की पुराय राशि है। वह उन लघु कणों की पुंजीभूत स्वरूप है जिन्हें एकत्र करने में मानव यन्त्रणाओं के फूत्कर कणों कोटि-कोटि दर्शन सहस्त्रों शदाब्दियों तक सहन किये थे। वर्तमान सभ्यता इसी अतीत की सुदीर्घ शाखाओं पर पुष्पित और फलित हुई हैं।

साधारणतया यह तीन वृहद वर्गों में विभाजित किया जाता है—

(१) पूर्वैतिहास
(२) प्रागैतिहास
(३) इतिहास

यद्यपि इसके विभाजन की कोई निश्चित रूपरेखा उपलब्ध नहीं है फिर भी ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक तथ्यों के आधार पर यही सर्वमान्य है। इसके अनुसार पूर्वैतिहास मानव के प्रथम अध्याय हैं जिनके विषय में निश्चित ज्ञान अभी अनुपलब्ध हैं केवल कुछ अस्थि-अवशेष एवं अस्त्र-शस्त्र ही प्राप्त हैं। प्रागैतिहास वह है जो पूर्वैतिहास एवं इतिहास को जोड़ता है। इसके प्रमाण यद्यपि प्राप्त हैं परन्तु पूर्णतिया ऐतिहासिक नहीं कहे जा सकते हैं। इसका केन्द्र सिन्धु घाटी की सभ्यता थी। इतिहास वास्तव में ६०० ई० पू० से प्रारंभ होता है जिसे साधारणतया महात्मा बुद्ध का समय कहा जाता है। कुछ विद्वान इसे सिकन्दर के आक्रमण की तिथि ३२६ ई० पूर्व तक खींचते हैं परन्तु यह नवीन तथ्यों पर निर्भर नहीं है।

पूर्वैतिहासिक काल की प्रमुख जातियाँ—सांस्कृतिक इतिहास की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दृष्टि से पूर्वैतिहासिक काल कम महत्वपूर्ण नहीं है । यह काल ऐसा है जिसमें लिखित सामग्री का सर्वथा अभाव है । अतः इतिहास-रचना का साधन विशेषतया पुरातत्व और कल्पना है ।

उत्खनन और अन्वेषण से विद्वानों ने मानव की प्राचीनतम स्थिति का पता लगाया है । आदि मानव का आकार आधुनिक मानव के आकार से बहुत-कुछ भिन्न था । अतः उसे मनुष्य कहना पूर्णरूप से सार्थक नहीं । वास्तव में उसे Homonid (मनुष्यसम) कहना ही अधिक न्यायसंगत होगा । जावा में प्राप्त मनुष्य का अस्थिपंजर वानर और मनुष्य के बीच की स्थिति को प्रकट करता है । पेल्ट डाउन (इंग्लैंड) और Chou-Kou-tien में प्राप्त अस्थिपंजर भी अपेक्षाकृत इसी कोटि में आते हैं । ये अस्थिपंजर उन मनुष्यों के स्मृति-चिन्ह हैं जो ईसा पूर्व १० लाख वर्ष से लेकर ईसा पूर्व १ लाख २५ हजार वर्ष के बीच में कहीं उत्पन्न हुए बताये जाते हैं । ये नितान्त बर्बर थे । परन्तु विद्वानों का निष्कर्ष है कि कदाचित् इन्होंने सम्भाषण-कला का विकास कर लिया था ।

इस अर्धमानवी जाति के पश्चात् संसार के रंगमंच पर जिस जाति का उदय हुआ वह इतिहास में नीएण्डर्थल (Neanderthal) जाति के नाम से सम्बोधित होती है । इसके अस्थिपंजर जर्मनी के नीएण्डर्थल नामक स्थान पर उपलब्ध हुए हैं । इसी से इस जाति को यह स्थानीय संज्ञा दी गई है विद्वानों का मत है कि इस जाति का उदय-काल लगभग ईसा पूर्व ४० हजार वर्ष था । इस जाति के मनुष्यों का कद छोटा, सिर भारी, कंधे चौड़े और माथा छोटा होता था । इनके घुटने झुके हुए होते थे जिससे ये न तो बिल्कुल सीधे खड़े हो सकते थे और न सत्वरगति से चल ही सकते थे ।

तीसरी जाति को मैग्नन (Cro-Magnon) के नाम से प्रख्यात है । इस जाति का उदय-काल ईसा से लगभग २० हजार वर्ष पूर्व बताया जाता है । प्रारम्भ में कदाचित् यह जाति मध्य एशिया में रहती थी । वहाँ से इसने अफ्रीका में प्रयाण किया और तत्पश्चात् योरप में । इस जाति के मनुष्य आकार-प्रकार में आधुनिक मानव के अधिक समीप थे । इनका कद लम्बा, पैर बड़े और सीधे, सिर बड़ा और मस्तक चौड़ा होता था । योरप पर अधिकार करने के हेतु इन्हें

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दीर्घकाल तक नीएडर्थल जाति के साथ युद्ध करना पड़ा।

पाषाण-काल—अध्ययन-अध्यापन की सुविधा के निमित्त हम पूर्वैतिहासिक काल को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) पूर्व पाषाण काल (२) मध्य पाषाण काल (३) उत्तर पाषाण-काल। दोनों कालों की सामग्री प्रधानतया पाषाण-निर्मित है। अतः इन्हें 'पाषाण-काल' की संज्ञा दी गई है।

(१) पूर्व-पाषाण-काल—इस काल की अवधि लगभग १२५,००० ई० पू० से लेकर १६००० ई० पू० तक है। इस काल की सामग्री एशिया, योरप और अफ्रीका के भिन्न-भिन्न देशों में पाई गई है। यह काल मनुष्य के बर्बर जीवन का काल है जब वह पूर्णरूपेण प्रकृति-जीवी था। कृषि-कर्म और पशु पालन से अनभिज्ञ होने के कारण वह पूर्ण रूप से प्रकृति पर ही निर्भर था। उसी के विशाल क्रोड में वह एक असहाय एवं भ्रान्त बर्बर की भाँति घूमता था और इतस्ततः कन्द-मूल फल एकत्रित करके अपनी उदरपूर्ति करता था। अपने पाषाण-निर्मित हथियारों की सहायता से वह पशुओं का आखेट करता था और कभी-कभी स्वयं उनका आखेट बन जाता था।

पूर्व पाषाण-काल के प्रारम्भिक चरण में हथियारों की संख्या कम और उनकी निर्माण-प्रणाली अत्यन्त अविकसित है। इस समय काउप-द-पोइंग (Coup-de-poing) नामक हथियार ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता था। यह एक ओर नुकीला और दूसरी ओर गोलाकार रहता था। इसी से मनुष्य कुल्हाड़ी, हथौड़ा, छेनी, चाकू आदि सभी हथियारों का काम लेता था। प्रारम्भिक हथियारों की निर्माण-प्रणाली चिपिंग Chipping (पत्थर के टुकड़ों को पैनी करने की कला) पर आधारित थी। कालान्तर में मनुष्य की आवश्यकतायें बढ़ीं और साथ में अनुभव में भी वृद्धि हुई। अतः उसकी अस्त्र-शस्त्र-निर्माण-कला में पर्याप्त विकास होने लगा। काउप-द-पोइंग के अतिरिक्त उसने बर्छी-भाले, तलवार, चाकू; ओखली, वरमा, छेनी, सुई आदि का भी निर्माण किया। यह सामग्री अब Chipping के अतिरिक्त Flaking (परतदार प्रस्तर खंडों को छीलकर चिकना बनाना) प्रणाली पर भी निर्मित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होने लगी। कहीं-कहीं पर Flaking की सुन्दरता देखकर आश्चर्य होता है।[१] पाषाण के साथ-साथ मनुष्य ने हड्डी और हाथी दाँत का भी प्रयोग करना सीख लिया। प्रारम्भ में सामग्री एकमात्र उपयोगितात्मक थी, परन्तु अब वह कलात्मक भी होने लगी। उसके ऊपर भाँति-भाँति के अलंकरण का प्रादुर्भाव हुआ। प्रमुख पूर्व-पाषाणकालीन औजार कलायें निम्न हैं—

(१) चेलियन अथवा अशूलियन कला—इसके अन्तर्गत बने हुये हथियार बहुत ही भद्दे एवं आकार में विशाल हैं। इन्हें मानव जाति का सर्वप्रथम औजार कहा जाता है। इनकी निर्माण शैली फ्लेक प्रकार की हैं जिसका कोण १२० अंश का होता था। इसके सर्वप्रथम अवशेष इंगलैण्ड के स्टोनहेन्ज से प्राप्त हुये थे। तत्पश्चात् ये पश्चिमी यूरोप, दक्षिण अफ्रीका.उत्तर पश्चिम भारत आदि स्थानों से भी प्राप्त हुये हैं।

(२) अबीवीलियन कला—इस प्रकार के औजार अशूलियन से कुछ विकसित हैं। इनके दूसरे किनारे पर काट-छाँट भी मिलती है। इनका अंश समकोण या ६०° था। इनकी मुख्य विशेषता 'कोर' प्रकार के औजारों में हैं। ये भी पश्चिमी यूरोप से लेकर दक्षिण-पूर्व के देशों तक विस्तृत मात्रा में पाये जाते हैं।

(३) माउस्टीरियन कला—इस प्रकार के औजार मुख्य रूप से नियान्डरथल नामक मानव जाति के द्वारा बनाये गये थे जिनका प्रधान केन्द्र जर्मनी था। ये औजार कुछ छोटे आकार के हैं। इन पर कहीं-कहीं पालिश भी मिलती है। साथ ही कभी-कभी हड्डियों के भी औजार मिलते हैं।

(४) औरिगनेशियन तथा साल्यूट्रियन कला—यह पूर्व-पाषाण-काल की विकसित औजार-कला थी जिसकी विशेषता पश्चिमी फ्रांस के साल्यूट्र नामक पेड़ की पत्तियों के आकार के अस्त्रों का पाया जाना है। इनका आकार काफी छोटा होता था। इन पर अच्छी काट-छाँट होती थी तथा विभिन्न प्रकार की

[१] 'Such flaking as occurs, for instance, on the beaked scnrapers, is a joy to behold and impossible to copy today.'

—Burkitt.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रेखाएँ भी बनी होती थीं। इनके प्रमुख प्राप्ति स्थान पश्चिमी यूरोप ही हैं।

सुदृढ़, सुन्दर अधिक उपयुक्त और बहुसंख्यक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण से पूर्व पाषाण-कालीन मनुष्य का जीवन अधिक सुखी और सुविधाजनक हो गया। अब वह अधिक सुरक्षा और सुगमता के साथ कन्द-मूल-फल प्राप्त कर सकता था, पशु मार सकता था, उनकी खाल से कपड़े सी सकता था और समुद्र एवं सरिताओं के तटों पर मछलियाँ पकड़ सकता था। पहले वह एकमात्र प्राकृतिक कन्दराओं में ही रहता था। परन्तु अब वह पशु-चर्म से तम्बू भी बनाने लगा। अग्नि के आविष्कार ने उसके जीवन को और भी सुविधा प्रदान की। अग्नि की सहायता से अब वह मांस पका सकता था, शीत-निवारण कर सकता था और पशुओं को भगा सकता था। इन समस्त कर्मों ने मनुष्य के अनुभव-क्षेत्र को विस्तीर्ण किया और जिसके ज्ञान में वृद्धि की। खाद्य-अखाद्य कन्द-मूल-फलों का अभिज्ञान, पशु-बध के विविध उपाय, सुअवसर एवं ऋतुओं का ज्ञान पूर्वपाषाण कालीन आदि मानव के कुछ वैज्ञानिक अनुसंधान थे। वैज्ञानिक प्रगति का बीजारोपण पाषाण-युग की कठोर स्थली में हुआ है।[१]

यद्यपि पूर्वपाषाणकालीन मनुष्य पशु-पालन से अपरिचित था तथापि वह बहुसंख्यक पशुओं से परिचय प्राप्त कर चुका था। जिन पशुओं का वह आखेट करता था उनमें घोड़ा, रीछ, हरिण, बारहसिंहा, गधा और मैमथ (Mammath) विशेष उल्लेखनीय हैं। मैमथ ऐसे विशालकाय पशुओं का आखेट किसी न किसी प्रकार के संगठन की अपेक्षा करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस धूमिल काल में ही मनुष्य ने किसी न किसी रूप में सहयोग, आदान-प्रदान और कार्य विभाजन की संस्थाओं का महत्व समझ लिया था।

भिन्न-भिन्न स्थानों पर उपलब्ध सामग्री में समान कला और आकार-प्रकार देखकर ऐसा अनुमान होता है कि उस बबर्रता के युग में भी मनुष्य

---

[१] In jungle lore lie the roots of botany and zoology, of astronomy and climatology, while the control of fire and ths manufacture of tools initate the traditions that emerge as physice and chemistry.

—Gordon Childe

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्याय प्रदेशों के साथ सम्पर्क स्थापना करता था । उत्खनन में अनेक ऐसे स्थानों पर सीप के अलङ्कार मिले हैं । अतः सम्भव है कि उस समय भी समुद्रीय एवं स्थलीय प्रदेशों में आवागमन रहा हो ।

पूर्व पाषाण-काल अपनी कलात्मकता के लिए सुविख्यात है । उसके कन्दरा-प्राचीरों, आभूषणों और अस्त्र-शस्त्रों आदि पर जो चित्र अंकित मिलते हैं वे प्राचीन मानव की सहज सौन्दर्योपासना एवं कलात्मक भावना की अभिव्यक्ति हैं । कुछ चित्र तो इतने सजीव और सुन्दर हैं कि उन्हें देखकर आधुनिक चित्रकार भी विस्मय में पड़ जाता है । कहीं-कहीं चित्रों में संशोधन-कार्य के भी संकेत मिलते हैं । इससे कदाचित् कलापट्ट, शिक्षकवर्ग के अस्तित्व का बोध होता है और साथ ही साथ एक भूतकालीन कला-परम्परा का भी । चित्रों के विषय मनुष्य, पशु और पक्षी हैं । परन्तु प्रधानता पशुओं की ही है । इनमें मैमथ, घोड़ा, गधा, बारहसिंहा, हरिण भालू आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । चित्रकला विभिन्न रंगों— श्वेत, काले, भूरे, पीले, लाल आदि में प्रदर्शित की गई है । ऐसा प्रतीत होता है कि इन रंगों में चर्बी मिला कर समिश्रण को किसी तूलिका की सहायता से प्रयुक्त करते थे । परन्तु पूर्वपाषाणकालीन चित्रकला में प्रायः व्यक्ति का ही प्रदर्शन है, समष्टि का बहुत कम । समूहगत चित्रकला न होने के कारण आखेट के विशद, विस्तृत और सम्पूर्ण अंकन नहीं मिलते । कभी-कभी पशुओं को बड़े आकार में दिखाया गया है । फ्रांसीसी कन्दराओं में पूर्वपाषाणकालीन कला के अनेक सुन्दर उदाहरण उपलब्ध हुए हैं । परन्तु सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है स्पेन की अल्टमीरा कन्दरा का । यह अपनी चित्रकला के कारण समस्त विश्व में प्रसिद्ध हो गई है । इसमें एक गतिशील पशु का जो चित्र है वह अति सजीव है । पशु उद्दाम वेग से उछलते-कूदते जा रहा है । उसके अयाल खड़े हैं और परिश्रम के कारण नथुने फैले हुए हैं । उसका भारी शरीर और द्रुत वेग बड़ी कुशलता से चित्रित किया गया है । चित्रों की उत्कृष्टता को देखकर कलाकारों के व्यावसायिक विशिष्टीकरण का अनुमान होता है ।

परन्तु अब प्रश्न यह होता है कि आखिर पूर्वपाषाणकालीन मनुष्य ने इन चित्रों का निर्माण किस उद्देश्य से किया था । इसके उत्तर तीन हो सकते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं —

(१) अपनी कलात्मक एवं सौन्दर्यमूलक भावना के प्रदर्शन के लिए।
(२) अलंकार के लिए और
(३) जादू के लिए।

बहुत सम्भव है कि चित्रण के पीछे ये तीनों उद्देश्य रहे हों। जहाँ तक जादू और टोने-टोटके का सम्बन्ध है, इसकी उपस्थिति के अन्य साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। कुछ अस्त्र-शस्त्रों के ऊपर पशु के चित्र बने हुए हैं। कतिपय विद्वानों का विश्वास है कि इस प्रकार के चित्रण के द्वारा पूर्वपाषाणकालीन मनुष्य अपने अस्त्र-शस्त्रों को अधिक सुगमता पूर्वक पशुहत्या करने के अतिरिक्त क्षमता प्रदान करता था। कुछ छोटे-छोटे आभूषणों के ऊपर भी चित्र अंकित हैं। कदाचित् ये आभूषण तावीज के रूप में प्रयुक्त होते थे। कहीं-कहीं कन्दराओं के प्राचीरों पर भी विशिष्ट प्रकार के चिन्ह और चित्र हैं। इनका उद्देश्य भी कदाचित् अरिष्ट-निवारण और कल्याण-लाभ था।[१] परन्तु ये सभी निष्कर्ष कल्पनाजन्य ही हैं।

चित्रकला के साथ-साथ इस मनुष्य ने कदाचित् संगीत कला का भी उद्भव कर लिया था। उत्खनन में कुछ विशिष्ट प्रकार के उपकरण उपलब्ध हुए हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि ये बाँसुरी और सीटी थीं। उन्हें बजाकर संगीत-ध्वनि का सृजन किया जाता था।

पूर्वपाषाणकालीन मनुष्य शवों को पृथ्वी के नीचे गाड़ता था। गाड़ते समय कभी-कभी शवों को लाल रंग से रंग दिया जाता था। लाल रंग रुधिर का संकेत था। कदाचित् तत्कालीन मनुष्यों का विश्वास था कि यह रंग रक्तहीन मानव शरीर में पुनः जीवन का संचार कर देगा। कभी-कभी शव चूल्हों और भट्टियों के पास भी गड़े हुए पाये गये हैं। सम्भव है कि पूर्वपाषाणकालीन

---

[१] 'Art and faishon are as definitely rooted in the old Stone Age as magic and superstition.'

—Gordon Childe.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुष्यों की यह धारणा रही हो कि अग्नि मनुष्य के संज्ञाहीन शीतल शरीर में पुनः उष्णता उत्पन्न कर देगी। शवों के समीप उनके अस्त्र-शस्त्र, आभूषणादिक अन्य सामग्री रक्खी हुई मिलती है। कदाचित् उनका विश्वास था कि मृत्यु के पश्चात् भी मृतक अपनी प्रिय वस्तुओं का उपभोग कर सकेंगे; कदाचित् वे उनके लोकोत्तर जीवन में विश्वास करते थे।

कुछ ऐसे भी साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं जिनसे तत्कालीन मनुष्यों में किसी न किसी रूप में प्रचलित अन्तिम संस्कार-क्रियाओं का अनुमान होता है। एक में एक पुरुष शव एक लाल पाषाण-खण्ड पर शीश रखे लेटा है। अन्य कन्दराओं में शवों के ऊपर और चतुर्दिक सीप-राशियों को विशेष प्रकार से सजाया गया है। इन विशेषताओं तथा शवों के लेटने की विधि, उनके ऊपर छिड़के हुए लाल रंग और उनके समीप अस्त्र-शस्त्रों की उपस्थिति से किसी-न-किसी अन्तिम संस्कार-क्रिया का अनुमान होता है।[१]

कुछ विद्वानों का मत है कि पूर्व पाषाणकालीन मनुष्य ने 'धर्म' की भी सृष्टि कर ली थी। उत्खनन में कुछ नारी-मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये मातृदेवी की मूर्तियाँ हैं। यदि यह अनुमान सत्य है तो मातृदेवी की पूजा प्राचीनतम सिद्ध होती है। कहीं-कहीं पर मरे हुए पशु गड़े हुए मिलते हैं। बहुत सम्भव है कि ये पशु देव-सन्तुष्टि के निमित्त किये हुए यज्ञों में बलिदान किये गये हों।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी सभ्यता के अनेकानेक उपाङ्गों का बीजारोपण बर्बरता के इस प्राचीनतम काल में हुआ। मनुष्य ने अपनी सीमित बुद्धि, अपने संकीर्ण अनुभव और अपने अत्यल्प साधनों की सहायता से वास्तुकला, स्थापत्य, चित्रकला-संगीत, धर्म, अन्ध-विश्वास, श्रम-विभाजन, सहकारिता, कार्य-विभाजन, कर्म-विशिष्टीकरण आदि का सर्वप्रथम आरोपण किया। पूर्व पाषाण-काल हमारी संस्कृति और सभ्यता की संरोपण-भूमि है। हमारे समस्त-

---

१. 'In any case the Neanderthaler had an ideology'
—Gordon Childe.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विकास की आधार-पीठिका है। उसी के ऊपर आज हमारा वह सभ्यता-प्रासाद आधारित है।

(२) मध्य-पाषाण-काल—उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक विद्वानों को इस युग के विषय में कोई ज्ञान नहीं था। साधारण-विचार धारा यही थी कि मानव पूर्व-पाषाण काल से सीधे नवीन-पाषाण काल में आया। परन्तु १८९५ में फ्रांस के मास 'डी' अजील नामक प्रसिद्ध स्थान पर पुरातत्व गवेषणाओं ने सिद्ध कर दिया कि उपर्युक्त दोनों कालों को जोड़ने वाली एक नवीन कड़ी थी जिसे मध्य-पाषाण काल या 'मेसोलिथिक काल' कहा जा सकता है।

इस काल की प्रमुख विशेषता छोटे-छोटे अनेकों प्रकार के औजारों का पाया जाना है जिन्हें (Microliths) कहते हैं। इनकी प्राप्ति भी आश्चर्यजनक है। कभी ये धरातल पर कभी बर्तनों के साथ, कभी खुदाई में और कभो पर्वतों पर मिले हैं। अतः एक समय निश्चित समय निर्धारण करना बहुत कठिन है। इस काल के प्रमुख औजार दो प्रकार के हैं—

(१) आकार-विहीन एवं भाण्ड अवशेषों से विहीन—इनकी शैली भद्दी है तथा ये अधिकतर कोर, फ्लेक एवं समानान्तर किनारे वाले औजारों से युक्त हैं।

(२) ज्योमिति आकार एवं भाण्डों से युक्त—ये विशिष्ट प्रकार एवं आकार के हैं जिनमें त्रिकोण; ट्रेयेजी, ब्यूरिन, ल्यूनेट एवं स्क्रेपरस प्रमुख हैं। इनके साथ कहीं-कहीं भाण्ड अवशेष भी प्राप्त हुये हैं।

इनके प्रमुख क्षेत्र पश्चिमी यूरोप में फ्रांस से लेकर भारत में उत्तर में कश्मीर तथा दक्षिण में महाराष्ट्र, मैसूर एवं मद्रास तक विस्तृत है। इस काल का मानव पूर्व-पाषाण काल से काफी सभ्य था। वह औजारों को भली-भाँति अपनी आवश्यकतानुसार परिणत कर सकता था। उसे आग का प्रयोग ज्ञात था। भ्रमण-क्रिया के साथ ही साथ वह कभी-कभी निश्चित आवास भी बनाता था जैसे जमीन के अन्दर गड्ढे खोदकर या पर्वतीय गुफाओं को साफ कर। पानी की उपलब्धि से प्रारम्भिक कृषि भी करता था। पशुओं के संसर्ग में आने से कुछ अहिंसक जन्तुओं को पालना भी प्रारंभ कर दिया था। इस प्रकार यह अवस्था

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानव जाति के इतिहास् में एक परिवर्तन की दशा का सूचक है।

(३) उत्तर पाषाण काल—योरप में इस नवीन काल का आविर्भाव लगभग २ हजार वर्ष पूर्व और एशिया तथा अफ्रीका में उससे कुछ पूर्व हुआ। पूर्व-पाषाण काल के अवसान पर संसार में क्रान्तिकारी भौगोलिक परिवर्तन हुए। अभी तक भूमध्यसागर का अस्तित्व न था। उसके स्थान पर दो झीलें थीं। परन्तु लगभग इसी समय एक विशाल जलप्लावन हुआ जिसके परिणामस्वरूप भूमध्य सागर की उत्पत्ति हुई। इसने योरप और अफ्रीका महाद्वीपों को एक दूसरे से पृथक् कर दिया। इसी समय योरप और मध्य एशिया में सघन वनों की उत्पत्ति हुई और वहाँ एक नवीन सभ्यता का उदय हुआ। यह सभ्यता पूर्वपाषाण कालीन सभ्यता का ही क्रमिक विकास थी। परन्तु अनेक अंशों में उससे अधिक उन्नत थी। इतिहास में यह उत्तर पाषाण-कालीन सभ्यता के नाम से प्रख्यात है। इसका उदय सर्वप्रथम एशिया और अफ्रीका में हुआ और तत्पश्चात् योरप में। उत्तर-पाषाण काल में कुछ ऐसे आर्थिक एवं वैज्ञानिक परिवर्तन हुए जिन्होंने मानव-जीवन में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। ये परिवर्तन ही उत्तरपाषाण काल को पूर्वपाषाण काल से पृथक् करते हैं। हम यहाँ पहले इन्हीं परिवतंनों पर विचार करेंगे।

(१) कृषि कर्म—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पूर्व-पाषाण कालीन मनुष्य प्रकृतिजीवी था। वह अनायास उत्पन्न वन्य कन्द-मूल-फलों से ही अपनी उदर-पूर्ति करता था। अधिक से अधिक मांस और मछली ही उसके द्वारा सायास उत्पन्न खाद्य थे। जहाँ तक कृषि का सम्बन्ध है, वह इस कला से पूर्ण रूपेण अनभिज्ञ था। परन्तु उत्तरपाषाण कालीन मनुष्य ने अपने अधिक बौद्धिक विकास और अनुभव-राशि की सहायता से सर्वप्रथम कृषि-कर्म की सृष्टि की। इतिहास का यह युग प्रवर्तक आविष्कार था। कदाचित् उत्तरपाषाणकालीन मनुष्य भी हल-बैल की सहायता से ही कृषि करता होगा। तत्कालीन एक पाषाण-शिला पर दो बैलों की सहायता से हल चलाते हुए एक कृषक का चित्र मिला है। परन्तु अभाग्य से अभी तक उत्खनन में किसी हल अथवा उसके अवशेषों की प्राप्ति नहीं हुई है। बहुत सम्भव है कि काष्ठनिर्मित होने के कारण ये भविष्य में नष्ट हो गये हों। यह स्मरण रखना चाहिये कि धातुओं से अपरिचित होने के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारण हल काठ का ही बनाया जा सकता था। अन्य कृषि-उपकरणों में कदाचित् पौधे काटने के लिये हँसिये का भी आविष्कार कर लिया गया था। अनाज पीसने के लिए चक्की भी निर्मित हो चुकी थी। ये सब अत्यन्त वैज्ञानिक आविष्कार थे जिन्होंने मानव-जीवन को अधिकतर सुख-सुरक्षा और सुविधा प्रदान कीं। उपलब्ध अवशेषों से प्रकट होता है कि उत्तर पाषाण कालीन मनुष्य गेहूँ, जौ, मक्का, बाजरा, अनेक शाक और फल उत्पन्न करता था। परन्तु कृषि-कर्म सर्वप्रथम किस प्रदेश में प्रारम्भ हुआ, इस प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद है। पेरी महोदय का विश्वास है कि वह नील घाटी में सर्वप्रथम उदित हुआ। परन्तु अनेक विद्वान् फिलिस्तीन को कृषि-कर्म को जननी बताते हैं। रूसी विद्वान वैविलोव का कथन है कि सर्वप्रथम अफगानिस्तान और उत्तरी-पश्चिमी चीन ने कृषि-कर्म का आविर्भाव किया।

(२) **पशु-पालन**—पशु-परिचय और पशु-पालन में अन्तर है। पशु पालन के अन्तर्गत मनुष्य पशुओं को अपने नियन्त्रण में रखता है और बन्दी के रूप में उनका भरण-पोषण करता है। अभी तक कोई भी ऐसा साक्ष्य नहीं उपलब्ध हुआ जिसके यह कहा जा सके कि इस प्रकार की अवस्था—पशु-पालन—पूर्व पाषाण काल में विद्यमान थी। पशु-पालन उत्तर-पाषाण काल की विशेषता है। पूर्व पाषाण काल में मनुष्य एकमात्र पशुओं से परिचित था। परन्तु अब प्रश्न यह होता है कि आखिर पशु-पालन का आविर्भाव कैसे हुआ? कुछ विद्वानों का मत है कि उत्तर पाषाण-काल के आगमन पर जलवायु में भारी परिवर्तन हुए। यह अत्यधिक शुष्क हो गई। परिणामतः वन्य प्रदेशों का अधिकाधिक विलोप होने लगा। तब मनुष्य और पशु अधिक समीप आ गये। वे एक ही प्रदेश में साथ-साथ निवास करने लगे। पुनः वन्य-प्रदेशों के विलोप से पशुओं की खाद्य-सामग्री भी अत्यल्प हो गई। वे संख्या और शक्ति में हीन हो गये और उदर-पूर्ति के निमित्त मानव-आवासों के समीप रहने लगे। इसी सामीप्य से पशु पालन-कर्म का आविर्भाव हुआ। पालतू पशुओं में गाय, बैल, भैंस, बिल्ली, भेड़, बकरी, कुत्ता, घोड़ा आदि प्रमुख हैं। परन्तु घोड़े का विशेष महत्व धातु-युग में ही प्रतिष्ठित हुआ। विद्वानों का मत है कि पशु-पालन सर्वप्रथम उस प्रदेश में प्रारम्भ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ जो पामीर, काकेशस और रूसी तुर्किस्तान से परिवृत्त है। उत्तर-पाषाण काल के आगमन के पूर्व मध्य एशिया में एक विशाल सागर था। धीरे-धीरे यह शुष्क होने लगा और इसके स्थान पर मरुस्थल का प्रादुर्भाव हुआ। विशाल सागर के स्थान पर आज उस प्रदेश में कैस्पियन सागर, अरब सागर और बैकाल झील आदि के रूप में छोटे-छोटे जल-खण्ड ही रह गये हैं। शेष भाग में गोबी का मरुस्थल हो गया है। अस्तु, यह उदित मरुस्थल जीवधारियों के निवास के अनुपयुक्त था। परिणामतः इस विशाल प्रदेश के मनुष्य और पशु मरुस्थल में बसे हुए यत्र-तत्र नखलिस्तानों में आ-आकर रहने लगे। मध्य एशिया के इन्हीं नखलिस्तानों में विपत्तिग्रस्त मनुष्य और पशु सर्वप्रथम एक-दूसरे के अधिक समीप आये। इस सामीप्य ने ही पशु-पालन कर्म को जन्म दिया।

(३) **मृण्भाण्ड कला**—उत्तर-पाषाण काल का तृतीय क्रान्तिकारी विकास मृण्भाण्ड कला के उदय के रूप में हुआ। पूर्व पाषाणकालीन मनुष्य पाषाण सामग्री तो बनाता था, परन्तु मिट्टी की सामग्री के निर्माण करने की कला से अपरिचित था। उत्तर पाषाणकाल में सर्वप्रथम कृषिकर्म और पशुपालन कर्म का आविर्भाव हुआ। मृण्भाण्ड कला का उदय इन्हीं दोनों क्रान्तिकारी विकासों के परिणामस्वरूप हुआ। बात यह थी कि कृषि और पशु-पालन ने मनुष्य की खाद्य सामग्री में अपूर्व वृद्धि कर दी। अनेक स्थलों पर उत्पन्न किया हुआ अन्न उसकी आवश्यकता से अधिक हो जाता था। अतः उसे सुरक्षित रूप से संग्रह करने की आवश्यकता पड़ी। यह संग्रह-कार्य बड़े-बड़े भाण्डों के अभाव में कैसे हो सकता था। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। अतः उत्तर पाषाण कालीन मनुष्य ने शीघ्र ही मृण्भाण्ड कला का सृजन किया। यह भी सम्भव है कि मृण्डभाण्डकला का प्रादुर्भाव उत्तर-पाषाण काल के आगमन के कुछ पूर्व हुआ हो। परन्तु इतना निश्चित है कि मृण्भाण्डों का प्रचुर प्रयोग उत्तर-पाषाण काल में ही हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर-पाषाण काल में चाक का अविर्भाव नहीं हुआ था। मनुष्य अपने हाथों से ही विविध प्रकार के भाण्ड और पात्र बनाता था। और भाँति-भाँति के चित्रों एवं रेखा-संगठनों से उन्हें अलंकृत करता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था[१]। उत्तर-पाषाण कालीन स्थलों में उत्खनन कार्यों के परिणाम स्वरूप प्रभूत मात्रा में मिट्टी के बने हुए नाना प्रकार के पात्र मिले हैं। मृण्भाण्ड कला का आविष्कार सर्वप्रथम रासायनिक आविष्कार था।

(४) **वस्त्र-निर्माण**—पूर्व-पाषाण कालीन मनुष्य ने वस्त्र-निर्माण करना सीख लिया था। परन्तु उसके वस्त्र पशु-चर्म, वृक्ष-त्वचा अथवा तृण-पत्रों के ही होते थे। इन्हें वह सुइयें अथवा सूजों की सहायता से सी लेता था। परन्तु उत्तर-पाषाण कालीन मनुष्य ने सर्वप्रथम पौधों के रेशों और ऊन के धागों को कातना और उन्हें बुन कर वस्त्र निर्माण करना सीखा। उत्खनन में उत्तर-पाषाण कालीन मिट्टी की बनी हुई तकलियाँ और करघे उपलब्ध हुए हैं। पेड़ पौधों के विभिन्न द्रवों एवं धातु-रसों की सहायता से उत्तर-पाषाण कालीन मनुष्य ने अपने वस्त्रों को रँगना भी प्रारम्भ कर दिया। कदाचित् उस समय भी कताई, बुनाई और रँगाई नारियों का विशेष उत्तरदायित्व था।

(५) **गृह-निर्माण**—पूर्व-पाषाण कालीन मनुष्य या तो कन्दराओं में रहता था या पशु-चर्मों के बने हुए तम्बुओं में। वह गृह-निर्माण-विद्या से अनभिज्ञ था। इस विद्या का उदय सर्वप्रथम उत्तर-पाषाणकाल में हुआ। उत्खनन में जो सामग्री उपलब्ध हुई है उससे प्रतीत होता है कि उस काल की झोपड़ियों की दीवारें लट्ठे और नरकुल की होती थीं जिन पर मिट्टी का लेप कर दिया जाता था। छतें लकड़ी, पत्तों और छालों आदि की सहायता से बनाई जाती थीं। झोपड़ियों की फर्श कच्ची और मिट्टी की होती थी।

(६) **अन्य आविष्कार**—पूर्व-पाषाण कालीन मनुष्य की अपेक्षा उत्तर-पाषाण कालीन मनुष्य का बौद्धिक स्तर कहीं अधिक ऊँचा था। अपने अनुभवों से लाभ उठाकर उसने अनेक अन्यान्य आविष्कार भी किये। उदाहरणार्थ उसने ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ी का निर्माण किया। सामान ढोने के लिए पहियेदार ठेले का और झीलों को पार करने के लिए नाव का निर्माण करके उसने व्यापारिक आयात-निर्यात को अपूर्व प्रोत्साहन दिया। दूरस्थ प्रदेशों में समानरूप संस्कृति

१....'he fashioned clay into forms of beauty as well as use decorated it with simple designs, and made pottery, almost at the outset, not only an industry but an art.'—Will Durant.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को देखकर भी यही निष्कर्ष निकलता है कि उस काम में भी अन्तःप्रादेशिक गमनागमन होता था। विचारों के पारस्परिक आदान-प्रदान ने मानवी सभ्यता को द्रुतगति से अग्रसर करना प्रारम्भ किया।

(७)**अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य सामग्री**—पूर्वपाषाण काल में अस्त्र-शस्त्र एवं अन्य सामग्री अधिकांशतः 'चिपिंग' (टुकड़ों को जोड़ने की) प्रणाली पर बनती थो। परिणामतः प्रत्येक वस्तु बेडौल, खुरदुरी और असुन्दर प्रतीत होती थी। उत्तर-पाषाण कालीन मनुष्य ने Polishing Technique (चमक उत्पन्न करने की कला) का प्रादुर्भाव किया। वह पाषाण-खंडों को रगड़-रगड़ कर चिकना और चमकदार बनाने लगा। परिणामतः अब पाषाण सामग्री सुडौल और सुन्दर होने लगी। पहले मनुष्य एकमात्र स्थानीय पाषाणों का ही प्रयोग कर सकता था। अत उसकी पाषाण निर्मित सामग्री में अनेकरूपता नहीं आने पाती थी। परन्तु उत्तर-पाषाणकाल में पहिये और घिरनो का निर्माण हो जाने से विविध प्रकार का पाषाण विभिन्न स्थानों पर आयात हो सकता था। यही कारण है कि तत्कालीन पाषाण-सामग्री अनेकरूपा है। अब मनुष्य एकमात्र पाषाण का ही नहीं वरन् उसके साथ-साथ लकड़ी हाँथी-दाँत और हड्डी का प्रयोग भो अपूर्व मात्रा में करने लगा। उसकी सामग्री भी अब एक मात्र सामरिक अथवा आखेट-संबन्धी न रही वरन् वह अनेक जीवनोपयोगी हो गई। धनुष, बाण, बरछी, भाले, तलवार, चाकू, कुल्हाड़ी आदि घातक सामग्री के अतिरिक्त उनसे हल, हँसिया, पहिया, घिरनी, सीढ़ी, डोंगी, तकली, करघे आदि का निर्माण कर उसने अपनी विकसित वैज्ञानिक कुशलता का परिचय दिया है।

निष्कर्ष—ये समस्त विकास क्रान्तिकारी थे। इन्होंने उत्तर पाषाणकालीन मनुष्यों के जीवन में विपुल परिवर्तन किये। कृषि-कर्म और पशु-पालन आदि सहकारिता की अपेक्षा करते हैं। अतः इस काल में मनुष्य के सामूहिक जीवन का श्रीगणेश हुआ। वह अब सरिताओं और झीलों के तटों पर पारस्परिक दुःख-सुख के सहयोग देता हुआ समूहों में विकास करने लगा। यही कारण है कि उत्खनन में योरप से लेकर भारत तक सर्वत्र उत्तर-पाषाण कालीन लघु 'ग्रामी' के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। सामूहिक जीवन में अचिरात् श्रम-विभाजन

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। बहुत सम्भव है कि इसी श्रम-विभाजन के आधार पर उत्तर-पाषाण कालीन मनुष्यों ने विभिन्न व्यवसायों का विशिष्टीकरण (Speclalisation of Industries) का प्रादुर्भाव किया हो। इस काल का निर्मित काष्ठ एवं लौहादि सामग्री के पीछे एक दीर्घकालीन परम्परा के अस्तित्व का बोध होता है। सम्भव है कि यह व्यावसायिक विशिष्टीकरण का परिणाम हो। धन-संचय ने मनुष्यों के बीच व्यक्तिगत सम्पत्ति में भावना का अंकुरण किया। सम्पत्ति के उदय के साथ ही साथ मनुष्यों में धनाढ्यता और निर्धनता का उदय हुआ। सम्पत्ति-रक्षा और सम्पत्ति-अपहरण से मनुष्यों के बीच युद्ध की संस्था का प्रादुर्भाव हुआ और उसके साथ सामरिक योजनाओं वर्गीकरण, सामूहिक संगठन, शास्त्रागार की स्थापना हुई।

कृषि-कर्म बहुत-कुछ ऋतु-ज्ञान के ऊपर अवलम्बित होता है। ऋतुओं और आकाश-मण्डल के अध्ययन ने उत्तर-पाषाण काल में ज्योतिर्विद्या का कुछ न कुछ अवश्य विकास किया होगा। इसी प्रकार मनुष्य के सामूहिक जीवन ने धर्म और अंध विश्वास की प्रबल संस्थाओं को जन्म दिया होगा। कुछ स्थानों पर उत्तर पाषाण कालीन विशाल भवनों के ध्वंसावशेष मिले हैं। कतिपय विद्वानों का यह निष्कर्ष है कि ये तत्कालीन मनुष्य के मन्दिर थे। इसके अतिरिक्त उत्खनन में कुछ विशेष प्रकार के षाषाण-खण्ड भी उपलब्ध हुए हैं जिन्हें कतिपय विद्वान प्राचीन वेदिकाएँ मानते हैं। परन्तु निश्चित साक्ष्य के अभाव में ये निष्कर्ष विवादग्रस्त ही हैं। जहाँ तक कला का प्रश्न है, उत्तर-पाषण-काल की अपेक्षा कहीं अधिक हीन था मृण्भान्ड-कला के अतिरिक्त इस काल में कोई कला थी ही नहीं। परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से उत्तर पाषाण काल से बहुत आगे था। लेख, धातु और राज्य के अतिरिक्त सभ्यता के प्रायः सभी अंश बीजरूप से उसमें विद्यमान थे।

ताम्र-काल—धातु-प्रयोग ने सभ्यता-विकास की गति को द्रुततर कर दिया। अनुसन्धानों एवं अन्वेषणों ने सिद्ध किया है कि धातुओं में सर्वप्रथम प्रयोग तांबे का हुआ था। इसके प्रयोग की तिथि भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न रही है। इस प्रकार इसकी प्रयोग-तिथि स्वीट्जरलैण्ड में ६००० ई० पू०,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मेसोपोटामिया में ४५०० ई० पू०, मिस्र में ४००० ई० पू० और उत्तर के ध्वन्सावशेषों में ३१०० ई० पू० प्रतीत होती हैं। इस नवीन धातु का प्रयोग मनुष्य के बौद्धिक विकास की सूचना देता है। दूरस्थ प्रदेशों में जाकर इसकी खानों को ढूँढ़ने, इसे खोद कर आयात करने, पिघलाने के लिए उच्चतापमयी भट्टियों के निर्माण करने तथा धातु-द्रव को विविध आकार देने के लिये अनेक प्रकार के छोटे-बड़े साँचों के निर्माण करने में वैज्ञानिक कुशलता की आवश्यकता थी। इस नवीन पदार्थ में पाषाण से भी अधिक सुविधा-जनक विशेषताएँ थीं। यह साँचों के सहारे किसी भी छोटी बड़ी वस्तु के रूप में परिवर्तित किया जा सकता था। इसकी चद्दरें बनाई जा सकती थीं और उसके खंड किये जा सकते थे। यह पाषाण की अपेक्षा अधिक सुन्दर, सुडौल, सुदृढ़ और चिकना होता था। खंडित हो जाने पर पाषाण-निर्मित वस्तु जोड़ी न जा सकती थी, परन्तु ताम्र-निर्मित वस्तु लगाकर पुनः जोड़ी जा सकती थी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि ताम्र-युग में पाषाण का प्रयोग पूर्ण रूप से समाप्त हो गया। नवीन धातु के आविर्भूत हो जाने के पश्चात् भी बहु-संख्यक सामग्री पाषाण की बनती रही।

ताम्र-युग में मनुष्य का जीवन अपूर्व रूप से जटिल और विकसित होने लगा था। प्रत्येक स्थान पर ताम्र प्राप्त न था। उसकी खानें तो कह-कहीं ही थीं। अतः खानों से ताम्र निकाल कर दूर-दूर तक पहुँचाया जाता था। पाषाण-काल में भार-वहन का कार्य पुरुषों और विशेषतया स्त्रियों द्वारा होता था। परन्तु अब उसके लिए मनुष्यों ने पशुओं और गाड़ियों का प्रचुर प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। पशुओं के रूप में मनुष्य ने सर्वप्रथम एक अन्य वाह्य चालक शक्ति को नियन्त्रित कर लिया। पशुओं में सर्वप्रथम था बैल। यही वाष्प-इञ्जिन और पेट्रोल-मोटर के आविष्कार की दिशा में पहला कदम था।[१] बैल के अतिरिक्त गधा, घोड़ा और ऊँट आदि पशुओं का प्रयोग भी भार-वाहकों के रूप में होता था। इनके साथ-साथ मनुष्य ने पहियेदार गाड़ियों

---

१. 'The ox was the first step to the steam engine and petrol motor.'

—Gordan Childe.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का भी प्रचुर प्रयोग करना सीखा। इनका निर्माण कदाचित् उत्तर-पाषाण-काल में ही हो गया था। परन्तु आयात-निर्यात की उदीयमान नवीन आवश्यकताओं के कारण इनका प्रचुर प्रयोग ताम्र काल में ही प्रारम्भ हुआ। जलीय गमनागमन के लिए नावों का निर्माण हुआ। यातायात की इन सुविधाओं ने व्यापार-व्यवसाय को प्रोत्साहन दिया।

यही बात हलों के विषय में भी सत्य है। उत्तर-पाषाण-काल में हल-प्रयोग सन्दिग्ध अथवा अत्यल्प था। परन्तु ताम्र काल में इसका प्रयोग सर्वविदित हो गया। इसके पूर्व खेतों की जुताई का काम कदाचित् नारियाँ अपने हाथों से ही करती थीं। परन्तु अब हल-बैल की सहायता से यह कर्म अधिक सुगम हो गया। अब कृषि कर्म विशाल आधार पर होने लगा।[१] बैलों को खिलाने के हेतु चारा की आवश्यकता प्रतीत हुई। अतः उनके लिए पृथक रूप से घास, करबी अथवा मोटे अन्नों की खेती की जाने लगी। अब कृषि-उपयोगी पशु उनके लिए विशेषरूप से निर्मित आवासों में रहने लगे। इन निश्चित आवासों में उनका गोबरादि एकत्र करना सुगम हो गया, जिसका प्रयोग खाद के रूप में किया गया। परिणामतः पृथ्वी की उत्पादन शक्ति बढ़ गई।

उपर्युक्त ताम्र-कर्म विशेषज्ञता की अपेक्षा करता है। अन्य धातु-व्यवसायों की भाँति इस व्यवसाय में दक्षता प्राप्त करने के निमित्त व्यवसायी को अपना सम्पूर्ण समय इसी अनुसरण में व्यय करना पड़ता है।[२] परिणामतः ताम्र-काल में व्यवसायिक विशेषज्ञों (Specialists) का उदय हुआ। कदाचित् शिल्प-समुदायों का भी निर्माण हो गया था। उनके पास अपनी मुहरें थीं जिनसे वे अपनी सामग्री अंकित करते थे। वे कृषकों एवं अन्य व्यवसायियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे और अपनी आवश्यकताओं के निमित्त उन पर निर्भर रहते थे। फल यह हुआ कि अब प्रत्येक मनुष्य आत्म-निर्भर (Self-sufficient) न रह कर

---

१. 'The plough changed farming from plot cultivation to agriculture.' —Gordan Childe.

२. 'Metallurgy is a full-time job'—Gordan Childe.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरों पर निर्भर हो गया। आदान-प्रदान के सिद्धान्त पर मनुष्यों के बीच सहयोग की भावना अधिकाधिक दृढ़ होने लगी। उनका जीवन समष्टिगत (Collective) हो गया।

इस समष्टिगत जीवन में शासक और शासित की भावना का अंकुरण हुआ। जो मनुष्य सबसे अधिक बलवान होता था उसी पर सहायतार्थ समूह के अन्य मनुष्य निर्भर रहने लगे। अनुभव वृद्धि के साथ-साथ इन मनुष्यों ने प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के साथ आत्मीयता उत्पन्न करना प्रारम्भ किया। कालान्तर में इन्हीं शक्तियों को देवी-देवताओं का रूप मिला। उनकी प्रतिष्ठा के लिए मन्दिरों का उदय हुआ। धर्म के साथ अन्ध विश्वास भी बढ़ा। उत्खनन में स्थान-स्थान पर ताम्र-कालीन तावीजें और मुहरें मिली हैं। जिन पर अनेक पशु-चित्र अंकित हैं। विद्वानों का मत है कि इनका प्रयोग टोना-टोटका के रूप के होता था।

ताम्र-काल में सर्वप्रथम धूप और आग में पकी हुई ईंटों का प्रयोग हुआ। ध्वंसावशेषों से प्रकट होता है कि तत्कालीन मकान बहुधा ऐसी ही ईंटों के बनते थे। इन मकानों में रहने वाले मनुष्यों का जीवन सुविधाजनक भी था और सुरक्षित भी। इनमें अब वे अपनी सम्पत्ति, धान्य, पशु, भाण्ड, पात्र आदि निश्चिन्त होकर संग्रहीत कर सकते थे। अन्न-संग्रह के निमित्त उनके पास बड़े-बड़े मृभाण्ड थे अब चाक की सहायता से निर्मित होते थे। शीत से रक्षा के हेतु उनके पास भेड़ों के बाल से बने हुए ऊनी वस्त्र थे। कताई और बुनाई का काम अधिक विकसित रूप से होने लगा था। मनुष्यों की सौन्दर्य-भावना को सन्तुष्ट करने के निमित्त विविध आभूषण, रङ्गीन वस्त्रों, शीशे तथा पाषाण एवं धातु की सहायता से निर्मित अनेकानेक जीवनपयोगी सुन्दर वस्तुओं का निर्माण होने लगा। मानवी सभ्यता की विकास-गति अव्याहतरूप से सत्वर होती जा रही थी। ताँबा विशेषतया भूमध्यसागरीय देशों में अधिक प्राप्य था। इसी से ताम्र-कालीन सभ्यता का विशेष प्रसार एलाम, मेसोपोटामिया और मिस्र में दृष्टिगत होता है।

काँस्य-काल—निरन्तर प्रयोग के पश्चात् मनुष्य को अनुभव हुआ कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताँबा कठोर कर्मों के निमित्त एक निर्बल धातु है। अतः उसने किसी अन्य कठोरतर धातु के लिए अनुसन्धान प्रारम्भ किया। अनेक प्रकार के प्रयोगों के पश्चात् उसने ताँबे और टीन के सम्मिश्रण से एक नवीन धातु—काँसे का आविष्कार किया। परन्तु यह आविष्कार संसार के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न कालों में हुआ था। क्रीट में इसका प्रयोग ३००० ई० पू०, मिस्र में २८०० ई० पू० और ट्राय में २००० ई० पू० का प्रतीत होता है। पुनः मध्य अफ्रीका, दक्षिणी भारत, उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया और जापान के कुछ देश ऐसे भी हैं जहाँ काँस्य-काल का आविर्भाव हुआ ही नहीं। यहाँ मनुष्यों ने पाषाण काल की सीमाओं का अतिक्रमण कर सीधे लौह-काल में प्रवेश किया था।

लौह-काल—अपने सांस्कृतिक विकास की दौड़ में अन्ततोगत्वा मनुष्य ने सर्व-प्रधान धातु लोहे को ढूंढ़ निकाला। कदाचित् १३०० ई० पू० के लगभग सर्वप्रथम हिट्टाइट जाति ने ही लौह-प्रयोग करना सीखा। वहाँ से यह एशिया और भूमध्य-सागरीय संसार में पहुँचा। फिलिस्तीन में जो लौह-निर्मित चाकू मिले हैं वे १३५० ई० पू० के लगभग के हैं। रैमेंज़ज़ द्वितीय के शासन-काल में मिस्र ने भी लौह प्रयोग करना सीखा। उसके एक शताब्दी पश्चात् वह ईजियन संसार में प्रविष्ट हुआ। पश्चिमी योरप में वह ९०० ई० पू० के लगभग आया। परन्तु लौह-प्राप्ति के पश्चात् काँसा पूर्णरूप से विलुप्त नहीं हुआ। काँसा लोहे की अपेक्षा अधिक सुन्दर था। अतः मनुष्य दीर्घकाल तक अपने अनेकानेक सुन्दर उपकरण काँसे की सहायता से ही बनाता रहा। स्वीट्जरलैंड, स्कैण्डिनेविया, उत्तरी राइन-प्रदेश और हँगेरी के निवासी ऐसे मनुष्यों में ही हैं। पुनः अनेक स्थलों पर लोहा अल्प था अथवा उसका पूर्ण अभाव था। वहाँ भी काँसे का प्रयोग दीर्घकाल तक चलता रहा। लोहे की प्राप्ति से मनुष्य का वैज्ञानिक विकास द्रुततर हो गया।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ३

नील नदी की घाटी की सभ्यता

मिस्र-सभ्यता—ऐतिहासिक काल से लगभग पाँच सहस्राब्दियों पूर्व जब पाषाण-काल से मानव धातु-काल में प्रविष्ट हुआ तथा जब सभ्यता पर्वतों की गह्र कन्दराओं से नदियों के पुण्य तट पर अवतरित हुई एक नवीन क्रान्ति जागृत हुई जिसे नदी-घाटी-सभ्यताओं की क्रान्ति कहा जाता है । इससे प्राचीनतम केन्द्र जैसा कि प्रथम अध्याय में कहा जा चुका है अफ्रीका की पावन नील नदी का तट था जहाँ मानव ने सर्वप्रथम निश्चित आवास धारण किया । इसके प्रमाण आज भी 'नकदेह' जो जीब्ज़ शहर के निकट स्थित हैं, से प्राप्त हुये हैं । इनके कब्रस्तानों से प्राप्त कपड़ों एवं आभूषणों के अवशेष तथा भाण्ड-पात्र उच्चकोटि की सभ्यता के परिचायक है । परन्तु इन सबके पीछे परमपावन नील नदी का ही वरद हस्त रहा होगा और संभव इसी कारणवश आज भी 'मिश्र सभ्यता' को 'नील नदी का वरदान' कहा जाता है । विशालकाय अफ्रीका महाद्वीप के उत्तरी प्रदेश में मरुस्थल की एक सुविस्तीर्ण पट्टी है । इस मरुस्थली की चमचमाती हुई सिकता राशि में अपने स्वर्णिम अतीत के विकीर्ण कणों को खोजता हुआ मिस्र देश आज अपने पुनरुन्नयन में संलग्न है । आयास और अवरोध से क्लान्त उसकी स्वेदसिक्त दृष्टि जब कभी अन्तर्वर्तिनी तटिनी नील की कल-कलनिनादनी सन्देश वाहिनी धवल-धारा पर सहसा जा पड़ती है तो वह पुनः किसी रहस्यमयी शक्ति से उत्प्राणित हो उठता है और अपने पुनर्निर्माण को सुदीर्घ साधना में आत्मविभोर हो जाता है । उसका यह क्रम अनेक वर्ष-दशकों से चल रहा है और न जाने कब तक चलता रहेगा । मिस्र देश आज न तो पूर्ण सशक्त है और न समृद्ध ही । परन्तु उसके पास अपने गौरवशील अतीत के मधुर स्वप्न हैं जो उसकी महती साधना के श्रमसीकरों से अभिसिंचित होकर उज्ज्वल सत्य के रूप में उदित होंगे, ऐसा उसका विश्वास है । अतीत मृतक नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वरन् मृतक की संजीवनी शक्ति है, विगत नहीं वरन् वर्तमान का संबल है।

आज से ५००० वर्ष जब विश्व के अधिकांश खण्ड बर्बरता के निविड तिमिर में घुट-घुटकर सक्लेश जीवन-यापन कर रहे थे उसी समय अफ्रीका का अर्ध-महाद्वीप मिस्र की समुदित सक्लेश सभ्यता की सहस्र रश्मियों से प्रदीप्त हो उठा था यद्यपि आज वह सभ्यता काल के कराल गाल में समा चुकी है तथापि उसके चिह्न उन पाषाण-खंडों पर अंकित हैं जिन्होंने मिस्र के इतिहास पिरेमिडों, राजभवनों और राज-समाधियों को सप्राण कलेवरता दी थी। ये पाषण-खंड अतीत के साक्षी हैं, निर्जीव इतिहास-पृष्ठों की अपेक्षा शतधा अधिक मुखर हैं।

भौगोलिक अवस्था—परन्तु प्रश्न यह होता है कि सभ्यता का आविर्भाव मिश्र देश में ही क्यों हुआ। इसका उत्तर इस देश की भौगोलिक अवस्था में अन्तर्निहित है अफ्रीका के उत्तरी मरुस्थल को चीरती हुई नील नदी प्रवाहित होती है। इसके जल और इसकी मिट्टी ने मरुस्थल के बीच एक अति उर्वर भूमि-खन्ड निर्मित कर दिया है। अतीत काल में यह भूमि-खंड सोना उगलता था। इससे प्रतिवर्ष तीन फसलें उत्पन्न होती थी। कृषि-कर्म के लिए अति उपयुक्त होने के कारण यहाँ के निवासियों को जीवनोपयोगी अन्न का अभाव न था। सरिता-सिञ्चित शस्यश्यामला धरती मिस्रानिवासियों की आवश्यकता-पूर्ति के हेतु विविध अन्न उत्पन्न करती थी। मिस्र-निवासी प्राचीन संसार के प्रख्यात निर्माता थे। उन्होंने अनेक नहरों और बाँधों का निर्माण कर नील के विपुल जल को समन्तात् प्रसारित कर दिया था। जीवनदायिनी सरिता के इस उन्मुक्त प्रसाद ने मिस्र देश को शरीरयात्रा के निमित्त एक अति सुलभ और समृद्ध साधन कृषि प्रस्तुत कर दिया।

नील नदी सूडान के पर्वतों से निकल कर उत्तर दिशा में बहती हुई भूमध्यसागर में गिरती है। इस भूमध्यसागर के तट पर अनेकानेक देश हैं। पुनः लालसागर के कारण भूमध्यसागर एशियाई देशों के लिए भी सुगम हो गया है। इस प्रकार मिस्र का देश नील नदी के द्वारा भूमध्य सागर से, भूमध्यसागर के द्वारा यूरोपीय देशों से और लालसागर के द्वारा एशियाई देशों से जुड़ा हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यातायात की इस सुदीर्घ शृंखला की प्रधान कड़ी नील सरिता ही है। जिस प्रकार नील नदी का प्रवाह-मन्थरता ने आन्तरिक गमनागमन और व्यापार को योग दिया है उसी प्रकार यातायात की उपर्युक्त सुदीर्घ शृंखला ने सामुद्रिक गमनागमन और व्यापार को। नील नदी का प्रवाह उत्तर दिशा की ओर है और समीरों का प्रवास दक्षिण की ओर। इस स्थिति ने सरिता में यातायत को सुगम बना दिया है। मिस्र देश अपने समकालीन सिंधु देश और मेसोपोटामिया देश की समुन्नत सभ्यताओं के सम्पर्क में आ सका और पारस्परिक-बौद्धिक आदान-प्रदान के द्वारा मानव-सभ्यता को अग्रसर कर सका। इस सांस्कृतिक प्रगति का प्रमुख कारण नील सरिता ही है।

सरिता की पर्वतीय निस्सृति, मन्थर गति, सुविशाल पाट एवं सुदीर्घ तट की सुरम्यता में मिस्र-निवासी के हृदय की प्रेरणा थी, उसके मस्तिष्क की कल्पना थी। वातावरण की नैसर्गिक सुषमा मानव-हृदय की सहज सौन्दर्य-भावना अपना विकास पाती है और यही विकसित सौन्दर्य-भावना साहित्य, संगीत, कलादि की जननी है। इस प्रकार नील नदी ने मिस्र की भौतिक धन-धान्यता और बौद्धिक प्रकृष्टता में महत्वपूर्ण योग दिया है। वह देश की निस्सीम श्रद्धा-भक्ति का केन्द्र-विन्दु है। उसकी उर्मिलता में मिस्र के अतीत का गौरव थपकियाँ लेता है; उसकी कलकलनिनादिता में उसके पूर्वजों की पुण्यगाथा गुनगुनाती है। इस महाद्वीप में सभ्यता का कारवाँ सर्वप्रथम नील नदी के सुकूल पर ही उतरा था। हेरीडोटस का सारगर्भ कथन कि 'मिस्र नील नदी का वरदान है', मिस्र-निवासियों की अपनी जीवन-दायिनी सरिता के प्रति अपरिमित कृतज्ञता की अभिव्यक्ति करता है।

नील नदी के समान मिस्र की भौगोलिक स्थिति की अन्यान्य विशेषताओं ने भी मिस्र के उत्कर्ष में सहायता दी। यह देश पश्चिम में सुविशाल मरुस्थल, पूर्व में लालसागर, उत्तर में भूमध्यसागर और दक्षिण में महाद्वीप की अन्धता से संरक्षित है। परिणामतः विदेशीय आक्रमणों से भीति-विहीन होकर यह देश अपनी सुदीर्घ शान्ति का उपयोग संस्कृति-सभ्यता के विविध अंगों के परिष्कार के निमित्त कर सका।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देश की जलवायु उष्ण थी, परन्तु वृष्टि का अभाव न था। रात्रि सदैव शीतल होती थी। अतीतकालीन मिस्र वर्तमान कालीन मिस्र की भाँति शुष्क न था। जलसिक्त उष्णता ऐसी न थी कि वानस्पतिक जगत् मुरझा जाय। इस प्रकार की जलवायु ने मिस्र की प्रगति में योग ही दिया, अवरोध नहीं। दिन भर उष्णता में परिश्रम मनुष्य को कठोर और कर्मठ बनाता था और रात्रि की शीतलता उसके प्राणों में स्निग्ध विश्राम की तन्द्रा लाती थी।

जाति—मिस्र से उपलब्ध प्राचीन चित्रों और मूर्तियों से उसके प्राचीन निवासियों का आकार-प्रकार निर्धारित करने में सहायता मिली है। इनकी नाक छोटी, होठ मोटे, बाल काले और कड़े, आँखें गहरी और रंग भूरा था। यद्यपि इनमें कासेशियन जाति के अंश की प्रधानता थी तथापि सेमाइट, लिबियन और निग्रो जातियों के रक्त का भी सम्मिश्रण था।

प्री-डायनिस्टिक काल (Pre-dynestic Period)—मिस्र के पाषाण-काल के विषय में हमें कुछ ज्ञान नहीं है। लगभग ५००० ई० पू० इस काल का अवसान हो जाता है और मिस्र-सभ्यता की रूप-रेखा निखरने लगती है। ५००० ई० पू० से लेकर ३२०० ई० पू० तक का काल मिस्र-इतिहास में प्री-डायनिस्टिक काल के नाम से सम्बोधित होता है। यह काल पूर्वैतिहासिक काल के अवसान और ऐतिहासिक काल के बीच में है। इस समय मिस्र का देश अनेक छोटे-छोटे नगर व राज्यों—Nomes— में विभक्त था। प्रारम्भ में ये राज्य एक-दूसरे से नितान्त पृथक् एवं स्वतन्त्र थे। परन्तु कालान्तर में ये एक-दूसरे के सन्निकट आने लगे और लघु राज्य विशाल राज्य में संगठित होने लगे। यहीं से मिस्र में राजनीतिक एकता का सूत्रपात होता है। शीघ्र ही बहुसंख्यक राज्यों का विलय हो गया और उनके स्थान पर मिस्र में दो विशाल राज्य संगठित हुए—(१) उत्तरी राज्य और (२) दक्षिणी राज्य। इन राज्यों का संचालन सामाजिक परम्पराओं एवं कौटुम्बिक प्रथाओं के आधार पर होता था।

राजनीतिक प्रगति के साथ-साथ इस काल में पर्याप्त रूप से सामाजिक और आर्थिक प्रगति भी दृष्टिगत होती है। इस समय तक मिस्र-निवासी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिरभ्रमणशील जीवन का परित्याग कर स्थायी जीवन व्यतीत करने लगा था। कुटुम्ब उसके समाज की इकाई था। स्त्री-पुरुष दोनों का समान रूप से आभूषणानुराग उनकी विकसित सौन्दर्य-वासना की ओर संकेत करता है। कृषि-कर्म इनका प्रमुख उद्यम था। खेतों की सिंचाई के निमित्त इन्होंने नहरों का भी निर्माण किया था। कृषि-कर्म के साथ-साथ पशु-पालन भी इनकी जीविका का साधन था। ये लोग मृतभाण्ड (मिट्टी के बर्त्तन) कला में भी प्रवीण थे। इनके भाण्डों एवं पात्रों के ऊपर सुन्दर पालिश और चित्राङ्कन है। व्यवसायों में सूत कातने और कपड़े बुनने का व्यवसाय पर्याप्त रूप से विकसित था। संसार का सर्वप्रथम कलेण्डर कदाचित् इसी समय निर्मित हुआ। इसके अनुसार वर्ष में १२ महीने और ३६५ दिनों की कल्पना की गई थी। कलेण्डर का निर्माण उनके वैज्ञानिक एवं गणित सम्बन्धी ज्ञान का परिचायक है।

प्राचीन राज्य (Old kindom) ई० पू० ३२०० से ई० पू० २३००— एक शताब्दी पूर्व मिस्र के प्राचीन राज्य के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं था। केवल कुछ ऐतिहासिक उद्धरण एवं कहानियाँ ही उपलब्ध थीं। परन्तु इसकी प्राचीनता हेरोडोटस स्वयं के यात्रा संस्मरणों से होती है जिसकी पुष्टि बाद में सिकन्दर महान के विश्व-अभियान द्वारा हुई। मिस्र का प्राचीनतम इतिहास "मनेथो" नामक पुरोहित द्वारा लिखा गया जिसके अनुयायी डिओडोरस, स्ट्रैवो एवं प्लूटार्क हैं। आधुनिक पुरातत्त्व गवेषणाओं ने भी अनेकों पिरामिडों, लेखन-सामग्रियों एवं कब्रस्तानों से यह सिद्ध कर दिया है कि मिश्र का प्राचीन राज्य काफी सभ्य एवं समृद्धिशाली था। लगभग ई० पू० ३२०० मिस्र का ऐतिहासिकता के क्रोड में प्रविष्ट होता है। इस समय मिस्र के उत्तरी और दक्षिणी राज्य एक विशाल राज्य में सङ्गठित हो जाते हैं और 'प्राचीन राज्य' का प्रादुर्भाव होता है इस पर छः राजवंशों ने राज्य किया।

(१) प्रथम राज्य की स्थापना मेनीज नामक एक काल्पनिक व्यक्ति द्वारा हुई जिसका समय ३२०० ई० पू० माना जाता है। इसकी राजधानी किनिज्ञ थी।

(२) द्वितीय राज्य ३००० ई० पू० से २८०० ई० पू० तक रहा जिसकी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजधानी मेम्फिज थी। इसके अवशेष अबेडुग्रास नामक कब्रस्तान से मिले हैं जिनसे ज्ञात होता है कि ये सेमिटिक जाति के थे। प्रारंभिक हस्त-कलाओं, धातु प्रयोग एवं लेखन शैली से परिचित थे।

(३) इसकी स्थापना २६०० ई० पू० में हुई। इसकी राजधानी पूर्ववत् ही रही। इस मेम्फिस शहर में जोसर नामक शासक ने प्रसिद्ध सूर्य मंदिर की स्थापना २६८० ई० पू० में किया। साथ ही एवेडुग्रोस के निकट एक कब्रस्तान एवं सर्वप्रथम पिरेमिड की स्थापना भी किया।

(४) चतुर्थ काल २८०० ई० पू० से प्रारंभ होता है जिसकी महानतम घटना कैरो के निकट निर्मित गिजेह का पिरेमिड है। इसके निर्माता प्रसिद्ध शासक खुफू (Cheops) थे। यह आज भी विश्व के सात प्राचीन आश्चर्यों में है। यह ४७५' ऊँचा ७६०' लम्बा एवं १३ एकड़ के क्षेत्र में बना है इसमें ३०,००,००० क्यूबिक गज के पत्थर लगे हैं। इसके अतिरिक्त २०,००,००० पत्थर के बड़े टुकड़े भी शामिल हैं। यह फरोह शासकों की महानता, धार्मिकता एवं विचारों की सूक्ष्मता का एकमात्र चिन्ह है।[१]

(५) पंचम एवं षष्ठम् काल प्राचीन राज्य के व्यापारिक एवं आर्थिक समृद्धि के युग थे जिसमें अनेकों देशों से सम्बन्ध स्थापित किये गये तथा मेसोपोटामिया की अपेक्षा एक शिक्षित सभ्यता की स्थापना हुई।

राजा फ़रोह कहलाता था। वह देव-पुत्र समझा जाता था। जन-साधारण

---

१. "No is so expressive of the divinity and theoratic absolutism of the pharsaps of second dynasty as their pyramids. It is impossible to conceive such a gigantic effort demanded by any king in history. It gives us an idea of material power and moral authority of the pharoahs and enables us to see better into the mentality of the people who worked for the salvation of a single man."

—A. A. Trever.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की कल्पना में वह सूर्य-देवता ही का पुत्र था। दैवी-शक्ति का प्रतीक होने के कारण फ़रोह महत्ता और पवित्रता का भी प्रतीक था। अपनी रक्तशुद्धता अक्षत रखने के निमित्त वह प्रायः अपने वंश में ही विवाह करता था। राजपद वंशानुगत होता था। युवराज अपने पिता के शासन-काल में प्रधान मन्त्री अथवा निरीक्षक के रूप में राजकीय विषयों में सहायता करता था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य के उत्तराधिकारी को राज्य प्राप्त करने के पूर्व उचित राजकीय शिक्षा एवं अनुभव दे देने की व्यवस्था की गई थी।

शासक के साथ-साथ राजा देश का सर्वोच्च पुरोहित भी था। उसी के निरीक्षण में राजकीय यज्ञ, पूजन एवं अनुष्ठान होते थे। अन्यान्य पुरोहितों की नियुक्ति भी राजा के द्वारा ही होती थी।

राजा देश का सर्वोच्च न्यायाधीश भी था। उसके नीचे एक प्रधान न्यायाधीश और उस प्रधान न्यायाधीश के नीचे छः अन्य न्यायाधीश होते थे। निम्न न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील करने की व्यवस्था थी। परन्तु राजा का निर्णय अन्तिम समझा जाता था।

नगर राज्यों का शासन राज्यपालों (गवर्नरों) द्वारा संचालित होता था। ये राजा के द्वारा नियुक्त होते थे। प्रत्येक राज्यपाल के पास एक सेना रहती थी। परंतु प्राचीन राज्यकाल शांति-प्रधान था। अतः सेना का प्रयोग युद्धों की अपेक्षा सार्वजनिक निर्माण-कार्यों में ही अधिक होता था। परन्तु फरोह के पास कोई अपनी निजी सेना न थी। कदाचित् यह व्यवस्था राजा की निरंकुश प्रवृत्ति का दमन करने के हेतु की गई थी। बाह्य आक्रमण के समय राजा नगर-राज्यों की सेनाओं पर ही अवलम्बित रहता था। परन्तु इन सम्मिलित सेनाओं का नेतृत्व भी स्वयं राजा न करता था। युद्ध-काल में कोई अन्य व्यक्ति उनका सेनानी चुन लिया जाता था।

प्राचीन राज्यकाल इतिहास में पिरेमिड-काल के नाम से भी प्रख्यात है, क्योंकि इसी समय मिस्र के विशाल पिरेमिडों का निर्माण हुआ। ये पिरेमिड अपने निर्माताओं की शक्ति, समृद्धि, श्रम एवं समय की विशाल योजना के दिव्य प्रतीक हैं। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इन पिरेमिडों के

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्माण के पीछे राजाओं का लक्ष्य क्या था ? कुछ विद्वानों का मत है कि इनका निर्माण एकमात्र राजनीतिक कारण से हुआ। मिस्र नरेश समस्त विश्व का अपनी शक्ति और सत्ता के प्रदर्शन द्वारा आतंकित एवं आश्चर्यान्वित करना चाहते थे और इस ध्येय की पूर्ति विशालकाय सुदृढ़ पाषाण-निर्मित पिरेमिड की अपेक्षा अन्य किस साधन से हो सकती थी ? कुछ विद्वानों का अनुमान है कि ये विशाल कृतियाँ राजाओं के व्यक्तिगत दम्भ का प्रतिफल हैं। राजाओं ने अपने नश्वर शरीर एवं वैभव को अमरत्व देने के हेतु ही इन पिरेमिडों का निर्माण किया था। अन्य विद्वानों के मतानुसार पिरेमिड-निर्माण आर्थिक कारणों से उद्भूत था। राज्य की बढ़ती हुई बेकारी को रोकने और जीविकाविहीन जनता की उदरपूर्ति के लिए राजाओं ने इन दीर्घकालीन निर्माण-कार्यों को आयोजित किया था। अतः पिरेमिड निरुद्देश्य श्रम एवं व्यय के विपुल पुंज हैं। परन्तु इन मतों के विरुद्ध कतिपय विद्वान पिरेमिड-निर्माण में धार्मिक कारण भी देखते हैं। उनका कथन है कि मिस्र राष्ट्र सूर्योपासक था। अतः अपने आराध्य देवता की प्रथम रश्मियों का सर्वप्रथम स्पर्श करने के हेतु ही उसने इन उत्तुंग पिरेमिडों का निर्माण किया था। जो भी हो, इसमें कोई संदेह नहीं कि ये पिरेमिड विश्व के आश्चर्य हैं। हेरोडोटस नामक इतिहासकार ने गिज़ेह के पिरेमिड का उल्लेख किया है। उनके अनुसार १०,०००० मनुष्यों ने २० वर्ष के दीर्घ प्रयास के पश्चात् इसका निर्माण किया था। विशाल पाषाण-खण्डों को बड़ी कुशलता से एक दूसरे के ऊपर रखकर इसका निर्माण किया गया था। यह ४८१ फुट ऊँचा है।

मध्य-राज (Middle Kingdom) २१०० ई० पू० १५८० ई० पू०—लगभग २३०० ई० पू० प्राचीन राज्य का पतन हो गया। यह पतन केन्द्रीय शासन की शिथिलता, नगर-राज्यों की निरंकुशता, राजकीय करों की अधिकता प्रजा-शोषण और नीग्रो एवं एशियाई जातियों के बाह्य आक्रमण के परिणाम-स्वरूप हुआ था। लगभग २०० वर्षों के अशान्ति-काल के पश्चात् जब मिस्र के रंगमंच पर पुनः यवनिका उठती है तो हम वहाँ एक अन्य राज्य को प्रतिष्ठित पाते हैं। यह राज्य इतिहास में मध्य-राज्य के नाम से प्रख्यात है। परन्तु यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य पूर्वगामी प्राचीन राज्य की भाँति सबल और संगठित न था। दीर्घकालीन अशान्ति का दमन नगर-राज्यों के सामन्तों की सहायता से हुआ था अतः स्वाभाविक था कि राजसत्ता पर उनका आतंक और विरोध होता। यही कारण है कि इस काल के राजा निर्बल थे। उसकी निर्बलता से लाभ उठाकर राज्य के सामन्त समय-समय पर पारस्परिक युद्ध किया करते थे। इन्होंने देश में अपने अनेकानेक लघुराज स्थापित किये जो वस्तुतः राजनियन्त्रण से मुक्त थे। सामन्तों की प्रधानता के कारण यह मध्यराज्यकाल सामन्तवादी काल भी कहलाता है।

परन्तु मध्य-राज्य के १२ वें राजवंश ने पुनः सत्ता प्राप्त की। इसने सामन्तों की निरंकुशता का दमन किया। इस दमन-कार्य में उसे जनता का सहयोग मिला था। अतः लोक-मत को सन्तुष्ट करने के निमित्त १२वें राजवंश ने देश में जनतंत्रात्मक शासन की स्थापना की। उसका राज्य इतिहास का सर्वप्रथम जनतंत्रात्मक राज्य था। शासन की शान्ति और जनता के सहयोग के परिणाम-स्वरूप देश ने अभूतपूर्व उन्नति की। देश में जनता का उत्पीड़न समाप्त हुआ न्याय की प्रतिष्ठा हुई। नरेशों के प्रोत्साहन और संरक्षण में साहित्य और कला की भी उन्नति हुई। १२वें राजवंश का शासन-काल मिस्र के इतिहास में सामाजिक न्याय और बौद्धिक सफलताओं का काल था।[१]

परन्तु इस राजवंश के पतन के पश्चात् मिस्र में पुनः अशान्ति व्याप्त हो गई। पुनः सामन्तों की शक्ति बढ़ी और अधिकार विस्तार के हेतु उनमें पारस्परिक संघर्ष होने लगे। इस अशान्ति से लाभ उठाकर १७५० ई० पू० पश्चिमी एशिया की हिक्सोज जाति ने मिस्र पर आक्रमण किया और नील डेल्टा पर अधिकार कर लिया। परन्तु वह दीर्घकाल तक डेल्टा पर अपना अधिकार न रख सकी। १६वीं शताब्दी ई० पू० के अन्त में अहमोज प्रथम नामक नरेश ने हिक्सोज जाति को पराजित किया और उसे मिस्र से मार भगाया। उसके शासन-काल से मिस्र में साम्राज्यवादी काल प्रारंभ होता है।

साम्राज्यवादी काल ई० पू० १५८० ई० पू० १०९०—अहमोजप्रथम

१ 'The period of its rule was a golden age of social justice and intellectual achievements........'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने १८वें राजवंश की स्थापना की। वह जानता था कि देश में सुसंगठित शासन तब तक स्थापित नहीं हो सकता जब तक सामन्तों की निरंकुशता अक्षत है। अतः राजसत्ता ग्रहण करने के पश्चात् सर्वप्रथम उसने सामन्तों का दमन किया। उसके समय से मिस्र ने शान्तिपूर्ण नीति का परित्याग कर उग्र, अग्रगामी एवं साम्राज्यवादिनी नीति का अनुसरण किया। सर्वप्रथम अहमोज प्रथम ने सीरिया और फिलिस्तीन पर आक्रमण किया। उसकी नीति अनुसरण करते हुए थुत्मोज प्रथम ने पश्चिमी एशिया के प्रदेशों पर आक्रमण किया और उनकी अपार सम्पत्ति का अपहरण किया। इस निधि की सहायता से उसने अपने देश को भव्य भवनों, प्रसादों और मन्दिरों से अलंकृत किया। राज्यों में वैभवशालिता एवं भव्यता अधिकांशतः चौर वृत्ति के सहारे आती है।

(२) १४९९ ई० पू० मिस्र के सिंहासन पर हाशेपसुत नाम की एक सम्राज्ञी आसानी हुई। विश्व-इतिहास की कदाचित् यह सर्वप्रथम सम्राज्ञी है। अपनी वीरता, शासन-कुशलता एवं लोकोपकारिता के कारण ईव की इस पुत्री की गणना संसार की अग्रगण्य वीरांगनाओं में होती है। मिस्र की व्यवस्था के अनुसार अबला राज्य की उत्तराधिकारिणी न हो सकती थी। हाशेपसुत पुरुष नहीं थी, परन्तु पुरुष की समता तो कर ही सकती थी। उसने स्त्री की वेश-भूषा का परित्याग कर पुरुष की वेश-भूषा और दाढ़ी-मूँछ धारण किया। साथ ही साथ उसने 'सूर्य-पुत्र' की उपाधि भी ग्रहण की। अपने २० वर्षों के दीर्घ शासन-काल में उसने मिश्र को अभूतपूर्व शान्ति और सुरक्षा प्रदान की। विदेशीय व्यापार को प्रोत्साहन देकर उसने देश की समृद्धि में वृद्धि की। हिक्सोज जाति द्वारा किये गये विध्वंसात्मक कार्यों के परिणामस्वरूप क्षतिग्रस्त भवनों एवं मन्दिरों का जीर्णोद्धार करा कर उसने मिस्र की भव्यता को पूर्ववत् कर दिया।

(३) हाशेपसुत की मृत्यु के पश्चात् १४७९ ई० पू० थुत्मोज़ तृतीय सिंहासनासीन हुआ। वह घोर साम्राज्यवादी था। अपने निरन्तर युद्धों के फलस्वरूप उसने सीरियन, फोनेशियन, केनानाइट, हिटाइट, और असीरियन जातियों को अपने अधीन कर लिया और इनसे भारी कर लिये। समस्त भूमध्यसागीय प्रदेश पर अधिकार हो जाने से मिस्र देश का विदेशीय व्यापार बहुत बढ़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया। विदेशीय व्यापार एवं साम्राज्य की संरक्षा के हेतु थुत्मोज ने एक सुसंगठित जहाजी बेड़े का निर्माण किया। अपनी शृंखलाबद्ध विजयों के कारण इस सम्राट् को मिस्र के नेपोलियन की उपाधि दी गई है। १४४७ ई० पू० में इस सम्राट् की मृत्यु हो गई।

(४) १४११ ई० पू० इस वंश में आमेनहोतेप तृतीय सिंहासनासीन हुआ। इसने अपने विशाल साम्राज्य के सम्पन्न साधनों को विद्या एवं कला कौशल के विकास-हेतु नियोजित किया। सम्राट् ने विद्वानों को संरक्षण दिया। उसके प्रोत्साहन के परिणामस्वरूप साहित्य एवं ललित कलाओं को विशेष उन्नति हुई। सम्राट् स्वयं एक सुप्रसिद्ध निर्माता था। उसके अनेकानेक प्रासादों और देवालयों का निर्माण करा कर अपने साम्राज्य को भव्यता प्रदान की।

(५) १३७५ ई० पू० आमेनहोतेप तृतीय की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र आमेनहोतेप चतुर्थ राज्याधिकारी हुआ। वह स्वभावतः शान्तिप्रिय, चिन्तनशील, स्वतन्त्रतावादी एवं परिष्कृत मनोवृत्तियों का मनुष्य था। जिस समय यह सिंहासनासीन हुआ उस समय मिस्र धर्म अपने आदि रूप से बहुत-कुछ परिवर्तित हो चुका था। आमेनहोतेप की मति में यह परिवर्तन विकृति का दूसरा नाम था। एक ईश्वर के स्थान पर मिस्र-निवासी बहुसंख्यक देवी-देवताओं की उपासना करने लगा था। री, ओरिसिस, आइसिस जैसे प्रधान देवताओं के साथ-साथ सिंधु (आकाश) न्यूट (पृथ्वी), हैथर (गौ) आदि अन्यान्य लघु देवी-देवताओं की उपासना भी लोकप्रिय हो गई थी। इनके अतिरिक्त अनेक पशु-पक्षी एवं पादपलता भी उसकी असीम श्रद्धा-भक्ति के केन्द्र थे। भारत और रोम के अतिरिक्त और किसी भी देश में देवी-देवता इतनी अतिसंख्या में प्रतिष्ठित न हुए थे। आमेनहोतेप की दृष्टि में यह बहुदेववाद ही समस्त धार्मिक विकारों का प्रमुख कारण था। तत्कालीन समाज में आराध्य और आराधक का सम्बन्ध सरल और सीधा न था। उसके लिये अनुष्ठान-विशेषज्ञ पुरोहितों की आवश्यकता थी। प्रत्येक उपासना के निमित्त पुरोहित अनिवार्य था। इस धार्मिक अनिवार्यता ने पुरोहित-वर्ग को अत्यन्त प्रभुताशाली बना दिया था। प्रारम्भ में तो यह वर्ग अपनी विद्वत्ता, त्यागशीलता और साधना के लिए अति सम्मान्य था। परन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आमेनहोतेप चतुर्थ के समय तक आते-आते यह नितान्त स्वार्थी, धनलोलुप और सुखाकांक्षी हो गया था। जनता की असीम श्रद्धालुता से लाभ उठाकर इसने अन्धविश्वासमूलक कर्मकाण्ड और वृहद् अनुष्ठान-विधान का निर्माण किया था जिसका एकमात्र लक्ष्य अपने निर्माताओं को अर्थ-लाभ और प्रभुत्व-लाभ कराना था। देवोपासना के लिये देश में अति संख्यक देवालय थे। ये पुजारियों की स्वार्थपरता, धनलोलुपता और अनाचारिता के विशाल गढ़ थे। इनकी ओट में प्रवंचना का व्यापार होता था। देवताओं की सन्तुष्टि के हेतु बहुसंख्यक देव-दासियाँ नियुक्त होती थीं जिनका प्रधान कर्तव्य पुजारियों की वासना की सन्तुष्टि था। देवालय पुजारियों के अन्तःपुर थे। इस धार्मिक वेश्यावृत्ति ने धर्म को अनैतिकता के गर्त में ढकेल दिया था। धर्म के नाम पर भ्रष्टाचार का नग्न नृत्य हो रहा था।

आमेनहोतेप की विशुद्ध धर्मालुता इस प्रकार के विकृत धर्म को देखकर देवालयों को भग्न एवं चिरसम्मानित पुजारियों को निष्कासित होते देखकर क्षुब्ध हो उठी। वह विकार का विदूरीकरण कर विशुद्ध धर्म को उसका पुरातन गौरव प्रदान करना चाहता था। प्रचलित धर्म के सम्पूर्ण स्वरूप का विश्लेषण कर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि समस्त धार्मिक विकारों का कारण बहुदेववाद और साकार-पूजा है। अतः उनके लोक-पूजित समस्त देवी-देवताओं को अवैध घोषित कर दिया। उनके मन्दिरों से मूर्तियाँ एवं पुजारी हटा दिये गये। स्थान-स्थान पर भवनों, मन्दिरों और समाधियों आदि पर अंकित 'विधर्मी' देवी-देवताओं के नाम मिटा दिये गये। इस प्रकार मिस्र के बहुदेववाद का उच्छेदन कर आमेनहोतेप ने एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की। उसने एटन को सर्वशक्तिमान्, प्रकाशवान् निर्विकार तथा निराकर परमेश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किया। धार्मिक सुधार के आवेग में सुधारक-नरेश ने अपना नाम तक परिवर्तित कर दिया। उसने इख्नाटन (एटन सन्तुष्ट हो गया) का नवीन नाम धारण किया। उसकी कल्पना में नव प्रतिष्ठित एटन सूर्य-देवता था। यही कारण है कि उसकी उपासना के निमित्त सूर्योदय-काल एवं सूर्यास्तकाल निर्धारित किये गये थे। यह राजधर्म सार्वभौमता के ऊपर आधारित था। एटन एकमात्र मिस्र-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राष्ट्र का देवता न था, वरन् वह समस्त मानव-जाति का देवता था। अब धर्म यान्त्रिक न रहा। वह आडम्बर पूर्ण अनुष्ठानों से विहीन होकर विशुद्ध नैतिकता के ऊपर आधारित था। वाह्य उपासना के साथ मनुष्य के लिये अन्तःशुद्धि भी आवश्यक थी। धार्मिक सदाचार की पुनः प्रतिष्ठा ने मनुष्य के जीवन मूल्यों को उच्चतर करने की चेष्टा की। आचार-शुद्धि, सत्य अहिंसा, दान-दयालुता के उद्दात्त सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर एख्नाटन ने युद्ध-सत्रस्त, अधर्म-नियोजित मानव को शान्ति-सुख देने की व्यवस्था की।

परन्तु उसका धर्म-सुधार सफल न हुआ। अपने प्रवर्तक के साथ वह भी विलुप्त हो गया। परम्परानुरागिनी जनता ने उसके सुधार में अपना धर्म-विनाश देखा। अपने चिरपूजित देवताओं की प्रतिमाओं को खण्डित, चिरपूत वह क्षुब्ध हो गई। इख्नाटन के उद्देश्य उदात्त थे। परन्तु उसमें उन्हें कार्यान्वित करने को क्षमता न थी। वह कवि था, दार्शनिक नहीं।[१] अपनी भावुकता के आवेग में उसने जनता की मनोदशा की अवहेलना की। देश में सुधार की आवश्यकता थी, क्रान्ति की नहीं। धर्म के क्षेत्र में बल प्रयोग की अपेक्षा शान्ति-पूर्ण शिक्षण अधिक स्थायी प्रभाव उत्पन्न करता है। राजाज्ञा के भय से जनता प्रत्यक्ष रूप में तो एटन और उसके संस्थापक इख्नाटन के समक्ष नतमस्तक हो गई, परन्तु प्रच्छन्न रूप में वह दोनों के अचिर विनाश के हेतु कामना करने लगी। मन्दिरों से निकल कर विधर्मी देवी-देवताओं ने जनता के घरों में अपने आसन जमाये। बाहर एटन का जय-जयकार हो रहा था, परन्तु घरों के भीतर उसके लिये मृत्यु का आह्वान किया जा रहा था। इख्नाटन ने जिन जंत्र-मन्त्रों का निषेध कर दिया था वही अब उसकी अकाल मृत्यु के निमित्त प्रच्छन्न रूप से पुजारियों द्वारा प्रयुक्त किये जा रहे थे। इख्नाटन के चतुर्दिक षड्यन्त्र हो रहे थे। चतुर्दिक जनता के हृदय में विद्रोहाग्नि प्रज्ज्वलित हो रही थी। एकेश्वर की खोज में इख्नाटन अपना राजपथ भूल गया था।[२] वह भावुक कवि था,

---

१. 'He was a poet rather than a philosopher'.

२. He grasped for the absolute and brought the whole structure of Egypt down upon his head.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूरदर्शी राजा नहीं। स्त्री-सुलभ सौन्दर्य और कवि सुलभ भावुकता से राज्य-संचालन नहीं होता।[१] जिस समय देश में धर्म-सुधार की मुरली बज रही थी, उसी समय विदेशियों की रण-भेरी अपने तुमुल नाद से मिस्र साम्राज्य के प्राचीरों को प्रकम्पित कर रही थी। फिर इस संकट-काल में मिस्र को शूरकर्मा योद्धा की आवश्यकता थी, परन्तु अभाग्य से उसे एक धर्मभीरु पुजारी मिला। स्वप्निल लोक का विहारी कवि-हृदय विश्व-बन्धुत्व का राग अलाप रहा था, जब कि उसके देश का भविष्य स्वयं खतरे में था। अपने अस्तित्व की कुटिया जलाकर सार्वभौमता का निर्माण मिस्र-इतिहास के लिये एक नूतन प्रयोग था। सीरियन और हिटाइट जातियों ने विद्रोह किया। विद्रोह-दमन में रक्तपात होता, हिंसा का क्रूर प्रयोग होता। यह सब इख्नाटन के उदात्त धर्म के नितान्त प्रतिकूल था। अतः उसने उनकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली और साम्राज्य की क्षति सह कर अपने धर्म रक्षा की। ऐसी परिस्थिति में निष्कर्ष निश्चित था। दिवसानुदिवस इख्नाटन की विफलता स्पष्ट होने लगी। न देश में शान्ति थी और न साम्राज्यमें सुरक्षा साम्राज्य के आधार हिल उठे। आन्तरिक विद्रोहों और बाह्य आक्रमणों की सम्भावना से साधु नरेश प्रकम्पित हो उठा। उदात्त सिद्धान्तों के आकुल प्रतिपादन के पीछे अपनी मनोव्यथा का भार छिपाये १३६२ ई० पू० उसकी मृत्यु हो गई। अपने जीवन के अन्तिम चरण में वह अपनी प्रजा की अयोग्यता और अपनी विफलता से अवगत हो गया था।[२] अपने काल से वह बहुत आगे था।

(६) इख्नाटन की मृत्यु के पश्चात् मिस्र-साम्राज्य उत्तरोत्तर जीर्ण-शीर्ण होने लगा। आन्तरिक अशान्ति ने देश को अशक्त कर दिया था। साम्राज्य के अन्तर्गत अधीन देशों की स्वतन्त्र प्रवृत्तियाँ जाग्रत हो गई थीं। स्थान-स्थान पर विद्रोह हो रहे थे। उनके दमन में मिस्र को धन-जन की अपार-क्षति हुई। देश के इस संकटग्रस्त काल में भी समाज का अभिजात एवं उच्च वर्ग विलासिता की मदिरा

---

१. Here was a Shellay called to be a king.

२ 'In 1362 B. C. he died broken with the realisation of his failure as a ruler and the unworthiness of his race'.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
में आत्म-विस्मृत था। ई० पू० १२ वीं शताब्दी तक मिस्र का साम्राज्य विलुप्त हो गया। रैम्सीज तृतीय [ई० पू० ११९८—६७] ने इस दयनीय दशा को सुधारने का प्रयास किया परन्तु अतिकाल हो चुका था। संज्ञाहीन में चेतना संचार न हो सका। १०९० ई० पू० तक मिस्र का देश उसी स्थल पर वापस आ गया जहाँ से उसने अपने-अपने उत्कर्ष की दौड़ प्रारम्भ की थी। एकमात्र मिस्र का कंकाल अवशिष्ट रहा। वह भी ३२२ ई० पू० सिकन्दर के आक्रमण के समक्ष जर्जरित हो गया। यूनानी विजेता ने शक्तिहीन गौरवहीन मिस्र पर अपना अधिकार कर लिया।

मिस्र की शासन-व्यवस्था—वास्तव में मिस्र भी सभ्यता मानव जाति के आन्तरिक एवं बाह्य दोनों पक्षों का समुचित समन्वय प्रस्तुत करती है जिसकी प्रामाणिकता तत्कालीन शासन-व्यवस्था कला धर्म एवं विज्ञान से सिद्ध हो जाती है। शायद इसी से प्रभावित होकर जर्मन विद्वान स्पेन्गलर ने इसे अद्वितीय सभ्यता की संज्ञा दी है।[१] मिस्र का शासन एकतन्त्रामत्क था। सम्पूर्ण साम्राज्य की सत्ता सम्राट् के हाथ में केन्द्रित थी। वही साम्राज्य का सर्वसत्ताधारी शासक, सर्वोच्च सेनापति, न्यायाधीश और पुजारी था। इस प्रकार उसका व्यक्तित्व साम्राज्य की व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी, न्याय-सम्बन्धी, सैनिक एवं धार्मिक क्रियाओं का स्रोत था। वह साम्राज्य के समस्त उच्च पदों पर अधिकारी नियुक्त करता था। ये पदाधिकारी अपने कार्यों के सम्राट् के प्रति उत्तरदायी थे। उसी की इच्छा पर इनका धन-जन निर्भर करता था। असन्तुष्ट होने पर सम्राट् उच्च से उच्च पदाधिकारी को पदच्युत, स्थानान्तरित, अथवा दण्डित कर सकता था। राजा का प्रति शब्द अधिनियम की सम्मान्यता रखता था। मिस्र का निरंकुशवाद दैवी अधिकारवाद और सैनिकवाद पर आधारित था। सम्राट्

१ "The Egyptian civilization is a n embodiment of concern —the soul' s correlation with future which is manifested in its sculpturs, in the masterly system of administration and religious ideas".

—Oswald Splengler.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईश्वरीय प्रतिनिधि समझा जाता था। अतः राजा के प्रति आज्ञोल्लंघन घोर अपराध और विद्रोह अक्षम्य अपराध समझे जाते थे। राजा का परम पुरोहित पद भी उसके विरुद्ध विद्रोह की सम्भावना को हतोत्साहित करता था। साम्राज्य के धर्माध्यक्ष के विरुद्ध आचरण, पापाचार के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? इस धर्मत्राण के अतिरिक्त सम्राट् को सेनात्राण भी उपलब्ध था। अपने निरंकुशवाद के संरक्षण के हेतु उसके पास एक सुसंगठित सेना रहती थी। वह बाह्य आक्रमणों की भाँति आन्तरिक विद्रोहों का दमन करती थी।

परन्तु मिस्र का निरंकुशवाद अन्य देशों के निरंकुशवादों की भाँति सम्राट् की व्यक्तिगत क्षमता के ऊपर निर्भर था। जब तक सम्राट् सुयोग्य, सशक्त और प्रभावशाली रहता था तब तक उसकी निरंकुशता चलती रहती थी। परन्तु सम्राट् के अयोग्य होते ही राजकीय सत्ता शिथिल हो जाती थी सम्राट् की निरंकुशता पर अन्य नियन्त्रण सामन्तवाद और पुरोहितवाद का था। सम्पूर्ण देश में बड़े-बड़े सामन्त थे। राजा की ओर से इन्हें विशाल भूखण्ड एवं प्रान्त मिले थे। ये वहाँ प्रायः स्वतन्त्र शासकों के रूप में रहते थे। शासन संचालन में भी इनके विशेष अधिकार थे। सम्राट् को सदैव इनके विद्रोह का भय रहता था। अतः या तो वह इनका दमन करता था या फिर इनकी संतुष्टि के लिए सयत्न रहता था। इसी प्रकार देश के पुरोहित भी एक प्रभावशाली वर्ग के थे। प्राचीन संसार में प्रायः सर्वत्र राजनीति के ऊपर धर्म का प्रभाव था और धर्म के संरक्षक, अर्थ बोधक एवं व्यवस्थापक ये पुरोहित ही थे। साम्राज्य के योग-क्षेम के निमित्त ये सदैव दैवी शक्तियों को संतुष्ट रखते तथा रहस्यमयी शक्तियों को जागरित कर सम्राट् के हेतु प्रसाद प्राप्त करते थे अतः सम्राट् के ऊपर पुरोहित वर्ग का विशेष प्रभाव था। राजकीय सत्ता पर अन्य रोक सामाजिक परम्पराओं और कौटुम्बिक प्रथाओं की थी। मिस्र में कोई विकसित संविधान न था अतः शासन-संचालन में यही परम्परायें और प्रथायें सम्राट् का पथ-प्रदर्शन करती थीं। इनका उल्लंघन निन्द्य समझा जाता था।

राजकीय कार्यों में सम्राट् की सहायता के निमित्त अनेकानेक अधिकारी रहते थे। इनमें सर्वप्रधान था प्रधान मन्त्री। प्रारम्भ में यह पद सदैव युवराज

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को दिया जाता था। परन्तु कालान्तर में सम्राट् किन्हीं भी राजवंशीय अथवा सामन्तवंशीय सुयोग्य व्यक्तिय को भी इस पद पर नियुक्त करने लगे। सम्राट् द्वारा मनोनीत होने के कारण प्रधान मन्त्री अपने समस्त कार्यों के निमित्त सम्राट् के प्रति ही उत्तरदायी होता था। उसकी कालाविधि भी सम्राट की इच्छा पर निर्भर रहती थो। परन्तु साधारणतया वह आजीवन रहती थी। सम्राट का सर्वोच्च प्रतिनिधि होने के नाते प्रधान मन्त्री ही शासन का अनेक कार्य करता था। वही जन-गणना एवं कर संग्रह कराता, राजवंशीय एवं सार्वजनिक निर्माण-कार्यों की व्यवस्था करता, निम्नस्तरीय न्यायालयों के विरुद्ध आनेवाली अपीलों को सुनता, राजाज्ञाओं को प्रसारित करता और राजवंश की देख-रेख करता था। आधुनिक शब्दों में वह सम्राट का निजी सहायक, जनगणनाधिकारी, कलक्टर, सार्वजनिक निर्माण विभाग का निरीक्षक और प्रधान न्यायपति आदि था।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, साम्राज्य की शान्ति और संरक्षा के हेतु सम्राट् के पास एक सेना होती थी। इस सेना में पद्यति, अश्वारोही और रथारोही रहते थे। सैनिक धनुष-बाण, भालों, बरछों, गड़ासों और तलवारों आदि से लड़ते थे। आवश्यकता पड़ने पर सम्राट् अपने प्रान्तीय शासकों से भी सैनिक सहायक लेता था। अपने सामुद्रिक व्यापार एवं विदेशीय साम्राज्य की संरक्षा के निमित्त मिस्र ने एक जहाजी बेड़े का भी निर्माण किया था। इसका प्रधान कार्य-क्षेत्र भूमध्य सागर था। मिस्र की सम्पूर्ण सेना का सर्वोच्च सेनापति सम्राट् था। उसके नीचे अन्य सेनानायक रहते थे।

मिस्र की न्याय-व्यवस्था अविकसित थी। उसने हम्मूराबी, मनु, याज्ञवल्क्य, लाइकर्गस अथवा सोलन ऐसे किसी व्यवस्थाकार को जन्म न दिया। परिणामतः उसका विधान आद्योपान्त अलिखित परम्पराओं एवं प्रथाओं तथा कुछ लिखित नियमों का निर्विश्लेषित समुदाय था। अधिकाशतः निर्णय निर्णायक की स्वेच्छा पर निर्भर रहता था। साधारणतया ग्रामों में झगड़ों का निर्णय सामन्तों का कर्तव्य था और नगरों में नगरपति का। इनके ऊपर स्थानीय न्यायालय थे जो निम्नतर न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनते थे। मिस्र साम्राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का सर्वोच्च न्यायालय स्वयं सम्राट् था। दैवी शक्ति का प्रतिनिधि होने के कारण इसका न्याय पूर्ण एवं अनिन्द्य समझा जाता था। उसके विरुद्ध कहीं अपील का अवकाश न था। साधारण अपराधों में कारावास, अर्थदण्ड और शारीरिक दण्ड दिया जाता था। परन्तु गम्भीर अपराधों में निर्वास, अङ्गच्छेद, और मृत्यु दण्ड मिलता था।

प्रान्तीय शासन राज्यपालों के हाथ में था। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मिस्र का देश नोमों में विभक्त था। इनकी संख्या ४७ और ५० के बीच में थी। इनके शासक नोमर्क कहलाते थे। ये नोमर्क मिस्र के सामन्त थे जो सम्राट् द्वारा नियुक्त होते थे। नवविजित प्रदेशों के शासनार्थ सम्राट् राजवंशीय अथवा सामन्तवंशीय राज्यपालों को नियुक्त करता था। ये सभी प्राय: अपने आन्तरिक विषयों में स्वतन्त्र थे। जब तक ये सम्राट् को धन-जन की सहायता देते रहते थे तब तक वह इनके राज्य में हस्तक्षेप न करता था। स्वेच्छानुसार ये अपने राज्यों में सेना रखते, कर-संग्रह करते एवं अभियुक्तों को दण्डित करते थे। परन्तु मिस्र की वैदेशिक नीति, संधि-विग्रह, का क्षेत्र एकमात्र सम्राट् के अधीन था। प्रान्तीय शासकों के अधीन नगरपति और ग्रामपति थे जो स्थानीय निवासियों की सहायता से शान्ति और संरक्षा कायम रखते थे। परन्तु मिस्र-जैसे एकतंत्रवादी देश में स्थानीय शासन का समुचित विकास न हो सका था।

सुविस्तृत साम्राज्य के भिन्न-भिन्न प्रदेशों की सूचना देने के लिये सम्राट् अपने निरीक्षक और गुप्तचर रखता था। ये विविध देशों में इतस्तत: परिभ्रमण करते थे और प्रत्येक महत्वपूर्ण विषय की सूचना सम्राट तक पहुँचाते थे। ये सम्राट् के अति विश्वश्नीय व्यक्ति होते थे। अत: वह इनकी सूचनाओं को विशेष महत्व देता था।

कला—जिस प्रकार मिस्र ने सुविशाल साम्राज्य की प्रतिष्ठा की उसी प्रकार सुमहती कला की भी। वास्तु, स्थापत्य, चित्रकला सभी में मिस्र के कलाकार की प्रतिभा समान रूप से विकसित हुई है। मिस्र-निवासी इतिहास में सबसे बड़े निर्माता थे।[1] उनकी अनेकानेक कला कृतियाँ आज भी अपने

[1] The Egyptians were the greatest builders in history.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्माताओं के हस्त-लाघव की साक्षी हैं। मिस्र-सभ्यता अपने सम्राटों के कारण इतनी प्रख्यात नहीं जितनी अपने कलाकारों के कारण। 'इस सभ्यता का सर्वोच्च तत्व इसकी कला थी। यहाँ, प्रायः इतिहास के प्रवेश-द्वार पर ही हम एक ऐसी सबल और प्रौढ़ कला से साक्षात्कार करते हैं जो किसी भी वर्तमान राष्ट्र की कला से अधिक उत्तम है। एकमात्र यूनान की कला ही इसकी समता कर सकती है।'[१] मिस्री कला की कुछ प्रमुख विशेषतायें ये हैं—

(१) **विशालता**—मिस्र निवासी की मनोवृत्ति विशालता में ही अधिक रमी है। उसका साम्राज्य, समाज, देववाद सभी कुछ विशाल है। इसी प्रकार उसको कला की भी केन्द्र-विन्दु विशालता है। मिस्र के कला-कोष में लघुता नाम का कोई शब्द नहीं। मिस्र के पिरेमिड, राजप्रासाद, भवन, मन्दिर, मूर्तियाँ सभी विशाल हैं।

(२) **सुदृढ़ता**—विशालता के साथ-साथ मिस्र की अधिकांश कृतियाँ सुदृढ़ भी हैं। सुदृढ़ता प्रदान करने के लक्ष्य से निर्माताओं ने कठोरातिकठोर पाषाण-खण्डों का प्रयोग किया है, प्राचीरों को अति चौड़े आधार पर बनाया है तथा स्तम्भों को अति सुदीर्घ व्यास दिया है। तज्जनित सुदृढ़ता ने ही कृतियों को दीर्घकालीनता प्रदान की है।

(३) **उपयोगिता**—मिस्र निवासी व्यवहारिक बुद्धि का था। उसकी सृष्टि का प्रत्येक कण उपयोगी है। उसकी अन्तश्चेतना में कला, कला के लिये नहीं वरन् जीवन के लिये थी। यही कारण है कि उसने निरुपयोगी सुन्दरता के सृजन की अपेक्षा सुन्दर उपयोगिता के सृजन को अधिक महत्व दिया है। उसके पिरेमिड, प्रासाद, मन्दिर, मूर्तियाँ आदि सभी कुछ उपयोगिता की दृष्टि से निर्मित हुई हैं।

(४) **भव्यता**—परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मिस्र के कलाकारों में

---

[१] The greatest element in this civilisation was its art. Here, almost at the threshold of history, we find an art powerful and mature, superior to that of any modern nation and equalled only by that of Greece.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सौंदर्योपासना थी ही नहीं। विशालता, सुदृढ़ता और उपयोगिता के प्रकोष्ठ में कला का जीवन-तन्तु—सौंदर्य—सुचारुरूप से संरचित है। मिस्र की सौंदर्य-भावना में स्त्री-सुलभ सुकुमारता नहीं वरन् पुरुषोचित ओजस्विता है। अनेक स्थलों पर यह सौन्दर्य-भावना उन्मुक्त विहारिणी के रूप में भी प्रकट हुई है। सघन पादप, विकसित कुसुम और नव किसलय की रचना में कलाकार ने अपनी विशुद्ध सौन्दर्य-प्रियता प्रदर्शित की है।

(५) **रूढिवादिता**---दीर्घ प्रयोग ने मिस्र-कला में कुछ परम्परायें प्रतिष्ठित कर दीं। इन परम्पराओं का अनुशीलन एवं परिपालन इतना अधिक बढ़ा कि कालान्तर में वे कला की रूढ़ियाँ बन गईं। रूढ़िगत कला-प्रदर्शन में बहुसंख्यक कृतियों का निर्माण इतने अधिक अभिन्न अथवा समान रूप में होने लगा कि वे प्रायः एक ही साँचे की ढली प्रतीत होती हैं। उनमें कलाकारों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव है। वास्तुकला में समानरूप से विशालता, निर्भेद स्तम्भ-बहुलता और आपूर्ण समन्वय-विहीनता, स्थापत्य में मूर्तियों की निर्विशेष अग्रोन्मुखता, भावशून्यता एवं अनुपात-विहीनता तथा चित्रकला में सर्वत्र संगठन-विहीनता रूढ़िवादिता के ही दुष्परिणाम हैं।

(६) **धर्म-प्रधानता**—मिस्र का समाज धर्म-प्रधान था। यूनानियों ने मिस्र निवासियों को सबसे अधिक धर्मनिष्ठ कहा है। जिस प्रकार उनकी राजनीति धर्म के आधार पर व्यवस्थित थी उसी प्रकार उनकी कला भी। मिस्र की कला का विकास धर्म के चतुर्दिक हुआ है। पिरेमिडों, मन्दिरों; देव-मूर्तियों आदि के पीछे प्रायः मिस्र की धर्म-भावना ही थी।

वास्तु कला—वास्तुकला का अपरिष्कृत प्रयोग मिस्र-निवासियों के सामान्य गृहों के निर्माण में मिलता है। पाषाण की बहुमूल्यता के कारण सामान्य मनुष्यों के गृह प्रायः ईंट-मिट्टी के बनते थे। परन्तु उनकी छतों में लकड़ी का भी प्रयोग किया जाता था। छतों पर जाने के निमित्त प्रायः प्रत्येक गृह में एक जीना होता था। फर्श कभी कच्ची रहती थी और कभी ईंटों की सहायता से पक्की बना दी जाती थी। सामान्यतया गृहों के चतुर्दिक एक चहारदीवारी बना दी जाती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गृहों के भीतर कमरों की संख्या परिवार की आर्थिक अवस्था और सदस्य-संख्या के ऊपर निर्भर करती थी ।

परन्तु मिस्र के वास्तुकारों की प्रतिभा इन सामान्य गृहों के निर्माण में नहीं वरन् विशाल पिरेमिडों के निर्माण में विकसित हुई है । जैसा कि पीछे कहा गया है, प्राचीन राज्य-काल पिरेमिड काल था । इस समय अनेक पिरेमिडों का निर्माण हुआ जो मिस्र-साम्राज्य की शक्ति और समृद्धि के प्रतीक हैं ।[१] सर्वप्रथम पिरेमिड का निर्माण २७०० ई० पू० के लगभग हुआ । अधिकांश पिरेमिड नील नदी के तट पर गिजे नामक स्थान पर निर्मित हुए थे । इनमें खुफु फरोह का पिरेमिड सर्वप्रसिद्ध है । इसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है । इसकी विशालता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसका क्षेत्रफल १३ एकड़ है । प्रारम्भ में इसकी ऊँचाई ४८१ फुट थी, परन्तु अब केवल ३५० फुट रह गई है । इसके निर्माण में २३ लाख शिला-खण्ड प्रयुक्त हुए हैं । प्रति शिलाखण्ड २½ टन भारी है । ये विशाल शिलाखण्ड एक दूसरे के ऊपर इतनी बारीकी के साथ जोड़े गये हैं कि जोड़ों के बीच $\frac{१}{१०००}$ इंच से अधिक दराज नहीं हैं । इन संख्याओं से पिरेमिड-निर्माण में आयोजित श्रम, धन और समय का अनुमान लगाया जा सकता है । गणित एवं इंजीनियरी के उत्कृष्ट ज्ञान के बिना इन विशालकाय पिरेमिडों का निर्माण होना असम्भव था । अपनी शक्ति और विशालता के लिये ये आज भी संसार के समक्ष विस्मय और कौतूहल के विषय हैं । प्रसिद्ध इतिहासकार चैम्पोलियन ने कहा है कि प्राचीन दुनिया में सर्वप्रथम मिस्र कलाकारों ने ही इतनी ऊँची उड़ान भरने में सफलता प्राप्त की है ।[२]

---

१. 'Their construction was an act of faith, the expression of an ambition to endow the state with permanence and stability.'

२. "No people ancient or modern have conceived the art of architecture on a scale so sublime, so great and so grandiose as the ancient Egyptians. They conceived like man a hundred feet high."

—Champollion.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मध्य राज्य तक आते-आते हम देखते हैं कि मिस्र में पिरेमिड-निर्माण की परम्परा परित्यक्त हो जाती है और उसके स्थान पर मन्दिर-निर्माण वास्तुकला का प्रमुख विषय बन जाता है। नव प्रतिष्ठित मन्दिर-निर्माण-परम्परा साम्राज्य-काल में भी सक्रम रही। कारनाक और लक्जोर के मन्दिरों के सुविशाल स्तम्भ सुन्दर वास्तु-दक्षता के मौन साक्षी हैं। इनमें कारनाक का मन्दिर संसार का सबसे बड़ा मन्दिर है। इसकी लम्बाई लगभग १३०० फुट है। रैम्सीज द्वितीय द्वारा अम्बू सिम्बेल नामक स्थल में निर्मित सूर्य-मन्दिर १८५ फुट लम्बा और ९० फुट चौड़ा है। फिले में आइसिस देवी का मन्दिर अपनी भव्यता के लिये प्रसिद्ध है। सेती प्रथम ने एबीडोज नामक एक मन्दिर का निर्माण कराया था जिसके स्तम्भ अति सुन्दर हैं। इन समस्त मन्दिरों की विशेषता है उनकी विशालता और सुदृढ़ता। इनके द्वारा निर्माणकारों ने राष्ट्राभिमान, साम्राज्य-गौरव और राज्य के बल और स्थायित्व की धारणा को प्रदर्शित करने की चेष्टा की है। मन्दिरों के समस्त अंगों में सबसे अधिक आकर्षक हैं उनसे स्तम्भ और शीर्ष भाग। कुछ स्तम्भों का व्यास २० फुट और ऊँचाई ७० फुट है। उनके शीर्ष भाग इतने विशाल हैं कि उन पर सौ मनुष्य खड़े हो सकते हैं। मन्दिरों की तोरणयोजना भी प्रशंसनीय है। विविध अलंकरण-प्रणालियों के द्वारा मन्दिरों को आकर्षक बनाने की चेष्टा की गई है। परन्तु कलाकारों के विशालतानुराग ने कहीं-कहीं पर कृतियों को दोषपूर्ण कर दिया है। उनमें अनुपात विहीनता आ गई है। समन्वय होने के कारण कुछ कृतियों में विशालता का ही एकमात्र बर्बर प्रदर्शन रह गया है।

स्थापत्य—मिस्र के स्थापत्यकार ने बहुसंख्यक कृतियों का निर्माण किया था। इनकी विशेषता भी विशालता है। प्रारम्भिक कृतियाँ अपेक्षाकृत छोटी हैं। परन्तु शक्ति, समृद्धि और साम्राज्य के विस्तार के साथ कृतियों का आकार प्रकार भी बढ़ता गया। कुछ मूर्तियाँ ९० फुट तक ऊँची हैं। स्थापत्य कला का प्रदर्शन अधिकांश धर्म के क्षेत्र में हुआ है। मूर्तियों में देव मूर्तियाँ ही अधिक हैं। जो अन्य मूर्तियाँ हैं वे भी बहुधा देवालयों को अलंकृत करने के हेतु ही निर्मित हुई हैं। इस प्रकार मिस्र की स्थापत्य-कला धर्म का आधार मानकर खड़ी हुई हैं। परन्तु शनैः-शनैः स्थापत्य-कृतियाँ असाम्प्रदाय (Secular) भी होने लगीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१२वें राजवंश तक आते-आते हमें देव-मूर्तियों के साथ-साथ राजाओं, सामान्य मनुष्यों और पशु पक्षियों की मूर्तियाँ भी अधिकतर संख्या में दृष्टिगत होने लगती हैं। मिस्र की स्थापत्य-कला में रूढ़िवादिता अत्यधिक है। परम्परानुगामी स्थापत्यकारों ने बहुधा समरूप कृतियों का सृजन किया है। अधिकांश मूर्तियों की मुद्रायें समान रूप से कठोर और भावशून्य हैं। वे प्रायः सदैव आगे की ओर ही देखती हैं। उनके हाथ वक्षःस्थल पर हैं अथवा अटेन्शन की अवस्था में नीचे लटके मिलते हैं। प्रायः प्रत्येक मूर्ति के हाथ की पाँचों उँगलियाँ बराबर हैं। मूर्तियों को इन निर्विशेषताओं ने उन्हें मौलिकताविहीन कर दिया है। परन्तु इख्नाटन के शासन-काल में जहाँ हमें धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह दिखाई देता है वहाँ कला-सम्बन्धी रूढ़ियों के विरुद्ध भी। अमर्ना में उपलब्ध इख्नाटन का शीश रूढ़िविहीन विशुद्ध कला-प्रदर्शन का उत्कृष्ट उदाहरण है। सम्राट् के समस्त चारित्रिक गुण—सुकुमारता, भावुकता, स्वप्निलता, विशुद्धता और आदर्श शीलता—इस पाषाण-खण्ड पर बड़ी ही सजीवता के साथ अंकित किये गये हैं। मिस्र की कतिपय स्थापत्य-कृतियाँ अपनी स्वाभाविकता और सुन्दरता के लिये संसार-प्रसिद्ध हैं। इनमें एक शेख की मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। यह श्रमजीवियों का मुखिया है। इसका खल्वाट शीश पद-गुरुत्व से भासित है और मुख अधिकार-भावना से ढीली-ढाली वेश भूषा के भीतर से इसकी कार्य-व्यस्तता झाँक रही है। इस मूर्ति की सजीवता से प्रभावित होकर मैस्पेरो ने कहा कि यदि संसार की सर्वोत्कृष्ट कला-कृतियों की प्रदर्शिनी हो तो मैं मिस्र की सर्वोत्तम कलाकृति के रूप में इसी शेख की मूर्ति को प्रस्तुत करूँगा।[१] इसी प्रकार का अन्य सुन्दर स्थापत्य-कृति एक स्त्री की मूर्ति है जो अनाज पीसती हुई प्रदर्शित की गई है। मांसपेशियों की आयास-जनित कठोरता एवं मुद्रा की कार्यलीनता दर्शनीय है। स्थापत्यकार की छेनी से यह पाषाण-खण्ड सचेतन हो उठा हैं। तीसरी प्रमुख मूर्ति एक लेखक की है। इसकी सजीवता विश्व-विदित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक वास्तव

१. 'If some exhibition of the world's master-pieces were to be inaugurated I should choose this work to uphold the honour of Egyption art'.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में लिखने ही जा रहा है। उपर्युक्त ये तीन कृतियाँ मिस्र स्थापत्य के त्रिरत्न हैं।[१] इस प्रकार का सजीव स्थापत्य अभूतपूर्व है।[२]

परन्तु सर्वाधिक आश्चर्यजनक कला का प्रदर्शन विचित्र प्रकार की मानव एवं पशु दोनों से सम्मिलित आकार की बनी हुई स्फिन्क्स (Sphinx) की मूर्तियाँ हैं जिनका ऊपरी भाग शेर एवं नीचे का भाग मनुष्य का है। इनके वास्तविक उद्देश्य के विषय में मतभेद है फिर भी ये भय के देवता माने जाते रहे होंगे। सर्वोच्च मूर्ति ७५′ ऊँची एवं १५०′ लम्बी है।

वास्तु कला का एक अन्य भव्य प्रदर्शन तत्कालीन कब्रस्तानों में हुआ है जहाँ शवों को चित्ताकर्षक रेशमी कपड़ों में आभूषणों के साथ लपेट करके रखा गया है। इन्हें Mummies कहते थे और यह प्रथा आज भी अनेकों देशों में प्रचलित है। इतिहासकार फ्लिन्डर्स पीट्री में ठीक ही कहा था कि ये मिस्र की भविष्य के सभ्यताओं के लिए अपूर्व देन हैं। इनका भव्य प्रदर्शन तुतेनखामेन की कब्रस्तानों में देखा जा सकता है।[३]

मानवमूर्तियों की भाँति पशु मूर्तियों के निर्माण में भी मिस्री स्थापत्यकार ने अपने हस्तलाघव का परिचय दिया है। दर-एल-बाहरी की गौ-मूर्ति[४] और अमेन होतेप तृतीय के समय की दो सिंह-मूर्तियाँ[५] अपनी सबल स्वाभाविकता के लिये विश्व-प्रख्यात हैं।

---

१. The Sheik exudes authority, the woman grinding grain gives every sense and muscle to her work, the scribe is on the very vege of writing'.

२. Never was sculpture more alive.

"३. Never was a richer legacy hequeathed by any people to posterity. They are the greatest of the Egyptian's immortal embelishments."

—Sir Flinders Petrie.

४. 'Equal if not superior the best achievement of Greece and Rome in this genri.'—Maspero.

५. 'Best from antiquities'——Ruskin.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिस्र के कलाकर ने रिलीफ़ स्थापत्य का भी प्रभूत निर्माण किया। उसने भवनों, मन्दिरों और समाधियों आदि के प्राचीरों पर जिन स्थापत्य-कृतियों को उत्कीर्ण किया उनमें उसके देश का इतिहास भी है और धर्म भी। शायद ही संसार का किसी अन्य जाति ने अपने प्राचीरों के ऊपर इतने विशद् एवं विशाल रूप में अपनी ऐतिहासिक तथा धार्मिक गाथाओं का अंकन किया होगा। तत्कालीन सर्वोत्कृष्ट रिलीफ स्थापत्य कृति सम्राज्ञी हाशेपसुत के एक अभियान की है। इसमें सम्राज्ञी की शक्ति और समृद्धि का प्रदर्शन अति सजीव है। राजकीय वैभव का वहन करते हुए थूत्मोज तृतीय और रैमेज़ीज़ द्वितोय की रिलीफ़ मूर्तियाँ भी कम सुन्दर नहीं हैं। ये मिस्री सम्राटों की गौरव गरिमा से स्पन्दित हो रही हैं। स्थापत्यकार ने राज वैभव के समान व्यापारिक समृद्धि को भी सफलतापूर्वक उत्कीर्ण किया है। एक रिलीफ में पारावार की उत्ताल तरंगों का अतिक्रमण करते हुए विक्रेय-सामग्री से परिपूर्ण जलपोत व्यापारार्थ दक्षिण दिशा की ओर प्रयाण करते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। उसी के समकक्ष एक अन्य जलपोत विदेशयात्रा के पश्चात् बन्दरगाह में प्रविष्ट होता है। तटवर्ती राजा एवं जन-समूह के उल्लास-विस्फारित नेत्र उसका स्वागत कर रहे हैं।

चित्रकला—यद्यपि मिश्र के प्रारम्भिक काल के चित्र नष्ट हो चुके हैं तथापि उत्तर-कालीन चित्रों की बहुसंख्यक प्राप्ति से इस देश की चित्रकला अभ्युन्नत अवस्था पर प्रकाश पड़ता है। मिस्री चित्रकारों ने अपनी तूलिका का प्रयोग प्रासादों, भवनों, मन्दिरों, समाधियों एवं मूर्तियों, सभी पर सफलता पूर्वक किया है। समृद्ध एवं शक्तिशाली साम्राज्यकाल तक चित्रकला अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। तत्कालीन चित्रकार ने मानवी पाशविक एवं वानस्पतिक जगत् के विविध विषयों को जिसे रोचकता, स्वभाविकता एवं सहानुभूति के साथ चित्रित किया है वह दर्शनीय है। राजवंश का वैभव, अभिजात वर्ग की प्रतिष्ठा, सामान्य वर्ग की सरलता, पशु-पक्षियों की स्वच्छन्दता और वन-उपवन की सुरम्यता के चल-चित्र अति सुन्दर और स्वाभाविक बन पड़े हैं। सम्राट् इख्नाटन की सहज भावुकता विपुलरूपा प्रकृति के चिरनूतन दृश्यों में अधिक रमी थी। अतः इस कवि-हृदय सम्राट् को प्रेरणा से मिस्री चित्रकला में प्रकृति-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णन की प्रतिष्ठा की गई। तरंगिणी की कलकल निनादिता, जलनिधि की विशाल गम्भीरता, पर्वत की भयावह उत्तुंगता, कृषि क्षेत्र की शस्यश्यामता, उषा की उदीयमान सौभाग्यशालिता और संध्या की श्रान्त नीरवता, सभी में नियति-नटी का उन्मुक्त कौतुक है जो सिमिट कर मिस्री चित्रकारों की क्षीण रेखाओं में बँध गया है। प्रकृति के नैसर्गिक रंग चित्रित पादप पत्रों, कुसुम-दलों एवं लता-वितानों में समा गये हैं। उसकी गति भीरु पशुओं के पलायन में, विहार-शालिता विहंगमों की उन्मुक्त उड़ान में और शुचि सरोवरों के स्फटिक शुभ्र जल में समा गई है। अधिकांश प्रकृति-चित्रण सचेतन से हैं।

अन्यदेशीय कलाओं की भाँति मिस्री कला में भी कतिपय दोष एवं त्रुटियाँ हैं। मिस्र का कलाकार चित्रकला को स्वतंत्र कला के रूप में प्रतिष्ठित न कर सका। वह सदैव वास्तु और स्थापत्य की परिचारिका बनी रही। भवनों एवं मूर्तियों आदि को अलंकृत करने में ही उसकी सार्थकता समझी गई। पुनः राज्य और धर्म से सम्बन्धित होने के कारण यह कला बहुधा सामान्य जीवन से दूर हो गई है। उसमें जन-साधारण के जीवन की साधारण अनुभूतियों का अभाव है। शैली की दृष्टि से मिस्री चित्र बहुधा संगठनविहीन एवं परम्परा-बोझिल हैं। विशालता की आकांक्षा ने कभी-कभी चित्रकारों की अनेक कृतियों को अस्वाभाविक एवं विरूप कर दिया है। परंतु इन दोषों के होते हुए भी मिस्री चित्रकला संसार में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। विल ड्यूरंट के मतानुसार पूर्वी देशों में मध्यवंशीय चीन के पूर्व किसी भी देश की चित्रकला मिस्री चित्रकला से अधिक उत्तम नहीं है।[१]

लघु कलायें—लघु कलाओं के विकास में भी मिस्री कलाकार ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। मिस्र के उदीयमान वैभव की शतशत रश्मियों ने समाज से उच्चवर्गीय जीवन को जगमगा दिया था। समृद्धि ने मनुष्य की अभिरुचियों को बहुरूपता दी और आवश्यकताओं को बहुसंख्या। अब मिस्र-निवासी

---

१. 'With all its short-comings Egyption painting would never be surpassed by any Oriental civilisation until the middle dynasties of China.'

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का जीवन सरल न रहा। उसमें अधिकाधिक प्रसाधन, प्रदर्शन और अलंकरण आने लगा। परिणामतः लोक सन्तुष्टि के हेतु कलाकारों और व्यवसायियों से सुखसंवर्धक जीवनोपयोगी विविध उपकरणों का निर्माण करना प्रारम्भ किया। कुम्भकारों ने अति सुन्दर मृणभाण्ड, पात्र, कलश, प्याले, तश्तरियाँ आदि बनाई; बढ़इयों ने सुन्दर और सुदृढ़ मेज-कुर्सियों, पलंगों, बक्सों, डब्बों, अलमारियों, टोकरियों आदि का निर्माण किया। स्वर्णकारों ने बहुमूल्य मुकुटों, कर्णफूलों, कण्ठहारों, मेखलाओं, मुद्रिकाओं, बाजूबन्दों और कंगनों आदि की रचना कर जनता की आभूषण-प्रियता को सन्तुष्ट किया। जुलाहों के बनाये हुए आकर्षक वस्त्रों, धोतियों, चादरों, गद्दों आदि ने मिस्री जीवन को अभूतपूर्व भव्यता प्रदान की। इन समस्त वस्तुओं में मिस्री कला और व्यवसाय के विकास का इतिहास अन्तर्निहित है। अपनी उत्कृष्टता के कारण मिस्र की लघु कलायें ही उसकी विशाल कलायें थीं।[१]

लेख और साहित्य—मिस्र का लिपि-ज्ञान अति प्राचीन है। कदाचित् मिस्र-निवासी ने प्रागैतिहासिक काल में ही लिपि-निर्माण कर लिया था। उनकी प्रारम्भिक लिपि चित्र-प्रधान (Hieroglyphic) थी। इसके अन्तर्गत मिस्री-निवासी विभिन्न चित्रों द्वारा अपना विचार प्रकाशन करता था। स्पष्ट है कि इस प्रकार की लेखन-प्रणाली अविकसित समिति, दीर्घसूत्री और असुविधाजनक थी। अतः मिस्र-निवासी ने उसका उत्तरोत्तर विकास किया और अन्त में ध्वनि-द्योतक अक्षरों का निर्माण कर वर्णमाला की प्रतिष्ठा की। इस वर्णमाला में २४ व्यंजन थे। यही वर्णमाला पाश्चात्य देशों की समस्त वर्णमालाओं की जननी है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि मिस्र-निवासी ने कभी भी विशुद्ध वर्णमाला का प्रयोग न किया। अक्षरों के साथ-साथ वह चित्रों और संकेतों का भी प्रयोग करता रहा। इस सामान्य लिपि के अतिरिक्त मिस्र में एक अन्य लिपि का भी उदय हुआ था। इसे हायरेटिक (Hieratic) कहते हैं। शीघ्रतापूर्वक लिखी जा सकने के कारण इसका प्रयोग व्यापारी-वर्ग में अधिक होता था। इस

---

१. 'The minor arts were the major arts of Egypt'.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यापारिक लिपि का एक सरल रूप था जो डेमाटिक (Demotie) लिपि के नाम से प्रख्यात है।

लिपि के साथ-साथ मिस्र-निवासी ने अन्य लेखन-सामग्री का भी निर्माण किया। उसने पैपिरस नामक वृक्ष से कागज प्राप्त किया, नरकुल से लेखनी तथा गोंद और कागज के सम्मिश्रण से स्याही। इस प्रकार समस्त लेखन-उपकरणों—वर्णमाला, काग़ज़, लेखनी और स्याही—को संग्रहीत कर मिस्र-निवासी विद्या-विकास की ओर उन्मुख हुआ।

मिस्र-निवासी अति प्राचीनकाल से विद्यानुरागी रहा है। '**विद्या धनं सर्वधन-प्रधानम्**' का सिद्धान्त मिस्र-देश में भी प्रतिष्ठित हुआ था। मिस्र का एक अध्यापक अपने शिष्य को उपदेश देते हुए कहता है कि 'विद्या में मन लगाओ और उनसे अपनी माता के समान स्नेह करो। 'विद्या के समान बहुमूल्य अन्य वस्तु नहीं है।' इस प्रकार के लोकमत के परिणामस्वरूप मिस्री बालक की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाता था। यह शिक्षा दो प्रकार की थीं—(१) साहित्यिक और (२) व्यावसायिक। प्रथम कोटि में विशुद्ध साहित्य, दर्शन, धर्मादि का शिक्षण होता था; इसके लिये शिक्षक प्रायः पुरोहित और शिक्षालय प्रायः मन्दिर ही हुआ करते थे। द्वितीय कोटि की शिक्षा राजकर्मचारियों अथवा व्यवसाइयों द्वारा दी जाती थी। इसके अन्तर्गत राजनीति, कला, एवं विविध उद्योग-धन्धों के शिक्षण की व्यवस्था थी।

मिस्र का साहित्य तीन कोटियों में विभक्त किया जा सकता है—(१) दार्शनिक (२) धार्मिक और (३) विविध। मिस्र में विशुद्ध दर्शन का अधिक विकास न हो सका। उसका दर्शन-शास्त्र या तो आचार-शास्त्र है या राजनीति-शास्त्र। अतः दार्शनिक साहित्य के अन्तर्गत नैतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक कर्तव्यों की ही विवेचना की गई है। 'ताहोतेप के सिद्धान्त' (Maxims of Ptahhotep) में सदाचार, न्यायशीलता, दानशीलता, सहिष्णुता, दयालुता, विनम्रता आदि की शिक्षा दी गई है। ये सिद्धान्त मिस्र-निवासियों की बौद्धिक एवं मानसिक सर-लता के परिचायक हैं।

मध्य राज्य (Middle Kingdom) तक आते-आते मिश्र की विचार-धारा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में विशेष परिवर्तन हो जाता है। धार्मिक एवं राजनीतिक विच्छश्रृंखलता तथा बौद्धिक विकास के परिणामस्वरूप जानता की विश्वासपरता एवं श्रद्धालुता जाती रही। वह बहुसंख्या में शङ्कावादिनी हो गई। समाज का यह शंकावाद तत्कालीन दार्शनिक साहित्य में भी प्रतिबिम्बित होता है। इसमें एकमात्र ऐहिक जीवन, उसकी आशाभिलाषाओं को ही मान्यता दी गई है। लोकोत्तर जीवन कोरी कल्पना है। इसी प्रकार पाप-पुण्य एवं मृत्यु के पश्चात् दण्ड-पुरस्कार की धारणायें भी प्रवञ्चना-मात्र हैं। इस प्रकार को शङ्कावादिनी विचारधारा का सर्वाधिक सवल प्रकाशन 'वेणुवादक के मान' (Song of the Harp-Player) में उपलब्ध होता है।

परन्तु दार्शनिक साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृति 'अमेनेमोप का विवेक' ('Wisdom of Amenemope') है। एमेनेमोप साम्राज्य-काल के अन्तिम चरण का एक प्रसिद्ध दार्शनिक था। यह एकेश्वरवादी था और परमेश्वर को ही सम्पूर्ण सृष्टि का एकमात्र कर्ता मानता था। परमपिता की सन्तान होने के कारण इसने मनुष्यों को विश्वबन्धुत्व, पारस्परिक सहयोग और सहानुभूति की शिक्षा दी है।

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, मिस्री दर्शनशास्त्र में राजनीतिशास्त्र भी समाविष्ट होता है। हेलिओपोलिस के पुजारी ने अपनी दार्शनिक कृति में सामाजिक एवं आर्थिक विषमता के ऊपर विचार किया। इसने निर्धनों की अतिशय निर्धनता और धनिकों को अतिशय ढनाढ्यता पर क्षोभ प्रकट किया। इसके कथनों में आधुनिक समाजवाद के अनेक सिद्धान्त बीजरूप में अन्तर्निहित हैं।

परन्तु राजनीतिप्रधान दार्शनिक कृतियों में सर्वप्रमुख है 'मुखर कृषक का तर्क' (Plea of the Eloquent Peasant) इसके रचयिता का नाम अज्ञात है। परन्तु अपनी उपदेशात्मक के लिए यह कृति मिस्री साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। यह कृति एक साधारण कथानक पर आधारित है। एक पदाधिकारी एक कृषक के धन का अपहरण कर लेता है। अतः कृषक उच्चतर पदाधिकारी के समक्ष आवेदन करता है और इस अवसर से लाभ

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उठाकर राजकीय कर्त्तव्यों का निरूपण करता है। यही कर्त्तव्य-निरूपण इस कृति का सार है।

धार्मिक साहित्य के अन्तर्गत देव-वन्दना एवं मृतकोपयोगी उपदेश आते हैं। इस कोटि की सर्वप्रथम उल्लेखनीय कृति 'मेम्फी नाटक' (Memphite Drama) है जिसकी रचना ३००० ई० पू० के लगभग हुई थी। इसमें सूर्योपासना के सिद्धान्त निरुपित हैं। दूसरी महत्वपूर्ण धार्मिक कृति इख्नाटन के राजकीय स्तोत्र (Royal Hymns of Ikhnaton) है। इसमें नव-प्रतिष्ठित एटन की वन्दना है। रचना में सुधारक-सम्राट् की उद्दाम परमेश्वर-भक्ति का अव्याहत-प्रवाह है। विशुद्ध काव्य की दृष्टि से भी यह रचना महत्वपूर्ण है। मृतकोपयोगी कृतियों में 'शवमंजूषा-ग्रंथ' और 'मृतक-ग्रंथ' आते हैं।

विविध साहित्य मूलतः असाम्प्रदाय साहित्य है। इसके अन्तर्गत ऐतिहासिक, सामरिक प्रणय-सम्बन्धा एवं व्यापारिक आदि कृतियाँ आती हैं। इस साहित्य में भूतप्रेत सम्बन्धी, जासूसी एवं साहसिक कहानियों का भी अभाव नहीं है। सिंड्रेला की लोकविदित कहानी बीजरूप में मिस्री साहित्य में विद्यमान है। भग्नजलपोत के नाविक की कहानी साहस एवं उल्लास से परिपूर्ण है। सिन्यूब नामक पदाधिकारी की विदेश-यात्रा में आधुनिक पर्यटकों की अनुभूति है।

इस प्रकार मिस्र का साहित्य विविध विषयक है। परन्तु आश्चर्य की बात है कि मिस्री साहित्यकार ने महाकाव्य और नाटक का निर्माण नहीं किया। प्रारम्भिक साहित्य रूढ़िगत होने के कारण प्राचीन भाषा में ही लिखा जाता था, यद्यपि वह भाषा दीर्घकाल से दुर्बोध हो चुकी थी। परिणामतः उसे समझने के लिए मनुष्यों को व्याकरण ग्रंथों एवं कोषों की सहायता लेनी पड़ती थी। साहित्य के विकास की दृष्टि से यह स्थिति अवांछनीय थी। इख्नाटन का युग क्रान्ति युग था। उसमें जहाँ एक ओर धार्मिक क्रान्ति हुई वहाँ दूसरी ओर साहित्यिक क्रान्ति भी। अब साहित्य-रचना जन-साधारण की भाषा में होने लगी। विषय भी पहले से अधिक वास्तविक हो गये। समस्त रूढ़ियों का परित्याग कर मिस्री साहित्य ने नूतन रूप धारण किया। इसमें जीवन की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यथार्थता थी, उल्लासपूर्णता थी और थी यौवन की ओजस्विता।[1]

विज्ञान—मिस्र-निवासी नितान्त व्यावहारिक था। अतः उसने विज्ञान के उन्हीं अंगों का विकास किया जो उसके जीवन के लिये व्यावहारिक रूप से उपयोगी सिद्ध हुए। पिरेमिड-जैसी विशाल कृतियों के निर्माण में अभिरुचि रखने वाले राष्ट्र के लिए इंजीनियरी, नाप-जोख और गणित के सिद्धान्तों से परिचित होना अनिवार्य था। प्रतिवर्ष आने वाली नील नदी की बाढ़ को रोकने, उसमें बाँध बाँधने, नहरों के द्वारा उसके जल को दूरस्थ प्रदेशों में पहुँचाने के निमित्त भी इस प्रकार का ज्ञान आवश्यक था। यही कारण है कि जिससे मिस्र-निवासी ने रेखागणित और अंकगणित के अध्ययन में विशेष अभिरुचि दिखाई। वे π से परिचित थे पिरेमिड तथा सिलेण्डर का घनफल निकालना जानते थे। उन्होंने त्रिभुज, और चतुर्भुज और षड्भुज के क्षेत्रफल निकालने के सिद्धान्त भी निर्मित कर लिये थे। उन्हें १ से लेकर ९ तक संख्या-चिह्नों एवं दशमलव का भी ज्ञान था। परन्तु वे शून्य (०) से परिचित न थे। अतः १०, १००,१००० आदि संख्याओं के लिए भिन्न-भिन्न चिह्न निर्धारित किये गये थे। शून्य का ज्ञान न होने के कारण उनका गणित जटिल और दीर्घसूत्री हो गया था। मिस्र-निवासी जोड़, बाकी (Subtraction) और भाग से परिचित था। परन्तु अभाग्यवश वह गुणा के सिद्धान्त की खोज न कर सका। अतः गुणा का काम वह जोड़ से लेता था।

मिस्र-निवासी ने खगोल-विषयक अनुसन्धान भी किये। उसने आकाश-मण्डल के अनेक नक्षत्रों की स्थिति का पता लगाया और भावी सूर्य-ग्रहण काल-निर्धारण करना सीखा। जल-धड़ी और धूप-धड़ी की सहायता से उसने समय का ज्ञान प्राप्त करना भी सीख लिया था। परतु मिस्र का प्रमुख आविष्कार था उसका पञ्चांग। यही पञ्चांग रोम गया और वहाँ से यूरोप। इसके अनुसार मिस्र के वर्ष में १२ मास होते थे और प्रतिमास में तीस दिन। इन ३६०

---

१. 'The new literature was realistic, youthful, buoyant; it took delight in flouting the cld forms and describing the new life.'

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१२ × ३०) दिवसों में ५ अतिरिक्त दिवस जोड़ कर मिस्र-निवासी ने ३६५ दिवसों के वर्ष की कल्पना की थी।

मिस्र का प्रारम्भिक चिकित्सा-शास्त्र जन्त्र-मन्त्र और विविध अनुष्ठानों के ऊपर निर्भर था। परन्तु १७०० ई० पू० तक वह बहुत-कुछ वैज्ञानिक हो गया था। मिस्र-निवासी ने शरीर के अनेकानेक रोगों के कारणों का पता लगाया और चिकित्सार्थ विविध औषधियों का निर्माण किया। उदर, नेत्र और दाँत आदि विभिन्न-अंगों का विशेष अध्ययन कर अनेक मिस्री चिकित्सक रोग-विशेषज्ञ भी हो गये थे। अनेक चिकित्सक शव-संरक्षा, चीर-फाड़ और टूटी हड्डी जोड़ने के काम में भी निपुण थे। मिस्र चिकित्साशास्त्र में हृद्गति और नाड़ी और तापक्रम को विशेष महत्व दिया गया था।

मिस्र-निवासी निर्माता (Architect) अधिक थे, अविष्कारक (Inventor) कम। यही कारण है कि यद्यपि उन्होंने अति विशाल एवं सुदृढ़ पिरेमिडों, भवनों और मन्दिरों का निर्माण किया तथापि वे भौतिक-शास्त्र और रसायन-शास्त्र में अधिक आविष्कार न कर सके। और यदि कुछ आविष्कार किये भी हों तों हमें उनका ज्ञान नहीं। हाँ, उनके जल-घड़ी, धूप-घड़ी, कागज और शीशे के आविष्कारों के विषय में हमें ज्ञान हैं। ये संसार को उनकी महत्वपूर्ण देन हैं।

धर्न—मिस्र की सम्पूर्ण व्यवस्था धर्म-प्रधान थी। उनका राजा देव-प्रतिनिधि था। राज्य का विधान दैवी व्यवस्था थी। उनकी कला धर्म का सन्देश-वाहिका थी और उनका साहित्य एवं दर्शन धार्मिक भावना से ओत-प्रोत था। मिश्र-निवासी के लिये धर्म और राज्य दो पृथक्-पृथक् संस्थायें न थीं। दोनों अविच्छेदय और अभिन्न थे। राज्य व्यवस्था थी और धर्म व्यवस्थापक। यही कारण है कि यूनानी मिस्र-निवासियों को सबसे अधिक धर्मनिष्ठ मनुष्य समझते थे। हेरोडोटस ने भी लिखा है कि मिस्र निवासी प्राचीन जगत के सबसे अधिक धार्मिक व्यक्ति थे जो ईश्वर के सम्मान में छोटी-छोटी अनेकों क्रियाओं का पालन अक्षरशः करते हैं। यहाँ तक कि जाड़े की रातों में तीन बार स्नान करना, गर्मियों में गरम जल के टब में बैठना इत्यादि क्रियायें हास्यास्पद प्रतीत होती हैं। इतिहासकार विल ड्यूरेन्ट ने भी लिखा लिखा है कि धर्म के क्षेत्र में मिस्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
की तुलना केवल रोम एवं प्राचीन भारत से ही की जा सकती है।[१]

अन्य देशों की भाँति मिस्र-देश भी बहुदेववादी था; उसके देवी-देवता भी प्रकृति की भिन्न-भिन्न शक्तियों के रूप थे। प्रचण्ड प्रकाशवान् मार्तण्ड भयावह भी था और हितकारी भी। कभी उसकी प्रखर रश्मियाँ आग उगलती थीं और कभी वे शीत-संत्रस्त मानव की भीति-हरण करती थीं। उसके आगमन पर सघन तिमिर पलायित हो जाता था। परन्तु उसकी अनुपस्थिति में वही तिमिर १२ घंटे तक जगतीतल पर दैवी-अभिशाप की भाँति छाया रहता था। सूर्य जीवनदाता था। धरा का धन-धान्य उसी जीवनी-शक्ति लेकर लहलहाने लगता था। उसके अभाव में वह जर्जरित हो जाता था। इस प्रकार विपुल गुण-सम्पन्न सूर्य मिस्र निवासी की असीम श्रद्धा-भक्ति कर प्रमुख केन्द्र बन गया। वही उसका प्रधान देवता बना। उसने इस देवता को री अथवा रा की संज्ञा दी और उसे हेलिओपोलिस के प्रसिद्ध मन्दिर में प्रतिष्ठित किया। पीयुष-वर्षी सुधाकर का स्निग्ध प्रकाश मिस्र-निवासी को अतिशय आह्लादकर प्रतीत हुआ। अतः यह चन्द्र भी उसकी कल्पना में सिन देवता के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। इसी प्रकार निस्सीम अन्तरिक्ष ने अपने विपुल विस्तार से मिस्री कल्पना को प्रभावित किया। अपने नीलाम्बर में सूर्य-चन्द्र और अगणित तारागण छिपाये वह मिस्र-निवासी के लिये अतिशय कौतुककर था। अतः प्रकृति का यह रूप भी उसके लिये वन्द्य था। शीघ्र ही आकाश मिस्र-निवासियों के लिये सिबु-देवता बन गया। दुर्वहभारवाहिनी क्षमाशीला धारा अपने उदर में पावक, नीर और विविध निधियों का रहस्य छिपाये कुछ कम प्रभावकारिणी न थी। मिस्र निवासी ने उसे न्यूत देवी के रूप में सम्मानित किया। उधर, कलकलनिनादिनी जलवाहिनी नील नदी तो

---

१ "For beneath and above every thing in Egypt was religgious'. We find it in every stage and form, from totemism to theololgy, from literature to government only. Rome and India can be the fittest rivals. we can not understand the Egyptian until we study his God."

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिस्र का सर्वस्व थी। उसी के ऊपर इस देश का जीवन-धन निर्भर था। अतः मिस्र निवासी उसके प्रति निरपेक्ष कैसे रहता? शीघ्र ही उसने ओसरिस को नील नदी का अधिष्ठाता देवता माना। इसी देवता की संचारिनी शक्तिविश्व को चेतना, उपज और जीवन देती थी। ओसिरिस के प्रति मिस्र-निवासी की असीम श्रद्धा ने एक महत्वपूर्ण धार्मिक कथानक को जन्म दिया। मिस्र-निवासी को कल्पना में यह ओसिरिस देवता सर्वप्रधान देव तारा का पुत्र था। आइसिस उसकी भार्या थी ओसिरिस अति परोपकारी था। उसने मानव-जाति को कृषि-कर्म, कला और विधान की शिक्षा दी और उसे बर्बरता की दुरवस्था से निकाल कर संस्कृति-पथ पर अवतरित किया। कालान्तर में ओसिरिस के दुष्ट भ्राता सेत ने उसकी हत्या कर डाली। परन्तु मृत पति की पतिव्रता आइसिस ने उसके शरीर के खण्डों को पुनः जोड़कर जीवित कर दिया। ओसिरिस को पुनः प्रतिष्ठा मिली। वह पाताल लोक के देवता के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। कालान्तर में उसके पुत्र होरिस ने सेत को मारकर अपने पिता के साथ किये गये दुर्व्यवहार का प्रतिशोध लिया। इस कथानक के द्वारा मिस्र-निवासी ने सत्य और सदाचार की अजेयता, राजा की परोपकारिता, भार्या के पतिव्रता और पुत्र की पितृ-भक्ति की प्रतिष्ठा की है। इतिहासकार बर्न्स के मत में यह विजय अच्छाई की बुराई के ऊपर हुई थी।[१] विल ड्यूरेन्ट ने इस कहानी को प्राच्य धार्मिक-इतिहास के क्षेत्र की अपूर्व घटना बताई है।[२]

मिस्र-निवासी की प्रखर कल्पना ने पशु-लोक में भी प्रवेश किया और उसे भी सम्मानित किया। उसके धर्म में अनेक पशु-देवता भी प्रतिष्ठित हुए। गो कि परोपकारिता और उपादेयता से प्रभावित होकर मिस्र ने उसे भी देवी-पद प्रधान किया। उसका विश्वास था कि विशाल आकाश में एक देवी विद्यमान है। इसी

---

१ "It was a conquest of good over evil"—Burns.

२ "It was a profound myth for history like oriental religion —a dualistic record of conflict between creation and destruction fertility and dessication good and evil, life and death."

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के पदों के नीचे पृथ्वी स्थित है। इसके शरीर के ऊपर जो आभूषण हैं वही अगणित तारा-तारिकाओं के रूप में चमकते हैं। इसी प्रकार एमनरा भेड़ देवता और प्टा वृषभ-देवता था। पशुओं की भाँति अनेक वृक्ष भी मिस्र की आराधना के पात्र थे। इन आराध्य वृक्षों में सर्व प्रमुख खजूर का वृक्ष था।

इस प्रकार मिस्र का बहुदेववाद बहुरूप प्रकृति-लोक, पशु-लौक और वृक्ष-लोक पर आधारित था। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, भारत और रोम के अतिरिक्त अन्य किसी भी देश में इतने देवी-देवता न थे। कुछ देवी-देवता राष्ट्रीय थे और कुछ लौकिक। धार्मिक विकास की प्रारम्भिक स्थिति में प्रायः प्रत्येक नोम और नगर के पृथक्-पृथक् देवी-देवता थे। परन्तु रा और ओसिरिस-ऐसे देवता राष्ट्रीय थे। इनकी प्रतिष्ठा सर्वत्र थी।

अपने देवी-देवताओं के निवास-हेतु मिस्र निवासी ने मन्दिरों का निर्माण किया था। इन्हीं में संस्थापित किये जाते थे और वहीं आकर भक्त एवं आराधक आत्म-निवेदन एवं श्रद्धा प्रकाशन करते थे। हेलिओपोलिस, मेम्फिस और थीबीज अपने देवालयों के कारण तीर्थस्थान बन गये थे।

शनैः-शनैः मिस्री धर्म की पूजा-विधि अधिकाधिक जटिल होने लगी। सरल वन्दना और उपासना के स्थान पर उनमें विशद कर्मकाण्ड की प्रतिष्ठा हुई। कर्मकाण्ड की विविध क्रियाओं एवं सविस्तार अनुष्ठानों के ऊपर जन साधारण का अधिकार न रहा। उनके करने-कराने के लिये विशेषज्ञों की आवश्यकता होने लगी। इसी आवश्यकता की पूर्ति के हेतु मिस्र में पुरोहित-वर्ग संगठित हुआ। कालान्तर में यही पुरोहित मठाधीश, धर्म-संरक्षक, एवं धर्मार्थ बोधक हुए। अपनी अल्पज्ञता के कारण मनुष्य सीधे देवता से साक्षात्कार न कर सकता था। अतः उसे क्षमताशील माध्यम की आवश्यकता पड़ी। यह माध्यम पुरोहित-वर्ग था। अपने देशों की भाँति मिश्र देश का पुजारी-वर्ग भी प्रारम्भ में धर्मनिष्ठ, त्याग-मूर्ति एवं साधनाशील था। अपनी विद्वत्ता, विरक्ति और धर्मनिष्ठा के कारण वह जनता की श्रद्धा-भक्ति का पात्र हो गया था। परन्तु धीरे-धीरे वह अपदस्थ होने लगा। उसमें सत्ता-लोभ, अर्थ-लोभ और भोगेच्छा के विकार आने लगे। उन्होंने अपनी स्वार्थसिद्धि के निमित्त अनेकानेक अनुष्ठानमूलक क्रियाओं, अन्ध-

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वासों एवं जन्म-मन्त्रों की सृष्टि की। धर्म नैतिक न रह कर यान्त्रिक हो गया। आन्तिरिक शुद्धि की अपेक्षा बाह्य क्रियाओं की सम्मान्यता बढ़ी। देश के मन्दिर नैतिक भ्रष्टाचार के केन्द्र बन गये। देवदासियों की प्रथा ने धार्मिक वेश्या-वृत्ति का सृजन किया। परिणामतः बहुदेववाद, पुरोहितवाद और कर्मकाण्ड के प्राचुर्य ने धर्म की सच्ची प्रेरणा को नष्ट कर दिया। इख्नाटन ने एटन के रूप में एकेश्वर की प्रतिष्ठा करके पुनः धर्म का विशुद्धीकरण करना चाहा। परन्तु अन्ततोगत्वा वह असफल रहा। हम पीछे इस धार्मिक सुधार का वर्णन कर चुके हैं।

मिस्र-निवासी मृतकों के शवों को समाधिस्थ कर देते थे। उनका विश्वास था कि मृत्यु के पश्चात् भी समाधिस्थ शरीर सुख-दुःख की अनुभूति करते हैं। यही कारण है कि मृतकों के सम्बन्धी समाधियों में शवों के साथ खाद्य, पेय, आयुध, आभूषण एवं विविध जीवनोपयोगी वस्तुयें भी रख देते थे। उनका विश्वास था कि मृतक व्यक्ति की आत्मा समाधि में इन वस्तुओं का उपभोग करेगी।

कालान्तर में मिस्र-निवासियों ने अधिक विकसित विचारों का प्रतिपादन किया। उन्होंने दैवी न्याय का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इसके अनुसार मृत्यु के पश्चात् मृतक की आत्मा को ओसिरिस नामक देवता के समक्ष न्याय-प्राप्ति के हेतु उपस्थित होना पड़ता था। वहाँ उसे अपने कर्मों का ब्योरा देना पड़ता था। सत्कर्मा मनुष्य को स्वर्ग और दुष्कर्मा को नरक भेजा जाता था। इस प्रकार मिस्र का धर्म शरीर की नश्वरता, आत्मा की अमरता, कर्मवाद तथा पाप-पुण्य में विश्वास करता था।

सामाजिक संगठन—मिस्र में भारतवर्ष की भाँति जन्मज जाति-व्यवस्था न थी, यद्यपि सम्पूर्ण समाज विभिन्न कार्यों के आधार पर अनेक वर्गों में विभक्त था। इनमें प्रमुख वर्ग थे (१) राजवंश (२) सामान्त वर्ग (३) पुरोहित वर्ग (४) सैनिक वर्ग (५) कृषक वर्ग (६) व्यापारी वर्ग (७) उद्योगी-वर्ग (८) लेखक वर्ग और (९) दास वर्ग। दासों के अतिरिक्त अन्य कोई भी वर्ग गर्हित अथवा हेय न था। दासों की हीन अवस्था का कारण भी प्रायः उनकी विदेशीयता थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युद्ध-बन्दी के रूप में आयात होने के कारण मिस्र में ये उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाते थे। अन्य वर्ग समाज में अपनी योग्यतानुसार प्रतिष्ठित थे। काल-गति के अनुसार उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में उत्कर्षापकर्ष होता रहता था। कभी एक वर्ग अधिक शक्तिशाली और समादृत हो जाता था, तो कभी दूसरा। जन्मज न होने के कारण वर्गों की उच्चता और हीनता स्थायी न थी। दो प्रमुख सत्ताओं—राजकीय तथा धार्मिक—का वहन करने के कारण राजवंश और पुरोहित-वर्ग सबसे अधिक समादृत थे। राजा ईश्वरीय प्रतिनिधि था। अतः वह तथा उसका वंश दैवी गरिमा रखते थे। दोनों ही प्रजा की असीम श्रद्धा के पात्र थे। अपने दैवी अंश को अक्षुण्य रखने के निमित्त राजवंशीय व्यक्ति सदैव अपने कुटुम्ब में ही विवाह करते थे। रक्त-शुद्धता को अक्षत रखने की उनकी यह उत्कण्ठा बहुधा उन्हें अपनी भगिनियों के साथ विवाह करने के निमित्त भी विवश करती थी। मिस्री साहित्य में भाई-बहन का प्रयोग अनेक स्थलों पर प्रेमी-प्रेमिकाओं के अर्थ में हुआ है। पुरोहित वर्ग धर्म का संरक्षक एवं अर्थबोधक था। वह मानवी एवं ईश्वरीय लोक के बीच मध्यस्थ था। अपनी क्रिया-विशेषज्ञता के कारण वह अपने श्रद्धालु भक्तों के निमित्त दैवी प्रसाद प्राप्त कर सकता था; उनकी विपत्तियों के शमन के निमित्त निदान बता सकता था; उनके लिए सुख-समृद्धियों का आह्वान कर सकता था। मनुष्य के ऐहिक और पारलौकिक कल्याण के निमित्त यह वर्ग अत्यन्त उपकारी समझा जाता था। परिणामतः राज्य की ओर से इस वर्ग को विशेषाधिकार प्राप्त थे। इनके पास विशाल भूमि-खंड, दुर्ग, भवन, उद्योगो-समुदाय, दास समुदाय और गणिका-समुदाय थे। इनके मन्दिर और भवन विपुल धन-धान्य और पशु-समुदाय से परिपूर्ण थे। यही समृद्धि कालान्तर में धार्मिक भ्रष्टाचार का कारण बनी। राजसत्ता सामन्त वर्ग पर भी कम आश्रित न थी। विभिन्न सामन्त-वंशों का सहयोग पाने के हेतु राजवंश ने उन्हें भी राज्य में अनेक प्रकार की सुविधायें प्रदान कर रक्खी थीं। उनके पास बड़े-बड़े भूप्रदेश थे जहाँ वे लघु राजाओं के रूप में शासन करते थे। इनकी सत्ता-वृद्धि सदैव राजवंश के लिये संकट उपस्थित करती रही थी। अन्य वर्गों पर समाज का आर्थिक जीवन निर्भर था। अतः वे भी देश के अति महत्वपूर्ण अंग समझे जाते थे। मध्य

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्यकाल में तो ये वर्ग अति महत्वपूर्ण एवं सबल हो गये थे। इनकी शक्ति से आतंकित होकर राजवंश और सामन्त वर्ग को इन्हें विविध विशेषाधिकार दे देने पड़े थे। समाज का सबसे अधिक दीन-हीन वर्ग था दासों का। इनका जीवन-धन एकमात्र स्वामियों की इच्छा पर निर्भर था। राजवंश, पुरोहित वर्ग और सामन्त वर्ग के निमित्त इन्हें अहर्निश परिश्रम करना पड़ता था परन्तु इसके बदले में इन्हें उदर पूर्ति के निमित्त पर्याप्त अन्न और शरीर ढकने को पर्याप्त वस्त्र भी कठिनता से मिल पाता था।

परिवार समाज की इकाई थी। मिस्री परिवार की सर्वमुख विशेषता थी उसकी नारी-प्रधानता। नारी का स्थान अत्यधिक ऊँचा था। उसमें पर्दा न था। वह स्वतन्त्रतापूर्वक पुरुषों के समकक्ष सार्वजनिक कार्यों एवं सामाजिक उत्सवों में भाग ले सकती थी। अनेक चित्रों में वह सार्वजनिक आमोद-प्रमोदों और प्रीति-भोजों में भाग लेती हुई प्रदर्शित की गई है। हाशेपसुत के रूप में मिस्री नारी ने विशाल साम्राज्य का संचालन भी किया था। सम्पत्ति-अधिकार पुत्रियों को प्राप्त था। अपनी सम्पत्ति को अक्षय रखने की अभिलाषा से भी बहुधा मनुष्य अपने पुत्रों का विवाह अपनी पुत्रियों के साथ हो कर देते थे। इस प्रकार पुत्री का साम्पत्तिक अंश घर ही में रहता था। नारी को अपना विवाह स्वयं करने की स्वच्छन्दता थी। बहुधा विवाह प्रणय के परिणाम-स्वरूप भी होते थे। डिओडोरस के कथानुसार विवाह के समय पुरुष को स्त्री के प्रति आज्ञाकारिता का वचन देना पड़ता था। नारियाँ सदैव एकपतिक होती थीं। मिस्र में बहुपतिकता (Polyandry) की प्रथा का प्रचलन न था। पुरुष भी बहुधा एक पत्नीक होते थे, यद्यपि राजवंशीय और धनिक व्यक्ति कभी-कभी बहुविवाह भी कर लेते थे। मिस्री समाज में बहुपुत्रता कल्याणकर समझी जाती थी। प्रायः परिवार विशाल होते थे। यद्यपि समाज में वेश्यावृत्ति प्रतिष्ठित थी तथापि दाम्पत्य जीवन नियमतः शुद्ध और सुखमय था। मिस्र के इतिहास में सम्बन्ध विच्छेद के उदाहरण अत्यल्प हैं। यदि भ्रष्टाचार के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से पुरुष अपनी पत्नी से सम्बन्ध-विच्छेद करता था तो उसे अपनी सम्पत्ति का एक भाग अपनी पत्नी को देना पड़ता था। मैक्समूलर के शब्दों में 'किसी भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन अथवा अर्वाचीन राष्ट्र ने नारी को इतना ऊँचा कानूनी स्तर नहीं दिया है जितना कि नील नदी की घाटी के निवासियों ने।[१] मिस्र की नारी को अलंकरण एवं प्रसाधन से अति रुचि थी। अपने सौंदर्य-संवर्धन के लिए वह इत्र-तेल, लिपस्टिक, नेल-पालिश, आई-पेण्ट, कंघी, हेयर क्लिप आदि अनेक प्रकार के उपकरणों का प्रयोग करती थी। फैशन की दृष्टि से मिस्र की नारी वर्तमान नारी के समकक्ष रक्खी जा सकती है।[२]

आर्थिक जीवन—प्रारम्भ से ही मिस्र का देश कृषि-प्रधान था। नील नदी की मिट्टी, उसके तथा उसकी नहरों से प्राप्त जल ने इस देश को प्रचुर उर्वरता प्रदान की थी। परिणामतः मिस्री कृषक वर्ष में तीन फसल तक कर लेता था। उत्पादित अन्नों में गेहूँ, जौ, मटर, तिल, मसूर और सेम विशेष उल्लेखनीय हैं। अन्नों के साथ विविध शाक एवं फल भी उत्पन्न किये जाते थे। फलों में अंगूर, अंजीर, जैतून तथा खजूर प्रमुख थे। कपड़े बनाने के निमित्त मिस्र देश प्रभूत मात्रा में कपास और सन भी उत्पन्न करता था। देश की समस्त भूमि राजकीय सम्पत्ति समझी जाती थी। राज्य की ओर से बड़े-बड़े भूमिखंड सामन्तों एवं पुजारियों को प्राप्त थे। जहाँ वे श्रमजीवियों तथा दासों की सहायता से कृषि कराते थे। स्वयं राजा के पास भी विशाल कृषि-क्षेत्र होते थे। इनके अतिरिक्त बहुसंख्यक सामान्य मनुष्य भी कृषिजीवी थे। इन्हें अपनी उपज का १० प्रतिशत से लेकर २० प्रतिशत तक का भाग राजकीय कर के रूप में देना पड़ता था। इस कर-दान के बदले कृषकों को राजकीय संरक्षा एवं सुविधा प्राप्त थी। राजा इनकी सिंचाई के हेतु नहरें बनवाते थे और अपने कर्मचारियों के द्वारा इन्हें कृषि-सम्बन्धी आवश्यक परामर्श देते थे।

---

१. 'No people, ancient or modern, has given woman so high a legal status as did the inhabitants of the Nile Valley.'

२. The women of ancient Egypt could learn very little from us in the matter of cosmeties or jewelry, if they were reincrnated among us today.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृषि-कर्म के अतिरिक्त बहुसंख्यक मिस्र-निवासी पशु-पालन भी करते थे। पालतू पशुओं में गाय, बैल, सुअर और बन्दर विशेष उल्लेखनीय हैं। मिस्र के आर्थिक जीवन में आखेट और मत्स्य-संग्रह का भी विशेष महत्व था। आखेट में मारे गये पशुओं का मांस खाने के काम में और चर्म वस्त्रादि बनाने के काम में आता था। पुनः आखेटक वन्य पशुओं को पकड़कर अथवा मारकर कृषि क्षेत्रों की भी रक्षा करते थे। नील नदी और भूमध्यसागर मछलियों की प्रचुरता के लिए प्रसिद्ध थे। मत्स्य-व्यवसाय निर्धन जनता की उदर-पूर्ति का एक महत्वपूर्ण साधन था।

मिस्र देश की साम्राज्य-स्थापना ने विदेशीय व्यापार को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। २००० ई० पू० के पश्चात् विदेशीय आयात-निर्यात अत्यधिक बढ़ गया। मिस्र के व्यापारी क्रीट, फोनेशिया, सीरिया, फिलिस्तीन, अरब और भारत के व्यापारियों के सम्पर्क में आये और उन्होंने इनके साथ व्यापारिक आदान-प्रदान स्थापित किया। मिस्र से प्रचुर संख्या एवं मात्रा में मृण्भाण्ड, सुन्दर वस्त्र, एवं खाद्यान्न विदेशों में भेजा जाने लगा। इनके बदले में वहाँ सोना-चाँदी, हाथी दाँत, मसाला, इत्र आदि का आयात होने लगा। मिस्र में मुद्रा न थी। अतः सामान्य व्यापार वस्तु-विनिमय (Bartar) के द्वारा होता था। परन्तु महत्वपूर्ण क्रय-विक्रय सोने की निश्चित तौल की मुद्रिकाओं के माध्यम द्वारा होता था। व्यापारिक विकास एवं जटिलता के साथ-साथ मिस्र-निवासियों ने लिखित काण्ट्रेक्ट, साझा, रुक्का, धरोहर आदि संस्थाओं की प्रतिष्ठा की।

मिस्र के स्वदेशीय उद्योग-धन्धे भी पर्याप्त रूप से विकसित थे। राज्य देश की सबसे बड़ी औद्योगिक संस्था थी। इसके अपने कारखाने, मिलें और फैक्टरियाँ थीं जहाँ राज्य-नियोजित बहुसंख्यक दासों के द्वारा विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन होता था। धातु-खनन, पोत-निर्माणादि कुछ ऐसे व्यवसाय थे जिन पर राज्य का एकाधिपत्य था। अन्य व्यवसाय पूँजीपतियों एवं विविध स्वतन्त्रजीवियों के हाथ में थे। इनमें मृण्भाण्ड, वस्त्र, शीशे और कागज के व्यवसाय विशेष लोकप्रिय थे। मिस्र के कुम्भकार अपने हस्तलाघव के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध थे। चाक की सहायता से ये अति सुन्दर पात्र, कलश, प्याले तश्तरियाँ आदि बनाते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
और इनके ऊपर इतनी चिकनी पालिश करते थे कि वे शीशे की भाँति चमकने लगते थे। मिस्री मृण्भाण्ड के ऊपर उत्कृष्ट कोटि की चित्रकला का भी प्रदर्शन मिलता है। शीशे और धातुओं का काम भट्टियों की सहायता से होता था। इन्हें गलाकर विविध प्रकार के सुन्दर आभूषण एवं जीवनोपयोगी उपकरणों का निर्माण होता था। वस्त्र निर्माण कला तो अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। साधारण रुई और सन की सहायता से बने हुए वस्त्र रेशम की भाँति महीन होते थे। बहुधा वे मशीन-निर्मित से प्रतीत होते हैं। पेशेल के शब्दों में यदि 'हम मिस्री-निवासियों की हस्त-कला की तुलना अपनी हस्तकला से करें तो यह स्पष्ट है कि वाष्प-इंजन के आविष्कार के पूर्व हम उनसे किसी भी वस्तु में आगे न थे।' इस विद्वान् का यह कथन मिस्री दस्तकारों की कार्य-निपुणता के प्रति सबसे बड़ी श्रद्धांजलि है। कागज का आविष्कार संसार में सर्वप्रथम मिस्र के देश में ही हुआ। अंग्रेजी का पेपर शब्द मिस्री शब्द 'पैपरिस' से निकला है। मिस्री काष्ठकला के सर्वोत्तम उदाहरण हमें मेज-कुर्सियों, तिपाइयों, अलमारियों, पलँगों आदि के रूप में मिलते हैं। यह सामग्री अपनी सुन्दरता और सुदृढ़ता के लिये प्रख्यात थी। मिस्र-निवासी कदाचित् प्राचीन विश्व के सबसे बड़े भवन-निर्माता थे। अतः उन्होंने ईंट, चूने, सीमेंट और प्लास्टर आदि बनाने की कला में पर्याप्त विकास कर लिया था। यह समस्त सामग्री भवनों को लौह-शक्ति देने में समर्थ थी।

मिस्री सभ्यता की देन—राज्य की अपेक्षा संस्कृति कहीं अधिक चिरस्थायी है। मिस्र का इतिहास इसका प्रबल साक्षी है। जिस काल-चक्र ने एक समय मिस्र-साम्राज्य को अभ्युन्नति की चरम शिखा पर प्रतिष्ठित कर दिया था उसी ने कालान्तर में उसे महाविनाश के गर्त में ढकेल दिया। मिस्र-साम्राज्य का उदय हुआ, विकास हुआ और नियति की अन्तिम अवस्था में विलोप। परन्तु साम्राज्य-विलोप के पश्चात् भी मिस्री सभ्यता जीवित रही। वह अपने देश की सीमाओं का उल्लङ्घन कर फोनेशिया, सीरिया, क्रीट, यूनान और रोम में पहुँची और वहाँ से सम्पूर्ण योरप में विकीर्ण हुई। आकर्षक विचार संक्रामक रोगों से भी अधिक प्रसरणशील होते हैं। अस्तु, वर्तमान मानव-सभ्यता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक क्षेत्र में मिस्री सभ्यता की ऋणी है। पूर्वी संसार की कोई भी प्राचीन सभ्यता अर्वाचीन संसार के लिये इतनी महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुई।[१]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मिस्र निवासी संसार के सबसे बड़े निर्माता थे। उनके पिरेमिडों, विशाल भवनों और मन्दिरों ने संसार के समक्ष उत्कृष्ट भवन निर्माण-कला एवं इंजीनियरों के सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया। उनके स्तम्भ, (Clerestory) और सूच्याकार स्तंभ (Obelisk) संसार के लिये महत्वपूर्ण देन थे। मिस्र-निवासी ने ही सर्वप्रथम बाँधों और नहरों के द्वारा सरिता के जल एवं आप्लावन का उपयोग करना सीखा। उसकी लिपि योरपीय लिपियों की जननी है। उसका कागज संसार का सर्वप्रथम कागज है। मिस्र की शीशे, मृण्भाण्ड और वस्त्रनिर्माण की कलायें दीर्घकाल तक संसार की आदर्श कलायें रही हैं। उसकी दस्तकारी मशीन-निर्मित सामग्री की सी उत्कृष्टता रखती थी। मिस्र वर्तमान संसार के अनेकानेक फैशनों का आदि स्रोत है। शीशा, कंघा, लिपिस्टिक, नेल-पालिश, आई पेण्ट, पाउडर, इत्र-तेल, बाल-दाढ़ी, हैट, जूते, आभूषण आदि का प्रभूत प्रयोग सर्वप्रथम नील की घाटी में ही मिलता है। भोग-विलास की सामग्री—बहुमूल्य वस्त्र, दरियाँ, चादरें, मेज, कुर्सियाँ, पलङ्ग, अलमारियाँ, वाद्य-यन्त्र—भी जितनी मिस्र-समाज में दृष्टिगत होती है उतनी उसके पूर्व अन्यत्र नहीं।

बौद्धिक क्षेत्र में गणित, ज्योतिष और दर्शन के अनेकानेक सिद्धान्त सर्वप्रथम मिस्र-देश की उर्वर भूमि से प्रस्फुटित हुए। मिस्र के निवासी ने संख्या, दशमलव, क्षेत्रफल, जोड़, बाकी, भाग, सौर पञ्चांग, पुनर्जन्म, आत्माकी अमरता, कर्मवाद, एकेश्वरवाद, सामाजिक नैतिकता आदि के सिद्धान्तों का प्रशंसनीय विकास किया। योरपीय देशों ने इन विषयों को मिस्र देश से बहुत कुछ ग्रहण किया।

———

१. 'No civilization of the ancient East surpassed the Egyptian in its importance to the modern world'.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ४

दजला-फरात नदियों की घाटियों की सभ्यता
या
मेसोपोटामियन सभ्यता

विश्व की प्राचीन सभ्यताओं के इतिहास में मेसोपोटामिया की प्रसिद्ध दजला एवं फरात नदियों का योगदान कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं रहा है। यद्यपि ये नील नदी की अनुयायिनी ही रही है परन्तु फिर भी इनका इतिहास नील नदी से काफी पहले का सिद्ध किया जा सकता है। यह क्षेत्र 'निकट-पूर्व,' 'मध्य-पूर्व,' तथा 'उपजाऊ अर्द्ध-चन्द्र' इत्यादि के नाम से सम्बोधित किया जाता है जिसे बाइबिल में 'शिनार' या स्वर्ग (Paradisa) कहा गया है। यही भाग था जिसने विशाल एवं अथाह सागर की भाँति अनेकों सरिता रूपी सभ्यताओं का जन्म दिया था। प्राचीन यूनान एवं रोम से सदियों पूर्व यहाँ शहरों, दुर्ग-केन्द्रों, सड़कों, व्यापारिक केन्द्रों एवं कृषि उद्योगों का पूर्ण विकास हो चुका था। प्रसिद्ध पुरातत्त्व वैज्ञानिक गार्डन चाइल्ड में ठीक ही लिखा है कि "मेसोपोटामिया एक ऐसे विस्तृत सरोवर की भाँति है जिसने अगणित स्रोतों का जन्म दिया है।"

परन्तु दुर्भाग्यवश पिछली शताब्दी तक यह पूर्णतया अज्ञात था केवल हेरोडोटस ने ५वीं सदी ई० पू० इसका संक्षिप्त वर्णन किया था। तत्पश्चात् बेरोसस एवं उसके सहयोगी पर्सियन इतिहासकारों में कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये। इसका सुसम्बन्धित इतिहास केवल आधुनिक सदी में हुआ जब कि अमेरिकन एवं यूरोपीय इतिहासकारों ने अथक परिश्रमों से इस विशाल स्रोत का पता लगाया। इनमें चैम्पोलियन, सर हेनरी रालिन्सन प्रोफेसर बूली, एवं गार्डन चाइल्ड प्रमुख हैं जिन्होंने 'रोसेटा स्टोन' तथा 'बहिस्तून अभिलेख' जैसी कठिन गुत्थियों को सुलझाकर प्राचीन इतिहास को नया प्रकाश प्रदान किया।

इनके अनुसार मेसोगोटामियन सभ्यता दो वृहद भागों में विभाजित की जा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकती है—

(१) अर्द्ध-सभ्य-युग—यह युग दजला-फरात का प्रारंभिक युग था जब कि सभ्यता का विकास केवल कुछ गिने छोटे शहरों में ही केन्द्रित था। लोग पूर्ण सभ्य नहीं थे। मकान कच्ची ईटों के थे। वे लेखन कला से भी अपरिचित थे। इनमें प्रमुख किश, ऐलम अर, बेबीलोन एवं निनेवेह थे जिनका समय लगभग ४५०० ई० पू० दिया जाता है।

सभ्य-युग—इसका प्रारंभ लगभग ३५०० ई० पू० के होता है जब कि इस घाटी के विभिन्न भागों में चार सभ्यताओं का जन्म होता है। ये सुमेरियन, बेबीलोनियन, असीरियन एवं चैल्यिन सभ्यतायें कहलाती हैं। दूसरे शब्दों में ये भिन्न होते हुये भी मेसोपोटामियन सभ्यता के विभिन्न काल के सूचक हैं जिनकी आधार शिला सुमेरियन लोगों ने बनाई।

१. सुमेरियन सभ्यता

यह सभ्यता मेसोपोटामियन सभ्यता का पहला चरण प्रस्तुत करती है जिसकी शासन-पद्धति, युद्ध-कला, लिपि कानून तथा विज्ञान बाद की सभ्यताओं ने ग्रहण किये। इसकी उत्पत्ति संदेहास्पद है। साधारणतया इन्हें मध्य एशिया के पठार से सम्बन्धित किया जाता है। प्रोफेसर बूली के अनुसार प्राचीन विश्व सभी सभ्यताओं का समान स्रोत है जिसे मध्य एशिया माना जा सकता है। बर्न्स के अनुसार सुमेरियन लोग वास्तव में यहीं के निवासी थे जिन्होंने बाद में हिक्सास की भाँति असभ्य जातियों से युद्ध किये और अर, निपर, एरेक, एरिड्डू तथा लगश जैसे केन्द्रों में अपनी सभ्यतायें स्थापित की।

राजनैतिक इतिहास—सुमेरियन सभ्यता का प्राचीनतम केन्द्र अर शहर था जिसका समय आधुनिक पुरातत्त्व गवेषणाओं के आधार पर ३५०० ई० पू० दिया। यहाँ से कलात्मक वस्तुएँ, धातु-औजारों एवं मानव अवशेष मिले हैं। परन्तु ३५०० से ३००० ई० पू० का समय विवादास्पद है। केवल आधुनिक निप्पुर की खुदाई के आधार पर इसका प्राचीन इतिहास निर्मित किया जा सकता है। यह ६६' गहरी सतह तक खोदा गया है उच्चतम सतह सार्गन काल की है जिसका समय २३५० ई० पू० माना जाता है। अतः अनुमान के आधार पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसकी उत्पत्ति ५२६२ ई० पू० तक मानी जा सकती है। परन्तु यह केवल अनुमान ही है। और इसका वास्तविक इतिहास ३००० ई० पू० से ही प्रारंभ होता है जब कि उर के शहर की 'प्रथम वंशावली' "First Dynasty of UR" की स्थापना हुई थी। इसके प्रमुख शासकों में उरुकगीन जो लगश का शासक था, लुगल-जग्गुसी, लुगल शगेन्गुर, निन्गी, सार्गन प्रथम, नरमसिन, गुडी, उर-एन्गुर तथी डुन्गी सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इन शासकों में ३००० से २१०० ई० पू० तक शासन किया। इसके बाद बेबीलोन के प्रसिद्ध विजेता हम्मूराबी ने इसे अपने राज्य में मिला लिया।

लिपि—सुमेरीय लोगों ने अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप एक विशिष्ट लेखन-शैली का विकास किया। प्रथमतः उनकी लिपि प्रतीकात्मक और चित्रात्मक थी। प्राचीनतम प्राप्त मिट्टी के पटियों पर जिन प्रतीकों को देखा जाता है वे चित्र रूप में अंकित हैं जो अपना अर्थ स्वयं प्रकट कर देते हैं। इस प्रकार प्रथमतः प्रयुक्त लिपि को चित्रात्मक लिपि की संज्ञा दी जा सकती है। किन्तु साधारण से चित्र को भी पारस्परिक मान्यता प्राप्त थी अर्थात् किसी वस्तु को प्रकट करने के लिए चित्र-विशेष को ही अंकित किया जाता था; उसमें स्वच्छन्दता न थी। किसी पशु उदाहरणार्थ गधे को सूचित करने के लिए संक्षिप्त रूपरेखा ही पर्याप्त थी—गधे के पूर्ण चित्र को अंकित करने की आवश्यकता नहीं थी, और गधे के लिए उसी संक्षिप्त रूपरेखा का प्रयोग सर्व-मान्य हो जाता था, यद्यपि संक्षिप्त रूपरेखा के अंकन में भी यत्र-तत्र सूक्ष्म परिवर्तन का दर्शन होता है। किन्तु बहुत सी ऐसी वस्तुएँ थीं जिनकी सफल अभिव्यक्ति चित्रों-द्वारा सम्भव न थी। अतः ईसा पूर्व चतुर्थ सहस्राब्द और उसके पश्चात् स्वयं अभिव्यक्त करने वाले चित्रों के अतिरिक्त कुछ चित्रों का आविष्कार किया गया जिनका अर्थ अभीष्ट वस्तु, तौल अथवा नाप स्वीकार कर लिया गया। कालान्तर में सुमेरिया निवासियों ने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय 'क्युनीफार्म' लिपि के प्रयोग में दिया जिसमें चीनी लिपि की भाँति संकेतों की भरमार न थी बल्कि जिसमें पूर्व-प्रयुक्त संकेत भी कम हो गये। लिपि के विकास में सुमेरीय सभ्यता ने अद्भुत बुद्धि-विलक्षणता दिखलाई। अंकगणना में भी सुमेरीय लोगों ने कम उन्नति नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की। दस के नीचे की संख्याएँ नरकट-निर्मित अर्द्धवृत्ताकारों चिह्नों से सूचित की जाती थीं किन्तु दस के लिए एक नवीन प्रतीक—पटिये पर लम्बरूपेन स्थित नरकट का वृत्त होता था। गणना की इकाई ६० थी।

सुमेरिया का बौद्धिक विकास—सुमेरीय सभ्यता के निर्माताओं ने दर्शन के गम्भीर तत्वों का चिन्तन नहीं किया किन्तु विज्ञान के क्षेत्र में उन्होंने प्रारम्भिक ज्ञान का परिचय दिया। उन्होंने जल घड़ी और चन्द्रमा पर आधारित एक पंचाग का निर्माण किया था। चूँकि पंचाग चन्द्रमा पर आधारित था अतः वर्ष में लगभग एक महीने की गड़बड़ी पड़ जाती थी जिसकी पूर्ति एक मास के योग से की जाती थी। सुमेरीय लोगों के लिए खगोल विद्या और ज्योतिष विद्या में कोई महान अन्तर नहीं था। औषधिशास्त्र में जादू टोने का भी पर्याप्त महत्व था। बीमारियों का कारण असत् शक्तियाँ समझी जाती थीं जिनको वैद्य दूर करने के लिए अनेक प्रकार की प्रक्रियाओं का आश्रय लेते थे। सुमेरीय लोगों ने अपनी नवोंन्मेषशालिनी प्रतिभा से पहियों से युक्त रथ का निर्माण किया और मार्ग पर कुछ अंशों में विजय प्राप्त की। वायुयान के वर्तमान युग में हम भले ही पहियेदार रथ की ओर अवहेलना की दृष्टि से देखें किन्तु उस समय जब सभ्यता अपनी शैशवावस्था में थी इसका निर्माण एक युगान्तरकारी घटना थी। सुमेरीय कुम्भार ने ही कदाचित् प्रथमतः अपने चक्र (चाक) को इतना सुघर बनाया था। चूँकि सुमेरीय लोगों ने अपनी सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था तथा अपनी विशिष्ट शासन पद्धति के द्वारा ही मानव सभ्यता में अपने अनेक आविष्कारों से इतना योग दिया अतः उनकी सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था तथा उनकी विशिष्ट शासन-पद्धति का अध्ययन आवश्यक है।

राजनीतिक अवस्था—सुमेरीय लोगों ने एक संकुचित अर्थ में ही सही नगर राज्य की स्थापना की। उनके प्रसिद्ध नगर-राज्यों में एरेक (Ereck), एरिड्डु (Eridu), लगश (Lagash), अर (Ur) और निपर (Nippur) के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रत्येक राज्य के अधिपति को 'पटेसी' कहते थे जो राजा और प्रमुख पुरोहित दोनों समझा जाता था। इन नगर राज्यों के भग्नावशेषों से इनकी विशालता का अनुमान होता है और प्रथम बार सभ्यता के इतिहास में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मनुष्य ने अपने को इतने विशाल पैमाने पर परस्पर संगठित किया यद्यपि लन्दन अथवा न्यूयार्क की तुलना में इनकी जन संख्या प्रायः नगण्य है। अर (Ur) नामक नगर लगभग २२० एकड़ क्षेत्र में विस्तृत था और उसमें अनेक देवालय, बन्दरगाह और नहरें थीं एरेक (Ereck) की दीवारें दो वर्ग मील के क्षेत्र पर स्थित थीं। लगश (Lagash) सुमेर के अपेक्षाकृत लघु नगरों में अपना स्थान रखता था। इस छोटे से नगर के गवर्नर ने एक बार दावा किया था कि वह ३६००० व्यक्तियों पर शासन करता है और ऐसा अनुमान किया जाता है कि ३६००० में केवल पुरुष ही पुरुष थे, स्त्रियों और बच्चों की गणना नहीं की गई थी। इतिहासकारों का अनुमान है कि खफ़जा (Khafzah); उमा (Umme) और लगश (Lagash) की जन-संख्या क्रमशः १२०००, १६००० तथा १९००० थी। यह जनसंख्या ईसा पूर्व तृतीय सहस्राब्दी की है। इन नगरों के अधिपति पटेशियों के कर्त्तव्यों की संख्या उनके अधिकारों की संख्या से कम न थी। यदि नगर निवासियों की दृष्टि में पटेसी महान् व्यक्ति था तो उसे उसी के अनुरूप कार्य भी करना पड़ता था। पटेसी नगर-निवासियों के जीवन और उनकी सम्पत्ति की रक्षा के लिये पूर्ण उत्तरदायी था। सिंचाई का प्रबन्ध भी अपने कर्मचारियों द्वारा वही करता था। यह ध्यान देने की बात है कि पटेसी को देवताओं का कृषक (Ishakku) समझा जाता था, वह स्वयं देवता नहीं माना जाता था। और यही कारण है कि वह स्वयं कानूनों का निर्माण नहीं कर सकता था; पूर्व-निर्मित कानूनों का केवल पालन करता और करवाता था। वह उपहारों को ग्रहण करता था तथा वाणिज्य आदि का निरीक्षण करता था। सुमेरीय शासन पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि सभ्यता के उषाकाल में भी राजा का कर्त्तव्य था कि वह व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करे। इस दृष्टि से सुमेरीय संस्कृति वस्तुतः बहुत ऊँची उठ जाती है। युद्धस्थल में पटेसी ही सेनापति का कार्य करता था। इतने उत्तरदायित्वों को वहन करते हुए मानों उसे याद दिलाने के लिये उसका आधिपत्य प्रतिवर्ष नवीन किया जाता था और नवीनीकरण देवता के त्योहार के उपलक्ष्य में किया जाता था। एक नगर का दूसरे नगर के साथ संघर्ष आये दिन हुआ करता था। इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की। दस के नीचे की संख्याएँ नरकट-निर्मित अर्द्धवृत्ताकारों चिह्नों से सूचित की जाती थीं किन्तु दस के लिए एक नवीन प्रतीक—पटिये पर लम्बरूपेन स्थित नरकट का वृत्त होता था। गणना की इकाई ६० थी।

सुमेरिया का बौद्धिक विकास—सुमेरीय सभ्यता के निर्माताओं ने दर्शन के गम्भीर तत्वों का चिन्तन नहीं किया किन्तु विज्ञान के क्षेत्र में उन्होंने प्रारम्भिक ज्ञान का परिचय दिया। उन्होंने जल घड़ी और चन्द्रमा पर आधारित एक पंचाग का निर्माण किया था। चूँकि पंचाग चन्द्रमा पर आधारित था अतः वर्ष में लगभग एक महीने की गड़बड़ी पड़ जाती थी जिसकी पूर्ति एक मास के योग से की जाती थी। सुमेरीय लोगों के लिए खगोल विद्या और ज्योतिष विद्या में कोई महान अन्तर नहीं था। औषधिशास्त्र में जादू टोने का भी पर्याप्त महत्व था। बीमारियों का कारण असत् शक्तियाँ समझी जाती थीं जिनको वैद्य दूर करने के लिए अनेक प्रकार की प्रक्रियाओं का आश्रय लेते थे। सुमेरीय लोगों ने अपनी नवोंन्मेषशालिनी प्रतिभा से पहियों से युक्त रथ का निर्माण किया और मार्ग पर कुछ अंशों में विजय प्राप्त की। वायुयान के वर्तमान युग में हम भले ही पहियेदार रथ की ओर अवहेलना की दृष्टि से देखें किन्तु उस समय जब सभ्यता अपनी शैशवावस्था में थी इसका निर्माण एक युगान्तरकारी घटना थी। सुमेरीय कुम्भार ने ही कदाचित् प्रथमतः अपने चक्र (चाक) को इतना सुघर बनाया था। चूँकि सुमेरीय लोगों ने अपनी सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था तथा अपनी विशिष्ट शासन पद्धति के द्वारा ही मानव सभ्यता में अपने अनेक आविष्कारों से इतना योग दिया अतः उनकी सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था तथा उनकी विशिष्ट शासन-पद्धति का अध्ययन आवश्यक है।

राजनीतिक अवस्था—सुमेरीय लोगों ने एक संकुचित अर्थ में ही सही नगर राज्य की स्थापना की। उनके प्रसिद्ध नगर-राज्यों में एरेक (Ereck), एरिड्डु (Eridu), लगश (Lagash), अर (Ur) और निपर (Nippur) के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रत्येक राज्य के अधिपति को 'पटेसी' कहते थे जो राजा और प्रमुख पुरोहित दोनों समझा जाता था। इन नगर राज्यों के भग्नावशेषों से इनकी विशालता का अनुमान होता है और प्रथम बार सभ्यता के इतिहास में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मनुष्य ने अपने को इतने विशाल पैमाने पर परस्पर संगठित किया यद्यपि लन्दन अथवा न्यूयार्क की तुलना में इनकी जन संख्या प्रायः नगण्य है। अर (Ur) नामक नगर लगभग २२० एकड़ क्षेत्र में विस्तृत था और उसमें अनेक देवालय, बन्दरगाह और नहरें थीं एरेक (Ereck) की दीवारें दो वर्ग मील के क्षेत्र पर स्थित थीं। लगश (Lagash) सुमेर के अपेक्षाकृत लघु नगरों में अपना स्थान रखता था। इस छोटे से नगर के गवर्नर ने एक बार दावा किया था कि वह ३६००० व्यक्तियों पर शासन करता है और ऐसा अनुमान किया जाता है कि ३६००० में केवल पुरुष ही पुरुष थे, स्त्रियों और बच्चों की गणना नहीं की गई थी। इतिहासकारों का अनुमान है कि खफ़जा (Khafzah); उमा (Umme) और लगश (Lagash) की जन-संख्या क्रमशः १२०००, १६००० तथा १९००० थी। यह जनसंख्या ईसा पूर्व तृतीय सहस्राब्दी की है। इन नगरों के अधिपति पटेशियों के कर्त्तव्यों की संख्या उनके अधिकारों की संख्या से कम न थी। यदि नगर निवासियों की दृष्टि में पटेसी महान् व्यक्ति था तो उसे उसी के अनुरूप कार्य भी करना पड़ता था। पटेसी नगर-निवासियों के जीवन और उनकी सम्पत्ति की रक्षा के लिये पूर्ण उत्तरदायी था। सिंचाई का प्रबन्ध भी अपने कर्मचारियों द्वारा वही करता था। यह ध्यान देने की बात है कि पटेसी को देवताओं का कृषक (Ishakku) समझा जाता था, वह स्वयं देवता नहीं माना जाता था। और यही कारण है कि वह स्वयं कानूनों का निर्माण नहीं कर सकता था; पूर्व-निर्मित कानूनों का केवल पालन करता और करवाता था। वह उपहारों को ग्रहण करता था तथा वाणिज्य आदि का निरीक्षण करता था। सुमेरीय शासन पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि सभ्यता के उषाकाल में भी राजा का कर्त्तव्य था कि वह व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करे। इस दृष्टि से सुमेरीय संस्कृति वस्तुतः बहुत ऊँची उठ जाती है। युद्धस्थल में पटेसी ही सेनापति का कार्य करता था। इतने उत्तरदायित्वों को वहन करते हुए मानों उसे याद दिलाने के लिये उसका आधिपत्य प्रतिवर्ष नवीन किया जाता था और नवीनीकरण देवता के त्योहार के उपलक्ष्य में किया जाता था। एक नगर का दूसरे नगर के साथ संघर्ष आये दिन हुआ करता था। इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संघर्ष के अनेक कारण थे। कभी-कभी तो जल और भूमि के लिए यह उग्र हो उठता था। कभी-कभी संघर्ष का एक मात्र कारण राजाओं की महत्वाकांक्षा होती थी। इसके अतिरिक्त साधारण सी बातों पर यथा नदी की धारा में परिवर्तन भी यदा-कदा घोर युद्ध का कारण सिद्ध होता था। सतत संघर्ष होते रहने पर भी समय-समय पर कुछ कारणों से कई नगर परस्पर संगठित हो जाते थे। उनमें पड़ोस के भ्रमणशील आक्रान्तों का भय सदैव विद्यमान रहता था और इस कारण वे सदैव सतर्क रहा करते थे बल्कि समय पड़ने पर सङ्गठित होकर विदेशी आक्रान्ता का उठ कर सामना करते थे। सुमेरीय संस्कृति का विस्तार सम्पूर्ण मेसोपोटामिया में ईसा के लगभग ढाई हजार वर्षों पूर्व अक्काद की विजयों द्वारा हुआ और उसी समय यह क्रीट मिश्र की संस्कृतियों के सम्पर्क में आई। राज्य-विस्तार के साथ ही साथ पटेसियों की उपाधियों में भी वृद्धि होने लगी और पश्चात्कालीन लिपिकों ने राजा को देवता के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया है। युद्ध की प्रणाली में सुमेरीय लोगों ने उतनी उन्नति नहीं की जितनी पश्चात्कालीन उनके राजनैतिक उत्तराधिकारी असीरिया वालों ने की थी। युद्ध में प्रमुख अस्त्र तलवार था। पराजित शत्रु को प्रायः दास बना लिया जाता था। कभी-कभी दास न बनाकर उनकी अगणित संख्या में हत्या कर दी जाती थी। इसी महत्त्वाकांक्षी प्रवृत्ति ने प्रान्तीय शासकों को इटली के पुनर्जागृति-काल के अंधे देशभक्तों की भाँति विनष्ट कर दिया और अन्ततः सुमेरिया अनेकों छोटे-छोटे भागों में विभाजित हो गया।[१]

आर्थिक अवस्था—सुमेरीय सभ्यता में प्रचलित आर्थिक व्यवस्था पर्याप्त समुन्नत थी। मिश्र की आर्थिक व्यवस्था कम जटिल थी। इसके अतिरिक्त एक दृष्टि से दोनों में महान् भेद था—इस सभ्यता में व्यक्ति को व्यवसाय के लिए

---

१ "Though like renaissance italy, the chanvinistic separatism of the cities stimulated art and life, but it also led to civic violence and sucidal strife that weakened each city state thus destroying sumeria."

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिक अवसर थे यद्यपि भूमि का स्वामी राजा ही माना जाता था किन्तु न तो सिद्धांत और न व्यवहार में ही राजा भूमि का ऐकान्तिक अधिकारी था। अन्य प्राचीन सभ्यताओं में यह देखा जाता है कि राजा का व्यापार और वाणिज्य पर एकाधिकार था किन्तु सुमेरिया में यह बात न थी। सुमेरिया में शायद ही कोई ऐसी वस्तु थी जिसे सामूहिक सम्पत्ति की संज्ञा दी जा सके। अधिकांश लोग कृषक दास थे किन्तु उनमें से बहुतों की अवस्था तथा-कथित स्वतन्त्र लोगों से भी अच्छी थी। सुमेरिया में दासों (slaves) की अपेक्षा कृषक दासों (serfs) की संख्या अधिक थी। दासता उतनी हेय नहीं समझी जाती थी और सुमेरिया में दासों को बहुत अधिकार प्राप्त थे। उनकी अपनी सम्पत्ति हो सकती थी और वे अपने स्वामी के कार्य से फुरसत पाकर पारिश्रमिक भी उपार्जित कर सकते थे। स्वतन्त्र स्त्रियों से विवाह करने का अधिकार उन्हें प्राप्त था। किन्तु यह दु:खद घटना है कि इन दासों में अधिकांश लोग दासत्व की शृङ्खला से इसलिए आबद्ध थे कि वे ऋण को चुकता नहीं कर सके थे। दासों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का एक कारण यह भी तो हो सकता है कि अधिकांश दास सुमेरीय ही थे।

आर्थिक क्षेत्र में कृषि सुमेरीय लोगों के लिए मुख्य व्यवसाय थी। कृषि-कला में उनकी दक्षता सराहनीय थी। यद्यपि उनके समकालीन मिस्र निवासियों को कृषि के लिए प्रकृति-प्रदत्त सुविधाएँ अधिक थीं तथापि सुमेरीय लोग उनसे कम न थे। सिंचाई की व्यवस्था इतनी निर्दोष थी कि बाँधों से बँधी हुई विशाल नहरें यत्र-तत्र सर्वत्र निकाली गईं। भूमि के वितरण में पर्याप्त विषमता थी। अधिकांश भूमि शासकों, पुरोहितों और सैनिक अफसरों के आधिपत्य में थी। कदाचित् यही कारण है कि एक साधारण सुमेरीय नागरिक या तो दास रूप में अथवा कर-प्रदाता कृषक के रूप में खेती करता था। सुमेरीय कृषकों-द्वारा प्रयुक्त हलों की अपनी विशेषता थी। उनमें भूमि जोतने के साथ ही बीज बोने का प्रबन्ध था। गेहूँ, जौ तथा खजूर प्रभूत मात्रा में उत्पन्न किये जाते थे। अनेक नगर-राज्यों की सत्ता के इस बात का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है कि विभिन्न खाद्य वस्तुएं कितनी पर्याप्त मात्रा में होती थीं।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृषि तो सुमेरिया निवासियों का मुख्य उद्यम थी ही, व्यापार और व्यवसाय में भी उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। उनकी विक्रय-प्रणाली से ही आधुनिक एजेण्टों का सूत्रपात माना जा सकता है। कमीशन पर वे माध्यमिक पुरुष बड़े-बड़े व्यापारियों की वस्तुओं को बेचते थे। आदान-प्रदान में रजत-शेकेल का, जो कि आजकल के लगभग दो डालर के बराबर है, प्रयोग होता था। वाणिज्य-व्यापार में उन्होंने कितनी प्रगति की थी, इस तथ्य का परिज्ञान हमें इससे भी होता है कि जितने सुमेरीय सील और मिट्टी के तख्ते प्राप्त हुए हैं उनमें से अधिकांश व्यापार सम्बन्धी बातों से सम्बन्ध रखते हैं। नदी के तट पर निवास करने के कारण सुमेरिया वासियों के लिए बहुत सी वस्तुओं का आयात अनिवार्य हो गया था। निर्माणार्थ काष्ठ, ताँबा, काँसा तथा स्वर्ण और रजत आदि का आयात विकसित व्यापार व्यवस्था पर ही अवलम्बित था। फारस की खाड़ी में स्थित आमन नामक स्थान से ताँबे का टॉरस (Taurus), पावर्तीय प्रदेशों से चाँदी का, अफगानिस्तान स्थित बदख्श से वैडूर्य का, तथा सीरिया और एशिया माइनर से टीन का आयात प्रचुर मात्रा में होता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सुमेरीय व्यापारी को चतुर्दिक जाना पड़ा। किन्तु एकांगी व्यापार किसी भी देश को अल्प समय में ही निर्धन बना देता है। सुमेरीय व्यापारी इस दुर्भाग्य से बचा रहा क्योंकि वह बाहर से कुछ वस्तुएँ अब भी आवश्यकता के लिए लाता था तो अपने देश से अन्य वस्तुएँ भी दूसरे देशों को भेजता था। उपज का अवशिष्ट भाग निर्यात कर दिया जाता था। इसी प्रकार फल, सूत और ऊन से बने हुए वस्त्र भी बाहर भेजे जाते थे। व्यापारी के लिए इतनी दूर-दूर जाना सुमेरिया-निवासी जैसे साहसी और कष्ट-सहिष्णु लोगों का ही काम था। मार्ग में सुमेरीय व्यापारियों को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता था। ऊँटों के काफिले एक के बाद दूसरे पङ्कबहुल स्थानों, मरुभूमियों तथा पर्वत की श्रेणियों को पार करते चले जाते थे। नौकाओं की पंक्तियों को उद्दाम सरिताओं की धाराएँ, फारस की खाडी के प्रबल तूफान तथा अरब सागर की उत्ताल तरंगे पार करनी पड़ती थीं। कहीं पर मार्ग में अर्द्ध-सभ्य निवासियों से उन्हें टक्कर लेना पड़ता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस विस्तृत व्यापार से आर्थिक लाभ के साथ ही साथ सांस्कृतिक लाभ भी था। उनकी संस्कृति का यदि पूर्णतः नहीं तो अंशतः अवश्य ही प्रचार हुआ होगा। दक्ष कारीगरों को विदेश जाकर अपनी कला के प्रदर्शन का उपयुक्त अवसर प्राप्त होता था। इसके अतिरिक्त देश-विदेश भ्रमण से सुमेरिया-निवासियों के अनुभव में सर्वाङ्गीण वृद्धि हुई थी।

सामाजिक अवस्था—उपर्युक्त पुष्ट आर्थिक आधार-शिला पर सुमेरीय समाज की रचना हुई थी। उसमें ३ वर्ग मुख्य थे—उच्च, मध्यम और निम्न। उच्चवर्ग में राजवंशीय उच्च पदाधिकारों तथा पुरोहितों का परिगणन होता था। मध्यम वर्ग में सामन्त तथा व्यापारी लोग आते थे और दास तथा कृषक निम्न वर्ग के अन्तर्गत। यह हम पहले ही बता चुके हैं कि कुछ दासों की दशा तथाकथित स्वतन्त्र लोगों से अच्छी थी। पुरोहित वर्ग समाज में बहुत ही सम्मानित था। अपने आचरण, ज्ञान, और बुद्धि के कारण पुरोहितों ने सुमेरोय समाज में प्रायः वही स्थान प्राप्त किया था जो प्राचीन भारतीय ब्राह्मणों ने। स्त्रियों का स्थान समाज में समुन्नत था। यद्यपि सिद्धान्ततः पुरुष को ऋण के लिए अपने पुत्रों और अपनी पत्नी को बेच कर देने का पूर्ण अधिकार था तथापि व्यवहारतः इस प्रकार की घटनाएँ नाममात्र की घटती थीं। स्त्रियों को समाज में बहुत से ऐसे अधिकार प्राप्त थे जो पश्चात्कालीन अनेक सभ्य देशों में भी नहीं थे। जो कुछ द्रव्य, पदार्थ, सम्पत्ति, पत्नी अपने पिता के घर से लाती थी उसकी वह स्वामिनी समझी जाती थी। उस पर पति का अधिकार प्रायः नहीं ही होता था। बिना पत्नी की स्वीकृति के पुरुष उन वस्तुओं को न तो बेच सकता था और न बन्धक ही रख सकता था। विवाह एक पवित्र बन्धन माना जाने लगा था। पति के अभाव में पत्नी ही घर की स्वामिनी थी।

व्यवस्था—डङ्गी—सुमेरिया की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक सुव्यवस्था बहुत कुछ अंशों में इस देश की सुविकसित कानून-व्यवस्था पर आधारित थी। यों तो नगर-राज्यों में परस्पर संघर्ष होता ही रहता था फिर भी अनेक बार ऐसा भी हुआ है कि किसी महत्वाकांक्षी शासक ने अनेक राज्यों पर आधिपत्य स्थापित कर स्वनिर्मित कानूनों को लागू किया। लगभग २३०० ई० पू०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डङ्गी नामक शासक ने अनेक नगर-राज्यों पर प्रभुता प्राप्त कर एकच्छत्र शासन की स्थापना की थी और उसी शासक के द्वारा निर्मित विधान-संहिता (Code) प्रतापशाली बेबिलोनियन शासक हमूराबी की प्रसिद्ध विधानों संहिता (Code) का स्रोत बनी। डङ्गी की विधान संहिता अपने मूल रूप में हमें प्राप्त नहीं; केवल इसके कतिपय अंश मिले हैं तथापि इतिहासकारों का यह दृढ़ विश्वास है कि हमूराबी का कोड डंगी के कोड का केवल परिवर्द्धित और संशोधित रूप है यद्यपि हमूराबी के कोड का अपना महत्व है। डंगी के कोड का ऋण पाश्चात्कालीन-बेबिलोनिया, असीरिया, चैल्डिया तथा हिब्रू की सभ्यताओं पर स्पष्ट रूपेण परिलक्षित होता है। हमूराबी के कोड के समान इस कोड में भी प्रतिशोध की भावना पर आधारित अनेक कानून निर्मित थे। सुमेरीय कानून व्यवस्था में न्यायालय का वह स्थान नहीं था जो आज है। न्यायालय केवल माध्यमिक पुरुष का कार्य करता था। यदि किसी की हानि हो जाय तो राज्य स्वयं हानि उठाने वाले का साथ नहीं देता था जब तक कि हानि उठाने वाला हानिकर्त्ता को न्यायालय के सम्मुख न पेश करे। आजकल के समान सुमेरीय कानून व्यवस्था में सभी बराबर नहीं समझे जाते थे। सामाजिक विभाग का ध्यान वहाँ भी बना रहता था। एक कृषक दास की हत्या की अपेक्षा एक उच्च वर्ग के पदाधिकारी की हत्या अधिक भयङ्कर समझी जाती थी। यह असमानता प्रायः सभी प्राचीन देशों में पाई जाती है। किन्तु इससे यह समझ लेना भूल होगी कि उच्चवर्गीय पदाधिकारी बिना कोई हानि उठाये साधारण व्यक्ति के साथ अन्याय कर सकता था बल्कि उच्चवर्गीय, सैनिक पदाधिकारी द्वारा साधारण व्यक्ति के प्रति अपराध किये जाने पर वह सैनिक पदाधिकारी अधिक कठोरता के साथ दण्डित होता था। इसका कारण कदाचित् सैनिक नियन्त्रण था। यह समझा जाता—और ठीक ही समझा जाता था कि सैनिक को, जो कि देश के रक्षक हैं, अपनी भावनाओं के आवेश में आकर किसी की हानि न कर बैठना चाहिये।

धर्म—सुमेरिया निवासियों का आर्थिक संगठन उनके देवताओं के मन्दिरों के रूप में पूर्ण रूपेण अभिव्यक्त हुआ। ये मन्दिर किसी कृत्रिम ऊँचे स्थान पर बनाये जाते थे। प्रत्येक नगर के अपने-अपने देवता थे। मन्दिर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
प्रायः नगर के बीच में हुआ करते थे। ये मन्दिर नागरिक हलचल के केन्द्र हुआ करते थे। सुमेरिया के धर्म में सुमेरियों की संस्कृति प्रतिबिम्बित होती है यद्यपि सुमेरिया निवासियों ने किसी उदात्त धर्म का विकास नहीं किया तथापि उनके जीवन में धर्म का पर्याप्त महत्व था। वे बहुदेववाद में विश्वास रखते थे यद्यपि कतिपय आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि सब के प्रारम्भ में सुमेरीय धर्म एकेश्वरवादी था और बहुदेववाद की प्रथा बाद में प्रचलित हुई। वे मानवीय गुणों से युक्त अनेक देवताओं की उपासना करते थे। उनके अगणित देवताओं में वर्षा और वायु देव एनलिल (Enlil), सूर्यदेव शमश (Shamash), आकाश देव अनु तथा समुद्र देव ईव के नाम उल्लेखनीय हैं। सुमेरीय धर्म को हम एक प्रकार से प्रकृति-पूजा कह सकते हैं। यद्यपि अनहित करने वाले एक देवता नरगल (Nergal) की भावना विद्यमान थी तथापि साधारणतः प्रत्येक देवता को हित तथा अनहित दोनों की क्षमता से युक्त माना जाता था। एक ओर सूर्य देव शमश अपनी जीवन-प्रदायिनी रश्मियों से मनुष्यों को लाभ पहुँचाते थे तो दूसरी ओर अपनी प्रचण्ड किरणों से कोमल-कोमल पौधों को झुलसा भी सकते थे। बहुत बाद तक सुमेरीय निवासियों में ऐसे देवताओं का प्रादुर्भाव नहीं हुआ जो पूर्णतया हानि अथवा पूर्णतया लाभ के ही देवता हों।

सुमेरीय धर्म ऐहिक था, पारलौकिक नहीं। हिन्दू धर्म की आशावादिता उस धर्म में नहीं मिलती। भविष्य जीवन के विषय में सुमेरीय लोगों के विचार अत्यन्त नैराश्यपूर्ण थे। उनका विचार था कि मृत्यु के बाद (Sheol) शियोल नामक स्थान को मृतात्मा जाती है जो अत्यन्त अन्धकारपूर्ण तथा भयावह स्थान है। किसी भी व्यक्ति को सुखदपूर्ण भविष्य जीवन की आशा न थी। इन्हीं धार्मिक विश्वासों के कारण मृत पर विशेष ध्यान दिया जाता था। मृतकों के लिए मिश्र के समान कब्र नहीं बनवाये जाते थे यद्यपि मृत शरीर के साथ उसके प्रिय लगने वाली कुछ वस्तुओं को गाड़ दिया जाता था अन्यथा उन्हें भय था कि मृत पुरुष भूत बन कर घर के अन्य प्राणियों को सतावेगा। मृत पुरुषों को बिना पात्र में रखे हुये घर में ही गाड़ दिया जाता था।

देवताओं को सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए बलि दी जाती थी। बलि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
से सन्तुष्ट देवतागण वृष्टि के द्वारा कृषि की वृद्धि करेंगे और विपुल वर्षा से होने वाली हानि को भी रोकेंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि सुमेरीय धर्म में नैतिक अथवा आध्यात्मिक विषयों का अधिक महत्व न था। देवताओं में भी मानवीय दुर्गुणों का आरोप किया जाता था। धर्म में वह जीवन-प्रदायिनी शक्ति न थी जो मनुष्य को अनुपम सान्त्वना प्रदान करती है, जो जीवन के संघर्षों में सफलता प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान करती है, जो मानव आत्मा को उदात्त बनाती है और जो मनुष्य का उस अज्ञात परब्रह्म से तादात्म्य स्थापित करती है। धर्म का एक मात्र ध्येय सांसारिक पदार्थों—व्यापार वाणिज्य कृषि में लाभ प्राप्त करना था। कर्मकाण्ड प्रधान सुमेरीय धर्म में नैतिकता का तो स्यात् स्थान भी न था।

सुमेरिया निवासियों की धार्मिक प्रवृत्ति का ज्ञान हमें उनकी सृष्टि और बाढ़ सम्बन्धी कहानियों से होता है। उनके बहुत समय पश्चात् हिब्रू लोगों ने (Old Testamcnt) में उन्हीं कहानियों को अंकित किया। सृष्टि-सम्बन्धी कहानी में ईर्ष्यालु और साहसहीन देवताओं पर मार्दुक (Marduk) की विजय का वर्णन है। इसी प्रकार की कथा-बाढ़ सम्बन्धी भी है। मानव के रुष्ट और ईर्ष्यालु देवताओं ने प्रथमतः मानव को नष्ट कर देना चाहा। सात दिनों तक बाढ़ का प्रकोप रहा—समस्त भूमि जल से आप्लावित हो उठी, देवतागण स्वयं व्याकुल हो उठे किंतु पृथ्वी निवासी मानव ने एक देवता द्वारा ही बतलाई गई युक्ति से अपनी रक्षा की और अन्ततः विजय मानव की ही हुई।

कला—धार्मिक विश्वासों और परम्पराओं ने सुमेरीय कला को क्षति नहीं पहुँचाई। सुमेरीय कलाकार के किसी भी विषय को किसी भी रूप में अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता थी। उस समय के मिले हुए पात्रों, अस्त्रों तथा आभूषणों पर कतिपय पशुओं और मनुष्यों के चित्र से सुमेरीयों की कला-कुशलता तथा उनकी कल्पना की विशदता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। तक्षणकला तथा धातु के कार्यों में सुमेरियों ने अनुपम कौशल प्राप्त किया था। वास्तु कला अपेक्षाकृत निम्न थी। इसका कारण कदाचित् यह रहा हो कि भवन निर्माण के लिए सुमेरिया में अधिक साधन नहीं प्राप्त थे। धूप में सूखी हुई ईंटों का प्रयोग भवन निर्माण में होता था। पाषाण दुर्लभ था अतः अधिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पच्चीकारी नहीं हो सकती थी। जिगुरत, जो मन्दिरों के पास मीनारों के रूप में होती थी, सुमेरियों की भवन-निर्माण कला का एक उदाहरण उपस्थित करती है। निप्पर का मन्दिर मिस्र के पिरामिड के समान है। मेहराब, गुम्बज और यदा-कदा स्तम्भों का प्रयोग राजकोय कब्रों और सर्वसाधारण गृहों में होता था। सुमेरीय मुहरें सुमेरीय कला को बहुत ऊँचा उठा देती हैं। अन्ततः सुमेरियन सभ्यता मेसोपोटामियन सभ्यता के प्रारंभिक एवं विकसित रूपों की एक रूपरेखा प्रस्तुत करती है जिसे यद्यपि सर्वोच्च नहीं माना जा सकता, फिर भो उसी ने भविष्य की आधार-शिला प्रस्तुत की थी। आज भी उसके शासकीय विधान, कला, धर्म एवं सामाजिक नियम उसके उत्तराधिकारी सभ्यताओं जैसे बैबीलोनियन, असीरियन एवं चैल्डियन में भली-भाँति देखे जा सकते हैं। यही नहीं वरन् विश्व की सभ्यता के भो कुछ प्राथमिक अङ्ग भी इसी से खोजे जा सकते हैं।[१]

२—बैबीलोनिया की सभ्यता

बैबीलोनिया का उत्कर्ष—सेमेटिक संस्कृति वाले बैबिलोनिया निवासियों ने अक्कादियों की प्रभुसत्ता की इतिश्री हो जाने पर मेसोपोटामिया पर आधिपत्य जमाया। घाटी में आने के पूर्व उनकी अपनी कोई सभ्यता न थी, संस्कृति न थी। किन्तु उनका निकट सम्पर्क सुमेरिया निवासियों से बहुत पहले ही से था; और यही कारण है कि बैबिलोनिया की सभ्यता आमूल सुमेरीय सभ्यता से प्रभावित है। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि बैबिलोनिया की सभ्यता सुमेरीय सभ्यता का एक ही परिवर्तित रूप है। बैबिलोनिया की सभ्यता कई बातों के कारण महत्वपूर्ण है। नवीन राजधानी बैबिलन थी इसीलिए इस

१. "On the whole sumerian civilization represents a contrast between crude and consummate skill, a synthesis of rough beginnings and occasionally but brilliant mastry. It was a life differentiated and subtle abundant and complex. The theme was struck on which history would strike its myriad variations."

—S. L. Kramer.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ्यता का नाम बैबिलोनियन सभ्यता पड़ा। बैबिलोनिया-वासियों ने सेमेटिक और सुमेरीय तत्वों को एक सांस्कृतिक परम्परा में आबद्ध कर आगामी सन्तति को प्रदान किया। सेमेटिक और सुमेरीय सभ्यताओं के अतिरिक्त अन्य कई सभ्यताओं के तत्व भी बैबिलोनिया सभ्यता के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। विशेषतः जर्मन पुरातत्ववेत्ताओं के महत्वपूर्ण अन्वेषणों से इस बात का लोग तीव्र अनुभव कर रहे हैं कि बैबिलोनियन सभ्यता का मूल्यांकन अभी तक ठीक-ठीक नहीं हो पाया है। दक्षिण पश्चिमी एशिया तथा यूनानी सभ्यता के अनेक तत्व इसी सभ्यता से लिए गए हैं। वस्तुतः गणित, व्याकरण, कोष-निर्माण, दर्शन, खगोलशास्त्र-पुरातत्व, इतिहास और औषधिशास्त्र की नींव बैबिलोनिया के निवासियों द्वारा ही डाली गई। बैबिलोनिया निवासी ही अपने सूक्ष्म विश्लेषण-पूर्ण निरीक्षणों के बल पर विज्ञान के द्वारा उन्नति के पथ पर आरुढ़ हुआ था। अनेक कथानकों की रचा कर बैबिलोनिया-निवासियों ने हिब्रू लोगों की बाइबिल के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत की। विद्या के क्षेत्र में महाकाव्य, कथाओं और कहावतों का उन्होंने समुचित विकास किया।

हम्मूराबी और उसकी संहिता (कोड)—अक्कादियों पर विजय पाने वाले एमोराइट लोगों में सब से प्रसिद्ध शासक हम्मूराबी था जिसका स्थान प्राचीन विश्व के विजेताओं में किया अप्रतिम है। उसने समस्त नगर राज्यों को एकच्छत्र शासन के अन्तर्गत सीरिया और एशिया माइनर भी उसके अधीन थे। इस प्रकार हम्मूराबी ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की और बैबिलन नगर को राजधानी बनाई। किन्तु विश्व-इतिहास में उसकी ख्याति उसके विजयों पर आधारित नहीं है प्रत्युत उसके सुव्यवस्थित शासन पर। उसके राज्य में भूमि का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध किया गया था। हम्मूराबी के शासन के बारे में हमें उसकी विधान संहिता (कोड) और उसके ५५ पत्रों से ज्ञात होता है।

हम्मूराबी की यह प्रसिद्ध विधान संहिता पुरातत्त्ववेत्ताओं के उद्दाम प्रयास के फलस्वरूप सन् १९०२ में सत्ता में भू-गर्भ से निकाली गई। यह संहिता वर्तुलाकार पाषाण-स्तम्भ पर अंकित है। इसमें कुल २८५ धारायें हैं। स्तम्भ पर हम्मूराबी को सूर्य-देव शमश (Shamash) से कानूनों को ग्रहण करता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
हुआ प्रदर्शित किया गया है। इन २८५ धाराओं को वैज्ञानिक ढंग में 'व्यक्तिगत सम्पत्ति', 'व्यापार और वाणिज्य', 'परिवार', 'अपराध', 'परिश्रम' आदि अध्यायों के अन्तर्गत विभक्त किया गया है। संहिता का प्रारम्भ देवों के प्रति श्रद्धांजलि से होता है, किन्तु आगे चल कर विधान धर्म-निरपेक्ष सा हो जाता है। संहिता में विस्तृत कानूनी कार्यवाही का स्पष्ट उल्लेख है— मामलों को निश्चित करने के लिए न्यायाधीशों की नियुक्ति, राजा से आग्रह, विधवाओं तथा गरीबों की रक्षा आदि ऐसी बातें हैं जो आज भी ज्यों की त्यों हैं, किन्तु बहुत से कानून प्रतिशोध की जंगली भावना पर आधारित हैं। 'शठे शाठ्यम् समाचरेत्' वाली कहावत बहुत सी धाराओं पर लागू होती है। यदि किसी के पुत्र की मृत्यु मकान के गिरने से हो जाती है तो मकान मालिक मकान बनाने वाले पुत्र का प्राण हरण कर सकता था, किन्तु यह दण्ड वह व्यक्ति स्वयं नहीं दे सकता था। यह दण्ड अपराधी को राज्य द्वारा प्राप्त होता था। इसी प्रकार के कई कानून मिलते हैं—

"यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति की आँख फोड़ता है, तो वे लोग उसकी भी आँख फोड़ डालेंगे।"

"यदि वह किसी व्यक्ति की हड्डी तोड़ डालता है तो वे उसकी हड्डी तोड़ डालेंगे।" "यदि वह साधारण मनुष्य की आँख या दाँत तोड़ डाले तो वह चाँदी का एक सिक्का (mina) देगा।"

इनके अतिरिक्त अनेक नियमों में पट्टे, ठीके, साझे की चर्चा आती है जिससे ज्ञान होता है कि व्यापार और वाणिज्य किस सीमा तक उन्नति हो चुका था। जिन कृषक-दासों की फसलें नष्ट हो जाती थीं उनकी रक्षा का सम्यक् विधान था। ऋण-सम्बन्धी कानून भी बने थे। मजदूरी को निश्चित करने वाले कई कानून थे और कई वस्तुओं के मूल्य को निर्धारित करते थे। कुछ कानून विवाह और पारिवारिक सम्बन्धों पर नियन्त्रण रखने वाले थे। विवाह एक प्रकार का ठीका था। यदि पत्नी पति को सन्तुष्ट न कर सके तो पति पत्नी को अपने घर वापस भेज सकता था और उसे गुलाम भी बना सकता था किन्तु पति यदि पत्नी को सन्तुष्ट न कर सके तो पत्नी अपने पिता के यहाँ से लाई हुई सम्पत्ति के साथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घर वापस जा सकती थी। संहिता में ३ वर्गों—सामान्त, सर्वसाधारण तथा दास—का उल्लेख है और उसी अपराध के लिए तीनों वर्गों के भिन्न-भिन्न दण्ड थे।

हम्मूराबी के विधान संहिता विश्व-इतिहास में विशिष्ट स्थान रखती है। उसका महत्व इस बात में नहीं है कि नवीन-नवीन कानूनों का निर्माण किया गया। कानून तो जैसा कि पहले सुमेरियन सभ्यता के अध्ययन में हम पढ़ आये हैं नगर राज्यों में पूर्व-निर्मित थे। हम्मूराबी की महत्ता इस बात में है कि उस प्रतापी नृपति ने उन पूर्व-निर्मित कानूनों का एक संहिता (Code) का आकार प्रदान कर एक विशाल साम्राज्य पर लागू किया। साम्राज्य पर्यन्त कानूनों एक-रूपता के कारण शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना हुई होगी—यह निर्विवाद है। संहिता का बहुत बड़ा महत्व इस बात में भी है कि उसमें उल्लिखित कानूनों द्वारा अन्यथा तिमिराच्छन्न तत्कालीन सामाजिक आर्थिक दशा अचानक आलोकित हो उठती है और हम इस बात का साक्षात् अनुभव सा करने लगते हैं कि किस प्रकार प्रजाहित की भावना से प्रेरित होकर हम्मूराबी नहर निर्माण का आज्ञा दे रहा है। उपर्युक्त बातों की सत्यता हम्मूराबी की संहिता से स्वयं प्रतीत होती है। जहाँ वह कहता कि उसकी संहिता असहायों की शक्तिशालियों से सुरक्षा तथा सर्वसाधारण की भलाई करना है।[१] इसी सभ्य विचारों के कारण ही यह आज भी फारस के मोसेज़ के कानून की भाँति अमानुषिक स्तर पर रखा जाता है तथा उसकी तुलना आधुनिक विश्व की संहिताओं से की जाती है।

हम्मूराबी की विधान संहिता, उसके ५५ पत्र तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर यह तो स्वयंसिद्ध ही है कि बैबिलोनिया के विस्तृत साम्राज्य के स्थापित हो जाने पर कानून व्यवस्था में बहुत कुछ परिवर्तन हुए। सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी गई। अब राज्य के विरुद्ध समझे जाने वाले अपराधों की संख्या बढ़ गई

१ "To prevent the strong from oppresing the weak to enlighten the land and to further the welfare of the people Hammurabi, I who brought plenty and abundance."

—Hammurabi.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
जब कि सुमेरीय कानून व्यवस्था में अपराध इने-गिने थे। इनके अतिरिक्त अब दण्डों की कठोरता भी बढ़ गई। मृत्यु दण्ड साधारण बात हो गई। व्यभिचार करते हुए स्त्री और पुरुष दोनों को प्राण दण्ड मिलता था। भगे हुए दास को शरण देने वाला बैबिलोनियन कानून के द्वारा मृत्यु दण्ड पाता था जब कि सुमेरीय विधान के द्वारा उसके ऊपर केवल जुर्माना लगता था। कुछ बातों में कानूनी व्यवस्था में कुछ सुधार भी हुए थे। जो पत्नियाँ और बच्चे ऋण के कारण बेचे जाते थे वे चार वर्ष की अवधि से अधिक बन्धन में नहीं रखे जा सकते थे और इतना ही नहीं एक स्त्री कृषक दास से सन्तति के उत्पन्न हो जाने पर उसका स्वामी उसे बेच नहीं सकता था।

समाजिक अवस्था—समाज में सुमेरीय समाज के समान ही तीन श्रेणियाँ थीं उच्च, मध्य और दास। दास वर्ग अपने स्वामी की सम्पत्ति समझा जाता था किन्तु कानूनों से उनकी रक्षा की जाती थी दासों को सम्पत्ति रखने का अधिकार था। वे विवाह भी कर सकते थे। केवल भगे हुए दासों के लिए कठोर दण्ड का विधान था अन्यथा बन्धन से उनकी मुक्ति शीघ्र ही हो जाती थी। जहाँ तक आर्थिक दण्ड का प्रश्न है प्रथम श्रेणी के लोगों के ऊपर अधिक आर्थिक दण्ड किया जाता था। कदाचित् इसका कारण यह था कि वे लोग अधिक देने में समर्थ थे इस श्रेणी को सामाजिक लाभ यह था कि ये लोग अपने ऊपर किए गए शारीरिक हानियों के विरुद्ध मुकदमा लड़कर दूसरे वर्ग के लोगों को अपेक्षाकृत कठोर दंड दिलवा सकते थे जबकि मध्यम वर्ग के लोगों को कुछ द्रव्य देकर सन्तुष्ट कर दिया जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि न्यायालय में आजकल के समान समाज की सभी श्रेणियों के लोगों को समान अधिकार नहीं प्राप्त थे।

समाज में स्त्रियों का स्थान सन्तोषजनक था। यद्यपि सामान्यतः मिस्र और रोम की तुलना में स्त्रियों को बैबिलोनियन समाज में उतने अधिकार प्राप्त न थे तथापि सुसंस्कृत यूनान और मध्यकालीन योरोप की अपेक्षा उनको अधिक अधिकार प्राप्त थे। वे सम्पत्ति रख सकती थीं। परित्याग में उन्हें समान अधिकार प्राप्त थे। वे मुकदमें भी चला सकती थीं। समाज में अनेक स्त्रियाँ व्यापार करती थीं और जीविकोपार्जनार्थ लिपिक बनती थी। पुरुषों के समान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे नदियाँ अथवा कूपों से जल लाती थीं और गृहस्थी की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यथा पीसने, कूटने, रँगने तथा बीनने के लिए जन-जीवन में उनका स्वतन्त्रतापूर्वक आवागमन होता था। उच्च वर्ग की स्त्रियों में कुछ परदा भी था। यदि हम हेरोडोटस विश्वास करें तो ज्ञात होता है कि कन्याएँ बेची भी जाती थीं। एक स्थान पर सभी पुरुष, जिनके विवाह-योग्य कन्याएँ होती थीं, अपनी पुत्रियों को लाते थे और सुन्दरता के आधार पर सबसे पहले सर्व-सुन्दरी नवयुवती को मञ्च पर खड़ा किया जाता था। पिता मूल्य इसी वादे पर स्वीकार करता था कि मूल्य-प्रदाता उस नवयुवती से विवाह कर लेगा। किन्तु विवाह की प्रथा से यह ज्ञात नहीं हो सकता कि स्त्री क्रय होती थी अथवा पुरुष क्योंकि पुरुष पहले लड़की के पिता को एक पुरस्कार देता था यद्यपि लड़की का पिता उसके बदले में अपनी पुत्री को पुरस्कार से अधिक मूल्यवान दहेज देता था। सन्तति के न होने पर, आचरणभ्रष्ट होने पर तथा गृहस्थी के काम में अयोग्यता अथवा अनवधानता दिखलाने पर पुरुष स्त्री का परित्याग कर सकता था। समाज की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले, जुलाहों, बढ़ई, रँगरेजों, स्वर्णकारों, जौहरियों, कुम्भकारों, दर्जियों के अधिकारों की रक्षा का उचित प्रबन्ध था।

आर्थिक अवस्था—व्यापार के क्षेत्र में बैबिलोनिया निवासी अपनी पूर्व-वर्ती सभ्यता वालों से आगे बढ़े थे। हम्मूराबी के कोड के अनेक कानूनों से ज्ञात होता है कि व्यापारियों को बहुत सुविधा दी जाती थी। पश्चिमी एशिया, पूर्वी एशिया तथा भूमध्यसागरीय देशों तक उन लोगों का व्यापार विस्तृत था। साम्राज्य के मुख्य केन्द्रों में व्यापारी लोग समूह बना कर रहते थे। विदेशी व्यापार छोटी-छोटी नौकाओं तथा काफिलों द्वारा होता था। धातु, कुछ लकड़ियाँ तथा देवदार की और मकान बनाने के लिए अन्य सामग्रियों का आयात होता था। निर्यात होने वाली सामग्रियों में धातु की निर्मित वस्तुएँ, अन्न, वस्त्र तथा मछलियाँ प्रमुख थीं। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि आन्तरिक व्यापार में स्वतन्त्र प्रतियोगिता बैबिलोनियन सम्राटों को पसन्द न थी क्योंकि व्यापार-संबंधी प्रत्येक बात पर राज्य का नियंत्रण था। व्यवसाय बैंक आदि की एक-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक बात पर कानून बने हुए थे और राजा के कर्मचारी उनको लागू करने के लिए नियुक्त थे। वसीयतनामा और ब्याज पर रुपए लेने से संबंधित अनेक कानून थे। बिना लिखित ठीके और साक्ष्य के किसी भी प्रकार के व्यापारिक सम्बन्ध पर दण्ड दिया जाता था। और कभी-कभी इस कानून को भंग करने वाले को मृत्यु दण्ड दिया जाता था। व्यापार का मुख्य माध्यम वस्तु-विनिमय था किन्तु सुविधा के लिए स्वर्ण और रजत के छोटे-छोटे कणों का प्रचलन था। इसी प्रकार की प्रथा मिस्र और सुमेरिया में भी थी। मास्टर और अप्रेन्टिस (नवसीखियों) में व्यापारियों की श्रेणियाँ विभक्त थीं।

कृषि अब भी अधिकांश जनता के जीवन का आधार थी। हेरोडोटस ने तो लिखा कि समस्त ज्ञात देशों में बैबिलोनिया के समान अन्य कोई देश अन्न उपजाने में इतना समृद्ध नहीं था और वह दो सौ गुना अब अन्न उत्पन्न करता है। गेहूँ और जौ की बलियाँ लगभग चार अंगुल चौड़ी होती थीं। कृषि में इस समृद्धि का कारण यह प्रतीत होता है कि शासक गण सिंचाई और सड़क आदि के निर्माण की ओर विशेष ध्यान देते थे। वहीं पर सर्वप्रथम अंगूर और जैतून की खेती हुई तथा कालान्तर में यूनान और रोम के निवासियों ने इनकी खेती इनसे सीखी। उसके पश्चात् पश्चिमी योरोप में उनका प्रचार हुआ। खजूर की उत्पत्ति प्रभूत मात्रा में होती थी और उसका उपयोग अनेक खाद्य पदार्थों में किया जाता था, फल, रस्सी चीनी और लकड़ी की प्राप्ति का खजूर अचूक साधन था और दिन भर के कोलाहल एवं मानसिक उद्वेगों को बैबिलोनियन कृषक सन्ध्या समय खजूर-निर्मित मदिरा के प्याले में डुबो देता था। अन्न से भी मदिरा निकाली जाती थी। दूध भी खूब होता जब कि सुदूर पूर्व में यह एक दुर्लभ पदार्थ था। मांस-भक्षण वे लोग कम करते थे और यह बहुत महँगा भी पड़ता था किन्तु मछली निर्धन लोगों को भी प्राप्त थी।

कृषि के साथ ही उद्योग-धन्धे पर्याप्त विकसित अवस्था में थे। सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा, लोहा और तेल आदि खनिज पदार्थ भूगर्भ से निकाले जाते थे। इन धातुओं से अस्त्र-शस्त्र तथा अलंकारों का निर्माण होता था। बैबिलोनिया के कारीगरों ने चमड़े की वस्तुओं, मृतभाण्ड, कुर्सी-मेज और मेराबू

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नामक एक कारीगर ने वस्त्र विशेष के निर्माण में दक्षता-प्राप्त की थी। यूनान और रोम के लेखकों ने बैबिलोनिया के सूती वस्त्रों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। अन्य संस्थाओं के समान उद्योग-धन्धों की संस्थाएँ भो राज्य द्वारा नियन्त्रित होती थीं।

धर्म—बैबिलोनिया निवासियों के हाथों धर्म में विविध परिवर्तन हुए। सुमेरिया के अनेक प्रमुख देवों के स्थान पर नवीन देवताओं को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। मार्दुक (Marduk), जो पहले केवल एक स्थानीय देवता था, अब समस्त साम्राज्य द्वारा पूजित होता था। इश्तर (Ishtar) अब भी प्रमुख देवी थी। उसका भाई और प्रेमी तामुज (Tammuz), जिसका कि सुमेरीय धर्म में नगण्य स्थान था अब सर्वप्रथम तीन देवताओं में अपना स्थान पा गया था। पतझड़ में उसकी मृत्यु और वसन्त के आगमन पर उसका पुनरुज्जीवन—ये दोनों हरियाली की समाप्ति और अभिनव जन्म के प्रतीक समझे जाते थे। बैबिलोनिया निवासी बहुदेववादी थे। यों तो एक परब्रह्म की ओर लोग अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते थे किन्तु विशेष निष्ठा स्थानीय देवताओं के प्रति होती थी। लार्सा (Larsa) में शमश (Shamash), उरुक (Urak) में इश्तर (Ishtar), उर (Ur) में नानार (Nannar) प्रतिष्ठित थे। सुमेरियावासियों का बहुदेववाद बैबिलोनिया वासियों को पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुआ था। देवतागण मनुष्यों से बहुत दूर नहीं समझे जाते थे। मनुष्यों के समान वे भी अस्थि-चर्म-निर्मित माने जाते थे। मनुष्यों के समान वे भी क्षुधार्त होते थे और रात्रि में चारों ओर भ्रमण कर के स्त्रियों को सन्तति प्रदान करते थे। मनुष्यों यदि घरों में रहते थे तो उनका निवास-स्थान मन्दिर थे और उनकी सेवा के लिए पुरोहित वर्ग नियुक्त होता था।

बैबिलोनिया का धर्म अनेक अन्ध-विश्वासों से परिपूर्ण था और विलडूरेण्ट का तो यह दावा है कि कोई भी सभ्यता कभी बैबिलोनियन सभ्यता से अधिक अन्धविश्वास बहुल न थी। जादू टोनों में उनका अटल विश्वास था। नदियों की प्रत्येक गति पर, तारों के प्रत्येक परिवर्तन पर और मनुष्य अथवा पशु के प्रत्येक कार्य पर बैबिलोनिया का निवासी शंकित हो उठता था। भौतिक सुखों के लिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लालायित बैबिलोनिया वालों का हृदय ईश्वर के प्रति श्रद्धा भक्ति से कभी उद्वेलित न हो सका। उनकी पूजा में सदैव स्वार्थ-वृद्धि विद्यमान रहती थी। व्यापार में सफलता तथा अन्य सांसारिक सुखों की अभिवृद्धि ही उनकी एक मात्र कामना थी। उनके गीतों और उनकी स्तुतियों में पाप की भावना की बार-बार आवृत्ति होती है। एक स्तुति में है—"परमेश्वर! मेरे पाप अनेक हैं, मेरे कुकृत्य बहुत बड़े हैं....मैं कष्टों में दबा हूँ, मैं अब अपना सिर नहीं उठा सकता, मैं आह्वान के लिए अपने कृपालु ईश्वर की ओर उन्मुख होता हूँ और मैं कराह रहा हूँ....भगवान्, अपने दास को मत ठुकराओ।" इन प्रार्थनाओं को कभी केवल पुरोहित लोग, कभी जन-समूह और कभी दोनों मिल कर गाते थे। इन प्रार्थनाओं से ज्ञात होता है कि उनके धर्म में भय की भावना सदा विद्यमान रहती थी। भूत-प्रेतों का भय उन्हें बहुत सताता था। ब्यूरस का कहना है कि यदि वे लोग भूत-प्रेतों की भावना के आविष्कारक नहीं थे तो वे प्रथम "सभ्य" लोग थे जिन्होंने कुत्सित भावना को इतना महत्व प्रदान किया। उनका विश्वास था कि अनेक प्रकार की प्रेतात्माएँ वायु और अन्धकार में विचरण करती हैं और मार्ग में जो कोई भी उनके सामने पड़ जाय उसका सर्वनाश करती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वे अपनी भावनाओं से कितना त्रस्त रहा करते थे और इसका कारण कदाचित यह है कि दजला और फरात नदियों के मध्य की वह शस्यश्यामला भूमि अब उतनी स्वस्थ्यप्रद न रह गई थी जितनी पहले थी। दूसरा कारण यह भी सम्भव है कि लोगों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण अत्यन्त निराशामय हो गया था।

बैबिलोनिया का धर्म इतना उदात्त न था कि वहाँ के निवासियों की नैतिकता पर अपनी अमिट छाप छोड़ सके। नैतिकता की पूत भावना का स्त्रोत प्रायः धर्म ही होता है। यही कारण है कि बैबिलोनियन जीवन का नैतिक स्तर बहुत ऊँचा न था। बैबिलोनिया की अनैतिकता सुन कर सिकन्दर के रोंगटे खड़े हो गए थे। हेरोडोटस बतलाता है कि सन्तान की कामना करने वाली प्रत्येक औरत इश्तर के मन्दिर से अपने को किसी अपरिचित व्यक्ति के हाथ बेच देती थी और इस कुत्सित वृत्ति से मिले हुए धन का उपयोग मन्दिरों में होता था। इस विचित और असंगत प्रथा का स्रोत ढूंढ़ना कठिन है। मंदिरों

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में अनेक प्रकार की वेश्याएँ रहती थीं और उनमें से बहुतों ने तो प्रभूत द्रव्य उपार्जित कर लिया था। इस प्रकार की मन्दिर वेश्याओं की प्रथा पश्चिमी एशिया, इजरायल, सीरिया, और फ़ोनेशिया आदि देशों में प्रचलित थी। मन्दिरों की दूकानें भी वेश्याओं की केन्द्र थीं। इन्हीं कारणों से मिस्र निवासी बैबिलोनिया निवासियों को पूर्ण सभ्य न समझ कर घृणा की दृष्टि से देखते थे। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है यदि हेरोडोटस का विश्वास किया जाय तो प्रत्येक निर्धन पिता अपनी पुत्री को द्रव्य के लिए वेश्या बनाता था। क्विटस कर्टियस भी बतलाता है कि बैबिलोनिया नगर की प्रथाएँ बड़ी विचित्र थीं। ज्यों-ज्यों बैबिलोनिया के मन्दिर समृद्ध होते गए त्यों-त्यों स्वाभाविकतया वहाँ के निवासियों का नैतिक स्तर गिरता गया और भोग-विलास में मग्न वे क्रमशः (Kassites) कसाइट, असीरिया, फ़ारस और यूनान की शक्ति का सामना न कर सके।

साहित्य शिक्षा—शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में मिस्र और पैलेस्टाइन की तुलना में बैबिलियन की देन अधिक नहीं। आर्द्र मिट्टी की पटियों पर क्यूनीफ़ार्म में लिखकर सुखा लिया जाता था। बैबिलोनिया के पुस्तकालय और राजमहल इन्हीं पटियों से भरे रहते थे। आज वे पुस्तकालय अवशेष नहीं किन्तु बारसिया (Bar sippa) के पुस्तकालय की नकल असुरबेनीपाल के पुस्तकालय में सुरक्षित थी और वहीं आज बैबिलोनियन जीवन के बारे में हमारे ज्ञान का प्रमुख स्रोत है। फोनेशिया के लोगों के समान बैबिलोनिया के लोग भी लिपि को साहित्य के साधन से अधिक व्यापार का साधन समझते थे। उनकी अपनी वर्णमाला न थी। लिखने में दक्षता प्राप्त करने के लिए ३०० शब्द-खण्डों को कण्ठस्थ करना अनिवार्य था। लिपि सिखलाने के लिए मन्दिर की पाठशालाओं में प्रबन्ध था। समाज में लेखकों का पर्याप्त आदर था जिसका अनुमान हम एक कथन से लगा सकते हैं—"जो लिखने में दक्ष हैं वे सूर्यवत् चमकेंगे।" पौराणिक कथाएँ और महाकाव्य उनके प्रिय साहित्यिक विषय थे।

गिलगेमिश महाकाव्य अवशिष्ट बैबिलोनियन साहित्यिक कृतियों में अत्यन्त रुचिप्रद है। गिलगेमिश एक पौराणिक शासक है जो प्रलय और मृत्यु से बच

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया था। यह शासक इस महाकाव्य में अपार शक्ति सम्पन्न व्यक्ति के रूप में चित्रित है। इस महाकाव्य में कुल १२ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में आई हुई घटनाएँ एक मास तक चलती हैं। छठें अध्याय में गिलगेमिश के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा जाता था जिसको वह ठुकरा देता है किन्तु—गिलगेमिश को इसका भयंकर परिणाम भुगतना पड़ता है। उसको असीम वेदना सहनी पड़ती है। इस प्रकार की वेदनापूर्ण कथा का चित्रण किसी यथार्थवादी उपन्यासकार के कथानक के समान है। गिलगेमिश का एनकिडर नामक राक्षस और "स्वर्गीय-वृषभ" के साथ संघर्ष भी अत्यन्त रोचक है। मानव का युद्ध प्रेम और मृत्यु इस काव्य में चित्रित है।

इसके अतिरिक्त 'मन्दिर-साहित्य' मिलता है जिसके अन्तर्गत स्तुतियाँ, प्रार्थनाएँ और पूजा गीत आते हैं। पशुओं को अर्ध-मानव के रूप में चित्रित किया गया है। प्रत्येक कथा में कुछ शिक्षा का प्रयोजन है—

भद्देपन और घृणा से दूर रहो।
सार्वजनिक स्थान पर बोलने में शीघ्रता मत करो।
अपने से सुष्ठुतर लोगों के हितों की भलीभाँति रक्षा करो।

विज्ञान—व्यापारिक होने के नाते बैबिलोनिया निवासी कला की अपेक्षा विज्ञान में अधिक सफलता प्राप्त कर सके। बैबिलोनियन गणित में वृत्त को ३६० में विभक्त किया गया था और वर्ष को ३६० दिनों में। अङ्क-गणना में ३ अङ्कों को ही प्रयुक्त किया जाता था, १ से ६ तक के लिए एक चिन्ह था, १० से ५० तक दूसरा तथा १५ से १०० तक तीसरा। रेखागणित द्वारा विषय क्षेत्रों की नाप की जाती थी। ज्योतिषशास्त्र-सम्बन्धी निरीक्षणों, विशेष तया तारों की गति के निरीक्षण, से उन लोगों ने खगोल विद्या में अभूतपूर्व उन्नति की। प्रत्येक नक्षत्र को देवता माना जाता था जो मानव हितों और अनहितों में प्रवृत्त समझे जाते थे। जुपिटर को मार्दुक, मर्करी को नबू, मार्स को नर्गल और सूर्य को शमश समझा जाता था। प्रत्येक तारे की प्रत्येक गति उन्हें कुछ न कुछ संकेत करती सी प्रतीत होती थी उदाहरणार्थ यदि चन्द्र नीचा रहा तो कोई दूरस्थ नृपति आत्म-समर्पण करेगा और अर्द्ध चन्द्र राजा

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के विजय की सूचना देता था। पुरोहित वर्ग इस विद्या से बहुत धन कमाते थे। २००० वर्ष पूर्व बैबिलोनिया वालों ने वीनस के उदय और अस्त का ठीक-ठीक पता लगा लिया था। इसके अतिरिक्त अनेक ताराओं की स्थितियों का उन्हें ज्ञान था। दिन की गणना वे मध्य रात्रि से नहीं किन्तु चन्द्रोदय से करते थे। दिन को १२ घण्टों में विभक्त किया गया था और प्रत्येक घण्टे में ३० मिनट होते थे। मास का चार सप्ताहों में, घड़ी का १२ घण्टों में, घण्टे का ६० मिनट में और मिनट का ६० सेकेण्ड में हम जो विभाजन करते हैं वह निश्चित रूपेण बैबिलोनिया की ही देन है। चिकित्साशास्त्र में चूँकि उसकी आस्था जादू टोने में अधिक थी इसलिए वे अधिक उन्नति न कर सके। राग को पाप का कुफल समझा जाता था अतः ऐसा उनका विश्वास था कि वह प्रार्थना और टोने-जादू से शीघ्र अच्छा किया जा सकता है। औषधियों का प्रयोग शरीर से भूतों को निकालने के लिए किया जाता था।

कला—बैबिलोनिया के मन्दिर मिस्र के विशाल पिरामिड अथवा मध्य-कालीन विशाल भवनों के समान न थे। उन मन्दिरों का निर्माण जितनी शीघ्रता से हुआ उतनी ही शीघ्रता से उनका अन्त भी हुआ। ईंटों के बने हुये बैबिलोनियन मन्दिर कभी भी दर्शनीय नहीं रहे। बैबिलोनिया वास्तुकला के बारे में हमारा ज्ञान अत्यल्प है क्योंकि वहाँ के सभी प्राचीन भवन प्रायः नष्ट हो गए हैं। निर्धनों के मकान सूखी मिट्टी के बनते थे तथा श्रीमानों के भवन ईंटों के। उन घरों में खिड़कियों का अभाव होता था। जिगुरत नामक उच्च स्थान मन्दिरों के पास होता था जिसका प्रयोजन धार्मिक होने के साथ-साथ पुरोहितों को नक्षत्र-निरीक्षण की सुविधा देना था। जिगुरत में कई तल्ले होते थे। सुन्दर गलीचों और रँगे हुये पत्थरों से सुसज्जित कर सुन्दर बनाने के प्रयास के बावजूद भी यें जिगुरत कला के ऊँचे स्तर को स्पर्श न कर सके। बैबिलोनियन स्थापत्य कला भी अवि-कसित ही रही। सुमेरीय परम्पराओं ने बैबिलोनियन स्थापत्य कला का गला घोंट दिया। सभी चित्रित मुखाकृति एक ही आकार की और सभी शासकों की मूर्ति एक समान है। इनमें विविधता नहीं है और न है सुघरता। विशाल और भारी मूर्तियाँ दर्शक को आकृष्ट नहीं करतीं और यही कारण है कि दर्शक पर वे अपना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अमिट छाप नहीं छोड़तीं। इनमें मौलिकता का अभाव है। मिस्र की तुलना में बैबिलोनिया की स्थापत्य कला हीन थी।

बैबिलोनिया की चित्रकला भी कभी स्वतन्त्र रूप से विकसित न हो सकी। मन्दिरों की दीवारों और मूर्तियों में चित्रकारी पाई जाती है किन्तु वह मिस्र की कब्रों और क्रीट के प्रासादों की चित्रकारी के समक्ष कदापि नहीं रखी जा सकती। पात्रों पर रिलीफ़ के कुछ नमूने प्रशंसनीय हैं यद्यपि मौलिकता उनमें भी नहीं है।

बैबिलोनिया निवासी संगीत के बड़े प्रेमी थे। बाँसुरी, बीन, तुरही, मशक बाजा, खँजरी, मजीरा धनिकों के गृह में होता था। बड़ी-बड़ी दावतों में गाना बजाना दावत का एक अंग समझा जाता था। आभूषणों का पर्याप्त प्रचार था किन्तु आभूषणों के निर्माण में मिस्र के आभूषणों की कलात्मकता नहीं दृष्टि-गोचर होती। चमकीले टाइल्स और पत्थर, भड़कीले रँगे हुये वस्त्र, मुलायम कम्बल, जरी के कपड़े, बहुमूल्य परदे, सुन्दर टेबुल कुर्सियाँ और चारपाइयाँ बैबिलोनियन सभ्यता की शोभा बढ़ाती थीं। बैबिलोनिया में राजा से लेकर साधारण मनुष्य तक अपनी मुहर रखता था। मुहर निर्माण कला उन लोगों ने सुमेरिया वालों से सीखी थी किन्तु इसमें उन्होंने और अधिक सुधार किया था तथा यही बैबिलोनिया वासियों की सर्वोत्कृष्ट कलात्मक सफलता थी। हम्मूराबी का एक अविस्मरणीय कार्य बैबीलोन नामक शहर को अलंकृत करना था। इसे उसमें कई सड़कों एवं बाँधों से सुसज्जित किया। सड़कों के किनारे अनेकों मकान, राजकीय प्रासाद तथा मंदिर स्थापित किये। इतिहासकार विल ड्यूरेन्ट के अनुसार दो हजार वर्ष पूर्व बैबीलोन न केवल सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँच सका था वरन् एशिया के कुछ इने-गिने धनी शहरों में गिना जाता था।[१]

परन्तु यह खेद की बात वेबोलोनियन इतिहास की उन्हीं क्रियात्मक शक्तियों

---

१. "In all essentials babylonia in the times of Hammurabi and even earlier had reached a pitch of material civilization which has never since been surpassed in asia."

—Christopher Dawson.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने जिसे हम्मूराबी ये अपनाई थी, बाद में चलकर उसके अदूरदर्शी उत्तराधिकारियों के अन्दर विनाशक सिद्ध हुई। सत्ता किसी एक शासक के हाथ में नहीं वरन् एक समुदाय के हाथ में आया जो "निनेवेह के शासक" कहे जाते थे। परन्तु इनके आपसी विद्रोह का लाभ उठाकर सेनानचेरिब नामक जनरल ने सत्ता छीन ली जो क्रमशः ऐज़ारबेडेन, नेबोपोलस्सर तथा नेबोक ड्रेजर द्वारा अनुसरित हुआ। इनमें से अंतिम शासक बहुत क्रूर तथा निर्दयी था जिससे उसे आज भी 'Daniel' 'दैत्य एवं क्रूर' 'Villain of the vengeful' की उपाधि से विभूषित किया जाता है। परतु इसके बावजूद भी वह अपने रचनात्मक कार्यों के लिए प्रसिद्ध है जैसे विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध, कला तथा स्थापत्य लगभग ६५० ऊँची इमारतें जिन्हें जिगुरत कहा जाता है इत्यादि। इसकी अमर कृति 'इश्तर का द्वार' एवं "बैबीलोन के लटकते हुये बगीचे" हैं जो आज भी विश्व के सात प्राचीन आश्चर्यों में गिने जाते हैं। वह स्वयं इस बात की गर्व से कहता है कि "मैंने ही बैबीलोन को महान बनाया है" उसके बाद बैबीलोन का राज्य असीरियन शासकों के अधीन हो जाता है।

३—असीरिया की सभ्यता

असीरिया का उत्कर्ष—बैबिलोनिया से लगभग ३०० मील उत्तर दजला नदी के तट पर असुर नामक नगर के आस-पास एक नवीन सभ्यता पनप रही थी। ये लोग सेमेटिक जाति के थे। निकटस्थ पार्वतीय आक्रान्ताओं के सतत भय ने इन लोगों को सदैव सचेष्ट रखा और इसी आवश्यकता के अनुसार वे सैनिक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य थे। समय ने करवट ली और इन लोगों का आधिपत्य एलम, सेमेरिया, अक्काद, बैबिलोनिया, फोनेशिया और मिस्र पर हो गया। २०० वर्षों तक समस्त निकट पूर्व उनके प्रचण्ड शासन की ताप सहता रहा। सुमेरिया का बैबिलोनिया से और बैबिलोनिया का असीरिया से वही सम्बन्ध है जो क्रीट का यूनान से तथा यूनान का रोम से है। असीरिया के लोग प्रमुखतः युद्ध-प्रिय थे। उनकी स्थिति आजकल के जापानियों के समान थी। अपनी रक्षा और अपनी जीविका के लिए असीरिया वालों को साम्राज्यवादी नीति अपनानी पड़ी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१) शालमनेसीर—यह असीरियन सभ्यता का सर्वप्रथम शासक था जिसने बैबिलोनियन सत्ता का अन्त करके असीरियन साम्राज्य की स्थापना की। उसका कार्य कैसाइट नामक जाति की बर्बरता के बावजूद भी सफल हुआ और इसी ने सर्वप्रथम उत्तर तथा दक्षिणी भागों को संगठित किया।

(२) टिगलथ-पिलेसर प्रथम—यह अपने पिता का वीर पुत्र था। यह प्रारंभ में एक उत्साही शिकारी था। उसने लगभग १२० शेरों का शिकार किया। अपनी वीरता के गुणगान वह स्वयं एक अभिलेख में करता है कि "उसने अपने शौर्य से कोमोह के शहर पर धावा बोल दिया, जीत लिया तथा असंख्य मात्रा में धन प्राप्त किया।" उसने असीरियन पताका बैबिलोन से लेकर आर्मीनिया तक फहराई। अनेकों मंदिरों का निर्माण किया। उसका काल असीरिया का उत्कर्ष-काल था।

(३) असुरबानीपाल द्वितीय—इसने लगभग छह राज्यों को अपने वश में किया। यह एक आराम पसंद शासक था जिससे राष्ट्र की प्रगति शिथिल हो गई थी।

(४) शालमेनसीर तृतीय—इसने असीरियन सत्ता दमिश्क तक बढ़ाई। सीरिया से भीषण संघर्ष किया जिससे १६००० व्यक्ति मारे गये। अन्त में अपने पुत्र द्वारा पदच्युत कर दिया गया।

(५) सम्मूरमत—यह शालमेनसीर की साम्राज्ञी थी जिसने तीन वर्ष तक अपने पुत्र की संरक्षिका के रूप में शासन कार्य सँभाला।

(६) टिगलथ पिलेसर तृतीय—इसने नवीन सेनायें एकत्रित करके सीरिया तथा बैबिलोनिया पर पुनः अधिकार किये। इसका काल भी सुसंगठित था जिसमें अनेकों कलात्मक वस्तुओं का निर्माण हुआ।

(७) सार्गन द्वितीय—यह एक साधारण सिपाही था जिसने नैपोलियन की भाँति राज्य का अपहरण वीरतापूर्वक किया। इसकी विजय-पताका एलम, एवं मिश्र तक पहुँची थी। इसने साइप्रस एवं यूनान पर भी विजय प्राप्त की थी।

(८) सेनान चेरिब—इसने आन्तरिक विद्रोहों का दमन करके फारस की खाड़ी तक राज्य-सीमा फैलाई। जेरुसलेम पर आक्रमण किया। एक अभिलेख

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अनुसार वह महान विजेता था जिसने ८९ शहरों को नष्ट कर दिया। ८२० ग्रामों को अधिकृत किया, ७२०० घरों, ११००० गर्दभों, ८०,००० बत्तखों, ८००,००० भेड़ों एवं २०,०,८००० सैनिकों को बन्दी बनाया।

(९) **एसरहेडेन**—इसने अपने भाइयों को मौत के घाट उतार कर राज्य छीन लिया। मिश्र, सीरिया, पश्चिमी एशिया, तथा विनेवेह तक राज्य सीमा बढ़ाई। वह प्रजा-पालक था। उसने प्रजा की भलाई के लिए अनेकों महत्व-पूर्ण कार्य किये। अपने इन्हीं कार्यों के लिए वह सबसे दयालु एवं न्याय-प्रिय शासक कहा जाता है।[१]

(१०) **अशुरवेनीपाल**—यह असीरियन सभ्यता का महानतम शासक था जिसने अनेक वर्षों तक निर्बाधपूर्वक शासन किया। असीरिया उसके काल में चर्मोत्कर्ष पर पहुँच चुका था। उसने अनेकों विजयें की। शहरों का विनाश किया तथा असंख्य मात्रा में धन प्राप्त किये। सूसा, मदाक्तू, हैल्तेमश इत्यादि उसके सामन्त थे। प्रूसिया के फ्रेडरिक की भाँति उसने असीरिया को साम्राज्य-वाद की नीति से सुशोभित किया। परन्तु इन कार्यों से जनता की क्रियात्मक शक्ति को विशेष आघात पहुँचा तथा असीरियन सभ्यता पूर्ण रूप से सैनिक-सभ्यता ही रह गई। अपने अंतिम वर्षों में वह भी रोम के नीरो की भाँति आततायी एवं कामी हो गया था। अन्ततः एक शेर का शिकार करते हुए मार डाला गया।

उसके बाद का असीरियन इतिहास अन्धकारमय है। केवल कुछ नाम मिलते हैं जो नगण्य हैं।

सैनिक शक्ति—इस समाजवादी नीति की रक्षा के लिए सेना का विशेष महत्व था। राज्य को एक सैनिक मशीन कहा जा सकता है। सैनिक अधिकारी ही राज्य के सबसे अधिक प्रतिष्ठित लोग थे। वे विजित देशों को स्वच्छन्दता-पूर्वक लूटते थे और इसके अतिरिक्त विजय के बाद उन्हें पुरस्कार-स्वरूप जागीरें

---

१. "He was the empire of the justest and kindliest in its half barbarous history." —Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
दी जाती थीं। सैनिक अस्त्र-शस्त्रों में असीरिया वाले सबसे बढ़े-चढ़े थे। लोहे की तलवार, भारी धनुष, लम्बे भाले, ढाल तथा धातु-निर्मित वक्षत्राण उनके प्रमुख हथियारों में थे। किन्तु ये अस्त्र-शस्त्र उनकी विजय के एकमात्र साधन न थे। अपनी प्रचण्ड हिंसा, क्रूरता से वे शत्रु पर आतंक स्थापित कर देते थे। उनकी पाशविक क्रूरता सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं और आश्चर्य तो यह है कि उन्हें अपनी पाशविकता पर गर्व था। वे उसे वीरता समझते थे। विजित सैनिकों पर वे अकथनीय अत्याचार करते थे। जीते जी खाल खींच ली जाती थी; जला दिया जाता था; नाक, कान और अन्य गुप्त इन्द्रियों से हीन कर पिंजड़े में बन्द कर नगरों में घुमाया जाता था जिससे अविजित नगर भी आतंकित होकर आत्म-समर्पण कर दें। क्रूरता करना एक भयंकर बात है किन्तु क्रूरता में आनन्द लेना उससे भी भयंकर है। असीरिया वालों ने क्रूरता का ताण्डव नृत्य किया था समग्र असीरियन इतिहास रक्त से रंजित है। इस नृशंसता का परिज्ञान हमें उन्हीं असीरिया वालों के लेखों से ही होता है। एक लेख में असुर बेनीपाल वर्णन करता है "मेरा युद्ध रथ पशुओं और मनुष्यों को कुचलता चला जाता है....मैं जिन लोगों को जीवित पकड़ता हूँ उनका हाथ काट डालता हूँ।" चित्रों और मूर्तियों से भी उनकी नृशंसता के प्रमाण मिलते हैं। यही कारण है कि प्राचीन विश्व में असीरिया घृणित थे। यही कारण है कि उनका पतन भी इतनी शीघ्रता से हुआ। विनाश तो आवश्यम्भावी था किन्तु सौ वर्षों के भीतर ही असीरियन शासन-सूर्य अपनी पूर्ण प्रचण्डता के साथ तप कर सदैव के लिए अस्त हो गया। असीरिया के शत्रुओं ने पूर्ण प्रतिशोध लिया। सम्पूर्ण देश वीरान बना दिया गया।

राजनीतिक अवस्था—इतनी कठोरता के रहते हुए भी राज्य में शान्ति की स्थापना उनकी कुशलता थी। राजा निरंकुश तो होता था किन्तु वह परम्परागत नियमों और रीतियों का आदर करता था। पुरोहित भी आंशिक नियन्त्रण रखते थे। शासन की इकाई परवाती थी जिस पर गवर्नर शासन करते थे। प्रान्तीय स्वतन्त्रता के साथ केन्द्रीय कठोरता का समन्वय था। डाक-व्यवस्था से सम्राट् दूरस्थ प्रान्तों से सम्पर्क बनाये रखता था। असीरियन डाक-व्यवस्था का

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुकरण बाद में फारस वालों ने किया।

न्याय व्यवस्था—असीरिया वालों ने बैबिलोनिया की कानूनी व्यवस्था को उधार लिया और लिया तो किस मात्रा तक—यह विवादास्पद है किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि हम्मूराबी के कोड की कई बातें असीरिया की कानून व्यवस्था में नहीं मिलतीं। प्रतिशोध की भावना पर आधारित कानून असीरिया में नहीं थे और न तो वर्ग वैभिन्य ही। असीरिया के न्यायालय के सम्मुख सभी समान थे। मुकदमे को सीधे न्यायालय पहुँचाया जाता था। पंचों में निर्णय का प्रयास नहीं किया जाता था। शपथ खाये हुए साक्षियों का भी महत्व था; साक्ष्य के झूठा सिद्ध होने पर साक्षी की जिह्वा काट ली जाती थी। इससे वहाँ के न्याय-विधान की कठोरता का अनुमान लगाया जा सकता है। धिक्कारना, आर्थिक दण्ड, कोड़े लगाने, अंग-भंग करने, जीते जी चमड़ा निकालने और मृत्यु दण्ड के रूप में दण्ड दिए जाते थे। दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मुकदमों में राजा से अपील की जा सकती थी। अभी हाल में लिखे हुए पत्रों से ज्ञात हुआ है कि मुकदमे लड़ने वाले लोगों का राजा पर पूरा विश्वास रहता था।

आर्थिक अवस्था—सैनिक अभियानों के बाहुल्य से असीरिया के आर्थिक जीवन को बहुत आघात पहुँचा। असीरिया और बैबिलोनिया के आर्थिक जीवन में बहुत कम अन्तर था। कृषि को प्रमुख स्थान प्राप्त होने पर भी बैबिलोनिया की सभ्यता को व्यापार प्रधान कहा जा सकता है जबकि असीरिया की सभ्यता को कृषि-प्रधान। बैबिलोनिया का समृद्ध नागरिक पहले व्यापारी था तब कुछ और जब कि असीरिया का समृद्ध नागरिक पहले कृषक था तब कुछ और। इसका मुख्य कारण यह था कि असीरिया निवासी व्यापार को घृणा की दृष्टि से देखते थे। निनवे अधिक उत्तर में स्थित था तथा वहाँ के लोग व्यापार में रुचि भी नहीं रखते थे, इसलिये वह एक विशाल व्यापारिक केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित न हो सका फिर भी असीरिया के वीर शासक जितना वैभव विदेशों से लूट पाट कर लाए थे उसके बल पर उद्योग-धन्धों की काफी उन्नति हुई। धातु खानों से निकाली जाती थी और बाहर से भी मँगाई जाती थी। लगभग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७०० ई० पू० में अस्त्र-शस्त्र ताम्र के स्थान पर लोहे के बनने लगे थे। धातु को ढाल कर वस्तुओं को बनाया जाता था। सूती और ऊनी कपड़ों को रँगने की कला भी उन्हें ज्ञात थी। असीरिया का गृह आवश्यकता की सभी वस्तुओं से उसी प्रकार परिपूर्ण था जिस प्रकार मध्यकालीन योरोप का एक साधारण गृह। राज्य की ओर से सुविधाएँ प्राप्त थीं। सेनाकेरिब के शासन काल में निनवे नगर में ३० मील दूर से जल आने का प्रबन्ध था। जैतून, अंगूर, लहसुन, प्याज, मूली मुख्य उपजों में थी। केवल अभिजात वर्ग मांस का प्रयोग करता था अन्यथा यह युद्ध-प्रिय राष्ट्र बहुत कुछ अंशों में शाकाहारी था। केवल मछली अपवाद-स्वरूप थी। सेनाकेरिब के एक वाक्य से ज्ञात होता है कि कपास की भी उपज होती थी जिसको कदाचित् उन्होंने भारत से सीखा था। उद्योग और वाणिज्य निजी बैंक चलाने वाले करते थे तथा २५% पर जनता को ऋण देते थे। चाँदी, सोना, ताँबा, सीसा, सिक्के के काम में आता था। सेनाकेरिब ने चाँदी के आधे शेकेल के सिक्के चलाए थे। सरकारी मुद्रा का यह प्राचीनतम उदाहरण है।

सामाजिक अवस्था—असीरिया के समाज में पाँच श्रेणियाँ थीं—अभिजातवर्ग, कारीगर और व्यापारी, जागीरों में लगे हुए दास तथा युद्ध में पकड़े गये एवं ऋण न चुकाने के कारण बनाए गए गुलाम। असीरिया एक सैनिक राज्य था, अतः वहाँ जनसंख्या की वृद्धि आवश्यक थी। गर्भ-पात करने वाली स्त्री को मृत्यु दण्ड दिया जाता था। स्त्रियों की दशा बेबिलोनियन समाज की स्त्रियों की दशा से हीन थी। इस कानून से कि स्त्रियाँ अपने पति को पीटतीं उन्हें कठोर दंड मिलता था। यह ज्ञात होता है कि जो स्त्रियाँ अपने पति को पीटतीं भी थीं अन्यथा इस कानून की आवश्यकता ही क्या? यद्यपि पुरुष अनेक रखेलियों को रखता था तथापि स्त्रियों से पूर्ण सतीत्व की आशा की जाती थी। वेश्यावृत्ति को आवश्यक समझा जाता था और राज्य की ओर से इसको प्रोत्साहन मिलता था राजाओं के अंतःपुर में अनेक स्त्रियाँ थीं जो विलास की सामग्री समझी जाती थीं। कन्याएँ खरीदी जाती थीं और प्रायः पत्नी अपने माता-पिता के साथ ही रहती थी जहाँ उसका पति उससे मिलने

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाया करता था। विवाहित स्त्रियाँ सार्वजनिक स्थानों पर बिना मुख ढके नहीं आ सकती थीं। प्रोफेसर ओल्मेस्टेड (Olmstead) के अनुसार परदे की प्रथा यहीं से आरम्भ हुई। जीवन के प्रत्येक विभाग में पुरुषों का बोलबाला था और प्रत्येक पग पर इतनी कठोरता थी कि वह सदा अत्याचार की सीमा को स्पर्श सी करती प्रतीत होती है। समाज में गुलामों पर जो अकथनीय अत्याचार ढाये जाते थे उनका वर्णन पहले किया जा चुका है।

धर्म—असीरिया का धर्म उन लोगों की हिंसावृत्ति एव नृशंसता को किसी मात्रा में कम न कर सका। बैबिलोनिया की अपेक्षा असीरिया की सरकार पर धर्म का कम प्रभाव न था और यहाँ धर्म राजा की अंगुलियों पर नाचता था। राष्ट्रीय देव अशुर (Ashur) था जो कि अपने शत्रुओं पर कभी दया नहीं दिखलाता। लोगों का विश्वास था कि जितनी अधिक हत्या उस देव के सम्मुख होगी उतना ही अधिक सन्तुष्ट होगा। अन्य देवता भी पूजे जाते थे जिनको जादू-टोने से प्रसन्न करने का प्रयास किया जाता था। पैशाचिक शक्ति और राक्षसों में भी उनका विश्वास था जिनको पुरोहित वर्ग मंत्र की शक्ति से दूर भगा सकता था।

असीरियावासियों का विश्वास था कि मृत्युपरान्त आत्मा Narga (नारगा) Alat (अलात) में प्रवेश करती है। अलात नामक राक्षसी का मुख सिंहवत था। वही प्रहरी का कार्य करती है। आत्मा की परीक्षा अन्धकार में होती थी और आत्मा को कलंकित पाने पर घोर यातना दी जाती थी। स्वर्गीय जल की एक बूंद भी मुक्ति के लिये पर्याप्त थी किन्तु वह जल दुर्लभ था।

विधान—यह स्पष्ट है कि असीरिया ऐसे देश के बर्बर लोगों का मानसिक स्तर बहुत उच्च नहीं हो सकता। तथापि सैनिक राज्य की अपनी कुछ समस्याएँ होती हैं जिनको सुलझाना अनिवार्य हो जाता है। युद्ध की कला में उन्होंने अभिनव अभिरुचि प्रदर्शित की थी, अतः इस कला में उन्होंने अभूतपूर्व उन्नति की। खगोल विद्या में कोई उन्नति नहीं हुई। वृत्त को उन्होंने ३६० अंशों में विभक्त किया था और अक्षांश तथा देशान्तर का भी शायद उन्हें ज्ञान था। ५ नक्षत्रों को उन्होंने संज्ञा प्रदान की और ग्रहण को भी मालूम कर लेते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सैनिकों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए चिकित्सा शास्त्र में भी कुछ सफलता प्राप्त की थी। ५०० औषधियों की सूची तैयार की गई थी और कई प्रकार के रोगों के कारणों की विवेचना की गई थी यद्यपि जादू-टोने से रोग भगाने की प्रथा प्रचलित थी।

कला—कला के क्षेत्र में असीरिया वालों ने बैबिलोनिया वालों को मात कर दिया और सुमेरिया वालों की कला की तुलना की। स्थापत्य कला विशेष रूपेण सराहनीय है। यह कला सजीव थी, बैबिलोनियन स्थापत्य कला के समान निर्जीव नहीं। विषय सैनिक जीवन से लिया जाता था। रिलीफों में उनका अंकन पूर्णता को प्राप्त करता हुआ-सा प्रतीत होता है। पशुओं की आकृतियों के अंकन में वे अधिक सफल रहे। मानव आकृति अपेक्षाकृत भद्दी है। इसमें विविधता और व्यञ्जना का अभाव खटकता है। पशु जगत् के अंकन में यह कमी नहीं है। पशुओं की आकृतियों में क्रिया और भाव का ओज स्पष्ट परिलक्षित होता है। अश्वों और सिंहों के चित्रण में विशेष सफलता मिली थी। गधे, बकरे, कुत्ते हिरण और पक्षी भी समान दक्षता से चित्रित किये जाते थे। खोर्साबाद के रिलीफों में सगनि द्वितीय के मांसल अश्व, सेनाकेरिब के प्रासाद में आहत सिंहनी और विश्राम लेती हुई सिंहनी आदि आज भी कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। असीरिया के ये चित्रण रूप और आचरण के राष्ट्रीय आदर्श को अभिव्यक्त करते हैं। वहाँ की वास्तु कला उतनी प्रशंसनीय नहीं। असीरिया के प्रासाद और मन्दिर पत्थर के बने होते थे। मेहराबों का प्रयोग किया गया है। स्तम्भों का प्रयोग तो किया गया है, किन्तु विशेष सफलता नहीं मिली। असीरिया वालों का कदाचित् यह विचार था कि जो वस्तु जितनी ही विशाल होगी उतनी ही सुन्दर भी और यही विशालता उनकी वास्तु कला का प्रमुख दोष था क्योंकि विशालता से दर्शक सहम भले ही जावें किन्तु सौन्दर्याभिभूत कभी भी नहीं होता।

पतन—असुरबेनीपाल की समाप्ति के साथ ही विशाल असीरियन साम्राज्य के वैभव की भी इतिश्री हो गई। युद्धों में वीर पुरुष मृत्यु को प्राप्त होते गए और कायर पुरुष अवशेष रहे। विदेशी दासों के आगमन से देश की एकता नष्ट हो गई। बैबिलोनिया और मीडीज के लोगों ने नेबोपोलेसर (Nobopolassar)

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और सेक्सरीज (Cycxares) के नेतृत्व में अद्भुत शीघ्रता और सुगमता से असीरिया को पराभूत किया और उग्र प्रतिशोध लिया। निनवे को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।। विलडूरैण्ट का कथन सत्य है कि एक आघात से असीरिया इतिहास से विलुप्त हो गया। कतिपय अस्त्रों, युद्धकला, आयोनिक स्तम्भों और फ़ारस, मेसोडोनिया तथा रोम को राजनैतिक उत्तराधिकार के रूप में मिलने वाली प्रान्तीय शासन-व्यवस्था के अतिरिक्त असीरिया का अन्त हो गया। असीरिया के नाश पर लोगों को आश्चर्य अधिक हुआ, सुख उससे भी अधिक और दुःख किञ्चित मात्र भी नहीं।

४—चैल्डिया की सभ्यता

चैल्डिया का उत्कर्ष—चैल्डिया की सभ्यता मैसोपोटैमियन सभ्यता का अन्तिम चरण है। फारस की खाड़ी से आए हुए काल्डी लोगों ने इस सभ्यता की स्थापना में प्रमुख बल प्रदान किया अतः इसे चैल्डिया की सभ्यता कहते हैं। इस वंश में सबसे प्रतिभाशाली शासक नेबू केडेजार हुआ। उसने अपने राज्य की सीमा जेरूसेलम तक बढ़ाई। हजारों यहूदी बन्दी किए गए जिनकी चर्चा बाइबिल में आती हैं। इस पराक्रमी शासक की मृत्यु के पश्चात् शक्ति कम होने लगी और लगभग ५३८ ई० पू० में बैबिलोनिया पर ईरानियों ने अधिकार कर लिया। चैल्डिया की सभ्यता बैबिलोनिया की सभ्यता को पुनः स्थापित करने का एक लघु प्रयास था, अतः बर्न्स इसे चैल्डियन पुनर्जागृति की संज्ञा देता है।

प्राचीन बैबिलोनियन न्यायशास्त्र और साहित्य का पुनरावर्तन किया गया। प्राचीन सरकारी पद्धति और वाणिज्य-व्यापार बहुत आर्थिक ढाँचे को पुनः स्थापित किया गया। किन्तु धर्म के क्षेत्र में प्राचीन धर्म पुनः प्रतिष्ठित न हो सका।

धर्म—जिस धर्म को चैल्डिया वालों ने अपनाया वह तारों पर आधारित था। अब देवताओं में मानवीय आरोपण नहीं किए गए। वे मानवीय दुर्गुणों से उच्चतर माने जाने लगे। वे अब सर्वशक्तिमान सत्ता के रूप में पूजे जाने लगे। नक्षत्रों के साथ उनका समीकरण हो गया। देवों की महिमा अजेय हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो गई। प्राकृतिक रहस्यों के उद्भेदन में असमर्थ चैल्डिया के निवासियों ने जीवन के प्रति नैराश्यपूर्ण दृष्टिकोण ही रखा और पूर्णतः भाग्यवादी हो गए। भविष्य के जीवन में उनकी कोई रुचि न थी। इतिहास में कदाचित् प्रथम बार धर्म ने आत्म-हीनता का पाठ पढ़ाया। मनुष्य नख से शिखा तक भाग्य की कठिन शृङ्खलाओं में आबद्ध समझा जाने लगा। चैल्डिया के स्तोत्रों और प्रार्थनाओं में इस बन्दीपन का भाव प्रकट होता है।

किन्तु यह कुछ आश्चर्य का विषय है कि इतने नैराश्यपूर्ण धर्म ने भी उनकी नैतिकता को बहुत हीन नहीं बनाया। शारीरिक यातना वाली तपस्याओं में उनका विश्वास कम था। स्पष्टतः इसका प्रमाण मिलता है कि मनुष्य चाहे जितना प्रयत्न करे पापों से भी बच नहीं सकता। यत्र-तत्र स्तुतियों में दया, क्षमा, शुद्धता के आत्मिक गुणों के रूप में प्रशंसा की गई है। किन्तु दीर्घायु; सन्तान और विलासी जीवन को लक्ष्य में रखकर वे प्रार्थना से प्रवृत्त होते थे।

विज्ञान, साहित्य और कला—यद्यपि चैल्डिया वालों की गति विज्ञान में खगोल विद्या तक ही सीमित है तथापि वे मैसोपोटैमिया के समय इतिहास में सबसे निपुण और सक्षम वैज्ञानिक थे। उन्होंने सप्ताह को सात दिनों में विभक्त किया और दिन को बारह घंटों में जब कि एक घंटे में १२० मिनट होते थे। ग्रहणों के बारे में उनका ज्ञान प्रायः पूर्णता को प्राप्त हो गया था नबू (Nabu Rimanu) और किडिन् (Kidinnu) दो ज्योतिर्विदों के नाम इतिहास में अमर हैं। पहले ने २६ मिनट के भीतर वर्ष के ठीक अवधि की गणना की, दूसरे ने अन्वेषण करके सिद्ध कर दिया कि पृथ्वी की धुरी में वार्षिक परिवर्तन होता है। इस विज्ञान की उन्नति में धर्म की प्रेरणा निहित थी क्योंकि तारों की गति पता हो जाने पर, उनका ऐसा विश्वास था, मानव-भाग्य को जाना जा सकता था।

अन्य क्षेत्रों में चैल्डिया की कोई विशेष देन नहीं है। वे औषधिशास्त्र को उसके आगे न बढ़ा सके जहाँ तक इसे असीरिया वालों ने पहुँचा दिया था। आकाश विद्या के अतिरिक्त विज्ञान की अन्य शाखाओं में भी वे कोई विशेष उन्नति न कर सके। कला और साहित्य में मौलिकता का दर्शन नहीं होता। यद्यपि प्राचीन बैबिलोनियन साहित्य की प्रभूत मात्रा में आवृत्ति की गई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ५

सिन्धु नदी की घाटी की सभ्यता

उन्नीसवीं शदी के मध्य में पाश्चात्य विद्वानों की यह गलत धारणा थी कि भारतवर्ष में सभ्यता का सर्वप्रथम उदय सिकन्दर महान के आक्रमण के साथ हुआ। उसके पूर्व भारतीय लोग असभ्य थे। परन्तु बीसवीं शदी के प्रारंभिक वर्षों में सर जान मार्शल, राखालदास बनर्जी एवं दयाराम साहनी आदि के अथक प्रयत्नों में उत्तर-पश्चिम भारत में (जो अब पाकिस्तान में हैं) सिन्धु नदी के किनारे एक विकसित कांस्य-कालीन सभ्यता की खोज किया जिसमें न केवल भारतीय प्राचीन इतिहास वरन् विश्व के प्राचीन इतिहास में एक क्रान्ति पैदा कर दी। इसके प्राथमिक केन्द्र हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों हैं जो एक दूसरे से लगभग ३२० मील की दूरी पर स्थित हैं। इसके विस्तार लगभग ८४,००० वर्ग मील के क्षेत्र में था जिसके अनेकों केन्द्र पश्चिम में कराची से लेकर पूर्व में कौशाम्बी (प्रयाग) तक, तथा उत्तर में रूपर (अम्बाला) से लेकर दक्षिण में गुजरात तक विस्तृत हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि इतनी विशालता के बावजूद भी उनमें सभी सभ्यता के लक्षण वर्तमान हैं। इस प्रकार यह प्राचीन ऐतिहासिक रोम तथा मौर्यन सभ्यता को भी मात कर देती है।

सभ्यता का विस्तार—यह सभ्यता सिन्धु नदी की घाटी में ही सीमित न थी। वरन् भारतवर्ष के पश्चिमी एवं उत्तर-पश्चिमीय प्रदेशों तक विस्तृत थी। हड़प्पा और मोहनजोदड़ों इस सुविशाल सभ्यता-साम्राज्य के दो प्रमुख केन्द्र थे। पंजाब में होने के कारण हड़प्पा उत्तरीय केन्द्र और सिन्ध में होने के कारण मोहेनजोदड़ो दक्षिणीय केन्द्र के रूप में स्थित थे। अंन्य केन्द्रों में चहुँदड़ो, अमरी, लोहुमजोदड़ो, अली मुरादादि विशेष उल्लेखनीय हैं। पूर्व में इस सभ्यता का विस्तार सतलज नदी से तट पर स्थित सूपर तक और दक्षिण-पूर्व में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काठियावाड़ के रंगपुर तक था। यही नहीं, इस सभ्यता के अनेक चिह्न सरस्वती और दृषद्वती की घाटियों में भी पाये गये हैं। पश्चिम में बलूचिस्तान तक इसका प्रसार था। उत्तरी बलूचिस्तान में दबारकोट, पेरियानों, घुण्डई और दक्षिणी बलूचिस्तान में कुल्ली और मेही सभ्यता-केन्द्र थे। इस प्रकार सिन्धु घाटी की सभ्यता के अन्तर्गत शिमला पहाड़ियों के अधोवर्ती नगर सूपर से लेकर अरब सागर के निकटस्थ सुत्कगेण्डोर तक का प्रदेश और उत्तर-पश्चिम में दरबारकोट से लेकर दक्षिणपूर्व में रंगपुर तक के प्रदेश आते हैं। इस विशाल प्रदेश में आधुनिक उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्त पंजाब, सिन्धु, पाकिस्तान, काठियावाड़ के अधिकांश, गंगा-घाटी का उत्तरी भाग, तथा समस्त राजस्थान सम्मिलित थे।

सामान्यतया इस सम्पूर्ण विशाल प्रदेश में एक अद्भुत सांस्कृतिक एकरूपता दृष्टिगत होती है। एक लिपि, एक निर्माण-योजना, एक तौल और एक-सी मुहरें आदि देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण प्रदेश एक संयुक्त राज्य था जो एक शासन-व्यवस्था और संस्कृति-सभ्यता से आबद्ध था।

जाति—यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इस सुविशाल एवं सुविकसित सिन्धु सभ्यता के जन्मदाता किस जाति के लोग थे। कुछ विद्वानों ने इनकी आर्य जातीयता के मत का प्रतिपादन किया है। इनका विश्वास है कि सिन्धु-सभ्यता और ऋग्वैदिक सभ्यता दोनों के ही जन्मदाता आर्य थे। सर जान मार्शल ने इस मत का खण्डन करते हुए निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये हैं—

(१) ऋग्वैदिक आर्य-सभ्यता ग्राम्य एवं कृषि-प्रधान सभ्यता थी। परन्तु इसके विरुद्ध सिन्धु-सभ्यता नागरीय एवं व्यापार प्रधान थी।

(२) आर्य प्रारम्भ में सोने और ताँबे का तथा कालान्तर में चाँदी, लोहे और काँसे का प्रयोग करते थे। परन्तु सिन्धु-निवासी प्रमुखतया पाषाण का प्रयोग करते थे। धातुओं में चाँदी का प्रयोग सोने की अपेक्षा अधिक था। परन्तु लोहे से वे अपरिचित थे।

(३) आर्य कवच और शिरस्त्राण धारण करते थे। पर सिन्धु-निवासी इन रक्षा-उपकरणों से अनभिज्ञ थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(४) मांसाहारी होते हुए भी आर्यों को मछली-मांस से अरुचि थी। परन्तु सिन्धु-निवासियों का यह एक अति प्रिय खाद्य था।

(५) आर्यों का प्रमुख पशु घोड़ा था। इसी की सहायता से उन्होंने अनेक जातियों को पराजित किया था। परन्तु सिन्धु-निवासी इस पशु से अपरिचित थे। उनके प्रदेश में घोड़े के अस्तित्व के जो एक-आध साक्ष्य मिले हैं उनसे एकमात्र यही सिद्ध होता है कि किसी समय सिन्धु-व्यापारियों के माध्यम के द्वारा यह पशु कदाचित् उस प्रदेश में पहुँच गया हो परन्तु यह अपवाद स्वरूप ही है।

(६) आर्य व्याघ्र से अपरिचित थे। हाथी का उल्लेख भी वेदों में बहुत कम आता है। परन्तु इन दोनों पशुओं से सिन्धु-निवासी भली-भाँति परिचित थे।

(७) आर्य गाय को पवित्र एवं आदरणीय समझते थे। परन्तु सिन्धु-निवासियों का सबसे अधिक महत्वपूर्ण पशु बैल था।

(८) यद्यपि वैदिक आर्यों ने अपने देवी-देवताओं में मानवी गुणों का आरोपण करना प्रारम्भ कर दिया था तथापि उनमें मूर्ति-पूजा की प्रतिष्ठा न हुई थी। परन्तु सिन्धु-प्रदेश में प्राप्त अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियों और चित्रों से वहाँ के निवासियों में प्रचलित मूर्ति-पूजा का प्रमाण मिलता है।

(९) वैदिक काल में न शिवपूजा है और न मातृदेवी की प्रधानता। परन्तु ये दोनों विशेषतायें सिन्धु-सभ्यता में दृष्टिगत होती हैं।

(१०) वेदों में अग्नि-प्रतिष्ठा है। प्रत्येक आर्य के गृह में अग्नि-कुंड का होना आवश्यक था। परन्तु सिन्धु-सभ्यता में अग्नि का कोई विशेष महत्व नहीं।

(११) आर्य लिंग-पूजा के विरोधी थे। वेद में अनार्य-पूजा के रूप में इसकी निन्दा की गई है। परन्तु सिन्धु-प्रदेश में यह पूजा अति लोक-प्रिय प्रतीत होती है।

डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप प्रभृति विद्वान् वैदिक सभ्यता को सिन्धु-सभ्यता से अधिक प्राचीन मानते हैं और यह सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि नाग-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रीय एवं व्यापार प्रधान सिन्धु-सभ्यता ग्राम्य एवं कृषि-प्रधान वैदिक सभ्यता का ही विकसित रूप है। इस मत को ग्रहण करने में निम्नलिखित आपत्तियाँ हैं—

(१) यह नितान्त अस्वाभाविक प्रतीत होता है कि वैदिक आर्यों ने धातु-प्रयोग करने के पश्चात् कालान्तर में (सिन्धु-सभ्यता के अन्तर्गत) पुनः पाषाण-प्रयोग प्रारम्भ किया। संसार में मनुष्य का विकास-क्रम पाषाण-प्रयोग से धातु-प्रयोग की ओर रहा है, न कि इसके विपरीत। पाषाण-प्रयोग की प्रधानता से स्पष्ट होता है कि सिन्धु-सभ्यता का उदय उत्तर-पाषाण-काल के अवसान के पश्चात् हुआ होगा जिससे वह पूर्व-परम्परा (पाषाण-प्रयोग) का पूर्णरूपेण परित्याग न कर सकी। वैदिक सभ्यता उसके पश्चात् उदित हुई। तब तक धातु-प्रयोग लोक-विदित हो चुका था।

(२) यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वैदिक काल में तो आर्यों ने गो-पूजा की, परन्तु सिन्धु-सभ्यता-काल में उसका नितान्त उत्सर्ग कर दिया और आगामी काल में उसकी पुनः प्रतिष्ठा की? गो-पूजा की सक्रम प्रतिष्ठा को स्वीकार करते हुए हम यही कहेंगे कि गो-पूजा विहीन सिन्धु-सभ्यता का काल गोप्रधान वैदिक एवं अनुगामी काल से अधिक प्राचीन है।

(३) वैदिक आर्य कवच और शिरस्त्राण का प्रयोग करते थे। सिन्धु-सभ्यता के अन्तर्गत वे उसे कैसे भूल गये? यही प्रश्न अश्व के विषय में भी उठता है।

इन आपत्तियों को देखते हुए कुछ विद्वान् सिन्धु-सभ्यता को वैदिक सभ्यता से पूर्वकालीन तो मानते हैं परन्तु आर्यों को ही दोनों का जन्मदाता कहते हैं। परन्तु इस मत के विरोध में यह कहा जा सकता है कि सिन्धु-सभ्यता नागरीय एवं व्यापार-प्रधान तथा अधिक वैभवशालिनी है। अतः उसका काल ग्राम्य एवं कृषि-प्रधान सरल वैदिक सभ्यता के पश्चात् होना चाहिए था। मनुष्य के विकास का क्रम ग्राम्य जीवन से नागरीय जीवन की ओर रहता है। इन समस्त आपत्तियों को ध्यान में रखते हुए यह कहना न्याय-संगत होता कि सिन्धु-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ्यता वैदिक सभ्यता से अधिक प्राचीन है और दोनों के जन्मदाता भिन्न-भिन्न जातियों के मनुष्य थे। दोनों सभ्यताएँ, उनकी आधारभूत विशेषतायें, उनके काल तथा उनके संस्थापक भिन्न-भिन्न थे। अधिकांश विद्वानों के मतानुसार सिन्धु-सभ्यता ३२०० ई० पू० के लगभग की, जब कि वैदिक सभ्यता २५०० ई० पू०—२००० ई० पू० के लगभग की है।

परन्तु अब प्रश्न यह होता है कि सिन्धु-सभ्यता के जन्मदाता यदि आर्य जातीय नहीं थे तो आखिर किस जाति के थे। गार्डन चाइल्ड आदि विद्वानों का विश्वास है कि ये सुमेरियन थे। परन्तु इस मत के भी कोई असन्दिग्ध प्रमाण नहीं मिलते। डाक्टर बनर्जी—शास्त्री ने ऋग्वेद में वर्णित असुरों को सिन्धु-सभ्यता का विधायक बताया है और श्री आर. पी. चन्दा ने ऋग्वेद में उल्लिखित व्यापारी पणियों को।

डा० राखालदास बनर्जी का मत है कि वे द्रविड़ थे। दक्षिण भारत के द्रविण मृत्युभाण्ड, पाषाण-पात्र तथा आभूषण बहुत-कुछ सिन्धु-प्रदेशीय से हैं। पुनः उन पर अङ्कित अनेक चिह्न ,सिन्धु-लिपि के समान हैं। बलूचिस्तान में बसने वाली ब्राहुई जाति की द्रविण भाषा भी सिन्धु-निवासियों का द्रविड़ उत्पत्ति की ओर संकेत करती है। यद्यपि सिन्धु-सभ्यता के जन्मदाताओं का द्रविड़ जातीय होना अधिक स्वाभाविक प्रतीत है, तथापि जब तक सिन्धु-लिपि का हमें ज्ञान न हो जाय, तब तक निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन होगा।

उत्खनन-कार्य में प्राप्त कपालों, अस्थि-पञ्जरों और मूर्तियों से इस सभ्यता का जन्मदाता-निवासियों के विषय में कुछ ज्ञातव्य बातें प्रकट होती हैं। इस उपलब्ध सामग्री के आधार पर विदित होता है कि सिन्धु-प्रदेश में एकमात्र किसी एक जाति के मनुष्य नहीं रहते थे। वरन् इसमें भूमध्यसागरीय, प्रोटो आस्ट्रालायड (Froto Australoid), मङ्गोलियन और अल्पाइन (Alpine) जाति के मनुष्य रहते थे। इनमें भूमध्यसागरीय जातियाँ बहुसंख्या में थीं। और सिन्धु सभ्यता के विकास में कदाचित् इसी का सबसे अधिक योग था। प्रोटो-आस्ट्रालायड जाति के लोग मूल-निवासी थे जो सांस्कृतिक दृष्टि से भिन्न होने के कारण सामाजिक दृष्टि से भी निम्न थे। पिगट महोदय के अनुसार मङ्गोलीया और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिन्धु-प्रदेश की मूल-निवासिनी न थी। यह आक्रमण करने के संबंध में बाहर से आई थी। रही अल्पाइन जाति, यह भूमध्यसागरीय जाति की भाँति ही सुसंस्कृत थी। इसने भी सिन्धु-सभ्यता के विकास में पर्याप्त योग दिया होगा। परन्तु ये सम्पूर्ण निष्कर्ष पूर्णरूप से असन्दिग्ध नहीं हैं। 'अभी तक जितने कपालों की परीक्षा हुई है उनके अति अल्पसंख्यक होने के कारण हड़प्पा-निवासी के जातीय गुणों के विषय में कोई विशद् अनुमान नहीं किया जा सकता। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि सिन्धु-नगरों की जनसंख्या आशानुकूल अपने अधिकांश अनुगामी नगरों की भाँति ही सम्मिश्रित थी।[१] व्यापार-प्रधान सिन्धु-नगर में विभिन्न जातियों का आगमन, निवासी और सम्मिश्रण आश्चर्य की बात नहीं है।[२]

सिन्धु सभ्यता की तिथि—इसकी तिथि के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। जान मार्शल ने इसकी तुलना मेसोपोटामियन सभ्यता से करते हुये इसकी तिथि ३२५० से २७५० ई० पू० तक बताया था। परन्तु बाद सर मार्टिमर ह्वीलर ने इसकी तिथि का निर्धारण मुहरों के आधार पर किया। सिंधु घाटी से लगभग १२ मुहरें ऐसी थीं जिनके एक सार्गन-काल से पूर्व की सात सार्गन-कालीन एवं चार इसिन-लार्सा तथा कैसाइट काल की थीं। जैसा कि प्रामाणिक तथ्यों के आधार पर सार्गन का काल २३५० ई० पू० माना जाता है। उसका सिन्धु घाटी से काफी बढ़ा-चढ़ा सम्बन्ध रहा होगा। अतः इसकी प्रारंभिक नींव २३५० ई० पू० से कुछ पहले रही होगी तथा इसका विनाश लगभग

---

१. '..the number of skeletons analysed up to date is for too small to support any generalised estimate of the racial characters of the Harappans. All that can be said is that, as night be expected, the population of the Indus cities was as mixed as is that of most of their successors.—Wheeler.

२. 'Placed in Sind with harbours and coasts, it became the meeting ground of widely divergent types of humanity.'

—Marshall.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१६०० ई० पू० के हुआ होगा क्योंकि चार मुहरें इसी समय के आस-पास की हैं।

उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि मेसोपोटामिया से तथा अन्य पश्चिमी भागों से प्राप्त अनेकों मुहरों, कलात्मक पदार्थों तथा शैलियों से होती है जिनकी समता सिन्धु-घाटी सभ्यता से पूर्णतया की जा सकती है। अतः ह्वीलर के अनुसार सिन्धु सभ्यता लगभग २५०० ई० पू० से लेकर १५०० ई० पू० तक रही होगी। अभी तक विद्वानों में यही मत सर्वमान्य रहा है।

भौगोलिक प्रभाव—उच्चकोटि की सभ्यता के विकास में उपयुक्त भौगोलिक स्थिति अत्यधिक सहायक होती है। जैसा की पीछे कहा जा चुका है, संसार की प्राचीनतम सभ्यतायें सरिताओं के तटों पर प्रस्फुटित हुई थीं। जो सुविधायें मिस्र में नील नदी ने और मेसोपोटामियाँ में दजला-फरात नदियों ने प्रदान की थीं वही सुविधायें पश्चिमी भारत को सिन्धु नदी के उपलब्ध हुई। यही कारण है कि इस भारतीय सरिता के सुकूलों पर भी एक अति सुविस्तृत एवं सुविकसित सभ्यता—संस्कृति के शिविर स्थापित हुए थे। महीधर की सुविशाल श्रेणियों, मरुस्थल की दहकती हुई सिकता राशि एवं वारिधि की उत्ताल तरंगों से परिवृत्त सिन्धु-प्रदेश वाह्य आक्रमणों से अपेक्षाकृत सुरक्षित था। उत्खनन में सामरिक अस्त्र-शस्त्रों की नयूनता भी सिन्धु-निवासियों को प्रादेशिक सुरक्षा-शान्ति की ओर ही संकेत करती है। धन जन-रक्षा की दुश्चिन्ता से सर्वथा मुक्त होने के कारण सिन्धु-निवासियों ने अपनी साधन-शक्ति-राशि का अव्याहत प्रयोग सभ्यता के विविध अंगों के विकासार्थ ही किया। जलवायु के दृष्टिकोण से भी यह प्रदेश सुविधाजनक था। विद्वानों का कथन है कि प्राचीन काल में सिन्ध-प्रदेश वर्तमान काल की भाँति शुष्क और उष्ण न था। उस समय उसकी जलवायु समशीतोष्ण थी। जल का अभाव न था। कृषि कर्मोपयोगी विविध उपकरणों, भाण्डागारों विविध अन्नों आदि की प्राप्ति से ध्वनित होता है कि इस प्रदेश में कृषि कर्म की भी प्रचुरता थी। कृषि के लिये भूमि-उर्वरता के साथ-साथ जल वृष्टि की भी आवश्यकता होती है। उत्खनन में प्राप्त पक्की इंटों का प्रयोग, नालियों एवं बाँधों को सुव्यवस्था वह प्रमाणित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करती है कि उस समय इस प्रदेश में प्रचुर जलवृष्टि होती थी। मुहरों के ऊपर जलप्रधान प्रधान प्रदेशों के अन्य पशुओं के अङ्कन को देख कर भी यही निष्कर्ष निकलता है। व्याघ्र, हाथी आदि पशु सिन्धु-प्रदेश में तभी रह सकते थे जब वहाँ अति वृष्टि होती रही हो। ऐसी परिस्थिति में एक ओर तो सिन्धु-प्रदेश की धरा ने कञ्चन उगला और दूसरी ओर उसके अधोवर्ती महासागर ने व्यापारिक समृद्धि के द्वार उन्मुक्त कर दिये। परिणामत: देश में धन-धान्य का अभाव न रहा। विदेशीय सम्पर्क-सम्बन्ध ने विचारों का आदान-प्रदान किया जिससे सिन्धु-सभ्यता अधिकाधिक विशद और विशाल होती गई।

विदेशों से सम्बन्ध—सिन्धु और सुमेर की सभ्यताओं में बहुत कुछ समता दिखाई देती है। यह समता पारस्परिक सम्पर्क से ही उत्पन्न हुई होगी। उर, किश, तेल अस्मर, तेप, गवरा और सूसा में कुछ मुहरें उपलब्ध हुई हैं जो हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की मुहरों से मिलती-जुलती हैं। इनके अतिरिक्त तेल अस्मर में हड़प्पा-प्रणाली पर निर्मित मिट्टी और हड्डी की बनी हुई कुछ अन्य सामग्री भी प्राप्त हुई है। इनसे सिन्धु-प्रदेश और सुमेर के बीच सम्बन्ध की स्थापना होती है। अब प्रश्न यह होता है कि सुमेर-सभ्यता ने सिन्धु-सभ्यता को प्रभावित किया अथवा सिन्धु-सभ्यता ने सुमेर को। इसके उत्तर विवादग्रस्त हैं। हाल महोदय का मत है कि सभ्यता के क्षेत्र में सुमेर भारत का ऋणी है। परन्तु इसके विरुद्ध गोर्डन चाइल्ड और मैक्डनाल्ड महोदयों का विश्वास है कि सिन्धु-सभ्यता सुमेरिया की देन है। मोहनजोदड़ों में उत्खनन् से एक ताँबे की कुल्हाड़ी उपलब्ध हुई है, जो पूर्व मिनोआकालीन क्रीट और ट्राय द्वितीय की कुल्हाड़ियों के समान है। इस आधार पर कतिपय विद्वान सिन्धु-प्रदेश और ईजियन संसार के बीच सम्बन्ध का अनुमान करते हैं। इटली में उत्खनन में एक विशेष प्रकार की अति प्राचीन ताँब्रे की पिन उपलब्ध हुई है जो आकार-प्रकार में सिन्धु-प्रदेश की पिनों के समान प्रतीत होती है। इस आधार पर भी उपर्युक्त सम्बन्ध की पुष्टि की जा सकती है। इसी प्रकार पुरातत्व-अन्वेषण ने मिस्र और सिन्धु-प्रदेश की कतिपय वस्तुओं में अनुरूपता देखी है। ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धु-प्रदेश के व्यापारियों ने मेसोपोटामिया, ईजियन संसार और मिस्र देशों के साथ सम्बन्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थापित किया था। यह सम्बन्ध व्यापारिक रहा होगा। परन्तु इसका सांस्कृतिक-प्रभाव अनिवार्य था। उपर्युक्त सामग्री से स्पष्ट होता है कि यह सम्बन्ध २३०० ई० पू० २००० ई० पू० के बीच अवश्य रहा होगा।[१]

सिन्धु-सभ्यता की कुछ आधारभूत विशेषतायें हैं जो सम्पूर्ण रूप में उसे अन्य सभ्यताओं से पृथक् कर देती हैं—

आधारभूत विशेषतायें—(१) सिधु-सभ्यता तृतीय काँस्यकाल (Bronze Age) की सभ्यता है। इसमें काँस्यकाल का चरमोत्कर्ष निहित है।

(२) यह सभ्यता नागरीय एवं व्यापार-प्रधान थी। बड़े-बड़े नगरों की स्थापना, सुव्यवस्थित भवनों, सड़कों, नालियों, स्नानागारों आदि का निर्माण विदेशीय व्यापार तथा जीवन की वैभवशालिता से इस सभ्यता के समृद्ध एवं सुविकसित रूप का परिचय मिलता है। सर जान मार्शल के शब्दों में 'यहाँ (सिन्धु प्रदेश में) साधारण नागरिक सुविधा और विलास का जिस मात्रा में उपभोग करता था उसकी तुलना समकालीन सभ्य संसार के अन्य भाग से नहीं हो सकती।'

(३) यह समष्टिवादिनी और जनतन्त्रवादिनधी प्रतीत होती है। इसमें राजाओं अथवा राजप्रासादों के अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं मिलता। विशाल सभाभवन एवं स्नानागारों के ध्वंसावशेष मनुष्यों के सामूहिक जीवन की सूचना देते हैं।

(४) सिन्धु-सभ्यता के अन्तर्गत सशक्त केन्द्रीभूत शासन का अनुमान होता है जो कदाचित् हड़प्पा और मोहनजोदड़ो नामक दो सत्ता-केन्द्रों से संचालित होता था।

---

१. 'While the antecedents of the Harappa Civilisation still elude us, we can only say that in its mature form it is not likely to be earlier than about 2500 B. C. and that the only reasonably close point of contact with the West, when written records are available, in between the years 2300 and 2000 B. C.'

—Stuart Piggot.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(५) आर्थिक जीवन औद्योगिक विशिष्टीकरण (Industrial specialisation) और स्थानीयकरण (Localisation) पर आधारित था। कदाचित् प्रत्येक उद्योगी एक प्रकार का ही व्यवसाय करता था। समान व्यवसाय के अनुसरणकर्ता संगठित रूप से प्रायः एक मोहल्ले में ही रहते थे।

(६) सिन्धु-सभ्यता शान्ति प्रधान थी। उसके प्रसार-क्षेत्र में जो उत्खनन हुए हैं उनमें कवच, शिरस्त्राण, ढाल-तलवार आदि सामरिक उपकरण नहीं मिले। इस अभाव से प्रतीत होता है कि सिन्धु-निवासियों को युद्ध कर्मों से अनुराग न था। भाला, कुल्हाड़ी, धनुष-बाण आदि जो कुछ अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध हुए हैं वे कदाचित् आखेट और आत्म-रक्षा के हेतु ही प्रयुक्त होते थे।

(७) सिन्धु-निवासियों का धर्म द्विदेवतामूलक था। उनकी कल्पना ने नारी और पुरुष की दो चरम शक्तियों को शक्ति और शंकर की भाँति देवी-देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया था।

(८) लिपि-ज्ञान ने विचार-प्रकाशन के माध्यम की स्थापना करते हुए सिन्धु-सभ्यता के विकास में प्रचुर सहायता दी। परन्तु खेद है कि यह लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी।

नगर-योजना—हड़प्पा और मोहनजोदड़ों में जो उत्खनन हुए हैं उनसे सिन्धु-सभ्यता के विधायकों की इंजीनियरी, नगर-योजना और कला की कुशलता पर विशेष प्रकाश पड़ता है। दोनों नगरों की गढ़ियों (Citadel) का आकार समानान्तर चतुर्भुज के समान था जो उत्तर से दक्षिण लगभग ५००-४०० गज और पूर्व से पश्चिम लगभग ३००-२०० गज थीं। इनकी ऊँचाई लगभग ४० फुट थी। मोहनजोदड़ो की गढ़ी के भीतर सबसे महत्वपूर्ण वस्तु थी सार्वजनिक स्नानकुण्ड (Great Bath) इसकी माप ३९'×२३'×८' थी। इसके भीतर उतरने के निमित्त ईंटों में निर्मित सीढ़ियाँ थीं। समीप ही एक कमरे में एक कुआँ था जिससे स्नान कुण्ड में पानी भरा जाता था। स्नान कुण्ड की उत्तर-दिशा में ८ स्नानागार थे। मैकी नामक विद्वान् का मत है कि विशिष्ट धार्मिक अवसरों पर पुजारी इनमें आकर स्नान करते थे और साधारण जनता स्नान-कुण्ड में स्नान करती थी। इस विशाल स्नान-कुण्ड के उत्तर-पूर्व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
में २३० फुट लम्बे और ७८ फुट चौड़े एक भवन के ध्वंसावशेष उपलब्ध हुए हैं। कदाचित् यह किसी उच्च पदाधिकारी का निवास-गृह था। स्नान-कुण्ड के पश्चिम में जिस भवन के ध्वंसावशेष मिले हैं, वह कदाचित् अन्न-संग्रह के हेतु भाण्डागार था इसके दक्षिण की ओर कदाचित् एक सभा-भवन था। हड़प्पा की गढ़ी में भी निवास-कक्ष-भाण्डागार और चबूतरों के ध्वंसावशेष मिले हैं।

उत्खनन से सिन्धु-प्रदेश के नगरों की निर्माण-व्यवस्था स्पष्ट हो गई है। भवन साधारण कृत्रिम चबूतरों (Artficial Platforms) के ऊपर बनाये जाते थे जिससे उनमें भली-भाँति प्रकाश और शुद्ध वायु आ सके और साथ ही वे बाढ़ एवं अत्यधिक नमी से सुरक्षित रह सकें। भवन प्राय: दो मंजिलों के होते थे। ऊपर के भाग में प्राय: परिवार रहता था और नीचे के भाग में भृत्यजन। नीचे के भाग में ही, कुँआ और पाकशाला होती थी। मकान में अनेक कक्ष होते थे जो आँगन के चारों ओर निर्मित होते थे। कमरों में द्वारों और वातायनों की व्यवस्था होती थी इनकी विशेषता यह थी कि ये घर के भीतर की ओर ही खुलते थे। सार्वजनिक मार्गों की दिशा में भवनों की जो दीवारें थीं उनमें द्वार और वातायन न होते थे। परिणामत: मार्ग कभी-कभी नितान्त सूने प्रतीत होते थे। भवनों का आकार प्राय: चौकोर होता था और वे मार्गों के तटों पर पंक्ति में निर्मित होते थे। ये मकान ईंटों से बनते थे। छत पाटने के लिये लकड़ी का भी प्रयोग किया जाता था मकानों का कूड़ा एकत्र करने के निमित्त कूड़ादानों की योजना थी।

सड़कों और नालियों की सुव्यवस्था सिन्धु-निवासियों की सुव्यवस्था के उदाहरण हैं। नगर की सड़कें सीधी होती थीं। ये एक-दूसरे को समकोण पर काटती हुई अनेक स्थलों पर चौराहे बनाती थी। बड़ी-बड़ी सड़कों में छोटी-छोटी गलियाँ आकर मिल जाती थीं। प्रमुख सड़कें ६ गज से ११ गज तक चौड़ी होती थीं। इन्हीं सड़कों के दोनों तटों पर निर्मित भवनों की पक्तियाँ नगर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की सुन्दरता बढ़ाती थीं।[१] सड़कों के नीचे नालियाँ बनी रहती थीं जिनसे छोटी-छोटी नालियों के द्वारा लाया गया प्रत्येक घर का गन्दा पानी नगर के बाहर निकाल दिया जाता था। समय-समय पर राज्य की ओर से इन नालियों की सफाई की जाती थी। सड़कों और नालियों की इस योजना को देख कर हम आश्चर्य-चकित रह जाते हैं। ऐसी सुन्दर व्यवस्था १८ वीं शताब्दी तक पेरिस और लन्दन के प्रसिद्ध नगरों में भी न हुई थी। नगर की इस योजना से प्रतीत होता है कि वहाँ कोई न कोई शक्तिशाली स्थानीय सरकार अवश्य रही होगी।

आर्थिक संगठन—सिन्धु-प्रदेश में कृषि-कर्म की संतोषजनक अवस्था थी। उर्वरा भूमि होने के कारण उस प्रदेश की आवश्यकता की पूर्ति के लिये पर्याप्त अन्न उत्पन्न हो जाता था। पर्याप्त वर्षा होने के कारण इस प्रदेश के निवासियों को नहरों आदि की कृत्रिम व्यवस्था करने की आवश्यकता न थी। कम से कम उत्खनन से उनका अस्तित्व प्रकट नहीं होता। कृषि कर्म के निमित्त वे हल का प्रयोग करते थे अथवा नहीं, यह अनिश्चित है। खेतों में मटर, राई और तिल को छोड़कर प्रायः सभी अन्न उत्पन्न किये जाते थे। इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं गेहूँ और जौ। ये लोग कपास की भी खेती करते थे। कृषि-कर्म के साथ पशु-पालन भी एक महत्वपूर्ण व्यवसाय समझा जाता था। पालतू पशुओं में गाय-बैल, भेड़, सुअर, मुर्गी, ऊँट, हाथी आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त व्याघ्र, गैंड़ा भालू खरगोश आदि अन्य पशुओं से भी परिचित थे। मांसाहारी होने कारण वे अनेकानेक पशुओं का आखेट भी करते थे। पशुओं को मार कर वे अपने खेतों की रक्षा करते थे और उनके बाल, खाल और हड्डी से अन्य वस्तुयें तैयार करते

१ 'Many are well planned srtees and a magnificient system of drains, regularly cleared out, reflects the vigilance of some regular municipal government. Its authority was strong enough to secure the observance of town-planning bye-laws and the maintenance of the approved lines for streets and lanes over several recontsuctions rendered necessary by floods.

—Gordon Childe.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वे घोड़े से परिचित न थे।

कृषि-कर्म और पशुपालन के साथ-साथ सिन्धु प्रदेश में अनेक प्रकार के व्यवसाय विकसित हो चुके थे। वे सूती और ऊनी वस्त्र बनाना जानते थे। रँगरेजों की कला वस्त्र को अनेक प्रकार से रँग कर उन्हें अधिक सुन्दरता प्रदान करती थी। आभूषणानुरागी समाज ने सुनार की कला को प्रोत्साहन दिया था। सिन्धु-प्रदेश में अति सुन्दर सोने, चाँदी, ताँबे और सीसे के आभूषण बनाते थे। इनमें कंगन, चूड़ियाँ, बाजूबन्द, अगूँठियाँ, कर्णफूल, कण्ठहार और नासिका-भूषण आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। अनेक आभूषण बहुमूल्य पत्थरों के भी होते थे। इनके निर्माण में अपूर्व हस्तलाघव का प्रदर्शन हैं। 'वे बाण्ड स्ट्रीट के किसी वर्तमान जौहरी के पास से आये हुए प्रतीत होते हैं।'

धातुकर्म के साथ-साथ सिन्धु प्रदेश का काष्ठ-कर्म भी समुन्नत था। बढ़ई लकड़ी की सहायता से अनेक प्रकार की जीवनोपयोगी, वस्तुएँ एवं खिलौने बनाता था। इनमें से अधिकांश अब नष्ट हो जाने के कारण उपलब्ध नहीं होते।

सिन्धु-कुम्भकार की कला अति विकसित थी। वह चाक को प्रयोग करता था। उसकी निर्मित वस्तुओं में पात्र, भाण्ड, प्याले, तश्तरियाँ, कटोरे, पिंजड़े; दीपक, खिलौने और विविध मूर्तियाँ प्रमुख हैं। अनेक वस्तुओं पर सुन्दर पालिश और चित्रों का प्रदर्शन किया जाता था।

सिन्धु-प्रदेश का औद्योगिक जीवन अति समुन्नत था। नगर के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न व्यवसायियों की दूकानें थीं। क्रय-विक्रय की सामग्री के यातायात के निमित्त पहियेदार गाड़ियों, ऊँटों और नावों का प्रयोग किया जाता था। व्यवसायियों और व्यापारियों ने सामग्री-संग्रह के निमित्त बड़े-बड़े संग्राहालयों का निर्माण कर रखा था जिनसे उनकी समृद्धि की सूचना मिलती है। व्यावसायियों की आवश्यकता की पूर्ति के निमित्त सिन्धु-प्रदेश अनेक प्रकार के कच्चे माल का आयात करता था। काश्मीर और हिमालय-प्रदेश से देवदार, फारस से सोना, चाँदी, सीसा और टीन, राजपूताना से ताँबा, बलूचिस्तान से स्टीटाइट और अलबास्टर आदि सिन्धु-प्रदेश में आती थीं। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि क्रय-विक्रय का माध्यम क्या था। मुद्रा के प्रयोग का अनुमान सन्दिग्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
ही है। परन्तु व्यापारिक-वर्ग में तौल का प्रचलन था। सबसे अधिक प्रचलित तौल १३·६४ ग्राम की मिलती हैं। बाँट दो प्रकार के होते थे—छोटे और बड़े। छोटे बाँटों का प्रयोग प्रायः सुनार और जौहरी करते थे। बड़े बाँटों से भारी वस्तुयें तौली जाती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य बाजार की तौल के ऊपर नियन्त्रण रखता था। यही कथन भाव के विषय में भी सत्य है। मोहेन-जोदड़ो और हड़प्पा दोनों नगरों के उत्खनन में पैमाने मिले हैं। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है सिन्धु-निवासी विदेशों से भी व्यापार करते थे। उनकी बनाई हुई वस्तुयें मेसोपोटामिया के बाजारों में बिकती थीं। ऊधर सुमेरिया की कुछ कला-कृतियाँ तथा मेसोपोटामिया की प्रसाधन-सामग्री उनके देश में आयात होती थीं। अरब सागर से आने वाली मछलियाँ सिन्धु-निवासियों के भोजन का एक स्वादिष्ट अंग थीं।

सामाजिक अवस्था—उत्खनन में जो मूर्तियाँ और चित्र मिले हैं उनसे सिन्धु-निवासियों की जीवन-सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य बातों का पता चलता है। एक अलावस्टर की एक मूर्ति में एक पुरुष अधोभाग में एक धोती धारण किये हुए है। बायें कन्धे पर एक शाल है जो दाहिनी ओर कोख से नीचे आती हैं। दाहिना हाथ अनावृत है। पुरुषों के केश पीछे की ओर लटकते रहते थे। उनमें दाढ़ी रखने की प्रथा थी। स्त्री और पुरुष दोनों ही समान रूप से आभूषण पहनते थे। ये आभूषण विविध थे जो नाना प्रकार के पत्थरों और धातुओं से निर्मित किये जाते थे। समाज में शीशे का आविष्कार हो चुका था। स्त्री-पुरुष दोनों केश-प्रसाधन करते थे। हजामत बनाने के लिये अस्तुरों का प्रयोग होता था। वर्तमान नारी की भाँति सिन्धु-समाज की नारी भी सौन्दर्य-वृद्धि के लिये अनेक प्रकार के उपकरणों—काजल, पाउडर, पेण्ट आदि—का प्रयोग करती थी। मनुष्यों का जीवन शान्ति-सुखमय था। वे अपने मनोविनोद के निमित्त शतरंज और जुआ खेलते, नाच-गानों का आयोजन करते, आखेट करते और मुर्गों की तथा बैलों की लड़ाई देखते। धार्मिक एवं सामाजिक समारोहों में स्त्री और पुरुष सभी समानरूप से सम्मिलित होते थे। मातृदेवी की प्रतिष्ठा से स्पष्ट होता है कि उनके समाज में नारी सम्मान्य थी। कदाचित् नारी-समाज में पर्दे

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की प्रथा न थी। आधुनिक नारी की भाँति कदाचित् सिन्धु-प्रदेश की नारी का गौरव भी माता के रूप में अन्तर्निहित था। उसका प्रधान कर्तव्य भी शिशु-पालन रहा होगा। शिशु के बौद्धिक विकास और मनोविनोद के लिये वे खिलौनों का मूल्य समझते थे। अधिकांश खिलौने पशुओं की आकृति के होते थे। गृह-कर्मों में सूत कातना नारियों का प्रमुख आकर्षण था। समाज का भोजन गेहूँ और ज़ौ की रोटी, दाल, शाक, फल, दूध, और विविध मांस के रूप में था। मछली भी उसका प्रिय खाद्य था।

कला—उत्खनन में जो सामग्री उपलब्ध हुई है वह सिन्धु-निवासियों के कला-प्रेम का परिचय देती है। बहुसंख्यक मुहरों के ऊपर विविध पशु अतीव कुशलता के साथ उत्कीर्ण किये गये हैं। उनके अंकन में कलाकार ने अपनी यथार्थवादिता और सौन्दर्यप्रियता का सम्यक् परिचय दिया है। सर्वोत्कृष्ट मुहर अपने उच्चकोटि के निर्माताओं की कला के सुन्दरतम उदाहरण हैं जिनमें श्रेष्ठ कलात्मक योग्यता और कौशल-चातुर्य है।[१] मुहरों के अतिरिक्त कुछ मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं जिनकी कलात्मकता को देखकर यह विश्वास नहीं होता कि ये सहस्त्रों वर्षों पूर्व के मनुष्य की कृतियाँ हैं। हड़प्पा के उत्खनन में लाल पत्थर की बनी हुई एक पुरुष की मूर्ति उपलब्ध हुई है जो अपनी सरलता और भाव-शीलता के लिये अति प्रसिद्ध है। नृत्यरता नारी की एक काँस्य-मूर्ति गति और भाव से स्पन्दित है। इसकी नृत्य-मुद्रा त्रिभंगी है। नारी ताल के साथ पद-प्रक्षेप सा कर रही है।[२] एक अन्य मूर्ति नर्तक की है। उसका दक्षिण पाद पृथ्वी पर है और वामपाद ऊपर उठा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह पुरुष वास्तव में नृत्य कर रहा है। मूर्ति गतिशीलता से सजीव है।[३] खुदाई में सिन्धु-प्रदेश

---

१. 'The best of the seals are master-pieces of the engraver's art which could have been made by people really possessed of marked artistic ability and great technical skill.,

२. This figure which is cast in one piece astonishes one by the ease and naturalness of its posture.

३. The post in full of movement.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की मृएभाण्ड कला के बहुसंख्यक उदाहरण प्राप्त हुये हैं। मृएभाण्ड चाक की सहायता से निर्मित होते थे। इनमें से कुछ साधारण हैं परन्तु कुछ अनेक प्रकार के चित्रों से अलंकृत हैं। इनमें अधिकांश चित्र पशुओं के हैं जिनमें कुछ अपनी सुडौलता और सजीवता के लिये अति प्रसिद्ध हैं। सिन्धु-प्रदेश के ताबीजों के ऊपर भी पशुओं और देवताओं के चित्र हैं। इन समस्त उदाहरणों से सिन्धु-कला के पीछे एक सुदीर्घ-कालीन परम्परा का क्रमिक विकास प्रकट होता है। कुछ उदाहरण इतने कलात्मक हैं कि सर जान मार्शल के शब्दों में, उन्हें देखकर 'ईसा पूर्व चौथी शताब्दी का यूनानी भी गर्व अनुभव करता।'

धर्म—सिन्धु-प्रदेश के उत्खनन-कार्यों ने जो सामग्री उपलब्ध की है, वह वहाँ के प्राचीन निवासियों के धार्मिक जीवन पर भी प्रकाश डालती है। समीक्षा करने से स्पष्ट हो जाता है कि सिन्धु-निवासियों के धार्मिक विचार पर्याप्त रूप से विकसित हो चुके थे। अनेक अंशों में वह कालान्तर के हिन्दू-धर्म का पूर्ववाही है।

(१) द्विदेववाद—सिन्धु-निवासियों ने सृष्टिकर्ता और विश्वनियन्ता के रूप में दो शक्तियों की प्रतिष्ठा की थी—परम पुरुष की और परमा नारी की। हड़प्पा की एक मुहर में एक त्रिमुख देव की मूर्ति अङ्कित है। वह योगमुद्रा में सिंहासनस्थ है। यह देव चार पशुओं के साथ प्रदर्शित किया गया है। इसकी दाहिनी ओर एक हाथी और एक व्याघ्र है तथा बाईं ओर एक बारहसिंहा और एक भैंस है। सिंहासन के नीचे सींग वाले दो हरिण हैं। देवमूर्ति के शीश पर भी दो सींग प्रदर्शित किये गये हैं। सर जान मार्शल ने निम्नलिखित आधारों पर इस देव का समीकरण शिव के साथ किया है—

(अ) शिव त्रिकालदर्शी एवं अन्तर्यामी हैं। संसार की कोई भी वस्तु उनकी दृष्टि के समक्ष अदृश्य नहीं। महादेव की इसी अपरिमित शक्ति को प्रदर्शित करने के निमित्त सिन्धु-निवासी ने उनके त्रिमुखी की कल्पना की है।

(ब) हिन्दू-धर्म में शिव की योग साधना प्रसिद्ध है। सिन्धु निवासी ने भी उन्हें योगी-मुद्रा में प्रदर्शित किया है।

(स) शिव पशुपति हैं। हड़प्पा की इस मुहर में भी देवता पशुओं के साथ

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपस्थित हैं ।

(द) शिव त्रिशूलधारी हैं । मुहर में देवता के शीश के ऊपर जो शृङ्ग अङ्कित है उसी से कदाचित् त्रिशूल की परम्परा उद्भूत हुई ।

हड़प्पा की मुहर के अतिरिक्त अनेक छोटी-छोटी मुहरें और मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिनमें खड़ी हुई एक अर्धनग्न नारी का चित्र है । उसकी कटि में एक मेखला है और शीश के ऊपर एक विशिष्ट प्रकार का आच्छादन है । यह परमा नारी की शक्ति का प्रतीक है । मार्शल महोदय के मतानुसार यह मातृदेवी है । यह प्रकृति है—सृष्टिकारिणी शक्ति है । मातृदेवी की उपासना प्राचीन संसार में अति लोकप्रिय थी । सिन्धु-प्रदेश के समान वह मिस्र, फोनेशिया और एशिया माइनर में भी प्रचलित थी । कालान्तर में हिन्दू धर्म के अन्तर्गत इसी मातृदेवी का विकास शक्ति के रूप में हुआ ।

(२) देवताओं का मानवीयकरण—(Anthropomorphism) संसार की अन्य जातियों की भाँति सिन्धु-जाति ने भी अपने देवी-देवताओं को मनुष्य के रूप में देखा । उनमें मानवी गुणों का आरोपण कर दिया गया । यही कारण है कि मुहरों और मूर्तियों में उनके देवी-देवता मानवी आकृति के हैं । इस प्रकार का मानवीकरण देवताओं और मनुष्यों के बीच सामीप्य की स्थापना करता हुआ दैवी-शक्ति के प्रति भीति-भावना का शमन कर श्रद्धा-भक्ति की भावना उत्पन्न करते में सहायक होता है ।

(३) मूर्ति-पूजा—यद्यपि उत्खनन में मन्दिरों के अस्तित्व के साक्ष्य नहीं मिलते, परन्तु ऐसा अनुमान होता है कि सिन्धु-प्रदेश के निवासी मूर्ति-पूजा से विश्वास करते थे । इस प्रदेश में अनेक लिङ्ग-मूर्तियाँ और योनि-मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं । विद्वानों का कथन है कि सिन्धु-निवासी सृष्टिकारिणी शक्ति के रूप में इन मूर्तियों की पूजा करते थे ।

(४) अनुष्ठान—कतिपय विद्वानों का मत है कि सिन्धु-धर्म अनुष्ठान मूलक भी था । उनका कथन है कि उत्खनन में जो वृत्ताकार पाषाण-खण्ड (Ring Stones) उपलब्ध हुए हैं वे योनि मूर्तियाँ नहीं हैं वरन् लघु स्तम्भों के आधार हैं । कदाचित् ये वेदी-स्तम्भ अथवा यज्ञ-स्तम्भ थे जिनके समीप सिन्धु-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निवासी किसी प्रकार की धार्मिक क्रियायें सम्पन्न करते थे । विशाल स्नान-कुण्ड एवं तत्समीपवर्ती अनेक स्नानागारों के अस्तित्व से अनुमान किया जा सकता है कि सिन्धु-प्रदेश में समय-समय पर पावनपर्व अथवा धार्मिक समारोह भी होते थे जिनमें स्नान का विशेष महत्व समझा जाता था । इस प्रकार सिन्धु-निवासियों ने कदाचित् एक विशिष्ट प्रकार की धार्मिक रूढ़ियों एवं अनुष्ठानों का विकास कर लिया था ।

(५) अन्य विश्वास—उत्खनन में विविध मुहरें और ताबीज़ उपलब्ध हुए हैं । इनकी उपयोगिता अनिश्चित है । परन्तु बहुत सम्भव है कि इनका प्रयोग अरिष्ट-निवारण अथवा कल्याण-लाभ के निमित्त किया जाता हो । यदि यह अनुमान सत्य है तो सिन्धु-धर्म में अन्ध-विश्वासमूलक क्रियाओं के अस्तित्व का अनुमान किया जा सकता है ।

(६) पशु-पूजा—मुहरों के ऊपर पशु-अंकन तथा मिट्टी और पत्थर की पशु-मूर्तियों के निर्माण से अनुमान होता है कि सिन्धु-निवासी अनेक पशुओं को पवित्र मानते थे और उनकी पूजा करते थे । ये पशु तीन कोटियों में विभक्त किये जा सकते हैं — (१) पौराणिक पशु जो अर्ध-मानवी और अर्धपाशविक रूपों के समन्वय हैं । (२) विलक्षण पशु जो पूर्णतः पौराणिक न होते हुए भी असाधारण हैं,यथा एकशृंगी पशु (३) साधारण, क्या हाथी यथा व्याघ्र, बारहसिंहा, हरिण, भैंस आदि । किसी-किसी मूर्ति में इन पशुओं के समक्ष पूजा-सामग्री पड़ी हुई भी मिलती है ।

(७) पादप पूजा—कदाचित् पशुओं की भाँति कुछ पादप भी पवित्र समझे जाते थे । पादप-पूजा संसार में अति प्राचीन है । अतः सम्भव है कि सिन्धु-प्रदेश में भी उसका प्रचलन हो । सिन्धु-प्रदेश की अनेक मुहरों में वृक्षों का चित्रण है । एक मुहर में देवता दो वृक्ष-शाखाओं के बीच में खड़ा है और उनके समीप एक विनीत उपासक भी प्रदर्शित किया गया है । कदाचित् यह वृक्ष पीपल का है जो आज भी हिन्दू-समाज में पूजा का पात्र है ।

(८) जल-पूजा—अति प्राचीनकाल से ही हिन्दू अपनी सरिताओं को अति पवित्र समझते रहे हैं और उनकी पूजा करते रहे हैं । परन्तु सरिता-पूजा के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्पष्ट उदाहरण सिन्धु-प्रदेश के उत्खनन में उपलब्ध नहीं होते। हाँ, जल कुण्ड की उपस्थिति से कदाचित् अनुमान लगाया जा सकता है कि सिन्धु-निवासियों में जल पूजा प्रचलित थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू-धर्म की अनेक विशेषतायें सिन्धु-धर्म से भी वर्तमान थी। सर जान मार्शल के शब्दों में उनका धर्म इतनी विशेषता के साथ भारतीय है कि आजकल के प्रचलित हिन्दू धर्म से उसका भेद कठिनता से किया जा सकता है।

शव-विसर्जन—मोहनजोदड़ो के उत्खनन-कार्य में सर जान मार्शल ने शव-विर्जन की तीन प्रणालियों के साक्ष्य पाये हैं (१) **पूर्ण समाधीकरण** जिसके अन्तर्गत मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का सम्पूर्ण शव पृथ्वी के नीचे गाड़ दिया जाता था। (२) **आंशिक समाधीकरण**—जिसके अन्तर्गत शव की उन अस्थियों को एकत्र करके पृथ्वी के नीचे गाड़ दिया जाता था जो पशु-पक्षियों के द्वारा उवमुक्त शव में अवशिष्ट रह जाती थीं। (३) **दाह-कर्म**—इसके अन्तर्गक शव जला दिया जाता था। तत्तपश्चात् उसकी भस्म को समाधिस्थ कर दिया जाता था।

हड़प्पा से उत्खनन में व्हीलर ने अनेक समाधियाँ प्राप्त की थी। इन समाधियों के भीतर शवों का शीश प्रायः उत्तर दिशा की ओर रक्खा हुआ मिलता है। शवों के सथ बहुसंख्यक अस्त्र-शस्त्र, भाण्ड, आभूषणादिक भी उपलब्ध होते हैं। कदाचित् सिन्धु निवासी मृत्यु के पश्चात् आगामी जीवन में भी विश्वास करता था। सन् १९५६ में एक शव काष्ठ-निर्मित सन्दूक में समाधिस्थ किया हुआ मिला। समाधीकरण की यह रीति सुमेर में अत्यधिक प्रचलित थी।

सिन्धु सभ्यता का विनाश—अन्त में लगभग १५०० ईसा पूर्व इस उन्नत सिन्धु-सभ्यता का विनाश हो गया। कुछ विद्वानों का मत है कि इस समय के लगभग कदाचित् सिन्धु सरिता की प्रवाह-दिशा परिवर्तित हो गई अथवा उसमें भीषण आप्लावन आ गया। परिणामतः सिन्धु-प्रदेश के प्रमुख नगर निमज्जित हो गये और सिन्धु-सभ्यता सदैव के लिये जल-समाधिस्थ हो गई। कुछ विद्वानों का विचार है कि इस सभ्यता के विनाश में सिन्धु-प्रदेश के राज-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
नीतिक एवं आर्थिक विघटन का विशेष योग रहा होगा। परन्तु विनाश का सबसे प्रवल कारण बाह्य आक्रमण बताया जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपनी सभ्यता के अन्तिम चरण में सिन्धु-निवासी अरक्षा की भावना से आक्रान्त थे जैसा कि उनके नगरों के अन्तिम दुर्गीकरण से प्रतीत होता है। अनेक स्थलों पर धरातल के नीचे अस्थि-पंजर एवं विविध सामग्री भस्मराशि से आच्छन्न है। अन्य स्थलों पर बहुसंख्यक शव समाधिस्थ हैं। ये समस्त साक्ष्य कदाचित् सामूहिक बध और अग्नि-दाह के प्रमाण हैं। कहीं-कहीं पर सिन्धु-प्रदेश के सभ्यता-केन्द्रों के ध्वंसों के ऊपर विजाति के पुनर्वास के संकेत मिलते हैं। परन्तु अब प्रश्न यह उठता है कि वे आक्रमणकारी कौन थे। कुछ विद्वान इन्हें आर्य विजेता समझते हैं। उनका कथन है कि ऋग्वेद में वर्णित दस्यु जाति का तात्पर्य सिन्धु-निवासियों से है। इन आर्यों ने अपने अधिक उत्तम, सामरिक साधनों—अस्त्र-शस्त्र अश्व की सहायता से सिन्धु प्रदेश के निवासियों को पराजित किया, उनके दुर्गों को विध्वंस किया और उनकी सभ्यता का उन्मूलन कर आर्य-सभ्यता की स्थापना की। परन्तु ये निष्कर्ष अभी तक असन्दिग्ध रूप से ग्रहण नहीं किये जा सके हैं।

सिन्धु सभ्यता का भारतीय सभ्यता को देन—अपने पूर्ण विकसित रूप में सिन्धु सभ्यता आज भारती हिन्दू सभ्यता को जन्मदात्री कही जाती है। यद्यपि यह विशेषण संदिग्धपूर्ण है परन्तु फिर भी इसकी सत्यता काफी हद तक उचित सिद्ध की जा सकती है। ह्वीलर[1] ने ठीक ही लिखा था कि सिन्धु सभ्यता यद्यपि भारतीय सभ्यता को सांसारिक जगत में न प्रभावित कर सकी परन्तु आध्यात्मिक जगत में उसकी छाप विशिष्ट रूप से स्पष्ट है। इस कथन की पुष्टि में हम कह सकते हैं कि सिन्धु सभ्यता न केवल आध्यात्मिक वरन् सांसारिक क्षेत्र में भी भारतीय सभ्यता की पथ-प्रदर्शिका रही है। इसके प्रमाण हमें सुरक्षा संबंधी निर्माण, सिक्कों हथियारों तथा कलात्मक वस्तुओं से प्राप्त होते हैं।

[1] Indus Vally Civilization transmitted to its successsors Metaphysics which endured while itutterlyfai led to transmit the physical civilization which is its Present.

—Wheeler Monument"

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु प्रधानता केवल आध्यात्मिक तथ्यों की ही रही जिसके अवशेष आज भी हिन्दू धर्म में देखे जा सकते हैं। उदाहरण स्वरूप देवी जगदम्बा, माता काली, दुर्गा, कराली कपाल-कुण्डला आदि की पूजा सिन्धु धर्म के आदि शक्ति के ही विभिन्न स्वरूप हैं। इसी प्रकार शिव की पूजा, लिङ्ग-पूजा, योगिक-पूजा, वृक्ष-पूजा एवं मूर्ति-पूजा इत्यादि भी सिन्धु घाटी से खोजे जा सकते हैं। कुछ विद्वान तो उनके आधार पर यहाँ तक कह गये हैं कि सिन्धु घाटी सभ्यता वैदिक सभ्यता से भी पूर्व काल की हो सकती है परन्तु यह केवल अनुमान ही है और इसे सत्य सिद्ध करने के लिए अधिक प्रमाण की आवश्यकता है परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जिस प्रकार पुत्र अपने पिता के गुणों का अधिकारी होता है उसी प्रकार आधुनिक भारतीय सभ्यता भी प्राचीन सिन्धु सभ्यता के गुणों का पूर्ण वहन करने वाली है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ६

ईजियन सभ्यता

ईजियन सागर यूनान और एशिया माइनर के बीच में एक समुद्र है। वास्तव में यह भूमध्य सागर का ही एक भाग है। इस सागर में अनेक छोटे-छोटे द्वीप हैं जो किसी समय एक समुन्नत संस्कृति एवं सभ्यता के केन्द्र थे। इन सभ्यता-केन्द्रों में क्रीट (Crete), ट्राय (Troy), माइसीन (Mycene) और टिरिंस (Tityns) विशेष उल्लेखनीय हैं। थोड़ी-बहुत विभिन्नता के होते हुए भी इन समस्त केन्द्रों में उपलब्ध सामग्री सम्पूर्ण ईजियन संसार में विकसित सभ्यता के समान आधारों एवं अङ्गों की सूचना देती है। यह सांस्कृतिक आधार एवं अंग क्रीट द्वीप में सबसे अधिक परिलक्षित होते हैं। इसी प्रधानता के कारण ईजियन सभ्यता को कभी-कभी स्थूल रूप में क्रीट-सभ्यता के नाम से भी सम्बोधित करते हैं। परन्तु यदि सूक्ष्मरूप से विचार किया जाय तो क्रीट, ट्राय और टिरिंस की सभ्यता माइसीन की सभ्यता से अधिक प्रचीन और कुछ भिन्न है। प्रथम का काल लगभग ३६०० ई० पू० से लेकर २००० ई० पू० है और इसके निवासी मूलतः पाषाण तथा ताम्र का ही प्रयोग अधिक करते थे। कांस्य-प्रयोग अत्यल्प था। माइसीन नामक स्थान पर सभ्यता का उदय क्रीट, ट्राय आदि नगरों के विनाश के पश्चात् हुआ। इस द्वितीय सभ्यता का काल लगभग १५०० ई० पू० से लेकर १२०० ई० पू० तक है। इस काल का मनुष्य पाषाण-काल का अति-क्रमण कर ताम्र तथा कांस्य विद्वानों ने प्रथम सभ्यता को पूर्वकालीन ईजियन और सभ्यता और द्वितीय को उत्तरकालीन ईजियन सभ्यता के नाम से पुकारा है।

इस प्रकार ईजियन सभ्यता अति प्राचीन है। जैसा कि हम आगे अध्ययन करेंगे, यह सभ्यता पर्याप्त रूप से विकसित थी। मानव-सभ्यता के विकास में इसने विशेष योग दिया है। प्राचीन संसार अनेक क्षेत्रों में इस सभ्यता का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आभारी है। रोम और यूनान की संस्कृतियों से प्रभावित होने के बहुत पूर्व संसार ईजियन-सभ्यता से प्रभावित हो चुका था।[१]

अनुसंधान—बहुत दिनों तक मनुष्य इस सभ्यता को भूला रहा। युग-युग के ध्वंसों से दबी हुई यह सभ्यता प्रकाश-लाभ के निमित्त किसी पुरातत्ववेत्ता की कुदाल की प्रतीक्षा कर रही थी। प्रतीक्षा निष्फल न हुई। सन् १८७० में हेनरिक श्लीमेन (Henerich Schliemann) ने ट्राय में उत्खनन-कार्य प्रारम्भ किया और सर्वप्रथम इस सभ्यता का पुनरुद्धार किया। प्रारम्भिक सफलता से प्रोत्साहित होकर श्लीमेन ने ईजियन संसार के अन्य केन्द्रों—Tycene और Tiryns—में भी उत्खनन किया। इस विद्वान द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करते हुए एक अन्य अंग्रेज विद्वान सर आर्थर इवान्स ने भी सन् १८९४ में उत्खनन-कार्य प्रारम्भ किया और क्रीट की प्राचीन राजधानी नोसास (Knossas) का पता लगाया। इसी प्रकार अनुसंधान चलता रहा और ईजियन संसार की प्राचीन सभ्यता की रूप-रेखा मुखरित हो उठी। जिस समय योरप के राजनीतिज्ञ एक-दूसरे के विरुद्ध प्रथम महायुद्ध की विनाशात्मक योजना बना रहे थे उसी समय उनके ज्ञानार्थी अन्वेषक इतिहास की पताका के नीचे एकत्र होकर तथा पारस्परिक भेद-भावों को भुलाकर एक विस्मृत सभ्यता का अनुसंधान कर रहे थे। अभी तक सभ्यताओं का उदय सरिताओं द्वारा सिंचित भूखण्डों में हुआ था। परन्तु इस बार ईजियन सभ्यता नीरधि की उत्ताल तंरगों में पनपी। इसका प्रमुख कारण ईजियन संसार की भौगोलिक स्थिति थी।

भौगोलिक अवस्था—ईजियन संसार की भौगोलिक स्थिति ने उसके इतिहास पर प्रचुर प्रभाव डाला है। मानचित्र को देखने से स्पष्ट हो जायेगा कि ईजियन सागर थ्रेस, एशिया माइनर और यूनान के बीच में स्थित है। भूमध्य-सागर का ही एक भाग होने के कारण यह संसार के तीन महाद्वीपों में—एशिया, अफ्रीका और योरप—के लिये सुगम है। इसके साथ सरलतापूर्वक उसका सम्पर्क रहा है। पुनः, ईजियन सागर के किनारे अनेक खाड़ियाँ और द्वीप हैं।

---

१. Before it was Romanised, before it was Hellenised, the ancient world was Aegeanised.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिणामतः संसार का कोई भी समुद्रतट ऐसा नहीं जो ईजियन समुद्र-तट से अधिक उपयुक्त हो। यह भाग सदैव से बन्दरगाहों के लिये सुविधाजनक रहा है।

ईजियन संसार में जल और स्थल एक दूसरे से अति निकट आ गये हैं समुद्र का कोई भी भाग स्थल से ४० मील से अधिक दूर नहीं है। समुद्र के प्रत्येक भाग से कोई न कोई द्वीप अवश्य दिखाई पड़ता है। सामुद्रिक यात्रा करते हुए थोड़ी-थोड़ी दूर पर कोई द्वीप अवश्य मिल जाता है। ये द्वीप मार्ग में प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करते हैं। स्थल निकट रहने से सामुद्रिक यात्रा निर्भय होकर की जा सकती है।

इस समुद्र में पाला और कोहरा नहीं पड़ता। पुनः इसमें यात्रा करने वालों को जल-धाराओं से भी सहायता मिलती है। मध्य में काले सागर से ईजियन सागर तक एक जल-धारा बहती है। इसका अनुगमन कर जल-पोत उत्तर से दक्षिण की ओर बड़ी सुगमता से जा सकते हैं। इसी प्रकार यूनान और एशिया माइनर के किनारे-किनारे एक दूसरी जल-धारा बहती है। जल-पोतों को अपनी यात्रा में इससे बड़ी सहायता मिलती है।

वायु-प्रवाहों ने भी ईजियन संसार के इतिहास पर प्रचुर प्रभाव डाला है। गर्मी की ऋतु में यहाँ ईटेशियन वायु (Etessian winds) चलती है जो जल-पोतों को साईक्लेड्स (Cyclades) से क्रीट (Crete) तक ले जाने में सहायता देती हैं। परन्तु शीत ऋतु में वायु-प्रवाह अनियन्त्रित हो जाता है। ये प्रतिकूल दिशाओं में चलने लगते हैं और आपस में टकराते हैं। परिणामस्वरूप सागर में अशांति उत्पन्न हो जाती है। इस दोष ने भी परोक्षरूप से ईजियन संसार का लाभ ही किया। यात्रा करने वाले नाविकों को अपनी सुरक्षा के हेतु यह आवश्यक हो गया कि वे वायु-प्रवाह, वातावरण, ऋतु एवं समुद्र की गति-विधि का अध्ययन करें। परिणामस्वरूप ईजियन सागर नाविक कला का शिक्षणालय बन गया।[१]

---

१. The Aegean sea became the naval school from which lessons were handed on to all the nations of the world.

—Glotz.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपर्युक्त समस्त भौगोलिक विशेषताओं ने ईजियन संसार के निवासी को समुद्र-यात्रा करने के लिये प्रोत्साहित किया। परिणामतः वह शीघ्र ही एक चतुर नाविक और सामुद्रिक अन्वेषक बन गया। ईजियन सागर का विशाल क्षेत्र उसका क्रीड़ा-स्थल बन गया, इसका प्रत्येक द्वीप उसका घर बन गया। अपने सागर की सीमाओं का अतिक्रमण कर वह अज्ञात तटों पर पहुँचा। वहाँ अपने अदम्य उत्साह और साहस का परिचय देते हुए उसने उपनिवेश-स्थापना की और इस प्रकार सामुद्रिक व्यापार का विकास किया। संसार में सामुद्रिक व्यापार तथा औपनिवेशीकरण ईजियन से ही उद्भुत हुए।[१]

इस सामुद्रिक प्रभाव के अन्तर्गत ईजियन सभ्यता जलस्थलीय (Amphibious) हो गई। मिस्र में इसके निवासी 'सामुद्रिक मनुष्य' (People of the Sea) के नाम से सम्बोधित होते थे।

जिस प्रकार ईजियन इतिहास पर जल-प्रभाव परिलक्षित होता है उसी प्रकार स्थल-प्रभाव भी ईजियन संसार लघु द्वीपों अथवा लघु नगरों का संसार है। ये एक-दूसरे से समुद्र के द्वारा पृथक् हो गये हैं। इन्होंने पृथक्-पृथक् रूप से अपने लघु राज्यों का निर्माण किया। प्रत्येक द्वीप एक स्वतन्त्र राज्य बन गया। परिणामतः ईजियन संसार में राजनीतिक एकता का सर्वथा अभाव रहा है। इस आभाव के कारण वे बड़ी सुगमता से बाह्य आक्रमण के शिकार बनते रहे।

परन्तु इस पार्थक्य-भावना से ईजियन जगत् को लाभ भी हुआ। उसके निवासियों में स्वतन्त्रता, आत्मनिर्भरता और प्रतियोगिता की भावनायें जाग्रत हुई। ऐसा वातावरण व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास के लिये बड़ा उपयुक्त होता है। यह तथ्य हम ईजियन निवासी के जीवन में सुचारुरूप से घटित पाते हैं।

जहाँ तक ईजियन संसार की जलवायु का प्रश्न है, वह सम है। अतः यहाँ के निवासियों के जीवन की आवश्यकतायें भी अल्प एवं संयत है। साधारण भोजन-वस्त्र और घर से ही इनका निर्वाह हो जाता था। यहाँ न तो इतनी गर्मी पड़ती

---

१. Maritime trade and colonisation, great novelties in the history of the world, came from the Aegean.—Glotz.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
थी कि मनुष्य आलसी बन जायँ और न इतना शीत पड़ती थी कि उन्हें अहर्निश परिश्रम करना पड़े। बड़े कम परिश्रम में ही इन्हें जीवन की आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हो जाती थीं। अतः इनके जीवन में पर्याप्त अवकाश था। इस अवकाश का उपयोग इन्हें ललित कलाओं के संवर्धन में किया। यही कारण है कि इनकी ललित कलायें पर्याप्तरूप से विकसित थीं। इस संसार की भौगोलिक विशेषताओं—समुद्र की उत्ताल तरंगों, पर्वतों को उत्तुंग-शृंखलाओं तथा जलवायु की अभिराम समता आदि ने यहाँ के निवासियों के अन्तर की सौन्दर्य-भावना को विकसित और परिष्कृत किया जिससे कविता, संगीत, वास्तु, स्थापत्य एवं चित्रकला आदि का सृजन हो सका। सौन्दर्योपासना ललित कलाओं की जननी है।

ईजियन संसार की भूमि उर्वरा नहीं है। अतः यह कभी भी कृषि-प्रधान न हो सका। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु खाद्यान्न-प्राप्ति के निमित्त इसे सदैव विदेशों पर निर्भर रहना पड़ा। इस परिस्थिति ने अन्तर्देशीय व्यापार को प्रोत्साहन दिया। ईजियन निवासी अपनी भूमि से उत्पन्न मदिरा और तेल का निर्यात करते और इनके बदले में खाद्यान्न का आयात।

उत्तर-पाषाण-काल—ईजियन संसार में सभ्यता का प्रस्फुटन सर्वप्रथम क्रीट में हुआ। इस सभ्यता के पूर्व पाषाण-काल का हमें ज्ञान नहीं। प्राप्त सामग्री के आधार पर हमें सर्वप्रथम जिस ईजियन सभ्यता का ज्ञान होता है वह क्रीट की उत्तर-पाषाण-कालीन सभ्यता। विद्वानों ने इसका काल लगभग ६००० ई० पू० से लेकर ३००० ई० पू० तक निर्धारित किया है। उत्खनन में इस काल की जो सामग्री उपलब्ध हुई है उसमें विशेष उल्लेखनीय हैं पालिश किये हुए चिकने पत्थर के अनेक औजार और हथियार, मिट्टी की बनी हुई देवी की मूर्तियाँ, धागा कातने की अनेक तकलियाँ और बुनने के प्राचीन करघे तथा अति प्राचीन काल के हस्तनिर्मित मृण्भाण्ड जिनके ऊपर पंक्तियों द्वारा अति सरल रूप में अलंकरण किया गया है। परन्तु ताँबे और पीतल का पूर्ण अभाव है।

इस समस्त प्राप्त उपकरणों से उत्तर-पाषाण काल के क्रीट-निवासी की संस्कृति की रूप-रेखा स्पष्ट हो जाती है। वह आरम्भ में पर्वत-कन्दराओं में था। इसके पश्चात् उसने मिट्टी और पत्थर की गोल झोपड़ियाँ बनाना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रारम्भ किया। गोल झोपड़ियों से आयताकार झोपड़ियों का विकास हुआ। इस समय तक कृषि कर्म का आविर्भाव न हुआ था। पशु-पालन, आखेट, मत्स्य संग्रह ही जीविका के प्रमुख साधन थे। पशुओं में गाय-बैल, भेड़, बकरी, सुअर और खरगोश का मांस प्रयोग किया जाता था।

प्रारंभ में ये बलुए पत्थर (Sand Stone) और चूना-प्रस्तर (Lime Stone) से अपने औजार और हथिहार बनाते थे। परन्तु कालान्तर में इन्होंने अधिक कठोर पाषाणों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इनमें सर्पेंटाइन (Serpentine), हेमेटाइट (Haematite) और आब्सीडियन (Obisdian) विशेष उल्लेखनीय हैं। पाषाणों के अतिरिक्त इनके हथियार हड्डी और सींग के भी बनते थे। प्रारम्भिक मृण्भाण्ड खुरदुरे हैं। परन्तु कालान्तर में वे समतल और चिकने होने लगे। उनके ऊपर पंक्तियों में अलङ्करण का भी आविर्भाव हुआ। मिट्टी की जो देवी की मूर्तियाँ मिली हैं उनसे विदित होता है कि ये किसी सृष्टि-देवी की आराधना करते थे। खुदाई में कोई भी मकबरा नहीं मिला है जिससे यह परिणाम निकलता है कि ये अपने शवों को पृथ्वी के नीचे गाड़ देते थे। कताई-बुनाई का कार्य प्रायः स्त्रियाँ ही करती थीं। अधिक श्रम, साहस एवं संकट के कार्य बेचारे पुरुष के भाग्य में पड़े थे।

मिनोअन काल—क्रीट सभ्यता उत्तरोत्तर उन्नति करती गई। प्रारम्भ में वह इसी द्वीप पर राज्य करने वाले बहुसंख्यक सामन्तों की छत्रच्छाया में पनपी। परन्तु कालान्तर में मिनोआ (Minos) ने इन बहुसंख्यक सामन्त वंशों का दमन कर देश में अपनो प्रभुत्व-स्थापना की। मिनोआ किसी व्यक्ति विशेष का नाम नही है। यह क्रीट के राजा की वंशानुगत उपाधि थी। जिस प्रकार मिस्र के सम्राट् फरोह की उपाधि से सम्बोधित होते थे उसी प्रकार क्रीट के राजा मिनोआ की उपाधि से। मिनोआ की संगठित शासन-व्यवस्था में विकसित होने वाली क्रीट-सभ्यता को मिनोआ सभ्यता कहते हैं और जिस काल में वह विकसित हुई उसे मिनोअन काल।

पूर्व मिनोअन काल—इस समय तक क्रीट के निवासियों ने ताँबे का प्रयोग सीख लिया था। कुछ काल के पश्चात् उन्होंने ताँबे और टीन को मिश्रित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर काँसा बनाना आरम्भ किया। इस काल के मनुष्यों को अक्षरज्ञान भी हो चुका था। इनकी लिपि (Hierogliphic) थी। इसे तीन भागों में विभाजित किया गया है—

(१) ३४००-२८०० ई० पू०—इस काल में उत्तर-पाषाण काल एवं ताम्र काल के हथियार मिलते हैं जिनके केन्द्र नोसास, फास्टी, तथा उर थे। कहीं-कहीं कब्रीस्तान तथा मिट्टी के मकानों के अवशेष प्राप्त हुये हैं।

(२) २८००-२४०० ई० पू०—इसमें ताम्र कला पूर्ण विकसित थी। भाण्ड-कला कब्रीस्तान तथा मकान निर्माण शैली विशिष्ट है। आभूषणों में चाँदी की मुहर, तथा हाथी दाँत के सामान प्रमुख हैं।

(३) २४००-२१०० ई० पू०—यह मिनोअन सभ्यता में परिवर्तन का युग था जिस समय इसकी पताका मध्य-एशिया नोसास, मेसारा तथा मिश्र आदि देशों तक पहुँची। इसके साथ ही सभ्यता का भी विकास हुआ। पत्थर के स्थान पर संगमरमर का प्रयोग भी प्रारंभ हो चुका था।

मध्य मिनोअन काल—इसके प्रथम चरण में सर्वप्रथम ईजियन संसार में प्रासादों का आविर्भाव हुआ। नोसस (Knossus), फेस्टस (Phaestus) और मल्लिया (Mallia) नामक नगरों में विशाल राजप्रसादों का निर्माण हुआ। इनमें बहुसंख्यक कक्षों के अतिरिक्त भाण्डागार भी थे। इनके प्राचीर विविध चित्रों से अलंकृत थे। उत्खनन में जो भाण्डागार मिले हैं उनके ऊपर अङ्कित चित्रावली भी तत्कालीन मनुष्यों की कलात्मक भावना की परिचायक है। नगरों में नालियों की व्यवस्था थी। उनमें स्थित व्यवसायी वर्ग की दूकानों के ध्वंसावशेष भी उपलब्ध हुए हैं। इन नगरों में प्राप्त वेदियों और मन्दिरों के अवशेष वहाँ के निवासियों को धार्मिक भावना के द्योतक हैं।

मध्य मिनोअन काल के मध्य चरण में न जाने क्रीट पर कौन-सी आपत्ति आई जिससे उसकी सभ्यता कुछ काल से लिये विघटित हो गई। उत्खनन में इस संसार के बड़े-बड़े नगर—नोसस, फेस्टस, गोर्निया आदि—क्षत-विक्षत एवं धराशायी रूप में मिले हैं। उनके भाण्डागार के ईंट-मिट्टी से परिपूर्ण पात्र किसी महती विपदा की सूचना देते हैं। इनमें से बहुसंख्यक पात्र धूम्रराशि से आलिप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। इस विनाश-काल के पश्चात् मध्य मिनोअन काल का अन्तिम चरण निष्क्रियता का काल है।

उत्तर मिनोअन काल—दीर्घकालीन अशान्ति के पश्चात् ईजियन संसार पुनः संगठित होता है। वह शान्ति, अध्यवसाय और साहस के साथ फिर कार्य आरम्भ करता है और एक-एक इंट एकत्र कर अपनी ध्वस्त संस्कृति का जीर्णोद्धार करता है। उपर्युक्त विनाश के पश्चात् क्रीट के रंग-मंच पर जब यवनिका उठती है तो हमें फिर राजकीय वैभव और सामूहिक समृद्धि के चल-चित्र दृष्टि-गोचर होते हैं। इस काल के नोसास, फेस्टस और गोर्निया के राजप्रसाद पहले से भी अधिक विशाल एवं सुन्दर हैं। ये प्रासाद पाँच मंजिले तक हैं। इनकी दीवारों पर अति रम्य चित्रकला का प्रदर्शन है। इन चित्रों में अनेक स्थानों पर नर-पशुओं के द्वन्द्व अङ्कित हैं। राजसभाओं में नाट्य-कक्षों की भी व्यवस्था थी। देश में चतुर्दिक समृद्धि एवं विलासिता दिखाई देती है। आमोद-प्रमोद तथा अलंकरण की ओर वस्तुओं का निर्माण हुआ। देश में मृत्तिका कला, वास्तुकला, चित्रकला की अभूतपूर्व अभ्युन्नति हुई; राजकीय सत्ता का विकास हुआ। अनेक स्थानों पर गौरवशाली राजा वस्त्राभूषणों से अलंकृत राजमहिषियों के साथ स्वर्ण-जटित मेजों पर भोजन करते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। अन्य स्थानों पर नरेशों की राजसभा में लेखक वस्त्राभरणों का आदान-प्रदान करते हुए व्यस्त हैं। यह काल ईजियन सभ्यता के चरम विकास का काल है।[1]

जातीय विशेषताएँ—सरगी (Sergi) नामक विद्वान् के मतानुसार पूर्वैतिहासिक काल में इण्डोयोरोपीय जाति के आगमन के पूर्व एक भूमध्य-सागरीय जाति विद्यमान थी। इसका शीश बड़ा, चेहरा चौड़ा, कद छोटा तथा रंग और बाल काले थे। अधिकांश विद्वानों का मत है कि ईजियन निवासी इसी जाति के थे। चित्रों तथा मूर्तियों से इस जाति के विषय में अन्य ज्ञातव्य बातें भी विदित होती हैं। पुरुष, प्रायः सिर पर बड़े-बड़े बाल

---

१ The 16th and 15th Centuries before our era are the zenith of Aegean civilisation, the classic and golden age of Crete.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रखते थे। परन्तु उनकी मूंछें और दाढ़ियाँ सदैव मुड़ी हुई होती थीं। पुरुषों में पगड़ी और स्त्रियों में हैट पहनने की भी प्रथा थी। सधारण पुरुषों का वस्त्र एक मात्र लँगोट होता था। परन्तु अभिजात वर्ग के पुरुष कमर से लेकर घुटने अथवा एँड़ी तक का एक वस्त्र पहनते थे। यह वस्त्र एक पेटी (Belt) के द्वारा कमर से बँधा रहता था। सामान्यतया मनुष्यों का ऊर्ध्व भाग नग्न रहता है। परन्तु राजा, पदाधिकारी, पुजारी और अभिजात वर्ग के मनुष्य गर्मी के दिनों में एक गाउन (Gown) और जाड़े के दिनों में एक लबादा (Cloak) भी पहनते थे। वस्त्र सूत, ऊन अथवा चर्म के होते थे। कभी-कभी वे विविध रंगों में रंगे होते थे। सुन्दर बनाने के लिये बहुधा इन पर बेल-बूटों का अलंकरण भी रहता था। सामान्य मनुष्य नंगे पैर रहते थे। परन्तु धनी-मानी व्यक्ति चमड़े के जूतों का भी उपयोग करते थे।

महिलाओं के वस्त्राभरण पुरुषों की अपेक्षा अधिक आकार-प्रकार और वर्णों के थे। यद्यपि वे साधारणतया स्कर्ट (Skirt) के समान एक वस्त्र धारण करती थीं तथापि रूप-रंग वे भिन्न होने के कारण इसके विविध प्रकार हो गये थे।

स्त्री-पुरुष दोनों में ही आभूषण पहनने की प्रथा थी। आभूषणों में विशेष उल्लेखनीय हैं ब्रेसलेट, नेकलेस, मुद्रिका, मेखला, कर्णफूल, हेयरपिन आदि। धनी वर्ग के आभूषण धातुओं के और निर्धन वर्ग के पत्थर, मूंगे और कौड़ियों के होते थे।

मिनोआ—मिनोआ पुरोहित-राजा था। प्रारम्भ में यह वृषभ-देव का प्रतिनिधि था। कालान्तर में जब वृषभ-देव की जियस (zeus) देवता के रूप में प्रतिष्ठा हुई तो मिनोआ उसी (जियस) का पुत्र समझा जाने लगा। प्रारंभ में उसका शासन-काल केवल ९ वर्ष का होता था। कालान्तर में सुव्यवस्था के आधार पर उसकी शासनावधि ९-९ वर्ष के पश्चात् बढ़ती जाती थी। परिणामतः यह अवधि आजीवन भी हो सकती थी। क्रीट का राजाङ्क दण्ड और परशु था। नौसास में एक अन्य चिह्न—त्रिदल पुष्प की भी प्राप्ति हुई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह चिह्न मिनोश्रा के मुकुट, श्राभूषणों श्रौर राजमुद्राश्रों पर भी मिलता है। सम्भव है कि यह त्रिदल पुष्प त्रिमूर्ति का द्योतक हो श्रौर राज सामग्रियों पर श्रङ्कित होकर राजा के धर्माधिकार की सूचना देता हो।

शासन-व्यवस्था—क्रीट की शासन-व्यवस्था दैवी व्यवस्था थी। हम्मूराबी की भाँति मिनोश्रा को भी देवता से शासन-विधान उपलब्ध हुश्रा था। वह दैवी प्रतिनिधि के रूप में क्रीट पर शासन करने श्राया था। श्रतः उसका प्रत्येक शब्द ईश्वरी श्रादेश की गरिमा रखता था। वही देश का सर्वसत्ताधारी शासक, व्यवस्थापक सेनापति, न्यायाधीश श्रौर पुरोहित था। राजकीय कार्यों में उसे सहायता देने के हेतु श्रनेक पदाधिकारी होते थे। ये समाज के श्रभिजात वर्ग के प्रतिनिधि होते थे। इनमें से श्रनेक राजप्रासाद में रहते थे श्रौर श्रन्य राजप्रासाद के समीप ही बने हुए श्रन्य भवनों में। राजा के समीप श्रनेक लेखक होते थे जो श्राय-व्यय (Accounts) श्रौर रजिस्ट्री (Registration) का कार्य संग्रह श्रौर सुरक्षा के लिए करते थे। इन लेखों के संग्रहालय होते थे जिनमें राजमुद्रायें उपलब्ध हुई हैं। ये राजा के हस्ताक्षर के रूप में प्रयुक्त की जाती थीं।

बाह्य श्राक्रमण से संरक्षा एवं श्रान्तरिक शान्ति की स्थापना के निमित्त राजा के पास एक सेना होती थी। जैसा कि पीछे कहा गया है, राजा ही देश का सर्वोत्तम सेनापति होता था। उसकी श्रधीनता में श्रनेक सेनानायक होते थे। प्रत्येक सेनानायक के श्रधीन भिन्न-भिन्न सैनिक दल रहते थे। हेजिया, त्रियादा (Hagia, Triada) में एक राजपात्र (Chieftain Vase) प्राप्त हुश्रा है। इससे ईजियनों के सैनिक संगठन पर प्रकाश पड़ता है। इस पात्र पर एक सेनानायक श्रटेंशन की श्रवस्था में खड़ा हुश्रा राजा से श्राज्ञा ले रहा है। सेनानायक के पीछे उसके श्रस्त्र-शस्त्रधारी सैनिक खड़े हैं। सैनिक शिरस्त्राण पहनते थे। उनके पास एक ढाल श्रौर बरछा होता था। बरछाधारी सैनिकों के श्रतिरिक्त धनुर्धारी सैनिक भी होते थे। मिनोश्रो ने रथारोही दल का भी संगठन किया था। रथों को खींचने के लिये दो घोड़ों का प्रयोग किया जाता था। इस समस्त सेना के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आवश्यक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण के लिये राज्य की ओर से फैक्टरियाँ खोली गई थीं।

राजा ही देश का सर्वोत्तम न्यायालय भी था। इवान्स ने एक न्यायालय के ध्वंसावशेषों का पता लगाया है जिससे ज्ञात होता है कि राजा एक उच्च सिंहासन पर बैठकर न्याय करता था। प्रायः कारावास का दण्ड दिया जाता था। बहुत सी कारायें भूगर्भ में बनी थीं।

दैवी प्रतिनिधि होने के कारण राजा ही देश का सर्वोच्च पुरोहित था। जन-कल्याण के लिये वह राज्य की ओर के सामूहिक पूजाओं का आयोजन करता था। ऐसी धार्मिक क्रियाओं में वही पुरोहित-पद पर आसीन होता था।

राज्य की आय के साधन कर और उपहार थे। ये खाद्यान्न, पेय, धातु, विविध वस्तुओं आदि के रूप में आते थे। इनके संग्रह के लिये मिनोआ ने विशाल कोष का निर्माण कर रक्खा था। इसी कोष से पदाधिकारियों का वेतन, राजव्यवसायियों की वृत्ति, धार्मिक क्रियाओं का व्यय आदि दिया जाता था। राजा और उसके परिवार का निर्वाह भी इसी की सहायता होता था।

इस राजकीय कोष के अतिरिक्त राजा की आय का साधन उसकी फैक्टरियाँ मिलें और दूकानें भी थीं। इनमें जीवन की अनेकानेक आवश्यक वस्तुओं का निर्माण होता था। इनमें भीतर कलाकारों, श्रमजीवियों और दासी का विशाल समुदाय विशिष्ट व्यक्तियों के संरक्षण में कार्य करता रहता था। मिनोआ क्रीट का सर्वप्रधान पूँजीपति और उद्योगपति था। इन्हीं सब कारणों से ही एजियन सभ्यता प्राचीन मध्य-पूर्व में सर्वोच्च तथा उन्नतिकारी कही जाती है।[१]

सम्मिलित परिवार व्यवस्था—समाज की इकाई जीनस अथवा समूह (Clan) थी। वह अनेक परिवारों का समुदाय होता था। स्त्री, पुरुष, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू, बन्धु-बान्धव तथा भृत्य सम्मिलित रूप से रहते थे। सम्मिलित परिवार

---

[१]. Agean civilization was one of the freest and most progressive in all the near east."

—Will Durant

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण इनके घर भी विशाल होते थे। वासिलिकी में पूर्व मिनोआ काल के एक भवन के ध्वंसावशेष उपलब्ध हुए हैं यह भवन दो या तीन मंजिल का था। एकमात्र इसकी निचली मंजिल में ही लगभग २० कमरे थे। परन्तु कालान्तर में ये भवन छोटे होने लगे। अतः इससे यह निष्कर्ष सम्भव है कि बड़े-बड़े सम्मिलित परिवार अब छोटे-छोटे परिवारों में टूटने लगे थे।

महिला-समाज—क्रीट समाज में स्त्रियों का विशेष आदर था। उनकी प्रधान दैवी शक्ति एक देवी थी—सृष्टि-देवो। प्लूटार्क का कथन है कि क्रीट निवासी अपने देश को पितृ-भूमि न कहकर मातृभूमि ही कहते थे। इसके क्रीट समाज की महिला-सन्मान्यता प्रकट होती है।स्त्रियों को सामाजिक स्वतंत्रता थी। उनमें पार्थक्य की भावना न थी। नोसास के राजप्रासाद में भी कहीं अंतःपुर नहीं है। स्त्रियों के लिये कहीं भी पृथक् कक्षों की कल्पना नहीं की गई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गृह-कार्यों के कारण नारी प्रायः घर ही में रहती थी। परन्तु वाह्य कार्यों में भाग लेने की भी उन्हें पूरी स्वतंत्रता थी। चित्रों एवं मूर्तियों में नारी के मुख पर कहीं भी अवगुंठन नहीं है। पूर्व मिनोअन काल के उत्तरार्द्ध की कतिपय सीलें ऐसी मिली हैं जिनसे पता लगता है कि स्त्रियाँ मृणभाण्ड भी बनाती थीं। क्रीट-कलाकारों ने महिलाओं को रथ-वहन करते हुए चित्रित किया है। वे आखेट भी करती थीं। मुष्टिका-प्रहार के द्वारा वे महिषों से युद्ध करती हुई प्रदर्शित की गई हैं। सार्वजनिक उत्सावों में वे भाग लेती थीं। नोसस और माईसीनाक के चित्रों में महिलायें अट्टालिकाओं पर खड़ी हुई प्रदर्शित की गई हैं। स्त्री और पुरुष के अधिकार समान थे। एक चित्र में दोनों समान रूप से एक-दूसरे का हस्त ग्रहण कर पारस्परिक सहकारिता एवं सत्यानुसरण का वचन देते हैं। कदाचित् क्रीट समाज में भी मातृत्व स्त्रीत्व का पूर्ण विकास समझा जाता था। इस मातृत्व के कारण ही स्त्रियाँ राजनीतिक कार्यों से पृथक् रहती थीं, यद्यपि उन्हें पुरुषों के भाँति समस्त नागरिक अधिकार प्राप्त थे।

धर्म—ईजियन संसार बहुदेववादी था। उसने ईश्वरीय सत्ता को विविध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूपों में देखा और ईश्वर की भाँति ही उन रूपों की उपासना की। उसके धार्मिक जीवन का विकास प्रायः अन्य देशों के सदृश्य ही है। इसके अन्तर्गत पाषाण-पूजा, आयुध-पूजा, वृक्ष-पूजा, पशु-पूजा और देवी-देवताओं की साकार पूजा सम्मिलित है। जैसे-जैसे मनुष्य की धार्मिक कल्पना प्रखर होती गई; वह अनेकानेक पूजा-विधियों का निर्माण करता गया। उसने अपने पूजा-गृहों का निर्माण किया; मूर्तियों की स्थापना की। मनुष्य और दैवी शक्ति के बीच में मध्यस्थ का कार्य करने के हेतु पुजारी-वर्ग की सृष्टि की। व्यक्तिगत एवं सामूहिक पूजा के नियम बनाये और धार्मिक उत्सवों एवं त्योहारों की कल्पना की।

पाषाणपूजा—ईजियन-निवासी की यह धारणा थी की पर्वत-शृंखलाओं के पाषाणों में दैवी शक्तियाँ •वास करती हैं। अतः उसने उनकी पूजा करना प्रारम्भ किया। यह पाषाण-पूजा अनेक रूपों में उपलब्ध होती है। कभी-कभी ईजिया-निवासी पाषाण-निर्मित स्तम्भों की स्थापना करता था और इन्हीं के सम्मुख बैठकर पूजा करता था। उत्खनन में कुछ ऐसे स्तम्भ मिले हैं। उन पर कभी-कभी कपोत अथवा सिंह की मूर्तियाँ आसीन हैं।

अन्य अवसरों पर ईजिया-निवासी को पाषाण-निर्मित परशु की पूजा करते देखा जाता है। यह परशु-पूजा पाषाण-पूजा और आयुध-पूजा दोनों शीर्षकों के अन्तर्गत आ सकती है। तत्कालीन ईजियन समाज परशु को देवलोक से पतित वज्र समझता था। अतः उसमें दैवी शक्ति अन्तर्निहित समझी जाती थी और वह उनकी पूजा करता था। प्रारम्भ में ये परशु पाषाण-निर्मित होते थे।

आयुध-पूजा— कालान्तर में परशु धातुओं के बनने लगे। धातुनिर्मित परशु की पूजा आयुध-पूजा के अन्तर्गत रक्खो जानी चाहिए। शास्त्र के रूप में यह मनुष्य को अमानुषी शक्ति देता था और याज्ञिक कार्यों में यह मनुष्य और दैवी शक्ति के बीच में सम्बन्ध स्थापित करता था। उत्खनन में अनेकानेक परशु एवं उनके चित्र उपलब्ध हुए हैं जिनसे इनकी लोकप्रियता स्पष्ट होती है।

आयुध पूजा का दूसरा रूप था ढाल-पूजा। कदाचित् ढाल युद्ध-देवता का प्रतीक थी और ईजिया-निवासी शान्त तथा सुरक्षा के हेतु इसकी पूजा करता था। ईजियन संसार के अनेकानेक पूजा-गृहों, पूजा-पात्रों, पवित्र वृक्षों, वृषभ-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शृंगों, मुद्रिकाओं आदि पर ढाल के चित्र अंकित मिलते हैं।

वृक्ष-पूजा—यह सार्वभौम पूजा है। किसी न किसी काल में अधिकांश देशों में यह प्रचलित रही है। वृक्ष वानस्पतिक शक्ति का प्रतीक है। प्रकृति की विविध शक्तियों की आराधना करने वाले ईजियन निवासी वृक्ष के प्रति उदासीन न रह सके। अनेक स्थलों पर उसकी पूजा के उदाहरण मिलते हैं। एक चित्र में सृष्टि देवी एक वृक्ष के नीचे अंकित की गई हैं। एक पुष्प उनके हाथ में है और दूसरा उनके केशों में उनके चतुर्दिक अन्य नारियाँ एवं बालिकायें हैं जो उन्हें पुष्प-फल के उपहार दे रही हैं। दूसरे चित्र में सागर-देवी अपनी नौका में एक लता की छाया में आसीन हैं। एक अन्य चित्र में दानव पादपों का सिंचन कर रहे हैं। ये सारे उदाहरण विविध रूपों में वृक्ष-पूजा के उदाहरण हैं।

पशु-पूजा—यह भी सार्वभौम पूजा रही है। इसका लक्ष्य मानवी और पाशविक जगत् के बीच सम्बन्ध-स्थापन था। एक चित्र में सामूहिक पूजा के हेतु जाते हुए मनुष्य गधे की पवित्र त्वचा धारण किये हुए हैं दूसरे में नारियाँ गीदड़ों की त्वचा पहने हैं। पशु-पूजा के अन्तर्गत पक्षि-पूजा भी आती है। पक्षियों में विशेष उल्लेखनीय है कपोती। यह पवित्रता का प्रतीक थी। ईजियन-संसार के पूजा-गृहों, पात्रों, पाषाण स्तम्भों, आयुधों वृक्षों आदि पर इसके चित्र मिले हैं। इसकी मृण्मूर्तियाँ भी बहुसंख्यक में पाई गई हैं।

देवी की कल्पना—ईजिया-निवासी की उपासना के उपर्युक्त सभी केन्द्र लौकिक थे जो किसी न किसी रूप में दैवी शक्ति के प्रतीक होने के कारण पूज्य थे। इनकी उपासना के साथ-साथ ईजिया-निवासी ने परम सत्ता के अलौकिक रूप का मानवीकरण करना प्रारम्भ किया। उसने ईश्वरीय शक्ति को अपने ही जगत् के नर-नारी के रूप में कल्पना की। परन्तु उनमें अलौकिक शक्ति, अमरत्व और विकारविहीनता का आरोप कर उन्हें देवी-देवताओं की संज्ञा दी। नारी-प्रधान क्रीट-समाज के लिये यह स्वाभाविक ही थी कि वह 'देवता' को नहीं वरन् 'देवी' को ही सर्वसत्ताधारी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करे। क्रीट की श्रद्धा-भक्ति का प्रतीक एक देवी थी। क्रीट-निवासी की कल्पना में यह सृष्टिकारिणी थी। मानवी, पाशविक और वानस्पतिक, सभी लोकों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सृष्टि उसी ने की है। इसी तथ्य को व्यंजित करने के हेतु कभी वह बालकों का पोषण करती हुई प्रदर्शित की गई है। कभी पशुओं से परिवृत और कभी पुष्पालंकृत वृक्षों के नीचे आसीन। देवी का यह रूप मातृत्व का दैवीकरण था। यह गौरवशालिनी 'माता' के उच्च पद का श्रद्धास्पद मूल्याङ्कन था।

समस्त लोक उसी के अधीन हैं। वह उत्तुङ्ग पर्वतों की गहन कन्दराओं में रहती है, स्वेच्छानुसार सागर-विहार करती है और सर्पिणी के रूप में पाताल-लोक पर शासन करती है। उसकी आराधना में वेदियों, स्तम्भों और पूजा-गृहों में उपासकों के द्वारा अर्पित बहुसंख्यक सीप, शंखादि मिलते हैं। अनेक चित्रों में वह सर्पावृत शरीरिणी के रूप में मिलती है।

वह स्वर्गनिवासिनी भी है परन्तु मानव के आर्तनाद को सुनकर, अपने उपासकों की व्यथा को देख कर वह पृथ्वी पर अवतरित होती है। उसका अवतरण चित्रों में प्रदर्शित है।

संसार में प्रकाश-अन्धकार उसी की इच्छा से होते हैं। एक चित्र में सूर्य-चन्द्र उसकी आराधना कर रहे हैं।

परन्तु सृष्टिकारिणी देवी प्रतिकूल रूप में विनाशकारणी भी है। जगदम्बा साथ-साथ वह दुर्गा भी है। उत्पत्ति और विनाश उसकी पृथक्-पृथक् शक्तियाँ हैं। एक चित्र में वह सिंहरक्षित वीरवेश में प्रदर्शित की गई है। संहारक-शक्ति के प्रतीक धनुर्बाण एवं परशु उसके कठोर करों में हैं।

देवता की कल्पना—देवी के साथ देवता की कल्पना स्वाभाविक है। यह देवता इस देवी के पुत्र अथवा प्रेमी के रूप से प्रदर्शित हुआ है। इस प्रकार क्रीट का धर्म द्विदेववादी (Dual Monotheism) है। अनेक चित्रों में देवी के इस पुत्र का अङ्कन है। कभी वह भयंकर सिंहों को पकड़े हुए हैं; कभी वे उसके पीछे-पीछे युद्ध में जा रहे हैं। ये चित्र उसकी असीम शक्ति के परिचायक हैं। कर्णाकृष्ट धनुष को धारण कर जब वह आकाश में गर्जन करते हैं तब संसार में अन्धता, भय और पराजय की सृष्टि होती है। पशु के रूप में वह महावृषभ हैं—शक्ति और सृष्टिकारी तत्व के प्रतीक। उनकी संतुष्टि के हेतु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुष्य अनेक प्रकार के यज्ञ करते थे। कभी-कभी वे यज्ञ हिंसात्मक होते थे जिनमें वृषभों की बलि दी जाती थी।

कुछ चित्रों में यह देवता देवी के प्रेमी के रूप में प्रदर्शित किया गया है। दोनों के सहवास से सम्पूर्ण संसार में चेतना का आविर्भाव होता है परन्तु समस्त साद्यों का निरीक्षण करने के पश्चात् निष्कर्ष यही निकलता है कि देवी की अपेक्षा देवता की पूजा गौण थी।

पवित्र चिह्न—क्रीट के उत्खनन-कार्य से प्रकट हुआ है कि वहाँ का प्राचीन निवासी 'स्वस्तिक' को एक पवित्र एवं शुभ चिह्न समझता था। अनेक वेदियों, मृण्भाण्डों तथा मूर्तियों पर यह चिह्न अंकित है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस 'स्वस्तिक' के साथ-साथ क्रीट-निवासी 'तीन की संख्या' को भी कल्याण-कर मानता था। कदाचित् यही कारण है जिससे प्राप्त सामग्रियाँ बहुधा तीन की संख्या से ही उपलब्ध हुई हैं—तीन स्तम्भ, तीन मूर्तियाँ, तीन ढालें, तीन वृक्ष इत्यादि। तीन-तीन के समुदाय में वस्तुओं की पुनः पुनः प्राप्ति सम्भवतः आकस्मिक घटना नहीं है। यह योजना साभिप्राय है। परन्तु इस संसार में 'तीन' का महत्व था, यह निश्चितरूप से कहना कठिन है। सम्भव है, यह संख्या ईश्वर की तीन शक्तियों—सृष्टिकारिणी, रक्षणकारिणी और विनाशकारिणी की प्रतीक हो। इससे तोन लोकों—स्वर्ग, मृत्यु लोक और नरक का भी बोध हो सकता है।

पूजा-गृह—प्रारम्भ में क्रीट में पूजा-गृह न थे। मनुष्य खुले हुए मैदानों में, वृक्षों के नीचे, उच्च शिखरों पर अथवा जल-स्रोतों के समीप पूजा करते थे। कालान्तर में इन पूजा-स्थलों की पवित्रता की रक्षा के निमित्त क्रीट-निवासी इसके चारों ओर ईट-पत्थर का घरौंदा बनाने लगे। यही पूजा-गृहों का प्रथम रूप था। कुछ काल पश्चात् पूजा की सुविधा और पूजोपहारों की रक्षा के लिए मनुष्यों ने इन घरौंदों को लघु कक्षों का सुव्यवस्थित पूजा-गृह निर्मित करना प्रारम्भ किया। इनका निर्माण प्रायः पर्वत शृङ्खलाओं अथवा अन्य उच्च स्थलों पर होता था। पूजा-गृहों में देवी-देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित की जाती थीं, वेदियों का निर्माण होता था तथा शृङ्ग पात्र तथा अनेक प्रकार के पूजा के उपकरण संग्रहीत किये जाते थे। परन्तु इस प्रकार के पूजा-गृह प्रायः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामूहिक पूजा के निमित्त ही थे। व्यक्तिगत पूजा मनुष्य अपने घरों में ही वेदियाँ और मूर्तियाँ बनाकर कर लेते थे।

पूजा-विधि—पूजा करने के पूर्व व्यक्तियों को हस्तप्रक्षालन करना पड़ता था। कभी-कभी अभिषेक भी आवश्यक था। इसी प्रयोजन से पूजा-गृहों के बाहर तेल और जल में परिपूर्ण पात्र रक्खे रहते थे। क्रीट का समाज नारी-प्रधान था। अतः नारी ही मनुष्य और दैवी शक्ति के बीच मध्यस्थ का कार्य करती थी। वही पुजारिनी होती थी। यद्यपि कभी-कभी पुजारी के भी चित्र मिलते हैं परन्तु इनकी संख्या अत्यल्प और स्थान गौण था। दीर्घ प्रयोग से पुजारिनी की महिला-वेश-भूषा का धार्मिक महत्व हो गया था। अतः पुजारी भी उसी को धारण करते थे। क्रीट का नरेश भी धार्मिक कृत्यों को कराते समय इसी पुजारिनी-वेश-भूषा को धारण करता था। इसका प्रमुख अंग था चर्मनिर्मित एक स्कर्ट (Skirt) के समान लम्बा वस्त्र। कभी-कभी सिर पर हैट और हाथ में धार्मिक दण्ड भी रहता था। पुजारिनी के अतिरिक्त धार्मिक कृत्यों में नारियों की ही प्रधानता रहती थी। जितने भी ऐसे चित्र मिले हैं उनमें नारियाँ और बालिकायें ही दृष्टिगत होती हैं। पूजा-गृह में प्रविष्ट होने पर वह अपने दोनों हाथ उठाकर दैवी शक्ति का आह्वान करती थी। कभी-कभी उसका केवल एक ही हाथ ऊपर उठता था और दूसरा हाथ वक्षःस्थल पर रहता था। दैवी शक्ति को सन्तुष्ट करने तथा दानवी शक्ति को भगाने के हेतु पूजा-गृह में धूप बत्ती जलाई जाती थी। भिन्न-भिन्न द्रवों से मूर्तियों को अर्घ्य-दान दिया जाता था और खाद्यान्न, पेय, फल-पुष्प से उनकी क्षुधा शान्त की जाती थी। कभी-कभी मदिरा-दान भी होता था। देवी-देवताओं की आराधना में संगीत भी होता था। ऐसे अवसरों पर शंख, वीणा और मुरली का प्रयोग किया जाता था। कभी-कभी हिंसात्मक बलि भी पूजा का आवश्यक अंग समझा जाता था। बलि-पशुओं में गाय-बैल, भेड़-बकरी और सुअर विशेष उल्लेखनीय हैं। जब कभी बलि-पशु प्राप्त न होता था तो मनुष्य पशुओं की मृण्मूर्तियों एवं धातु-मूर्तियों की बलि देते थे। इस धार्मिक प्रयोजन से कुम्भकारों, लौहकारों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा स्वर्णकारों ने बहुसंख्यक मूर्तियों का निर्माण करना प्रारम्भ किया। ऐसी अनेक मूर्तियाँ पूजा-गृहों के ध्वंसावशेषों में उपलब्ध हुई हैं। यहाँ पर धर्म ने कला-विकास में योग दिया हैं। सामूहिक आमोद-प्रमोद एवं धार्मिक कृत्यों के हेतु क्रीट-निवासी ने धार्मिक उत्सवों और त्योहारों की भी कल्पना की थी। ये उत्सव प्रायः ग्रीष्मावसान और वसन्तागमन के समय होते थे जब प्रकृति सम्पूर्ण धरा पर सुख-समृद्धि और सौंदर्य की अपार निधि बिखेरती हुइ मनुष्य के हृदय में आन्तरिक धार्मिक भावना को सबल रूप से उत्प्राणित करने लगती थी।

ललित कलायें—इजिया-निवासी सौन्दर्योपासक था। इसी सौन्दर्योपासना ने उसके देश में विविध ललित कलाओं को उन्मुख विकसित किया था सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि कला के क्षेत्र में उसने प्रभूत उन्नति की थी। कला ही एक ऐसा क्षेत्र था जिसमें ईजियन सभ्यता की महानता, गंभीरता एवं उच्च स्वातन्त्र्य कोटि की भावना का प्रदर्शन होता है। इतिहासकार बर्न्स के अनुसार प्राचीन यूनान के अतिरिक्त कोई भी कला इसके सम कोटि की नहीं थी।[१] भली-भाँति उसे समझने के हेतु हमारे लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम इस कला की उन आधारभूत विशेषताओं से परिचित हों जो इसे अन्य कलाओं ने पृथक करती हैं—

(१) सर्वाङ्गीणता—मेसोपोटामिया और मिस्र की कला राजा अथवा धर्म की छत्रच्छाया में उद्भूत हुई थी। कलाकार राजा के दम्भ को चिरस्थायी करने के लिये उसकी कीर्ति को चिरस्मरणीय करने के लिये कला-कृतियों का

---

१. "If there was any one achievement of Aegeans which appears more than others to emphasize the vitality and freedom of their culture. It was their art. With the exception of Greek no other art of ancient world was quite its equal."

—Burns.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्माण करते थे अथवा वे देवों की उपासना में अथवा मृत को अमरत्व देने में अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। अतः वह कला एकाङ्गी थी।

परन्तु क्रीट की कला सार्वजनीन एवं सर्वस्थानीय थी। यह साधारण मनुष्य की सामान्य आवश्यकताओं से लेकर राजप्रासादों की विभूति तक व्याप्त थी। क्रीट के कलाकारों की छेनी अथवा तूलिया ने कला और जीवन की सीमाओं को मिला दिया था। उनकी चेतना में कला जीवन की सुन्दरता बन गई थी और जीवन कला का सत्य। ईंट, मिट्टी, धातु और पत्थर के आकारों में, रंगों की क्षीण रेखाओं में हमें क्रीट जीवन की छोटी-बड़ी समस्त घटनायें परिलक्षित होती हैं। क्रीट की कला उनके जीवन का दर्पण है।

(२) **व्यक्तित्व**—क्रीट की कला में व्यक्तित्व एवं वैभिन्य है। जिस समय यह देश विभिन्न समूहों (Clans) में विभक्त था, उस समय यही समूह (Clans) कला का स्वतन्त्र रूप से विकसित करते थे। कालान्तर में मिनोआ की शक्ति बढ़ी और नोसास क्रीट का कला-केन्द्र हो गया। परन्तु इसे अन्य भागों का स्वातन्त्र्य एवं व्यक्तित्व विलुप्त नहीं हुआ। फेस्टस, हेगिया त्रियादा, मल्लिया, गोर्निया, सेरा आदि फिर भी कला-केन्द्र बने रहे। इन स्थानों में अति संख्यक सोलें या मुहरें मिली हैं जिनमें व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न चिन्ह हैं।

(३) **साधनों का प्रभाव**—क्रीट में संगमरमर नहीं हैं और धातुयें कम हैं। परन्तु वहाँ चूना-प्रस्तर (Limestone) और स्टेटाइट (Stetatite) की अधिकता रही है। पीली मिट्टी तथा विविध रंग भी प्राप्य हैं। इन्हीं साधनों के आधार पर वहाँ कला का विकास हुआ है।

(४) **ललित कलाओं के विभिन्न विभाग में सम्पर्क एवं सामञ्जस्य**—स्वर्णकार द्वारा निर्मित आकार-प्रकारों का अनुकरण कुम्भकार करता था। दीवार का चित्रकार अपनी कला मृण्पात्रों के चित्रकार को देता था। कुम्भकार, स्वर्णकार और चित्रकार के चित्रों को तक्षण कलाकार पाषाणों पर अंकित करता था। इस प्रकार कलाकारों के पारस्परिक आदान-प्रदान् ने कला के विकास में योग दिया।

(५) **सारग्राहिता**—क्रीट निवासी को वाह्य देशों के प्रभावों को ग्रहण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने में संकोच नहीं। बैबिलोनिया के सिलेण्डर्स (Cylinders) एवं ट्राय के दो हैन्डलवाले प्यालों के आधार पर क्रीट ने भी इन वस्तुओं का निर्माण किया। मिस्र के अनुकरण पर पाषाण-पात्रों का रूप निर्धारित हुआ। वहीं से सील का प्रयोग तथा फयंस निर्माण आया। मिश्र की धार्मिक परम्परा का भी अनुकरण हुआ--साइनोसिफेलस, हिप्पोपोटमस देवी और ग्राइफन वहीं से आये। मिश्र के अनुकरण पर ही क्रीट के कलाकारों ने पुरुष को ताम्रचर्म तथा स्त्री को गौर-चर्म में प्रदर्शित किया है।

उत्तरी युग में चक्कर (Spiral) प्रणाली पर अलंकरण होता था। क्रीट-निवासी ने इसका व्यवहार अपने देश में किया।

(६) **मौलिकता**--अन्य प्रदेशों से गृहीत कला-प्रभाव क्रीट की भूमि में आकर बहुधा स्वदेशी बन गये। उनकी विदेशीयता जाती रही। उदाहरणार्थ मिस्र में पक्षधारी सिंह प्राप्त होता है परन्तु वह अपने पक्षों का प्रयोग नहीं करता था। परन्तु क्रीट ने वही उद्दाम वेग से उड़ते हुए दिखाया गया। यूनान का स्पिरल (Spiral) निम्नकोटि का है। परन्तु क्रीट में उसके वृन्त एक दूसरे से लिपटे हुए और मजबूत हैं। उन वृन्तों के ऊपर चित्रांकन भी है।

(७) **रूढ़िविहीनता**—कला रूढ़िवादिता के बोझ से जर्जरित हो जाती है। आत्म-विकास के लिये उसे स्वच्छन्द वातावरण चाहिए। निरोध, अंकुश और नियन्त्रण उसे असह्य हैं। अतः क्रीट की कला में कलाकारों के हृदय का स्वतन्त्र उच्छ्वास है, उनकी कल्पना का असीम विहार है।[१] यद्यपि पुरुष को रक्त वर्ण दिखाने की परम्परा थी, फिर भी कलाकारों ने उसकी त्वचा पर अनेक रंगों का प्रयोग किया है।

प्राकृतिकता—चित्रकार प्रारम्भ में रेखाप्रधान अलंकरण करता है।

१. The Cretan artist has the confidence of youth and an ingenuous audacity. He feels keenly the joy of creating. He brings to his work the gay heart which is a force. His fancies are full not of turbulent pretentiousness, but of simple-minded potent joy.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रेखाओं के संगठन से वह कतिपय पुष्प-पत्रादि की आकृति देता है, परन्तु वह इन्हीं में सदैव के लिये उलझ नहीं जाता। निर्मोही की भाँति वह इनसे अपना दामन छुड़ाकर सत्य और सुन्दर की खोज में आगे बढ़ता है और प्रकृति के उस प्रांगण में बैठकर वह प्रकृति के विभिन्न रूपों को अपनी लकीरों में बाँधने का चिर-नूतन प्रयास करता है। अपनी आनन्द-विभोरता में वह प्रकृति के परिवर्तनों को अपने रंगों में बाँध लेने का कौतुक किया करता है।

सांगोपांगता—क्रीट का कलाकार सूक्ष्मदर्शी है। वह जीवन को प्रत्येक वस्तु को सांगोपांग देखता है और उसके चित्रण में उसकी पूर्णता लाने का प्रयास करता है। राजकीय सिंहासन पर आसीन साभिमानिनो राजमहिषी का चित्र उतना ही पूर्ण है जितना सागर तट के बालुका-समूह पर विहार करते हुए अर्धनग्न मल्लाह का। अपने आखेट की प्रतीक्षा में बैठी हुई पत्रान्तरित बिल्ली के चित्र में उतनी ही पूर्णता है जितनी मदोन्मत्त वृषभ के दीर्घ पलायन में।

सजीवता—क्रीट की उत्कृष्ट कला-कृतियाँ वास्तविकता के रूप हैं। कलाकार ने उनमें गति, भाव और चेतना को बाँध लिया है। कुछ चित्र तो स्नैपशाट् (Snap Shots) के समान दिखाई पड़ते हैं। एक गड़ेरिया के लड़के ने उछलते-कूदते हुए एक वृषभ को कान और सींग से पकड़ा है। यह कार्य एक क्षण में हुआ है। इस एक क्षण में उस लड़के तथा वृषभ में जितने प्रकार की भावनाओं एवं चेष्टाओं का उदय हुआ वे सब कलाकार ने अपनी रेखाओं में भर दी हैं। शीतकाल के आगमन पर पत्रहीन पादप अपनी शुष्क शाखाओं का भार धारण किये हुए वसन्तागमन की ओर जिस आतुरता से निहार रहे हैं वह दर्शनीय है। अपने बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय मातृत्व के गौरव से ओत-प्रोत है।

लघुता—क्रीट की कलाकृतियों में सत्यता है, सुन्दरता है परन्तु विशालता नहीं। कदाचित् लघुशरीरी होने के कारण क्रोट के कलाकार ने समस्त कृतियों का भी लघुरूप दे दिया है। कलाकार की प्रतिभा लघु कृति में ही चमत्कृत होती है। वहीं वह गागर में सागर भरने का प्रयास करता है। उसकी कच्च, फ्रेसको (Fresco), रिलीफ (Relief), समाधि, मूर्ति सभी छोटे हैं। सीलों,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुद्रिकाओं, हस्तिदन्त की लघुकृतियों में ही कलाकार की प्रतिभा का पूर्ण विकास हुआ है। एक विद्वान् के शब्दों में वे भू-मध्यसागर के जापानी हैं जिनके कलाकोष में विशालता नाम का कोई शब्द नहीं। उनकी कला का आधार लघुता है।

चित्रकला—क्रीट ने सबसे अधिक उन्नति चित्रकला के क्षेत्र में की। चित्रकार ने अपनी तूलिका के सहारे हमारे समक्ष अपने देश की झाँकी उपस्थित कर दी है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी गति है। उसके चित्र-कक्ष में कहीं नरेशों के विपुल वैभव का प्रदर्शन हुआ है तो कहीं साधारण मनुष्यों के सुखमय सन्तोष का, कहीं नृत्य संगीतमय आमोद-प्रमोद है तो कहीं द्वन्द्वयुद्ध के घात-प्रतिघात। कहीं का वातावरण नृत्यरता नारी की भावभंगिमा से स्पन्दित हो उठा है तो कहीं कोई नीरव वन आखेटकों के कोलाहल से विक्षुब्ध है। किसी चित्र में पशुवर्ग की निरीहता है तो किसी में उसकी क्रूरता। कहीं उपासक की असीम श्रद्धा का प्रत्यार्पण है तो कहीं भगवती के उन्मुक्त प्रसाद का वितरण। इस प्रकार क्रीट-जीवन अपने समस्त गुण-दोषों के साथ चित्रकार के रंगों में उभड़ आया हैं। क्रीट के जो चित्र अपनी स्वाभाविकता एवं सजीवता के लिये विश्व-प्रख्यात हैं उनमें हैं पूर्वोल्लिखित आखेट-संलग्ना पत्रान्तिता बिल्ली का चित्र और गतिभाव-सम्पन्न नृत्यरता एक स्त्री का चित्र।

क्रीट में अधिकांश चित्रण मूरल फ्रेस्को (Mural Fresco) के रूप में हुआ है। इस प्रणाली के अन्तर्गत दीवार के ऊपर चूने का लेप होता था और उसकी भीगी सतह पर ही शीघ्रता के साथ चित्रांकन कर दिया जाता था। सतह भीगी होने के कारण रँग दीवार पर जम जाते थे।

तक्षण तथा स्थापत्य कला—क्रीट में तक्षण-कला की विशाल कृतियों का अभाव है। इस देश के कलाकार की प्रतिभा लघुकृतियों के निर्माण में ही उन्मुख हुई है। मिस्र के कलाकारों की भाँति न तो उसने विशाल द्वार-रक्षक बनाये और न बैबिलोनिया के कलाकारों की भाँति विशाल राजमूर्तियाँ। न तो इसने राजप्रासादों के अलंकरण, में अभिरुचि दिखाई है और न पूजा-गृहों की विशाल प्रतिमाओं के निर्माण में। उसकी दक्षता का प्रदर्शन छोटे-छोटे प्याले-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तश्तरियों, पात्रों, मुद्राओं आदि पर हुआ है। ये वस्तुयें मिट्टी, पाषाण हाथीदाँत और धातुओं से निर्मित होती थीं। क्रीट के तक्षण एवं स्थापत्य के कतिपय उदाहरण आज भी अक्षय हैं। उनसे उनके निर्माताओं का हस्तलाघव परिलक्षित होता है। उत्खनन में एक उपासक की कांस्य-मूर्ति मिली है। वह अटेंशन की अवस्था में खड़ा है। उसका एक हाथ नीचे लटक रहा है और दूसरा अभिवादन में मस्तक पर है। इस मूर्ति की तन्मयता एवं श्रद्धालुता दर्शनीय है। दूसरी मूर्ति एक मुरलीधर की है। उसके दोनों हाथ मुरली बजाने की दशा में हैं। देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मुरली से मधुर स्वर निस्सृत होने ही वाला है। एक अन्य कृति बोस्टन संग्रहालय में संरक्षित है। यह सर्प देवी का चित्र है जो हाथीदाँत पर उत्कीर्ण है। उसके प्रत्येक हाथ में एक सर्प है। देवी की मुद्रा में सुन्दरता और गम्भीरता का सम्मिश्रण है। क्रीट के कलाकार ने धातु-वस्तुओं के ऊपर बड़े सुन्दर चित्र उत्कीर्ण किये हैं। उनके विविध आभूषणों के ऊपर सिंह, वृषभ, कपोती, आदि के लघु चित्र हैं। यहाँ की खुदाई में काँसे की एक तलवार मिली है जिस पर सिंह के आखेट का सुन्दर चित्र उत्कीर्ण है।

स्वतन्त्र स्थापत्य के साथ-साथ क्रीट में रिलीफ स्थापत्य भी उन्नत अवस्था में था। इसके तीन उदाहरण विशेष उल्लेखनीय हैं—प्रथम है राज-पात्र (Chieftain Vase) जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

(१) इसमें राजसी वेश-भूषा में राजा अटेंशन की स्थिति में खड़ा है। उसके दक्षिण हस्त में राजदण्ड है जिसे उसने पृथ्वी के ऊपर स्थापित कर रक्खा है। उसके सम्मुख सेनापति का चित्र है जो आदरपूर्वक अटेंशन में खड़ा है। सेनापति के पीछे पंक्तिबद्ध सैनिक हैं। कोन (Cone) ये छोटे से स्थान पर इस प्रकार का सजीव चित्र अंकित करना एक दक्ष कलाकार का ही कार्य था।

(२) इसी प्रकार एक द्वितीय कोन (Cone) है जो चार भागों में विभाजित है। तीन में मुष्टिका-युद्ध प्रदर्शित किया गया है। चौथे में दो वृषम कूदते-भागते दिखाई देते हैं। युद्ध की प्रत्येक घटना—मुष्टिका-प्रहार, आत्मरक्षा, आहत होकर एक का पतन तथा दूसरे का विजयोल्लास इतनी सजीवता से प्रदर्शित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया गया है कि प्रत्येक घटना एक नाटक-सी प्रतीत होती है ।

(३) तृतीय उदाहरण एक आयताकार पात्र का है। इस पर परिश्रम करने के पश्चात् घर लौटता हुआ सामान्य व्यक्तियों का समुदाय प्रदर्शित है। प्रत्येक के हाथ में एक उपकरण है जिससे जैतून नीचे गिराये जाते थे। इस समुदाय का नेतृत्व उनका सरदार कर रहा है जो कदाचित् अपने महत्व की भावना से हँस रहा है। बीच में चार गायक हैं जो जोर-जोर से गा रहे हैं।

ग्लोज नामक विद्वान का कथन है कि यदि पूर्वैतिहासिक क्रीट की समस्त वस्तुयें नष्ट हो जायँ और केवल यही तीन चित्र अवशिष्ट रहें तो भी इनके आधार पर हमें क्रीट की संस्कृति, सभ्यता, आमोद-प्रमोद एवं कला की उत्कृष्टता का सम्यक् ज्ञान हो सकता है।

कुम्भकार-कला—इस कला में भी क्रीट-निवासो की प्रतिभा पर्याप्त रूप से चमकी थी। उत्खनन में मिट्टी की बनी हुई प्रचुर सामग्री—प्याले, तश्तरियाँ, बर्तन, घड़े, दीपक, खिलौने, मूर्तियाँ इत्यादि—उपलब्ध हुई हैं। यह सामग्री विविध-प्रकार और रंगों में है। इसमें कुछ कृतियाँ तो इतनी सुन्दर, सुडौल और चिकनी हैं कि धातु-निर्मित प्रतीत होती हैं। अनेक उपकरणों के रंग सहस्रों वर्षों के कालातिपात के पश्चात् भी अति नूतन प्रतीत होते हैं। प्रारम्भ में कुम्भकार अपने हाथ से वस्तुओं का निर्माण करता था। परन्तु मध्य मिनोआ-काल तक क्रीट में चाक का आविष्कार हो गया था। इस अविष्कार ने कुम्भकार-काल के विकास को प्रभूत प्रोत्साहन दिया। अन्तिम मिनोआ-काल इस कला के चरमोत्कर्ष का काल था। इस काल में कुम्भकारों ने अत्यन्त सुन्दर, चिकनी और पतली कृतियों का निर्माण किया था। अनेक कृतियों के ऊपर कुम्भकारों के नाम तथा व्यक्तिगत चिन्ह भी मिलते हैं। इससे इस कला में विशिष्टीकरण का बोध होता है।

वस्तु-कला—इस कला का ज्ञान हमें क्रीट के राजप्रसादों, भवनों और मकबरों के ध्वंसावशेषों से प्राप्त होता है। नोसास का राजभवन श्वेत पाषाणों से निर्मित था। यह अपनी भव्यता और विशालता के लिये आज भी प्रसिद्ध है। टिरिन्स का राजभवन तो इतना विशाल और सुन्दर था कि उसे देखकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यूनानियों को यह विश्वास ही न होता था कि मानवकृति है। इन राजभवनों में अनेक कक्षों, स्नानागारों, नालियों, वातायनों तथा सीढ़ियों आदि की व्यवस्था थी। निर्माताओं ने इनके निर्माण में स्वस्थता और वायु-शुद्धता का विशेष ध्यान रक्खा था। राजप्रासादों के अतिरिक्त अन्य सामान्य भवनों के ध्वंसावशेष भी उपलब्ध हुए हैं। जैसा कि पीछे उल्लेख किया गया है, वासिलिको (Vasiliki) में पूर्व मिनोअन काल के एक भवन के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। यह आयताकार था। यद्यपि इसके प्राचीर, छत और फर्श ईंट, मिट्टी और लकड़ी की सहायता से निर्मित थे तथापि इसका आधार पाषाण का था। इसमें कम से कम दो मंजिलें थीं। केवल निचली मंजिल में ही २० कक्ष थे। भवन की विशालता को देखते हुए यह अनुमान होता है कि यह किसी विशाल सम्मलित परिवार का आवास था।

एक दूसरा भवन मध्य मिनोअन काल का है। यह चमेज़ी (Ghamaizi) में मिला है। यह भी एक विशाल भवन है। इसके वाह्य प्राचीर अत्यधिक चौड़े और मोटे हैं। बाहर से इसमें केवल एक द्वार है जो भीतर जाते-जाते संकीर्ण होता जाता है। ऐसा विदित होता है कि इस प्रकार की योजना वाह्य-आक्रमण से रक्षा करने के लिये बनाई गई थी। इसके भीतर लगभग छोटे-बड़े बारह कमरे हैं। अधिकांश कमरों में एक-एक द्वार है। परन्तु एक कमरा ऐसा हैं जो चतुर्दिक दीवारों से घिरा हुआ है। इसमें कोई भी प्रवेश द्वार नहीं है। कदाचित् इसके भीतर जाने के लिये सीढ़ी का प्रयोग करना पड़ता है। इन कमरों की फर्श मिट्टी की बनी थी और इसमें प्रकाश-व्यवस्था भी न थी। इसके निवासी अधिक धनी नहीं थे। उत्तरोत्तर मकानों और कमरों का आकार छोटा होता जाता है। अतः निष्कर्ष यह है कि बड़े परिवार छोटे-छोटे परिवारों में टूटने लगे थे।

मकबरे—जिस प्रकार ये मनुष्य इस लोक में सम्मिलित रूप से रहते थे उसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् भी रहना चाहते थे। यही कारण है कि इनमें सामूहिक दफन की प्रथा थी। गोर्निया (Gournia) में कुछ मकबरे ऐसे मिले हैं जिनमें समस्त परिवारों के अस्थि-पंजर उपलब्ध हुए हैं। ये मकबरे आकार में मधुमक्खी के छत्ते के समान गोल होते थे। इन्हें थोलोज (Tholos) कहते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
हैं। ये भी पाषाण-आधार पर मिट्टी के बने होते थे। शवों के सम्मान में यज्ञ किये जाते थे। उनके साथ हाथी दाँत की सिलें, पत्थर और संगमरमर के पात्र, हथियार, मूर्तियाँ, आदि वस्तुयें मिली हैं। कालान्तर के मकबरे भी छोटे हैं जिससे समूह (Clan) के विघटन का पता चलता है। सामूहिक मकबरों के स्थान पर व्यक्तिगत मकबरे बनने लगे।

अन्य कलाओं को देखते हुए क्रीट की वास्तुकला अपेक्षाकृत हीन थी। भवनों में विशालता तो होती थी, परन्तु उसमें सुडौलता और अनुपात का अभाव था। उपयोगिता के भार से उनकी कलात्मकता जर्जरित हो गई थी। उनका आन्तरिक भाग तो सुन्दर होता था, परन्तु बाह्य अत्यन्त उपेक्षित रहता था।[१]

लिपि, साहित्य, विज्ञानादि—क्रीट (Crete) की लिपि अज्ञात है। अभी तक जितने भी लेख प्राप्त हुए वे पढ़े नहीं जा सके हैं। हमें केवल कतिपय शब्दों का ही ज्ञान है जो यूनानी अथवा मिस्री शब्दों से समता रखते थे। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यूनान ने दो प्रकार की लिपियों का विकास किया था—चित्र प्रधान (Hieroglyphic) और रेखा प्रधान (Linear) परन्तु जब तक उनकी लिपि का ज्ञान हमें नहीं होता तब तक हम निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि इस सभ्य जाति ने साहित्य और दर्शन में कितनी प्रगति की थी।

परन्तु विज्ञान क्षेत्र में हमें कुछ ज्ञान होता है। क्रीट-निवासी नाविक थे। अतः वह स्वाभाविक ही था कि उन्होंने ज्योतिषशास्त्र का कुछ ज्ञान अवश्य प्राप्त किया होगा। कदाचित् उन्होंने कलेंडर (Calender) का भी निर्माण किया था। मिस्र-निवासियों ने क्रीट से अनेक औषधियों का ज्ञान प्राप्त किया था। यह शब्द-साम्य से सिद्ध होता है।

उत्खनन में उपलब्ध सामग्री के आधार पर विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचे

१. The Arehitecture of Crete may be said to have resembled the modern international style in its sacrifice of form to utility and in its emphasis upon a pleasing and livable interior as more important than external beauty.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं कि राजप्रासादों में नाट्यकक्षायें थीं जिनमें लगभग ४०० अथवा ५०० व्यक्तियों के बैठने का स्थान था । नाटकों के संगठन अथवा आकार-प्रकार के विषय में हम अंधकार में हैं। कदाचित् ये संगीत और नृत्य के सम्मिश्रण होते थे। नृत्य एवं संगीत करते हुए स्त्री-पुरुषों के अनेक चित्र मिले हैं । इन्हीं से नाटकों का उद्भव हुआ होगा। वाद्यों में हमें वीणा, बाँसुरी और शंख का ही ज्ञान हैं ।

ईजियन सभ्यता का उद्भव—ईजियन सभ्यता का उदय कहाँ से हुआ, इस प्रश्न का उत्तर देना नितान्त कठिन है। कतिपय उभयनिष्ठ विशेषताओं के आधार पर स्पेंग्लर महोदय ने इस मत का प्रतिपादन किया है कि यह सभ्यता मिस्र-सभ्यता की उपशाखा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ईजियन संसार के धर्म और कला पर मिस्र-प्रभाव स्पष्ट है, तथापि अन्य क्षेत्रों में दोनों सभ्यताओं में भारी भिन्नता है । दोनों की लिपियाँ पृथक्-पृथक् हैं। मिस्र का धर्म नैतिकता-प्रधान है। परन्तु ईजियन धर्म में इस प्रकार की किसी भी वस्तु का विकास न हो सका। मिस्र की कला का आधार विशालता है। उसके पिरामिड इस विशेषता के सदैव साक्षी रहेंगे परन्तु ईजियन संसार की कला का आधार लघुता है। वहाँ विशाल कृतियों का अभाव रहा है। मिस्र का निवासी समष्टिवादी था। राज्य के हित के लिये, समष्टि के हित के लिये, वह आत्मोत्सर्ग में विश्वास करता था। इसके विरुद्ध ईजियन निवासी व्यक्तिवादी था। उसके समस्त कार्य व्यक्तिगत सुखाकांक्षा के उद्देश्य से होते थे। अतः इन भारी विभिन्नताओं के रहते हुए ईजियन सभ्यता को मिस्र की सभ्यता की उपशाखा कहना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता। सामान्य समानता तो ईजियन सभ्यता और एशिया माइनर की इण्डो योरोपीय सभ्यताओं में भी है, यथा मातृदेवी की पूजा, पाषाणस्तम्भ, मिट्टी के टिकड़ी (Tablets) पर लेखन; मापदण्ड इत्यादि। परन्तु एक मात्र इसी आधार पर यह कोई नहीं कह सकता कि ईजियन सभ्यता का जन्म पूर्णतया एशिया माइनर की सभ्यता से ही हुआ। इस विषय पर विल ड्यूरेण्ट महोदय का मत महत्वपूर्ण है। उनका कथन है कि जाति की दृष्टि से क्रीट सभ्यता एशियाई थी, कला की दृष्टि से मिस्री, परन्तु

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सारतः और सम्पूर्णतः वह सबसे पृथक थी ।[१]

इस विद्वान का विश्वास है कि उत्तर पाषाण-काल से ही पूर्वीय भूमध्य सागरीय प्रदेश में एक विशिष्ट प्रकार की सभ्यता का विकास हो रहा था। इस व्यापक सभ्यता के ही अनेक अङ्ग इस प्रदेश के भिन्न-भिन्न देशों ने ग्रहण किये और अपनी देशीयता के आधार पर उसे अपने रूप में विकसित किया। इस प्रकार समान आधार होते हुए भी भिन्न-भिन्न देशों की सभ्यता में विभिन्नता आ गई। क्रीट ने भी इसी सभ्यता के अनेक उपाङ्गों को ग्रहण किया और कालान्तर में अपनी परिपक्वावस्था में इसे अपनी विशिष्ट सभ्यता के अनेक उपाङ्गों को डिया भी। परन्तु आधुनिक पुरातत्त्व गवेषणाओं के आधार पर प्रसिद्ध विद्वान हटचिन्सन एवं वीनबर्ग ने इसकी उत्पत्ति का प्राथमिक केन्द्र अनातूलिया का पठार बताया है। अपने मत के समर्थन में उन्होंने मानवीय अवशेषों एवं कलात्मक वस्तुओं जैसे आसीन स्त्रियों की मूर्तियाँ इत्यादि इसी प्रकार गार्डन चाइल्ड ने लेखन शैली के आधार पर इसकी उत्पत्ति भूमध्य सागरीय देशों को निर्धारित किया है।

क्रीट का पतन—अनेक सभ्यताओं की भाँति क्रीट की सभ्यता का भी उद्भव हुआ, विकास हुआ और कालान्तर में पतन। निश्चित साक्ष्यों के अभाव में यह कहना बड़ा कठिन है कि इस पतन के कारण क्या थे? विद्वानों ने अनुमान द्वारा कतिपय कारणों को प्रस्तुत किया। इसमें से कोई भी एक अथवा अनेक कारण क्रीट के पतन के लिए उत्तरदायी हो सकते हैं —

(१) कठोर साधना से राष्ट्र का उदय होता है और चिर-विलासिता से उसका पतन।[२] कदाचित् यही सत्य क्रीट के साथ भी घटित हुआ। समृद्धि के साथ-साथ क्रीट निवासियों में विलासिता आ गई और उसने राष्ट्र को जर्जरित कर दिया।

---

१. "Let us beleive that in is racial origins, the Cretan culture was Asiatic, in many of its arts Egyptian; in essence and total it remained unique."

२. 'A nation is born Stoic and dies Epicurean'.
—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) आन्तरिक युद्धों ने क्रीट की शक्ति को क्षीण किया। इनमें देश के शूरकर्मा मारे गये और जो अवशेष रहे वे नितान्त कायर एवं भीरू थे। इनसे देश की रक्षा की आशा दुराशा मात्र थी।

(३) कदाचित् बाह्य आक्रमण हुए।

(४) क्रीट की समृद्धि का कारण उसका सामुद्रिक प्रभुत्व था। उसके आन्तरिक साधन अत्यल्प थे। वह विदेशीय व्यापार के ऊपर ही निर्भर था। परन्तु इख्नाटन की मृत्यु के पश्चात् मिस्र और क्रीट के बीच व्यापार अवनत हो गया। इससे क्रीट को भारी आघात लगा।

(५) क्रीट के उच्चवर्ग की विलासिता का आधार कदाचित् जन-साधारण का शोषण था। सम्भव है कि शोषित वर्ग ने इस अत्याचारी शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया हो और गृह-युद्ध में ही क्रीट नष्ट-भ्रष्ट हो गया हो।

(६) कदाचित् क्रीट में भारी भूकम्प आ गया। जिसने उसके सभ्यता-केन्द्र को धूल-धूसरित कर दिया।

ईजियन सभ्यता की देन—ईजियन सभ्यता उन नक्षत्र के समान न थी जो अचिर प्रकाश के पश्चात् तिरोहित हो जाता है। इस सभ्यता का प्रभाव चिरस्थायी था। क्रीट के विनाश के पश्चात् भी संसार के भिन्न-भिन्न प्रदेश, विशेषतया यूनान, उसकी सांस्कृतिक देन से लाभ उठाते रहे।[१] यह देन अनेक क्षेत्रों में थी —

(१) क्रीट निवासी संसार के सर्वप्रथम नाविक थे। उनका जीवन सामुद्रिक

---

१. 'Greek civilisation, the mother of the civilisation of Rome and the West is the daughter of Aegean civilisation;' In spite of many transformations, Greece has reased its heritage.. The further Science advances the more it realises that Minoan. Greece bears to Minoan Greece almost the same relation as the Italian Renaissance bore to the Graeco-Roman civilisation.'

—Reinach

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। अतः उन्होंने सामुद्रिक जीवन की गति-विधि का अध्ययन किया और समुद्र-शास्त्र का सृजन किया। किस ऋतु में, किस मार्ग से कैसे समुद्र-यात्रा की जाय, इन बातों का गहन अध्ययन सर्वप्रथम ईजियन संसार के निवासियों ने ही किया। ईजियन सागर नाविकों का शिक्षणालय बन गया। इसके अनुसंधान, अनुभव एवं पाठ यूनान को ही नहीं वरन् समस्त संसार को प्राप्त हुए। समुद्र-विद्या का ज्योतिर्विद्या के साथ घनिष्ठ संबंध है। नाविक नक्षत्रों की गति-विधि से काल, मार्ग तथा वातावरण का ज्ञान प्राप्त करता है और इस प्रकार ज्योतिर्विद्या का ज्ञान प्राप्त करता है। यही ईजियन निवासियों के साथ भी हुआ। उन्होंने भी समुद्र-शास्त्र के साथ ज्योतिषशास्त्र का विकास किया। कालान्तर में उन्होंने यह विद्या भी यूनानियों को दी।

(२) संसार में विस्तृत सामुद्रिक व्यापार और औपनिवेशीकरण का प्रयोग सर्वप्रथम क्रीट निवासी ने ही किया। समस्त ईजियन तथा भूमध्यसागर में इसने अपने आवासों की स्थापना की। इस विशाल प्रदेश में किसी भी देश का व्यापार ऐसा न था जो किसी न किसी रूप में क्रीट-निवासी से संबद्ध न हो। १५५० ई० पू० तक साइप्रस उसके प्रभाव में आ चुका था। बहु-संख्यक क्रीट-निवासी इस टापू में जाकर बस गये थे। साइप्रस का अधिकांश टीन क्रीट को निर्यात होने लगा उसका अन्य देशों के साथ होने वाला व्यापार भी क्रीट-निवासी की मध्यस्थता से होने लगा।

१६०० ई० पू० के लगभग क्रीट ने सीरिया और फिलीस्तीन के तटों पर भी पदार्पण किया। धीरे-धीरे इन देशों का व्यापार भी उसके हाथ में आ गया। वह यहाँ अपने देश की बनी हुई हाथी दाँत की वस्तुएँ एवं सुगन्धित पदार्थ बेचता था और इनके बदले में यहाँ के घोड़े अपने देश ले जाता था।

मिस्र और ईजियन संसार का सम्बन्ध तो प्राचीन है। क्रीट-निवासी मिस्र से पूजा-पात्र, धातुयें एवं प्रसाधन-सामग्री ले जाता था और वहाँ अपने देश के तेल और मदिरा का विक्रय करता था।

पश्चिम में इटली, सिसली और साइबेरिया के देशों में क्रीट की बहुमूल्य

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लकड़ी और टीन भेजी जाती थी। बहुसंख्यक क्रीट-निवासी इन प्रदेशों में आकर बस गये थे।

इस प्रकार क्रीट-निवासियों द्वारा संसार में अन्तर्देशीय व्यापार एवं उपनिवेश-स्थापन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ।

(३) संगठित रूप में सामुद्रिक लूट (Piracy) का प्रयोग भी ईजियन निवासी ने ही किया। कालान्तर में यह सर्वत्र सामुद्रिक जीवन का एक अंग बन गया।

(४) क्रीट पतन के पश्चात् सर्वप्रथम संसार को किसी देश के एक मात्र सामुद्रिक शक्ति होने की हानियाँ स्पष्ट हो गईं। सामुद्रिक प्रभुत्व से क्रीट का उत्कर्ष अवश्य हुआ परन्तु उसकी सम्पूर्ण समृद्धि, संस्कृति एवं शक्ति समुद्र पर निर्भर हो गई। परिणाम यह हुआ कि जिस समय उसकी सामुद्रिक शक्ति का ह्रास हुआ तो उसके साथ-साथ राष्ट्रीय वैभव एवं संस्कृति-सभ्यता का भी।

(५) ईजियन संसार की सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था अत्यन्त उदार तथा स्वतंत्रता-प्रधान थी। उसमें दासता, दण्डविधान की कठोरता, शासन की असह्य निरंकुशता, बेगार और अनिवार्य सैनिक भर्ती का अभाव था। कला भी व्यक्तिवादिता पर निर्भर थी। कलाकार के ऊपर न राजनीति का अंकुश था और न धर्म का निरोध। वह नितान्त स्वच्छन्द वातावरण में पनपी थी। ईजियन की ये स्वतन्त्र भावनायें यूनान पहुँचीं और वहाँ से शेष योरप में।

(६) अन्य देशों के ऊपर ईजियन संसार का धार्मिक प्रभाव भी कुछ कम नहीं है। डिओडोरस नामक विद्वान् का कथन है कि क्रीट-निवासियों का यह दावा था कि उन लोगों ने देवार्चन, यज्ञ और संस्कारों के जो विधि-निषेध बनाये उनका अनुसरण अन्य लोगों ने किया। इस दावा में पर्याप्त सत्य है। ईजियन संसार की मातृदेवी यूनान, एटिका, आर्केडिया और साइप्रस में भी प्रतिष्ठित हुई। क्रीट के अनुकरण पर ही यूनान ने अपने अनेक पूजा-गृह पर्वत शिखरों पर बनाये।

(७) क्रीट-निवासी का जीवन अत्यन्त आमोदप्रमोद-मय था। उसने संगीत एवं गान के सम्मिश्रण से नाट्य-शास्त्र को जन्म दिया। उसके उत्सवों में मल्ल-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युद्धों और मानव-पशु-युद्धों का आयोजन होता था। यूनानियों ने यह सब कुछ उसी से सीखा। यूनानी लायर (Lyre) तथा ओलम्पिक क्रीड़ायें एवं प्रतियोगितायें क्रीट के प्रभाव से ओत-प्रोत हैं।

(८) प्लूटार्क नामक विद्वान् का स्पष्ट कथन है कि स्पार्टा ने अपनी शारीरिक शिक्षा के अनेक नियमों का निर्माण क्रीट के अनुकरण पर किया।

(९) क्रीट का नागरीय संगठन स्वस्थता के विकसित नियमों के आधार पर हुआ था। गन्दे पानी को बाहर निकालने को उसकी नालियों की व्यवस्था आधुनिक युग के लिये भी प्रशंसनीय है। इवांस महोदय का कथन है कि 'वर्तमान काल में भी बहुत ही कम राष्ट्रों ने उस वैज्ञानिक ढंग हर स्वास्थ्य के लिये उस प्रकार का प्रबन्ध किया है।' इसी प्रकार उसके सामाजिक संगठन की सबसे अधिक उल्लेखनीय विशेषता है उसकी नारियों की उन्मुक्त स्वतन्त्रता। क्रीट की इन विशेषताओं ने संसार की विचारधारा को कुछ कम प्रभावित नहीं किया।

(१०) क्रीट की माप-तौल को यूनानियों ने ग्रहण किया।

(११) व्यापारिक सम्पर्क ने साइप्रस, सीरिया, फिलिस्तीन, इटली, सिसली आइबेरिया, फोनेशिया आदि देशों पर क्रीट का प्रभाव डाला, विशेषतया इन देशों के पात्रों एवं विविध कलाकृतियों का निर्माण ईजियन कला से प्रभावित है। साइप्रस के धर्म और भाषा, सीरिया की महिला वेश-भूसा, फिलिस्तीन की लेखन-शैली एवं कृषि-कला, इटली और सिसली के पात्र और तलवार, आइबेरिया के परशु, कपोती और वृषभ-शीश तथा फोनेशिया की वर्णमाला पर ईजियन प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। इस प्रकार ईजियन सभ्यता विश्व के इतिहास के कुछ इने गिने अध्यायों में मानी जाती है, जहाँ समाज के प्रत्येक वर्गों को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। उन्हें राजकीय निरंकुशता एवं पुरोहित वर्ग के दण्डों का कोई भय नहीं था जिससे लोगों को बुद्धि के विकास को सर्वप्रथम स्वतंत्र वातावरण प्राप्त हुआ।[१]

---

[१] "It was one of the few in ancient times which assured to even its humblest citizens a reasonable share of happiness and prosperity free from the tyranny of a despotic state and crafty pristhood."

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ७

हिब्रू सभ्यता

प्रसिद्ध अँग्रेजी इतिहासकार बकेल एवं मांटेस्क्यू ने हिब्रू सभ्यता की उत्पत्ति के विषय में ठीक ही लिखा था कि प्राचीन सभ्यता के किसी पर भूगोल का इतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ा जितना कि हिब्रू सभ्यता पर। आधुनिक फिलीस्तीन से लगभग १५० मील दक्षिण में एक ऐसी सभ्यता का जन्म हुआ जिसने भविष्य के लगभग दो हजार वर्षों के इतिहास की नींव डाली। यद्यपि वे कला तथा विज्ञान से वंचित रहे फिर भी धार्मिक जगत् में उनकी क्रान्ति विशेष उल्लेखनीय है। इसी कारण से वे आज भी दूर होते हुये हमसे बहुत नजदीक हैं।[१]

हिब्रूओं की उत्पत्ति

अभी तब हिब्रुओं की उत्पत्ति के विषय में कोई एक मत पूर्णरूपेण नहीं स्थिर हो सका है। वे पृथक जाति के न थे और न तो उनकी शारीरिक विशेषतायें तथा आकार-प्रकार ही उनको उनके अन्य पड़ोसी राष्ट्रों से भिन्न प्रमाणित करते हैं। चूंकि वे अपने शत्रुओं द्वारा "खबीरू" अथवा "हबीरू" (Habiru) नाम से पुकारे जाते थे (जो विदेशी अथवा पर्यटनशील का

---

१ "Of all the peoples of ancient orient none with the possible exception of egyptians has been of greater importance to the mordern world than the Hebrews. It was they of course who provided us with concept of God morality and profonudly in planned the modern notions in which the calvinist faith has been strong."

—Burns.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समानार्थक है) अतः आगे चल कर ये "हिब्रू" कहलाये। प्रारम्भ में यद्यपि ये अरब में निवास करते थे किन्तु कालान्तर में इनका निवासस्थान फिलिस्तीन (Palestine) हो गया था। बाइबिल की कथा में हिब्रू जाति के आदि-पुरुष को 'अब्राहम' कहा गया है। कतिपय प्रारम्भिक विद्वानों का यह विश्वास था कि पशुओं के लिये चरागाह आदि की तलाश में वह इधर-उधर घूमता फिरता था। परन्तु आधुनिक अनुसंधानों द्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि जब अब्राहम अर नामक नगर से फिलस्तीन को प्रस्थान कर रहे थे तो राजा और राजकुमार इस वर्ग के लोगों का काफी सम्मान करते थे। फिलस्तीन में आकर इस जाति के लोगों ने अपना पर्य्यटनशील जीवन सदा के लिये त्याग दिया। प्राचीन काल में यह प्रदेश बहुत उर्वर न था और इसके निवासियों को अपनी उदरपूर्ति के लिए नाना प्रकार की आपत्तियों का सामना करना पड़ता था। यही कारण था कि जब लगभग १४वीं शती ई० पू० वहाँ एक भयंकर अकाल पड़ा तब उसके भयंकर परिणाम से बचने के लिये उन्हें मिश्र की शरण लेनी पड़ी थी। कदाचित् इनके कतिपय फिरके डेल्टा के पास आ बसे थे जहाँ मिस्र के राजा फेरोह द्वारा इन्हें दास बना लिया गया था और भाँति-भाँति की यातनायें दी जाती थीं। किन्तु शीघ्र ही उनके बीच एक विलक्षण पुरुष का जन्म हुआ जो मूसा (Moses) कहलाया। यह न केवल एक संगठनकर्ता वरन् एक महान स्मृतिकार भी था। इसी ने हिब्रुओं को मिस्री दासता और क्लेश से मुक्त कराया और उन्हें पुनः फिलस्तीन ले गया। उसने हिब्रुओं के विभिन्न फिरकों को राजनीतिक एकता के सूत्र में बाँध एक शक्तिशाली संघ की स्थापना की जिससे कैनानाइट लोगों के देश (Land of Cannans) फिलस्तीन पर विजय सम्भव हो सकी। फिलस्तीन में हिब्रुओं के पुनरागमन के पूर्व ही सैमिटिक भाषाभाषी कैनानाइट लोग रहते थे जिन्होंने बैबीलोन, हिटाइट तथा मिस्र के सम्पर्क के परिणाम स्वरूप अपनी सभ्यता का अच्छा विकास कर लिया था। कुछ दिनों तक दोनों जातियों में युद्ध होते रहे किन्तु कालगति के साथ ही आदिवासी हिब्रुओं में घुल-मिल गये और आपस में शादी-विवाह तथा खान-पान भी प्रारम्भ हो गया। अभी वे अपनी स्थिति अच्छी तरह सुदृढ़ भी न कर पाये

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे कि अन्य शत्रुओं का सामना करना पड़ा जो एजियन सागर के क्रीट आदि द्वीपों से आ बसे थे और कैनानाइट लोगों से भी दुर्दमनीय थे। इनके आक्रमण के आतंक से हिब्रू हताश न हुए वरन् उन्होंने सुदृढ़ संगठन किया।

राजनीतिक उत्थान तथा पतन

केवल इतना ही नहीं, इस आतंक के फलस्वरूप उनमें सरदार के स्थान पर राजा की प्रथा की नींव पड़ी। अभी तक शासनाधिकार न्यायाधीशों के हाथ था जिनके अधिकार धर्म नेताओं से अधिक बढ़े-चढ़े थे। उन्होंने अपना राजा बेंजामिन फिरके के एक योग्य सदस्य को बनाया जिसका नाम साल था। राजा साल के राजत्व काल में हिब्रू यद्यपि संगठित हुए और जिसके फलस्वरूप वे फिलस्तीनों के आक्रमण को रोकने में समर्थ हो सके किन्तु फिर भी उसका शासन न तो राष्ट्र के लिये और न स्वयं उसके लिये ही गौरवमय कहा जा सकता है। उसकी जीवन-लीला का अन्त फिलस्तीनों से युद्धों में आहत होने पर हुआ।

राजा साल के उपरान्त उसका जामाता डेविड सिंहासनारूढ़ हुआ। वह एक वीर पुरुष था और उसने जेरुसलम को जीत कर अपनी राजधानी बनायी। उसका शासन काल हिब्रू इतिहास में स्वर्ण-युग के समान गौरवमय है। उसने हिब्रुओं के १२ फिरकों के समस्त भेद विभेदों को दूर किया और उन्हें सुदृढ़ एकतंत्र का रूप दिया। डेविड के उपरान्त उसके पुत्र सालोमन के शासन में देश समृद्धि को पराकाष्ठा पर पहुँच गया। कदाचित् इसीलिये हिब्रू गीतों में उसे उनके इतिहास में सबसे मेधावी न्यायप्रिय तथा प्रतिभाशाली चित्रित किया गया है। हिब्रुओं के धार्मिक ग्रंथों में ऐसा आता है कि उसने इजरायल के देवता से प्रभूत धन प्राप्त किया और उस धन का एक अंश एक विशाल सुवर्ण मन्दिर के निर्माण में व्यय किया था। यही नहीं, वह एक कुशल राजनीतिज्ञ तथा वाणिज्य का परम संरक्षक भी था। वह पूरब के अनेक निरंकुश राजाओं के वैभव और विलास का अनुकरण करना चाहता था, उसके पास धन की कोई कमी न थी। फलस्वरूप वह अपनी आय का बहुत बड़ा अंश इन्द्रिय-सुखों में व्यय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने लगा उसके अन्तःपुर में ७०० पत्नियाँ तथा ३०० रखैल स्त्रियाँ थीं। उसने अपनी राजधानी में वैभव प्रदर्शन के हेतु विशाल भवनों का निर्माण कराया और राजधानी में किलेबन्दी भी कराई। उसके देश में भवन निर्माण सम्बन्धी सामग्री का अभाव था अतः उसने विदेशों से प्रभूत मात्रा में आयात किया। रुपयों के स्थान पर उसने २० नगरों को दे दिया और एक प्रथा (Corvee) प्रारम्भ की जिसके अनुसार प्रत्येक तीन महीने के पश्चात् तीस हजार हिब्रू निवासियों को फिनीशिया में राजा हिराम की खानों तथा जंगलों में मुफ्त काम करने भेजा जाता था। यहीं के राजा से अनेक बहुमूल्य मसाले उसने मँगाये थे।

सोलोमन के भोग-विलास तथा अत्यधिक कर की नीति ने प्रजा में असंतोष के बीज बो दिये। ऐसा कहा जाता है कि स्वयं उसके जीवन के अंतिल काल में कुछ नबियों ने उसके विरुद्ध ईश्वर से प्रार्थना की थी। ६३५ शती, ई० पू० में उसकी अकस्मात् मृत्यु हिब्रू राज्य के विभाजन का सुअवसर बन गई। उत्तर के दस फिरकों ने उसके पुत्र को अपना राजा न मान कर अपना एक स्वतन्त्र राज्य घोषित किया जिसका नाम "इजरायल" रखा। दक्षिण के अवशिष्ट दो फिरकों ने जूडा के नाम से पृथक राज्य की घोषणा की जिसकी राजधानी जेरूसलम को ही बनाये रखा इस समय तक उत्तर के हिब्रू दक्षिण की अपेक्षा अधिक सभ्य संस्कृत हो चले थे। ये दोनों राज्य परस्पर स्वतंत्र रहे और लगभग दो शती तक स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रहे, किंतु लगभग ७२२ शती ई० पू० में उत्तर का राज्य आर्थिक दृष्टि से अधिक सम्पन्न होने के नाते असीरियन नरेश की साम्राज्य-वर्द्धिनी शक्ति की लोलुपता का ग्रास हुआ। दक्षिण का राज्य भी जिनका नाम जूडा था, केवल एक शती तक और जीवित रहा क्योंकि बैबिलोनिया के शासक नेबूकड्रेजार के नेतृत्व म कैल्डियन लोगों ने उसे भी पदाक्रान्त कर डाला; उनके प्रमुख नगर जेरूसलम को अग्नि की लपटों में छोड़ दिया और नगरवासियों को बन्दी बना लिया। जब पारसीक नरेश साइरस (Cyrus) ने कैल्डियन लोगों पर विजय की तो बन्दी हिब्रुओं को मुक्त कर दिया और उनको जन्मभूमि वापस जाने की भी आज्ञा दे दी। किंतु अब तक उनका समस्त उत्साह और शक्ति नष्ट हो चुकी थी। जो कुछ लौटे भी वे राजनीतिक संगठन न कर सके। ३३२ ई० पू० में

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिकन्दर की विजयी सेनाओं ने इस प्रदेश में प्रवेश किया और उसके बाद यह मिस्र के तोलेमी नरेशों के अधीन रहा। आज वे द्वितीय महायुद्ध के बाद से "इजरायल" के नाम से एक संयुक्त राष्ट्र है।

यहूदी (हिब्रू) सभ्यता—धर्म

वस्तुतः हिब्रू सभ्यता की सबसे महान देन धर्म के क्षेत्र में है। ध्यान देने की बात है कि हिब्रू धर्म का विकास धीरे-धीरे हुआ है। हिब्रुओं के मिस्र एवं एशिया के अन्य सभ्य देशों के मध्य में स्थित होने के कारण उनके धर्म पर भी कोई एक प्रभाव नहीं परिलक्षित होता है। फिर भी हिब्रू धम की अनेक अवस्थायें अथवा स्थितियाँ हैं। प्रथमतः हम मूसा-पूर्व स्थिति (Pre-Mosaic Stage) पर विचार करेंगे जो प्रारम्भ से लेकर ११०० शती ई० पू० तक ठहरती है। अभी तक वह "ब्रह्मवाद" (Animism) में विश्वास करते थे, वृक्षों, पवित्र जलाशयों तथा झरनों आदि में निवास करने वाली आत्माओं की पूजा करते थे। इस काल में विभिन्न प्रकार के जादू-टोने, पिशाच-विद्या, बलि आदि क्रियाओं का भी बहुप्रचलन था। शनैः-शनैः उन्होंने ईश्वर को मानव के रूप में देखना शुरू किया। भिन्न-भिन्न फिरकों के अपने पृथक स्थानीय देवता थे। अभी तक समस्त हिब्रू जाति की आराधना का एकमात्र केन्द्र जेहोवा (Jehovah) न हो सका था।

तत्पश्चात् १२वीं शती से ९वीं शती ई० पू० के काल में हिब्रू जाति की समस्त आराधना केन्द्र-बिन्दु जेहोवा हो जाता है। यद्यपि यहूदियों का विश्वास था कि जेहोवा ही उनके देवता हैं किन्तु वे अन्यान्य देवताओं के अस्तित्व को अस्वीकार न करते थे। उनके राष्ट्रीय नेता मूसा ने जेहोवा को सर्वशक्तिमान तथा न्यायप्रिय बताया। मूसा के काल में और उसके उपरान्त भी हिब्रू लोग अपने देवता जेहोवा की आराधना पूर्ण मानव आकृति में करते थे। उसके मनुष्यों की ही भाँति आँख, हाथ-पैर तथा हृदय था। उनका ऐसा विश्वास था कि अपनी पर्य्यटनशील अवस्था में मरुस्थलों में भटकते-भटकते जब वे विपदाग्रस्त हो जाते थे तब जेहोवा उन्हें शक्ति तथा आश्वासन प्रदान करता था। बहुत काल तक जेहोवा युद्ध का भी देवता माना गया क्योंकि यहूदियों का ऐसा विश्वास था कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह उनके विपक्षी कैनानाइटों के विरुद्ध उनकी ओर से लड़ा भी था। हिब्रू लोग अपने राष्ट्रीय देवता की पूजा एक मात्र पथ-प्रदर्शक, मुक्तिदाता तथा विधवाओं और अनाथों के संरक्षक के रूप में करते थे। इस अवस्था का हिब्रू धर्म न तो मूलतः नैतिक ही था और न आध्यात्मिक ही। बाइबिल के अनुसार जेहोवा ने ही मूसा को सिनाई पर्वत-श्रृंग पर "दस आदेश" (Ten Commandments) दिये थे। हिब्रुओं का ऐसा विश्वास था कि जब तक वे उन दस आदेशों का पालन करते रहेंगे कभी संकटापन्न न होंगे।

धार्मिक क्रान्ति—९वीं शती ई० पू० तक आते हिब्रू धर्म में अनेक दोष आ गये थे और इसमें सुधार की अतीव आवश्यकता थी। अन्ध-विश्वास तथा आन्तरिक दोष बहुमूर्ति पूजा अबाध गति से बढ़ रही थी। अब यहूदियों की राष्ट्रीय आराधना का केन्द्र एकमात्र जेहोवा न रहकर फिनीशियन तथा कैनानाइट बाल (सूर्य) हो गये थे। नबियों ने हिब्रू धर्म में अनेक सुधार लाने चाहे। उनके एक नबी एलिजा ने तो बाल मत के पुजारियों को स्वयं वेदी के बाहर खींच कर अपने हाथों से बध कर दिया। यद्यपि वह विदेशी देवताओं के अस्तित्व को स्वीकार करता था किन्तु उसका ऐसा विचार था कि हिब्रुओं को अपने देवता जेहोवा की ही पूजा करनी चाहिये।

उसके पश्चात् तो अनेक नबियों और पैगम्बरों ने हिब्रू धर्म में वास्तविक सुधार किये जिनमें प्रमुख नाम अमोस, होसिया, आइसेआ तथा मिका आदि पैगम्बरों के हैं। इन्होंने तीन मूलभूत सिद्धान्तों का समर्थन किया। प्रथम, यह कि समस्त विश्व का स्वामी जेहोवा है, उसके अतिरिक्त किसी की आराधना न होनी चाहिये। अन्य शब्दों में यह अद्वैतवाद (Monotheism) का प्रतिपादन था। दूसरे, जेहोवा समस्त शुभ कर्मों का सम्पादनकर्त्ता, एक मात्र न्यायप्रिय, दयालु तथा शक्तिमान है। अशुभ कर्मों का सम्पादन देवता से नहीं वरन् मनुष्यों से होता है, अतः वही उनका उत्तरदायी है। तीसरे, इन्होंने धर्म के नैतिक पक्ष पर जोर दिया और कहा कि जेहोवा कर्मकाण्ड और बलिदान से प्रसन्न नहीं होता है। वह तो पवित्र आचरण तथा पीड़ितों और निर्धनों की सहायता करने से प्रसन्न होता है।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन सिद्धान्तों में मूल हिब्रू धर्म की प्रतिच्छाया है। इस प्रकार यहूदियों ने अपने धर्म में एक क्रान्ति का संचार किया। उनके नबी आइसेआ ने जूडा के निवासियों का जेहोवा को सार्वभौमता और सर्वव्यापकता समझाई। अभी तक जूडा के निवासियों का विश्वास था कि उनका देवता उनके शत्रुओं का विनाश भी करेगा किन्तु उन्हें यह देख अतीव निराशा हुई कि जब सेनाकेरिब की सेनायें जेरुसलम के द्वार पर खड़ी थीं, जेहोवा ने उन्हें नहीं मार भगाया। इस पर आइसेआ ने स्पष्ट घोषणा की जेहोवा तो समस्त संसार पर शासन करता है। और वह समस्त संसार के प्राणियों के लिये दयालु और न्यायप्रिय है। असीरिया के आक्रमणकारी जेहोवा के कीड़े के रूप में हैं और वह जूडा निवासियों को उनके सामाजिक अत्याचारों और पापों के लिये दंड दे रहा है। साथ ही यह भी बताया कि मनुष्य के शुभाशुभ कर्म ही मुक्ति के लिये उत्तरदायी हैं।

इसी प्रकार उनके एक अन्य नबी जेरेमिआ (Jeramiah) ने कहा कि ईश्वर मानव-शरीरधारी न होकर एक पवित्र और सर्वशक्तिमान आत्मा है। अजीकिअल मानव-शरीरधारी न होकर एक पवित्र और सर्वशक्तिमान आत्मा है। अजीकिअल नामक पैगम्बर ने सामूहिक उत्तरदायित्व की विचार-धारा का विरोध करके कहा कि न पुत्र को पिता के और न पिता को पुत्र के कुकर्मों का परिणाम भोगना पड़ेगा। इस प्रकार नबियों तथा पैगम्बरों ने प्रारम्भ के युद्धप्रिय तथा विद्वेषी देवता को सर्वशक्तिशाली तथा स्नेहमय देवता में परिणत कर दिया।

कला

वस्तुतः हिब्रू जाति धर्मप्रधान होने के कारण वास्तु, स्थापत्य अथवा चित्रकारी किसी भी कला में उन्नति न कर सका। यद्यपि हिब्रुओं ने मन्दिर बनाये किन्तु वे भी कलात्मक न हो आकर्षणहीन हैं। केवल प्रार्थना के समय संगीत में वे कतिपय वाद्ययंत्रों का प्रयोग करते थे। इसका अन्य कारण कला-

१२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्मक रुचि के लिये उदासीनता भी हो सकता है। जेरुसलम का सुवर्ण मंदिर भी फिनीशियन कलाकारों की प्रतिभा का द्योतक है न कि हिब्रू जाति की प्रतिभा का—क्योंकि उनके राजा सोलोमन ने उस मन्दिर के निर्माण के लिये फिनीशिया से ही चतुर कारीगर बुलाये थे।

न्याय-विधान

कला के स्थान पर हिब्रू प्रतिभा का सर्वोच्च उन्नयन हम उसके न्याय-विधान तथा साहित्य में पाते हैं। हिब्रू न्याय-विधान हम्मूराबी के न्याय-विधान से कहीं अधिक सुविकसित तथा सहृदय प्रतीत होता है। यह न्याय-विधान ओल्ड टेस्टामेण्ट के प्रथम पाँच अध्यायों में लिखित है। इसके अनुसार निर्धन तथा अजनबी पुरुष से सहृदय का व्यवहार करना चाहिये। अन्य नियम के अनुसार यदि कोई हिब्रू दास ६ वर्ष तक अपने स्वामी की सेवा कर चुका है तो उसे स्वतंत्र होने का अधिकार है। इसमें न्यायाधीशों के जनता द्वारा निर्वाचन की व्यवस्था है और उनको न तो निर्णय में पक्षपात करने और न उपहार, भेंट आदि लेने का ही अधिकार है। इसमें जादू टोने, हिंसक और मूर्त्तिपूजक बलिदान के करने वालों के लिए मृत्युदण्ड की व्यवस्था हैं। इसी प्रकार पिता के अपराधों के लिये पुत्र को दण्ड देने की प्रथा तोड़ दी गई। साथ ही ब्याज आदि लेने की सख्त मनाही है। इस न्याय-विधान में राजा को आवश्यकता से अधिक धन एकत्र न करने दिया जाता था और न वह असीरिया या बैबीलन की भाँति निरंकुश सैनिक सत्ता ही स्थापित कर सकता था। इस प्रकार हिब्रू न्याय-विधान एक ओर तो हृदय की कोमल वृत्तियों पर तो दूसरी ओर मस्तिष्क के परम बौद्धिक तत्वों पर आधारित था।

साहित्य

हिब्रू प्रतिभा का सर्वोत्तम प्रकाशन इसके साहित्य में हुआ है जो मूलतया धार्मिक है और ओल्ड टेस्टामेण्ट तथा एपोक्राइफा (apocrypha) जैसे ग्रन्थों में सुरक्षित है। ओल्ड टेस्टामेंट ईसाई धर्म का शिलान्यास भी कहा जा सकता है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रौर इसको बहुत लोग प्राचीन इंजील भी कहते हैं। यह ग्रन्थ ३९ अध्यायों में विभाजित हैं जिन्हें 'बुक' कहा गया है। न केवल नियमों की दृष्टि से वरन् दर्शन तथा इतिहास की दृष्टि से भी इस ग्रन्थ का महत्व कम नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि दर्शन-सम्बन्धी अध्याय बाद की रचना है। इन समस्त अध्यायों की रचना ८५० ई० पू० से लेकर १५० ई० पू० तक के काल में भिन्न-भिन्न समयों पर हुई है। एक्लेज़ियास्ट्स (Ecclesiastes), ईस्थर (Esther) और डैनियल (Danial) के अध्यायों की रचना उत्तर-कालीन है। साल, सोलोमन और डेविड की ऐतिहासिक कथाओं के अतिरिक्त इसमें अनेक प्रणय-कथायें भी हैं, जैसे—रुथ (Ruth) की कथा, आइज़क और रेबेका, जैकप और रैकेल, सैम्सन और डिलायला की कथा आदि। काव्य सौष्ठव की दृष्टि से इन अध्यायों में कहीं-कहीं अंग्रेजी के बहुप्रचलित मर्मस्पर्शी वाक्य-खण्ड भी मिल जाते हैं जैसे 'ऐपिल ऑव आई' (The apple of eye) आदि। इसी प्रकार प्रणय-गीतों में सोलोमन का गीत अतिभाव-पूर्ण है। इसका विषय एक प्राचीन कैनानाइट गीत से लिया गया था जिसमें शुलेमिथ नामक उपज की देवी के अपने प्रेमी डाड के लिये उच्छृङ्खल प्रेम की अभिव्यंजना हुई है। किन्तु इसका प्राचीन अर्थ अब तक भुलाया जा चुका था। हिब्रुओं को सर्वोत्कृट साहित्यिक रुचि का प्रमाण 'जोब की पुस्तक' (The Book of Job) हैं। इसमें मनुष्य और उसके भाग्य के बीच-पूर्ण संघर्ष का सशक्त नाटकीय चित्रण है। इसका मुख्य विषय है दुष्कर्म अथवा पाप की समस्या। यह कैसे सम्भव है कि पुण्यात्मा जीवन-पर्यन्त कष्ट झेलता रहे और पापात्मा सुख चैन से जीवन यापन करे। इसका प्रमुख पात्र जोब है जो एक पुण्यात्मा होते हुये कष्ट पर कष्ट झेलता है। वह अपनी सारी सम्पत्ति नष्ट कर चुका है, सन्तान खो चुका है और स्वतः भयंकर व्याधि से पीड़ित है। वह निराशा के गहन अन्धकार में अपने को खो देता है। तत्पश्चात् उसमें तथा उसके मित्रों में पाप की समस्या पर एक दीर्घ वार्तालाप होता है। उसके मित्रों का कथन है कि आपदायें किये गये दुष्कर्मों का फल हैं और जो पश्चात्ताप कर लेता है वह मुक्ति पा जाता है। किन्तु स्वयं जोब उनके तर्कों से असन्तुष्ट हो एक स्वस्थ आशावादी दृष्टिकोण से प्रभावित हो कहता है कि जीवन का लक्ष्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मृत्यु ही नहीं है, सम्भव है उसके शुभ कर्मों का फल उसे मृत्यु के उपरान्त मिले। किन्तु शीघ्र ही विचारों के आवर्त्त-विवर्त्त में फँस वह इस निश्चय पर पहुँचता है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान आत्मा है जिसकी जब और जैसी इच्छा होती है मनुष्यों के हित को बिना बिचारे कर बैठती है। अन्त तक वह आशा तथा निराशा के द्वन्द में फँसा रहता है और किसी निश्चित विचार पर नहीं पहुँचता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ८

हिटाइट सभ्यता

मेसोपोटामियन सभ्यता एवं एजियन सभ्यता के बीच को जोड़ने वाली कड़ी हिटाइट सभ्यता है जिसका महत्त्व प्राचीन विश्व इतिहास में उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि अन्य सभ्यताओं का जैसे मिश्र सुमेरिया एवं बैबीलोनिया परन्तु आश्चर्य है कि ८० वर्ष पूर्व केवल इनका नाम ही ज्ञात था। उनके महत्त्वपूर्ण कार्यों का एकमात्र संक्षिप्त विवरण बाइबिल से मिलता है जिसमें वे अर्द्ध-सभ्य जाति की संज्ञा से विभूषित किये गये हैं। १८७० ई० में सीरिया के हमराह नामक स्थान से प्रस्तर-लेखों में उनका प्रथम लिखित इतिहास खोजा गया। तत्पश्चात् एशिया माइनर से अनेकों मिट्टी की मुहरें एवं बोगज-कोई के निकट एक शहर के भग्नावशेष प्राप्त हुये। इस स्थान पर खुदाई से एक सुसंरक्षित शहर का पता चला जिसे 'हटुसास' या 'हिटाइट' शहर कहा गया। इसके पास ही लगभग २०,००० पत्र एवं अन्य सामग्रियाँ उपलब्ध हुई जिनसे इस सभ्यता का इतिहास प्राप्त हुआ।

उपर्युक्त सामग्रियों के आधार पर हिटाइट साम्राज्य को एक विशाल साम्राज्य जिसकी सीमा एशिया माइनर से दजला-फरात तक थी, दी गई। इनका सर्वोच्च उन्नति का काल २०००-१२०० ई० पू० था। १२०० ई० पू० में उन्होंने मिश्र के विरुद्ध भीषण संग्राम किया जिससे विशेष क्षति हुई। १२०० ई० पू० के बाद फरात नदी पर स्थित 'कारकेमिश' शहर इसका केन्द्र बना और अन्ततः ७१७ ई० पू० में असीरियन, लीडियन तथा फ्रीजियन द्वारा जीत लिया गया।

हिटाइट भाषा एवं विज्ञान—यद्यपि इनका वास्तविक इतिहास एवं प्राचीन सभ्यताओं से संबंध संदिग्धपूर्ण है फिर भी मिश्र के ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर इन्हें मंगोलियन कहा जाता है जिनकी विशेषता लम्बी नुकीली नाक, चपटी आँख एवं नीचे झुका हुआ सिर है। कुछ आधुनिक विद्वान उन्हें तुर्किस्तान एवं यूनान से संबंधित करते हैं। उनकी भाषा इन्डो-यूरोपियन थी जिसका रहस्य

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय विश्व-युद्ध में होन्जी नामक विद्वान ने खोला। तबसे अब तक इनका वास्तविक इतिहास बैबोलोनियन सभ्यता के समकक्ष रखा जाने लगा है।

आर्थिक उन्नति—आधुनिक विद्वानों ने इसकी आर्थिक सभ्यता का स्तर मेसोपोटामियन के साथ रखा है। इसकी मुख्य विशेषतायें वृहद् कृषि-विज्ञान एवं वाणिज्य थे। मुख्य धातुयें चाँदी, तांबा एवं कांसा थे। उन्होंने लोहे की खोज भी की थी। व्यापार मुख्य स्रोत था।

बौद्धिक प्रगति—हजारों मिट्टी की मुहरें एवं प्रस्तरपत्रों के आधार पर इनका साहित्यिक ज्ञान कहानियों से पूर्ण था जिनमें गिलगेमश सृष्टि-रचना एवं प्रलय मुख्य थीं। दर्शन उन्हें अज्ञात था तथा धातुओं के ज्ञान के अलावा वैज्ञानिक ज्ञान का अभाव था। केवल ऋजु या वक्र प्रकार की लेखन शैली एवं शाब्दिक भाषा ही मुख्य थे।

उन्होंने कानून के क्षेत्र में लगभग २०० पेजों का एक संग्रह बनाया था जिसमें विविध विषयों जैसे समाज, नागरिक एवं राज्य की व्याख्या थी। सम्पूर्ण भूमि राजा के हाथ में थी जो सभी सैनिकों एवं विशिष्ट वर्गों को कृषि कराने के लिए दिया करता था। वस्तु का मूल्य निर्धारित था तथा पारिश्रमिक एवं वेतन की दर भी निश्चित थी।

यह कानून वास्तव में मानवीय गुणों से पूर्ण था। इसमें मृत्यु-दण्ड केवल आठ अपराधों में दिया जाता था जैसे धूर्तता, निरपराध अपहरण, चोरी इत्यादि। शरीर के अंगों का अपहरण नहीं किया जाता था केवल जुर्माना होता था। उनका विश्वास था कि न्याय की नींव एक संगठित समाज में होती है न कि शक्ति के प्रयोग में।

कला—कला केवल साधारण थी केवल कुछ ही अशोभनीय मूर्तियाँ एवं वास्तु-शास्त्र का अवशेष प्राप्त हुआ है। अधिकतर कहानियों का ही चित्रण मिलता है। मंदिर एवं राजप्रासाद विशाल थे जिन पर शेरों के चित्र बने थे।

धर्म—धर्म बहुदेववादी था जिसमें प्रधान स्थान 'अदु' नामक देवता को था जिसे प्रकाश एवं तूफानों का देवता माना जाता था। उसकी समकक्षता में एक देवी थी जिसकी 'उपजाऊ देवी' के रूप में पूजा करते थे। सूर्य देव भी पूजनीय थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिटाइट धर्म में प्रायः सभी धर्मों का संकलन है। इसमें आचार-विचार यज्ञ, पूजा, पवित्रीकरण एवं प्रार्थना इत्यादि क्रियायें सम्मिलित थीं। परन्तु नीति का कोई नाम नहीं था।

हिटाइट सभ्यता अन्य सभ्यताओं की अपेक्षाकृत एक छोटी सभ्यता थी परन्तु इसका ऐतिहासिक महत्त्व पूर्व तथा पश्चिम की सभ्यताओं को एक सूत्र में बाँधने में हैं। इस प्रकार उसमें अनेकों मेसोपोटामियन सभ्यता के गुण मिले। परन्तु उनकी अपनी भी देन थी जिसे सामाजिक विकास तथा युद्ध-कला में देखा जा सकता है। इन्होंने यूनानी सभ्यता को भी प्रभावित किया जिसके प्रमाण 'ट्रोजन सभ्यता' में देखे जा सकते हैं। पुनः ट्रोजन का प्रभाव क्रीट की सभ्यता पर पड़ा। अतः परोक्ष रूप से हिटाइट लोगों ने क्रीट तथा एजियन को प्रभावित किया जो पूर्णतया अपने क्षेत्र में आधुनिक हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ९

भारतीय सभ्यता

भारतीय सभ्यता अति प्राचीन है। जिस समय अधिकांश विश्व बर्बरता के सघन तिमिर में भटक रहा था उस समय भारतवर्ष संस्कृति-सभ्यता के विकास-पथ पर बहुत आगे बढ़ चुका था। जीवन-संरक्षा के निमित्त प्राथमिक व्यवस्था करने के पश्चात् उसकी प्रज्ञा उन अन्तस्तत्वों एवं वाह्य रहस्यों को वशीभूत करने की निरन्तर साधना कर रही थी जिनके विवेचन और संगठन से सभ्यता-संस्कृति के विविध अंगों—साहित्य कला, दर्शनादि—की सर्जना होती है। भारत-भूमि आदिकाल से ही तपोभूमि रही है। अव्याहत तप के फलस्वरूप भारतीयों ने एक ओर तो भौतिकवाद की अनन्य उपासना कर जीवन को अति सुखी, सरस और सुस्वादु बनाया और दूसरी ओर उसकी प्रखर बुद्धि अध्यात्मवाद का अंचल पकड़ कर देश-काल की सीमाओं को भेदती हुई अन्तरिक्ष को चीर आगे बढ़ी और अनन्त असीम से साक्षात्कार करने लगी। प्राचीन विश्व में यूनानी अपने को सभ्यता का अग्रदूत समझते थे और अन्य जातियों को बर्बर समझ कर उन्हें अवहेलना की दृष्टि से देखते थे पर उनका यह दम्भ भारतीय सीमा पर आकर शतधा विचूर्ण हो गया। भारतवर्ष के धन-धान्य तथा ज्ञान की अपरिमित राशि को देखकर वे अवाक् रह गये। तभी उनके आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों के समक्ष हिमवान् साभिमान मुस्करा उठा, अगाध सिन्धु **'कृण्ध्वं विश्वमार्यम्'** का व्रत-मन्त्र पढ़ता हुआ सस्वर हो उठा। राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त का यह कथन कि **'हाँ और ना भी अन्य जन करना जब न जानते थे ईश के आदेश तब हम वेद-मन्त्र उचारते।'** कोरी गर्वोक्ति नहीं है।

भारतीय सभ्यता की कुछ विशेषाएँ

अन्य सभ्यताओं की भाँति भारतीय सभ्यता की भी कुछ अपनी विशेषतायें हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१) प्राचीनता—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भारतीय सभ्यता अति प्राचीन है। सिन्धु सरिता की घाटी में जिस सभ्यता का जन्म हुआ था और वेदों में जिस संस्कृति का मधुर गान है; वह विश्व के अतीत का प्राचीनतम इतिहास बन गई है।

(२) सक्रमता—भारतीय संस्कृति में आश्चर्यजनक सक्रमता है। अनेकानेक राजनीतिक क्रान्तियों के तुमुलनाद को आत्मसात् करती हुई तथा विविध मतमतान्तरों की अजस्र पराम्पाओं को समेटती हुई वह निरन्तर रूप से गतिशील रही है। अनेक विघ्न बाधाओं की बीहड़ बेला में भी उसकी सक्रमता का विलोप न हो सका। भारतवर्ष का सांस्कृतिक इतिहास शृंखलाबद्ध है।

(३) समन्वयशीलता—भारतीय संस्कृति की सक्रमता और अजस्रता का सर्वप्रमुख कारण उसकी समन्वयशीलता है जो उसके प्रत्येक क्षेत्र में प्रभूत मात्रा में दृष्टिगत होती है। जिस प्रकार वर्णाश्रम धर्म के द्वारा सामाजिक समन्वय की स्थापना हुई, उसी प्रकार ज्ञान, भक्ति और कर्म की समानरूपा सम्मान्यता के द्वारा धार्मिक समन्वय की और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के चतुष्टय-निरूपण के द्वारा सम्पूर्ण भारतीय जीवन में समन्वय की धारा फैलाई गई। भारतीय साहित्य और कला भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद एवं दुःखवाद तथा सुखवाद के सन्तुलन एवं समन्वय से ओत-प्रोत हैं।

(४) सारग्राहिता—भारतीय संस्कृति अपनी सारग्राहिता से उत्प्राणित रही है। भारतीय दृष्टिकोण कभी संकीर्ण नहीं रहा है। उसने प्रत्येक वस्तु को चाहे वह स्वदेशीय, हो अथवा विदेशीय, निष्पक्ष एवं उदार भाव से देखा है और जहाँ कहीं भी उसे वांछनीय अंश मिले हैं वहीं से उसने उन्हें ग्रहण किया है। उदाहरण के लिये हिन्दू धर्म को ही लीजिये। यदि इसकी समीक्षा की जाय तो इनमें आर्यों एवं अनार्यों दोनों के प्रभाव दृष्टिगत होंगे। पुनः आर्यों के ही परस्पर-विरोधी विभिन्न मतों—बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैवादि—के विविध सिद्धान्तों का आश्चर्यजनक समावेश मिलेगा।

(५) धार्मिकता—भारतीय सदैव से ही धर्मप्राण रहे। उनकी समस्त व्यवस्थायें धर्म को केन्द्र-विन्दु मानकर आगे बढ़ी हैं। जन्म से मरणपर्यन्त उनकी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समस्त क्रियायें धर्म से ओतप्रोत रही हैं। भारतवर्ष में धर्म की इतनी व्यापक व्याख्या की गई थी कि उसमें जीवन का प्रत्येक क्षेत्र समाविष्ट हो गया था। राजनीति, सामाजिक व्यवस्था, साहित्य, कला आदि सभी कुछ धार्मिक भावना से आभासित हैं।

वर्ण एवं जाति—वर्ण-व्यवस्था—भारतीय सामाजिक इतिहास में वर्ण-व्यवस्था का विशेष महत्व है। जन्म से मरण पर्यन्त प्रत्येक हिन्दू के विभिन्न संस्कार वर्ण-भेद के अनुसार ही होते रहे हैं। उनके राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक संगठन की रूप-रेखा भी इसी वर्ण-व्यवस्था के आधार पर बनी थी। वर्ण-विरोधी बौद्ध एवं जैन धर्म भी पूर्णरूप से इसका त्याग न कर सके। अपने दीर्घकालीन इतिहास के सम-विषम पथ पर संघर्ष-विघर्श का सामना करती हुई यह प्रणाली सतत गति से चलती रही। सहस्त्रों वर्ष बीते। देश में अनेक राजनीतिक एवं धार्मिक परिवर्तन हुए। नये-नये राज्य बनते और बिगड़ते रहे। नये-नये धर्मों की उन्नति और अवनति होती रही। परन्तु वर्ण-व्यवस्था का विलोप न हो सका। यह आज भी विद्यमान है।

वर्ण-व्यवस्था के स्थायित्व के कारण—इस वर्ण-व्यवस्था के चिरस्थायी होने में अनेक कारणों ने साथ दिया। भारतीय सदैव से धर्मप्राण रहे हैं। उनके लिये जीवन और धर्म दो पृथक् वस्तुयें नहीं थीं। उनका जीवन धर्म का व्यावहारिक रूप था और धर्म जीवन का संग्रीहत तथ्य। दोनों का अविच्छेद्य एवं अन्योन्याश्रित सम्बन्ध था। दोनों एक दूसरे से ओत-प्रोत थे। इस प्रकार की भावना का परिणाम यह हुआ कि भारतीयों के समक्ष जो वस्तु भी धर्म का अंग बन कर आई वह मान्य बन गई चिरस्थायी हो गई। भारतीय परम्परा के अनुसार वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति मानवी न होकर दैवी है। इस दैवी आधार ने कालान्तर में इस व्यवस्था की लोक-मान्यता को दृढ़तर किया।

वर्ण-व्यवस्था के चिरस्थायी होने का दूसरा कारण ब्राह्मणों की लोक-मान्यता थी। उनकी प्रारम्भिक विद्वत्ता, सदाचरण, त्यागपरायणता एवं सरलता ने उन्हें देश में अग्रगण्य स्थान दे दिया था। इन गुणों और ब्राह्मण के जीवन में इतना अधिक तारतम्य स्थापित हो गया था कि लोक-बुद्धि उन

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोनों को अविच्छेद्य समझने लगी थी। जनता की मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि उपर्युक्त गुणों के न्यूनाधिक अभाव में भी ब्राह्मण लोक-वन्द्य बना रहा। देश में क्षत्रिय से भौतिक आभिजात्य की स्थापना हो चुकी थी परन्तु ब्राह्मणों के बौद्धिक आभिजात्य ने उसे भी अपने प्रभाव में कर लिया था। परिणाम-स्वरूप क्षत्रिय राजस्वाधिकारी होते हुए भी ब्राह्मण के सम्मुख विनीत था। बल का प्रतीक ज्ञान की प्रतिभा के समक्ष विनम्र ही बना रहा। ब्राह्मण देश का मस्तिक था और क्षत्रिय देश की भुजा। यही कारण है कि सामाजिक संगठन की अधिकांश योजनाएँ ब्राह्मणों के मस्तिष्क से निकली और क्षत्रिय की छत्रछाया में कार्यान्वित हुईं। इस प्रकार दीर्घकाल तक ब्राह्मण समाज के व्यवस्थापक समझे जाते रहे। ब्राह्मणों की सर्वमान्यता ने उनके विधिनिषेधों को भी सर्वमान्य बना दिया। वर्णव्यवस्था के चिरस्थायित्व के पीछे यही सत्य कार्य कर रहा था।

वर्ण-व्यवस्था के चिरस्थायित्व का तीसरा कारण भारतीयों की जगत्प्रसिद्ध आमूल अथवा क्रान्तिकारी परिवर्तनों के प्रति अरुचि है। उनकी सामञ्जस्य भावना एवं ग्रहणशीलता किसी भी नियम में कभी भी आमूल परिवर्तन करने के हेतु प्रस्तुत न होती थी। यही कारण है कि भारतवर्ष की अनेक प्राचीन संस्थाएँ एवं परम्पराएँ आज भी विद्यमान हैं। काल परिवर्तन से उनमें इतस्ततः परिवर्तन अवश्य हुए परन्तु उनका आधार अक्षुण्ण रहा। यही वर्ण-व्यवस्था के साथ भी हुआ। देश-काल के अनुसार समय-समय पर इसकी बाह्य रूप-रेखा में यत्र-तत्र परिवर्तन अवश्य हुए, परन्तु इसका आधार ज्यों-का-त्यों बना रहा। देश का कोई भी वर्ग किसी समय भी उसका पूर्णरूपेण परित्याग न कर सका। बौद्ध अथवा जैन होने पर भी अधिकांश भारतीय अपनी चारित्रिक विशेषता और रूढ़िवादिता के कारण इसे पूर्णरूप से दूर न कर सके। उनमें भी किसी न किसी रूप में जाति-भेद विद्यमान रहा।

इस वर्ण-व्यवस्था की चिर-प्रियता का चौथा कारण इसकी दीर्घकालीन उपयोगिता थी। परिस्थिति-परिवर्तन से इस व्यवस्था में अनेकानेक दोष उत्पन्न होते गये। वह निरन्तर परिवर्तनशील काल के साथ क़दम न रख सकी और

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी उपयोगिता खो बैठी। परन्तु इसके साथ-साथ वह स्वीकार करना पड़ेगा कि शताब्दियों तक इसने भारतीय समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति की; उसे एक संगठन, एक व्यवस्था एवं एक आदर्श प्रदान किया। वर्ण-व्यवस्था को पाकर भारतीय समाज एक सुदृढ़ इकाई बन गया। उसके अन्तर्गत समाज का प्रत्येक व्यक्ति पारस्परिक अधिकार एवं कर्त्तव्य के आधार पर एक दूसरे से सम्बद्ध था। सबका कुछ न कुछ कर्त्तव्य था। उस कर्त्तव्य का आधार वर्तमान एवं आगामी जीवन-सम्बन्धी स्वार्थ था। वर्तमान जीवन में सामाजिक प्राणी के रूप में एक व्यक्ति जिन अधिकारों की अपेक्षा करता था वे किसी अन्य व्यक्ति के कर्त्तव्य थे। अतः आवश्यक था कि प्रत्येक अपने अधिकारों का उपयोग करने के पूर्व अपने कर्त्तव्यों को भी पूर्ण करे। उदाहरण के लिये ब्राह्मण की सर्व-मान्यता समाज में इसलिए थी कि वह उसके बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास में सहायता देता था। उसको जीविका एवं अन्य आवश्यकताओं के लिए समाज इसलिए उत्तरदायी था कि वह अपनी विद्या बुद्धि द्वारा समाज में व्यवस्था स्थिर रखता था। लोक-कल्याण के हेतु अध्ययन-अध्यापन एवं यजन-याजन ब्राह्मण का कर्त्तव्य था। इसी के प्रतिदान में उसे अनेकानेक सुविधाएँ अधिकार के रूप में प्राप्त थी। यही बात अन्य वर्णों के साथ थी। इस प्रकार स्वार्थ का कर्म-विभाजन द्वारा समन्वय किया गया। अब रही आगामी जीवन की बात। इसका आधार पुनर्जन्म एवं कर्मफल के सिद्धांत पर था। अपने पूर्व कर्मों के फलस्वरूप ही मनुष्य का समाज में स्थान होता था। यदि उसने अपने पूर्व जन्म में स्ववर्ण-विहित कर्म किये हैं तो उसे उच्चवर्ण में जन्म मिलता है[१] अन्यथा निम्न में। निम्न वर्ण में उत्पन्न होकर यदि वह व्यक्ति इस जन्म में भी दैवी वर्ण व्यवस्था द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन नहीं करता तो वह निश्चित ही अपने धर्म से च्युत होता है और ब्राह्मण व्यवस्था के अनुसार धर्मच्युत मनुष्य का आगामी जन्म भी श्रेष्ठ वर्ण में नहीं हो सकता[२]। अतः अपने आगामी जन्म को सुधारने के लिए मनुष्य को अपने वर्ण के कर्त्तव्यों का पालन करना अभिष्ट था। यही उसका

१ गौतम ११. २९ आप० २. ११. १०.

२ आप० १. ११. ११. मनु १२, ७१-७२.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आगामी जीवन-सम्बन्धी स्वार्थ था । इस प्रकार व्यक्तिगत स्वार्थ के आधार पर स्थित वर्ण व्यवस्था ने समाज में कार्य-विभाजन को लोकमान्यता दी । अब समाज में प्रत्येक मनुष्य का अस्तित्व था । छोटे से छोटे मनुष्य का भी कुछ उत्तरदायित्व था । एक समुदाय के सदस्य की भाँति प्रत्येक मनुष्य अपना निर्धारित कार्य करता था । वह अपनी योग्यतानुसार समाज को अधिक से अधिक लाभ प्रदान करता था और उसके प्रतिरूप में अपनी आवश्यकतानुसार अधिक से अधिक लाभ समाज से पाता था । समाजवाद का यह स्थूल सिद्धांत भारतीय वर्ण व्यवस्था में सर्वप्रथम व्यवहृत हुआ ।

इस प्रकार सब मनुष्यों के व्यक्तिगत कार्य स्वार्थ से प्रेरित होते थे । परन्तु उनका एक सार्वजनिक आदर्श भी था और वह था लोक-कल्याण । व्यक्ति तथा समष्टि का यह सम्बन्ध बड़ी ही कुशलता से स्थापित किया गया था । व्यक्ति समष्टि की इकाई था । परन्तु लोक-कल्याण के आदर्श ने उसकी पृथक सत्ता को समष्टि में निमज्जित कर दिया था । वह अपने पृथक हित को भूल बैठा और परिणाम-स्वरूप समाज में केवल एक हित रह गया—लोक-कल्याण । इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था की इकाई को लेकर चली और समष्टि की इकाई में निमग्न हो गई । अगणित व्यक्तियों का विशाल समुदाय वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत एक लघु इकाई के समान हो गया । उसमें एक सुदृढ़ सङ्गठन था । समाज की विभिन्न कड़ियाँ एक दूसरे से जुड़ कर शृङ्खला के रूप में परिवर्तित हो गई थी जिसे शताब्दियों के प्रबल आघात भी विच्छिन्न न कर सके । वर्ण-व्यवस्था ने हमारे समाज को ऐसा बल दिया कि वह अनेकानेक वाह्य आक्रमणों एवं आंतरिक परिवर्तनों के समक्ष भी विच्छृङ्खल न हुआ । राजनीतिक उथल-पुथल के बीच भी यदि हमारी साहित्यिक, शारीरिक, चारित्रिक, औद्योगिक एवं व्यापारिक सक्रमता रही तो इसका मुख्य कारण वर्ण-व्यवस्था के अंतर्गत हमारा कार्य-विभाजन था । चारों वर्णों के अपने-अपने कार्य थे । वे दूसरे के कार्यों का चिंता किये बिना अपने कार्यों एवं व्यवसायों को अग्रसर करते रहते थे । शताब्दियों के परम्परागत एवं व्यवसायानुसरण उनका व्यवसाय वर्णिक अथवा कौटुम्बिक बन गया था । उसमें एक आश्चर्यजनक विशिष्टता आ गई थी जो कदाचित् कार्य-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विभाजन के अभाव में सम्भव न होती। वर्ण-व्यवस्था के अंतर्गत ब्राह्मण निश्चिन्त होकर देश की आध्यात्मिक एवं साहित्यिक उन्नति में लग गया। उसे अपनी जीविका एवं सुरक्षा की चिन्ता न थी। ये कार्य समाज के अन्य वर्णों के हाथ में थे। इस एकाग्रता एवं एकलग्नता का परिणाम यह हुआ कि उसने अपने कार्य-क्षेत्र में आशातीत प्रगति की अध्यात्मिक क्षेत्र में उसका तर्क ब्रह्मांड को चीरकर अनंत और असीम से साक्षात्कार करने लगा। साहित्यिक क्षेत्र में उसकी कल्पना ने आकाश-पाताल को मिला दिया, चर-अचर को एक कर दिया और जड़ीभूत वास्तविकता की अवहेलना करता हुआ चिर-अलभ्य आदर्श की ओर धावित होने लगा।

यही हाल क्षत्रिय वर्ण का हुआ। देश के शासन एवं सुरक्षा का भार उसके हाथ में था। इस क्षेत्र में भी कार्य-विभाजन ने सुफल उत्पन्न किया। देश में प्रभुत्व की विभिन्न कोटियों—एकराजता, अधिराजता, साम्राज्यता इत्यादि, प्रभुत्यसूचक विभिन्न यज्ञों (वाजपेय, राजसूय, इत्यादि) विभिन्न शासन प्रणालियों (गणतंत्र, राजतंत्र इत्यादि), वैधानिक शासन के उपकरणों (सभा, समिति, मत, निर्वाचन, अधिकार, कर्त्तव्य इत्यादि) तथा कूटनीति एवं सुरक्षा के अनेक विधानों का विकास हुआ।

वैश्य वर्ण ने देश के आर्थिक हित का उत्तरदायित्व लिया। कहना न होगा कि इस समुदाय के उत्साह, अध्यवसाय एवं हस्तलाघव ने देश की औद्योगिक एवं व्यापारिक उन्नति में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की। देशीय एवं अन्तर्देशीय व्यापार-व्यवसाय के जो प्रमाण हमें साहित्य एवं मुद्राशास्त्र से उपलब्ध होते हैं वे वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य-विभाजन प्रणाली की सफलता के द्योतक हैं।

चौथा वर्ण शूद्रों का था। इसका मुख्य धर्म द्विजों की सेवा करना था। कालान्तर में इसके लिये बनाये गये नियम अवश्य कठोर हो गये, परन्तु प्रारम्भिक साहित्य में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं जहाँ इनके साथ न्याय एवं सहानुभूति से साथ काम लिया जाता था। प्रत्येक समाज में निम्न कोटि के कार्य-संचालन के लिये एक वर्ग रहा है। इसकी अवस्था अन्य उच्च वर्गों से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निश्चित रूप से हेय होती है। भारतीय साहित्य में यही वर्ग शूद्र के नाम से प्रख्यात है। नैतिकता की दृष्टि से इस वर्ग का सृजन अन्यायपूर्ण भले ही हो परन्तु यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि समाज के निम्नकोटि के कार्य-कलाप के लिये ऐसे वर्ग को आवश्यकता थी। इस वर्ग के निर्माण ने द्विजों को निम्नकोटि के कार्यों से मुक्त कर दिया और उन्हें अन्य महत्वपूर्ण सामाजिक कार्यों के लिए और अधिक समय प्रदान किया।

विकृतियाँ—कालान्तर में वर्णों में जातियाँ और जातियों में उपजातियाँ उत्पन्न हो गईं। इस उत्पत्ति के मूल कारण अनार्यों का आर्यीकरण, मनुष्यों की व्यावसाय-विभिन्नता, दूरस्थ प्रादेशिक स्थिति एवं धर्म्मच्युति थे। परिणाम स्वरूप प्रारम्भिक चार वर्णों की सरल व्यवस्था अधिकाधिक जटिल हो गई। प्रारम्भ काल में द्विजों में कार्य-विभेद के अतिरिक्त और कोई अन्य भेद न था। सब एक दूसरे के साथ खाते-पीते और विवाह सम्बन्ध करते थे। कार्य-परिवर्तन से वर्ण-परिवर्तन भी हो जाता था। वर्ण कर्मज थे। परन्तु चार वर्णों के स्थान पर समाज में जब अनेकानेक जातियों एवं उपजातियों का प्रादुर्भाव हुआ तो उनमें पारस्परिक भेद-भाव, ऊँच-नीच का विचार एवं जातीय प्रतिबन्ध आने लगे। कुछ समय के पश्चात् जातियाँ जन्मज हो गईं। उनमें अन्तर्जातीय खान-पान एवं विवाह सम्बन्ध भी समाप्त हो गये। यही नहीं धीरे-धीरे ऊँच-नीच के के भेद भाव ने जातियों में पारस्परिक ईर्ष्याद्वेष उत्पन्न कर दिया। इस परिवर्तन ने हमारे समाज को जर्जरित कर दिया। उसके संगठन के स्थान पर जातिगत संगठन होने लगे और उनकी दृष्टि संकीर्णता ने हमारे समाज की एकता, सबलता, सहयोगिता एवं लोक-संग्रह की भावना को चूर्ण कर दिया। इन दोषों के उत्पन्न होने से जाति-व्यवस्था चतुर्दिक निन्दनीय हो गई और आधुनिक मनुष्य उसके अस्तित्व को मिटाने के लिए कटिबद्ध है।

कार्य-विभिन्नता के कारण प्रत्येक समाज में ही भिन्न-भिन्न वर्ग पाये जाते हैं। परन्तु भारतीय समाज की भाँति उन समाजों में इन वर्गों ने तथाकथित वर्णों के रूप में कभी अपना विकास नहीं किया। इसका विशेष कारण यही है कि अन्य देशों में या तो अन्तर्वर्गीय विवाह एवं खान-पान के विरुद्ध

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतिबन्ध नहीं था या वे इतने कठोर न थे कि उनका उल्लङ्घन समाज-बहिष्कार तथा धर्मच्युति के द्वारा दण्डित किया जाता। पुनः विदेशीय वर्गों का आधार सदैव अनिवार्यरूप से जन्म-मात्र न था। वहाँ कर्म के आधार पर वर्गोत्कर्ष भी सम्भव था। परन्तु भारतीय समाज में वर्गोत्कर्ष (जात्युपकर्ष) का सिद्धान्त नियमतः अव्यवहृत रहा। इसके अतिरिक्त प्रारम्भिक भारतीय सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था समाज के एक विशिष्ट वर्ग (ब्राह्मण वर्ग) का कार्य थी। इसके अन्तर्गत ब्राह्मण वर्ग की प्रधानता-स्थापना स्वाभाविक थी। इस प्रधानता को अक्षय रखने के हेतु ब्राह्मणों ने अपने वर्ग तथा अन्य वर्गों की सीमाएँ इस प्रकार निर्धारित की कि वे सदैव एक-दूसरे से पृथक् रहें। परिणामतः चारों वर्गों ने अपनी-अपनी सीमा के भीतर ही अपना विकास किया। उनके पृथक्-पृथक् विधि-निषेधों ने उनकी सीमाओं को कभी भी नष्ट न होने दिया। अतः ये वर्ग दृढ़ीभूत होकर चार नितान्त पृथक् एवं भिन्न वर्णों के रूप में विकसित हुए। पुनः इस भारतीय वर्ण-व्यवस्था की आधार-शिला धर्म था। अतः इसकी समस्त विशेषताओं—अन्तर्जातीय विवाह एवं खान-पान के निषेध, जाति-कर्म, जात्याचार, रक्त-शुद्धता आदि का पालन करना और कराना समस्त नागरिकों और शासकों का धार्मिक कर्तव्य बन गया था। फलस्वरूप वर्ण-व्यवस्था उत्तरोत्तर सबल होती गई। नितान्त भिन्न नियमों के आधार पर संचलित प्रत्येक वर्ण एक पृथक् 'समाज' के रूप में विकसित हुआ। अन्य देशों का कार्य-विभाजन धर्म से सम्बन्धित न था। अतः उसके विकास को लोकमान्यता का बल न मिला जो जनता की धर्म-भीरु भावना से उत्पन्न होता है। परिणामतः वह विदेशीय विभाजन 'वर्ग' की सीमाओं का अतिक्रमण कर कभी भी और आगे न बढ़ सका। भारतीय समाज में वर्ण वर्ग का तार्किक उपसंहार (Logical Culmination) था।

ब्राह्मण: धार्मिक संगठन—ब्राह्मणों ने अपने धर्म की विस्तृत एवं विशद व्याख्या की थी। परिणामतः वह कभी कतिपय मतों अथवा सिद्धान्तों का समुदाय मात्र न था जिसके सामयिक परायण से भारतीय की धार्मिक आकु-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लता की सन्तुष्टि हो सकती। वह उसके जीवन के प्रत्येक अंग से इतना घुल-मिल गया था कि पृथक् संस्था के रूप में उसका अस्तित्व ही अदृश्य हो गया था। जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त भारतीय जीवन का प्रत्येक कार्य, भौतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र का प्रत्येक स्फुरण, ऐहिक तथा पारलौकिक जगत् से सम्बद्ध उसका समस्त चेष्टा-कलाप धर्म के ही विशाल क्रोड़ में होता था। धर्म की विस्तीर्ण छाया ने जीवन एवं मृत्यु के समग्र सम्भव विषयों को ढक लिया था। धर्म का प्रभाव असीम एवं गति अबाध थी। इस विशद व्याख्या के अन्तर्गत भारतीयों के जीवन और धर्म के बीच की क्षीण रेखा तिरोहित हो गई थी; धर्म की आधारपीठिका उसकी अन्तश्चेतना बन गई थी, धर्म जीवन का आदर्श बन गया था, और जीवन धर्म का व्यवहार।

ऐसी अवस्था में ब्राह्मणों का धर्म यथार्थ रूप में चिर-शाश्वत् बन गया था। न उसकी रक्षा के लिये 'चर्च' की आवश्यकता थी और न प्रचार-कार्य के लिए राजकीय आलम्बन की। जीवन से अविच्छेद्य रूप में सम्बद्ध होने के कारण वह स्वतः उसी के साथ परिपुष्ट एवं परिवर्धित होता रहा है। प्रत्येक धर्म के समान इस धर्म ने भी दो पक्षों में विकास किया : (१) दार्शनिक पक्ष और (२) लौकिक पक्ष। दार्शनिक पक्ष आत्मा-परमात्मा आदि के गहन एवं सूक्ष्म विषयों पर आधारित होने के कारण साधारण जन के लिए बोधगम्य न था। उसमें केवल समाज के बौद्धिक अभिजातवर्ग—अत्यल्पसंख्यक समुदाय—की ही रुचि थी। जनसाधारण के लिए धर्म का लौकिक पक्ष ही सरल-सुबोध होने के कारण अभिरंजन था। जनमत के आचार-विचार का वहन करने के कारण तथा अधिकतर जनता की सरल श्रद्धा-भक्ति का केन्द्र-विन्दु होने के कारण यह लौकिक पक्ष ही ब्राह्मण-धर्म की शक्ति था। ब्राह्मण-धर्म की लोकप्रियता एवं विस्तारशीलता का प्रमुख कारण दार्शनिक पक्ष न होकर लौकिक पक्ष ही था।

आश्रम—ब्राह्मण-धर्म का लौकिक पक्ष वर्णाश्रम-व्यवस्था के ऊपर केन्द्रित था। यही व्यवस्था इसकी अनेकानेक धाराओं का उद्गम थी। वर्ण-व्यवस्था के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वारा ब्राह्मण ने समाज में कार्य-विभाजन किया और आश्रम-व्यवस्था के द्वारा पद्धति-निरूपण। आश्रम-व्यवस्था मनुष्य के जीवन का पूरा समय-चक्र था। इसके द्वारा समाज के प्रति मनुष्य के कर्तव्यों एवं उनके कालों का विवेचन किया गया था। इस योजना के पीछे ब्राह्मणों की लोक-संग्रह की भावना एवं राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थान की उद्दाम चिन्ता कार्य कर रही थी। इसके अन्तर्गत ब्राह्मणों ने समष्टि के उन्नयन के लिये व्यक्ति की समस्त शक्तियों का उचित अवसर पर अधिकाधिक उपयोग करने का प्रयास किया था। हम चतुर्वर्ण पर पहले ही विचार कर चुके हैं। यहाँ आश्रम-व्यवस्था का संक्षिप्त वर्णन कर देना आवश्यक है।

प्रत्येक व्यवस्था ने आश्रमों की संख्या चार बताई है। साधारणतया मनुष्य की आयु सौ वर्ष की मानी गई है। इन्हीं सौ वर्षों के जीवन में मनुष्य की अन्तर्निहित शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का पूर्ण विकास करते हुए तथा उसकी योग्यतानुसार राष्ट्रीय एवं व्यक्तिगत जीवन के विविध क्षेत्रों में उन शक्तियों का अधिकाधिक उपयोग करने के हेतु ब्राह्म व्यवस्थाकारों ने इस सौ वर्ष को चार समान भागों में बाँट दिया। इस प्रकार प्रत्येक आश्रम का काल साधारणतया लगभग पच्चीस वर्ष का होता था।

ब्रह्मचर्याश्रम काल जीवन के हेतु तैयारी का काल था, अनुशासन-काल था, अध्ययन-काल था। इसमें मनुष्य अपनी समस्त शक्तियों का संचय करते हुए संसार के आमोद-प्रमोद से विमुख होकर श्रम और साधना का जीवन व्यतीत करता था। वह ब्रह्मचारी के रूप में गुरु के समीप रहकर विद्याध्ययन करता था। ब्रह्मचारी के लिए शय्याशयन, संगीत-नृत्य, निष्प्रयोजना भ्रमणादि वर्जित थे। उसके कर्तव्यों में समिधादन, गुरुशुश्रूषा, नित्यस्नान, देवर्षिपितृ तर्पण विशेष उल्लेखनीय हैं। भिक्षावृत्ति प्रत्येक ब्रह्मचारी के लिए अनिवार्य थी।

व्यवस्थाकारों का कदाचित् विश्वास था कि भिक्षावृत्ति से ब्रह्मचारी में विनम्रता की भावना परिपुष्ट होगी। पुनः प्राचीन भारत की शिक्षा-संस्थाओं का संचालन जनता के उदार दान पर ही निर्भर था। ये ब्रह्मचारी संसार-सुख से विरत होकर राष्ट्रीय कल्याण के हेतु ही साधना का अति कठोर जीवन व्यतीत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करते हुए अपनी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का विकास करते थे। अतः गृहस्थों का भी यह कर्तव्य था कि लोक-कल्याण के हेतु वे इन ब्रह्मचारियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करें। इसी राष्ट्रीय आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए व्यवस्थाकारों ने भिक्षा-दान को एक धार्मिक कार्य बना दिया था। ब्रह्मचर्याश्रम के उपरान्त मनुष्य गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होता था। ब्राह्मण-व्यवस्था के अन्तर्गत यह आश्रम सर्वप्रधान है।

इस प्रधानता के अनेक कारण थे। प्रथम ब्राह्मण-धर्म प्रारम्भ से ही प्रवृत्ति प्रधान था। अतः निवृत्तिमूलक वानप्रस्थाश्रम और संन्याश्रम कभी उसमें लोकप्रिय न हो सके। यद्यपि चतुराश्रम-व्यवस्था में इन आश्रमों के ग्रहण करने की योजना थी, परन्तु इसमें संदेह है कि किसी भी समय प्रवृत्तिमार्गी जनता ने बहुसंख्या में गृहस्थाश्रम के अतिरिक्त अन्य आश्रमों को भी अंगीकार किया हो। ब्रह्मचर्याश्रम का महत्व उसी सीमा तक था, जहाँ तक कि वह मनुष्य को गृहस्थाश्रम की आवश्यकताओं एवं उनके उत्तरदायित्व के लिए योग्य बनाता था। ब्राह्मण धर्म में पुत्रप्राप्ति अत्यन्त आवश्यक समझी जाती थी। पितरों की संतुष्टि के लिए तर्पणादि की आवश्यकता थी। और ये पुत्र के बिना न हो सकते थे। पुत्राप्राप्ति एक मात्र गृहस्थाश्रम से ही सम्भव थी। अतः ब्राह्मण-व्यवस्था में सबसे अधिक महत्व इसी आश्रम को दिया गया है। तृतीय, गृहस्थी के द्वारा ही अन्य आश्रमियों का पालन-पोषण होता था। जीवन-निर्वाह एवं सुरक्षा के लिए वे गृहस्थों पर ही निर्भर थे। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं संन्यासी सभी गृहस्थों पर आश्रित थे। गृहस्थों के अभाव में अन्य आश्रमियों का अस्तित्व असम्भव था। इसी विशेषता को लक्ष्य करते हुये मनु ने लिखा है कि जिस प्रकार समस्त प्राणी जीवन के लिए वायु पर निर्भर है उसी प्रकार अन्य आश्रमों के मनुष्य गृहस्थ पर। अन्नदान तथा ज्ञानदान के द्वारा गृहस्थ अन्य तीनों कोटि के आश्रमियों का वहन करता है। अतः गृही सर्वोत्तम है। यही भाव वशिष्ठ और विष्णु ने भी प्रकट किया है।

गृहस्थाश्रम को प्राधान्य-प्रतिष्ठा का अन्तिम कारण था, ब्राह्मण-धर्म का श्रमण-धर्म से विरोध। श्रमण-धर्म नितान्त निवृत्तिमार्गी था। उसकी व्यवस्था

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में 'गृहपति' का स्थान नितान्त गौण था। समस्त संगठन भिक्षु अथवा परिव्राजक को ही दृष्टिकोण में रखकर किया गया है। बर्न का यह कथन है कि बौद्ध धर्म प्रमुखतया भिक्षु संस्था थी और उसमें जनसाधारण सहायक मात्र थे, नितान्त सत्य है। बौद्ध साहित्य में स्थान-स्थान पर सांसारिकता का त्याग कर परिव्राजक-जीवन के हेतु प्रोत्साहन दिया गया है। महात्मा बुद्ध यहाँ तक उपदेश देते हैं कि दो भिक्षुओं को भी एक साथ एक दिशा में न जाना चाहिये।[१] सुत्तनिपात में उस भिक्षु की प्रशंसा की गई है जो संसार त्याग कर वृक्ष, शमशान अथवा पर्वत-कन्दरा का आश्रय लेता है।[२] बौद्ध गृहस्थ-जीवन को मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन अतः उसके सर्वोच्च आदर्श की प्राप्ति में बाधक समझते थे।[३] धम्मपद उसी को यथार्थ ब्राह्मण समझता है जो पूर्ण-रूपेण निवृत्ति-मार्गी हो।[४] ब्राह्मण-व्यवस्थाकार गृहस्थाश्रम को समाज-व्यवस्था का केन्द्रबिन्दु समझते थे। अतः उन्हें निवृत्तिमार्गी बौद्धों का यह संसार त्याग का प्रचार अपने धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता के लिए घातक प्रतीत हुआ। पुनः बौद्ध एवं जैन धर्म से प्रभावित होकर अनेकानेक महिलाओं ने भी गृह त्याग कर भिक्षुणी का जीवन अंगीकार कर लिया था इससे ब्राह्मण व्यवस्थाकार और क्षुब्ध थे। अतः उन्होंने सूत्र-साहित्य के रूप में अपनी व्यवस्था का पुनः संगठन किया और वानप्रस्थ एवं संन्यास के आश्रमों की अपेक्षा गृहस्थाश्रम को ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण घोषित किया। इस आश्रम के विधि-निषेध का पालन करने से ही मनुष्य

---

१. महावग्ग १. ११—मा सकेन द्वे अगमित्थ

२. सुत्तनिपात पृ० ९५८—भिक्खुनो विजिगुच्छती भजतो रित्तं आसनं रुक्खमूलं सुसनं वा पब्बतनं गुहासु वा।

३. सामञ्ञ फल सुत्त, ५. ४१—सबाधो घरावसो रजोपथो अब्भोकासो पब्बज्जा न इदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुन्नं एकन्तपरिसुद्धं संखलिखित ब्रह्मचरियं चरितुं।

४. धम्मपाद ४०४—असंसट्ठं गहाथेहि अनागारेहि चोभयं, अनोकसारि अपिच्छं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को स्वर्ग प्राप्त हो सकता है।[१] महाभारत में कपिल ने इस मत का खण्डन किया है कि गृहस्थाश्रम के द्वारा मोक्ष अप्राप्य है।[२] उसे अन्य मार्गों के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं। श्रमण-ब्राह्मण विचार धारा का यह शाश्वत विरोध पतंजलि के महाभाष्य से भी प्रतिध्वनित होता है।[३] इसके पूर्व कौटिल्य ने इस प्रकार के भिक्षुवाद को हतोत्साह करने के हेतु अनेकानेक नियम बनाये थे।

गृहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थाश्रम आता है। इस आश्रम में मनुष्य गृह-त्याग कर किसी वन अथवा विजन-प्रदेश में निवास करता हुआ आत्म-चिन्तन करता है। नियम-क्लिष्टता तथा काया-क्लेशशीलता के होते हुए भी मनुष्य इसे अंगीकार करते थे।

महाभारत में धृतराष्ट्र, विदुर, ययाति, कुन्ती, गान्धारी, सत्यवती आदि तथा रामायण में सरभंग, सुतीक्ष्ण आदि के उदाहरण इस कथन की पुष्टि करते हैं। पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी इस आश्रम में प्रविष्ट होती थीं। परन्तु शूद्रों के लिए प्रवेश वर्जित था। मनु ने केवल द्विजों को ही वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश की आज्ञा दी है।[४] शूद्रों के हेतु एकमात्र गृहस्थाश्रम ही सम्मत था। परन्तु यदा-कदा अपवाद के रूप में गृहस्थाश्रम धर्म को सम्यक् रूप से पालन करने के पश्चात् शूद्र राजाज्ञा से वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश प्राप्त कर सकता था। विदुर के साथ तो राजाज्ञा का भी प्रबन्ध न था। परन्तु उनका उदाहरण भी अपवाद-स्वरूप ही है।

उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस आश्रम में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों में ब्राह्मण और क्षत्रिय ही अधिक थे। व्यास, वशिष्ठ और अत्रि

---

१. वशिष्ठ ८—नित्योदकी नित्य यज्ञोपवीति, नित्यस्वाध्यायी पतितान्न-वर्जी, ऋतौ गच्छन् विधिवच्च जुह्वन्, न च्यव्यते ब्राह्मणों ब्रह्मलोकात्।

२. शान्ति २०७. १०—११

३. महाभाष्य येषांच विरोधः शाश्वतिकः

४. मनु० ६, १

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राह्मण थे। इनके अतिरिक्त महाकाव्यों में उल्लिखित बहुसंख्यक आश्रमों में रहने वाले वानप्रस्थी भी अधिकांश ब्राह्मण थे। परन्तु क्षत्रियों में भी इस आश्रम प्रवेश की प्रतिष्ठा थी। एक स्थान पर स्वयं व्यास का कथन है कि जीवन के अन्तिम भाग में वनवास प्रत्येक राजर्षि की परम्परा है। दूसरे स्थान पर धृतराष्ट्र ने घोषित किया है कि हमारे वंश की यह परम्परा रही है कि पुत्रों को उत्तर-दायित्व सौंप कर हम वन का आश्रय लेते हैं।

वैश्यों में कदाचित् वानप्रस्थाश्रम अधिक प्रचलित न था। वैश्य वानप्रस्थ में एकमात्र उदाहरण श्रवणकुमार के पिता का ही है। कदाचित् धन-धान्य के उत्पादन में व्यस्त रहने के कारण उनमें सांसारिकता एवं प्रवृत्ति इस सीमा तक बढ़ गई थी कि वे वानप्रस्थ के यातनामय जीवन को अंगीकार करने में असमर्थ थे।

वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण करने पर शनैः-शनैः मनुष्य को गृह-निवास का त्याग करना पड़ता है और वृक्ष के नीचे रहना पड़ता है। तत्पश्चात् उसका तपस्यामय जीवन प्रारम्भ होता है। वह मृग-चर्म, वृक्ष-त्वचा अथवा जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों का ही प्रयोग करता है। नव-केश-कीर्तन उसके लिए वर्जित है। पंचाग्नि व्रत रखकर, वर्षा में सदैव भीगते हुए तथा शीतकाल में भीगे वस्त्र पहनकर वह कठोर तपस्या करता है। दिन भर उसे बैठे रहने, घूमते रहने अथवा योगाभ्यास करने का आदेश था। शैया पर सोना उसके लिए वर्जित था। मधु-मांस उसके लिए अभक्ष्य हैं।

वानप्रस्थाश्रम में अपने साथ अपनी पत्नी को ले जाने अथवा न ले जाने का विषय मनुष्य की इच्छा पर छोड़ दिया गया है। महाभारत के उदाहरणों से भी यही निष्कर्ष निकलता है। धृतराष्ट्र और पाण्डु सपत्नीक वानप्रस्थाश्रम में प्रविष्ट हुए थे, परन्तु इसके विरुद्ध विदुर और संजय अकेले।

अन्तिम आश्रम संन्यास का है। संन्यास ग्रहण करने पर मनुष्य को अपना घर-बार स्त्री-पुत्र सभी का त्याग करना पड़ता है और विरक्त होकर ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता है। उसके लिए नग्न रहने, जीर्ण-शीर्ण परित्यक्त वस्त्र अथवा काषाय वस्त्र धारण करने की व्यवस्था की गई है। उसके जीवन-निर्वाह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का प्रमुख साधन भिक्षा वृत्ति था।

समस्त साक्ष्यों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इस आश्रम में प्रायः ब्राह्मण ही प्रविष्ट होते थे। अब्राह्मण के जो यत्र-तत्र उदाहरण मिले हैं वे अपवाद स्वरूप हैं। जहाँ तक शूद्रों का प्रश्न है, उनके लिये गृहस्थाश्रम की ही व्यवस्था की गई थी। अन्य आश्रम उनके लिए वर्जित थे। महाभारत का आदेश है कि शूद्र भिक्षु नहीं हो सकता। रामायण में राम द्वारा शूद्र तपस्वी के वध का उल्लेख है। विष्णुधर्म सूत्र का उल्लेख पहले किया जा चुका है जिसमें शूद्र संन्यासी को अवहेलना की दृष्टि से देखा गया है। अत्रि ने शूद्र के छः पातकों में एक पातक प्रव्रज्या भी बताया है। इससे ज्ञात होता है कि यह आश्रम उनके लिए निषिद्ध था।[1] जहाँ कहीं भी व्यवस्थाकारों ने संन्यासाश्रम का वर्णन किया है वहाँ प्रायः सदैव ब्राह्मण संन्यासियों के हेतु ही विधि-निषेधों का आयोजन किया है। महाभारत में अनेक स्थानों पर ब्राह्मण और संन्यासी पर्यायवाची शब्दों के रूप में एक दूसरे के लिए प्रयुक्त हुए हैं।[2] इसी महाकाव्य में स्थान पर संन्यासाश्रम के गुणों का आरोप ब्राह्मण में किया है। महाभारत में कहीं पर भी किसी क्षत्रिय अथवा वैश्व संन्यासी का वर्णन नहीं मिलता। इसी समय मनुस्मृति में भी संन्याश्रम ब्राह्मणों के लिए ही आयोजित हुआ है। मनु ने समस्त व्यवस्था करने के पश्चात् अन्त में लिखा है कि मैंने चतुराश्रमों की व्यवस्था ब्राह्मणों हेतु बताई है। लघु विष्णु का स्पष्ट कथन है कि संन्याश्रम एक मात्र ब्राह्मणों के लिए ही है और शेष तीन आश्रम द्विजातियों के लिए। वृहदारण्यक उपनिषद् पर भाष्य लिखते हुए शंकराचार्य ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है।[3]

स्त्रियों के संन्यासाश्रम-प्रवेश के अधिकार पर भी मतभेद है। मिताक्षरा का उल्लेख है कि कतिपय आचार्यों ने स्त्रियों को भी संन्यासाश्रम ग्रहण करने की आज्ञा दे रक्खी है।[4] रामायण तथा महाभारत में कतिपय स्त्री संन्यासिनियों

---

1. अत्रि १३६. ७ महा० शान्ति ३६. ११. १४.
2. महा १२. २४५. ६-२५
3. वृहदारण्यक उपनिषद ३. ५. १ पर भाष्य
4. मिता० । याज्ञ ३. ५८ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का उल्लेख मिलता है। इनमें शबरी, मेधावी, और सुलभा विशेष उल्लेखनीय हैं। पतंजलि ने अपने महाभाष्य में भी शंकरा नामक एक परिव्राजिका का उल्लेख किया है। परन्तु ऐसा प्रतीत है कि स्त्रियों में किसी भी समय संन्यासाश्रम लोकप्रिय न था। परकालीन व्यवस्थाकारों ने तो इसके विरुद्ध स्पष्टतया अपना मत दिया है। यम का कथन है कि वेदों तथा धर्म-शास्त्रों में कहीं पर भी स्त्रियों के लिए प्रव्रज्या का आदेश नहीं है। अत्रि स्त्रियों के लिए संन्यास-प्रवेश एक पाप कर्म समझते हैं।

वर्णाश्रम-व्यवस्था से ही सम्बन्धित है ब्राह्मण व्यवस्थाकारों की संस्कार-योजना। यह आर्य के आपूर्ण जीवन में व्याप्त थी। संस्कार विविध थे। इनमें से कुछ मनोवैज्ञानिक, कुछ वैज्ञानिक, कुछ सांस्कृतिक कुछ रहस्यात्मक, कुछ स्वास्थ्य सम्बन्धी और एकमात्र पारिवारिक समुल्लास के निमित्त थे। अधिकांश संस्कार मनुष्य के शारीरिक और बौद्धिक विकास की क्रमिक स्थितियों की सूचना देते हैं। विशेष उल्लेखनीय संस्कार हैं—गर्भाधान, अन्नप्राशन, नामकरण, चौल, विद्यारम्भ, उपनयन एवं विवाह।

कर्म-काण्ड प्रधान होने के कारण ब्राह्मण-धर्म में यज्ञों का विशेष महत्व था। सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं पञ्चमहायज्ञ—(१) ब्रह्मयज्ञ (२) देवयज्ञ (३) भूतयज्ञ (४) पितृयज्ञ और (५) मनुष्ययज्ञ।

प्रारम्भ में तो इन महायज्ञों का मूलकारण आर्यों की श्रद्धा, भक्ति तथा उदारता थी जो पितरों, देवों, ब्राह्मणों तक ही सीमित न रहकर समस्त समाज एवं प्राणिमात्र तक विस्तीर्ण हो गई थी। कालान्तर में व्यवस्थाकारों ने इसकी उत्पत्ति को एक अन्य रूप में समझाने का प्रयास किया। इसके अनुसार मनुष्य अपनी जीवन-चर्या में ज्ञात-अज्ञात रूप में जीव-हिंसा करता रहता है। इस पाप के प्रायश्चित के ध्येय से ही इन पंच महायज्ञों की कल्पना की गई। जो कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि इन महायज्ञों ने गृहस्थ के जीवन को परिष्कृत करने में योग दिया। इन्होंने उसके हृदय में पितरों की पुण्य स्मृति को अक्षुण्ण रखते हुए एक ओर उनके प्रति कृतज्ञता-भावना का दैनिक प्रदर्शन करवाया तथा दूसरी ओर उनके धार्मिक एवं सांस्कृतिक कार्यों को नित्य अग्रसर करने का स्मरण दिलाया।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्हीं के द्वारा एक ओर मनुष्य ने देवताओं के प्रति सम्मान प्रकट करना प्रारम्भ किया और दूसरी ओर समाज के गुरुतमकाय अध्ययन-अध्यापन को प्रोत्साहन दिया। जहाँ मनुष्य-यज्ञ ने उसके हृदय में मनुष्यमात्र के प्रति उदारता, बन्धुता एवं सहयोग की भावना जागरित की वहाँ प्राणिमात्र के प्रति भी उसके उत्तर-दायित्व को जागरूक किया। इस प्रकार इन महायज्ञों से मनुष्य के मन और मस्तिष्क का परिमार्जन होता था उसकी अन्तर्निहित शक्तियों का उन्नयन होता था। इसी से गौतम तथा मनु ने इन महायज्ञों को संस्कार के नाम से पुकारा है।

इन महायज्ञों के अतिरिक्त ब्राह्मण व्यवस्थाकार ने तर्पण, अग्निहोत्र, संध्यादि की योजना की थी जो ब्राह्मण-धर्म के कर्मकाण्ड की विशेषता हैं।

बौद्ध धार्मिक संगठन

बौद्ध धर्म नितांत निवृत्ति-प्रधान था। वह गृहस्थ जीवन को निर्वाह-प्राप्ति के मार्ग में बाधक समझता था और इसी से उसने इसका त्याग कर परिव्राजक-जीवन का प्रतिपादन किया था। बौद्ध विचारकों के लिए वैवाहिक जीवन बाधा-युक्त एवं रागयुक्त था। ऐसे वातावरण में उच्चतर जीवन की सम्भावना नहीं हो सकती।[१] गृहस्थ-जीवन प्रज्ज्वलित आवा के समान है। अतः बुद्धिमान व्यक्ति के लिए वह सर्वथा त्याज्य है।[२] मनुष्य के वास्तविक बंधन लौह, काष्ठ अथवा रज्जु के नहीं हैं वरन वे सांसारिक जीवन के बहुमूल्य रत्न, आभूषण एवं स्त्री और संतान हैं। शान्ति-प्राप्ति के हेतु मनुष्य को इन्हीं का त्याग करना है।[३] जो व्यक्ति धन-धान्य, बंधु-बांधव, आशा-अभिलाषा का त्याग कर निस्पृह जीवन-यापन करता है वही मोक्ष का अधिकारी होता है।[४] इसी प्रकार के निवृत्तिमूलक अनेकानेक कथन बौद्ध साहित्य में उपलब्ध होते हैं। इस निवृत्ति का प्रधान कारण संसार एवं जीवन की असारता है। यहाँ प्रत्येक वस्तु नश्वर है। उद्भव और अंत ही संसार का एकमात्र नियम है। जो वस्तु उत्पन्न हुई है वह नष्ट अवश्य होगी। यह संसार नितांत निराशामय है। अतः किसी मनुष्य को भी गृहस्थाश्रम

---

१. तेविज्ज सुत्त ७४, सामञ्ञफल सुत्त ५. ४१। २. धम्मिक सुत्त २१।
३. बन्धनागार जातक २. १३९। ४. जातक ४ पृ० ३०३ गा० ७१।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वीकार न करना चाहिए। मनुष्य सोचता है कि यह वस्तु हमारी है और वह वस्तु हमारी है, परन्तु मृत्यु के समय ये समस्त वस्तुयें यहीं छूट जाती हैं। अतः बुद्धिमान को सांसारिकता में न पड़ना चाहिए। प्रव्रज्या एवं विराग के द्वारा मनुष्य जीवन-मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है। यह जीवन ओस के विन्दु के समान क्षण-भंगुर है। राहुग्रसित चंद्रमा की भाँति कालांतर में प्रत्येक मनुष्य कांति-हीन हो जाता है। व्यक्ति आजीवन धन-धान्य संग्रह करता रहता है, परन्तु मृत्यु के समय उसके समस्त इष्ट पदार्थ इस संसार में ही छूट जाते हैं और उसे एकाकी प्रस्थान करना पड़ता है। पुनः सांसारिक जीवन छल छद्ममय है। एक जातक में एक विद्यार्थी अपने अध्यापक से प्रश्न करता है कि संसार में सफलता प्राप्ति के हेतु किस वस्तु की आवश्यकता है। उसे उत्तर मिलता है—प्रवंचना एवं दुराचार अतः वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इस प्रकार के सफल जीवन से तो परिव्राजक-जीवन उत्तम है।[१]

इस प्रकार की पृष्ठभूमि में बौद्ध संगठन के अन्तर्गत परिव्राजक जीवन ग्रहण करने के हेतु वर्ण-भेद, आश्रम-भेद, लिंग-भेद अथवा अयोग्यता भेद का कोई विचार न था। निवृत्तिमूलक विचारधारा ने मनुष्य के समक्ष उसका लक्ष्य उपस्थित किया और उसकी प्राप्ति का साधना। बीच के प्रश्न उसके लिये गौण थे। परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के मार्ग में संसार बाधक है। अतः वह सत्वर त्याज्य है। इस त्याग में चाहे मनुष्य को अपने सामाजिक एवं कौटुम्बिक उत्तरदायित्वों का हनन ही क्यों न करना पड़े, व्यक्ति के उद्धार के लिये चाहे समष्टि की बलि ही क्यों न देनी पड़े। जहाँ ब्राह्मण-धर्म समष्टिवादी होने के कारण समाजोन्नयन में व्यक्ति-उत्कर्ष देखता है वहीं बौद्ध-धर्म व्यक्तिवादी होने के कारण व्यक्ति उत्कर्ष में समाज को बाधक समझता है और उसके त्याग में व्यक्ति का कल्याण ढूंढ़ता है।

बौद्धों को ब्राह्मणों की वर्ण-व्यवस्था अमान्य थी। मोक्ष-प्राप्ति के हेतु प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति समान रूप से अधिकारी है। उसके प्रयास में वर्ण-भेद बाधक नहीं। खत्तिय, ब्राह्मन्, वेस्स, सुद्द, चांडाल और पुक्कुस सभी दयालु

१. जातक

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो सकते हैं और निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं।[१] जन्म से नहीं वरन् कर्म से ही मनुष्य ब्राह्मण अथवा चांडाल[२] होता है। परिव्राजक-जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों में बौद्ध साहित्य सभी वर्णों के उदाहरण देता है।[३] मथुरा सुत्त में मथुरा नरेश अवन्तिपुत्र का स्पष्ट कथन है कि मैं श्रमण शूद्र का उसी प्रकार आदर करूँगा जिस प्रकार क्षत्रिय श्रमण का, क्योंकि श्रमण-वृत्ति अंगीकार करने पर शूद्र नहीं रहता।[४] इसी प्रकार सामन्न फल सुत्त का कथन है कि प्रव्रज्या ग्रहण करने पर दास राजा तक के लिए भी आदरणीय हो जाता है। जातकों में प्रत्यक्ष रूप से एक कुम्भकार और एक चाण्डाल के प्रव्रज्या ग्रहण करने का उल्लेख है। कुल्लवग्ग में अरिथ (अरिष्ट) नामक चाण्डाल भिक्षु का नामोल्लेख है। इसे स्वयं महात्मा बुद्ध से दीक्षा मिली थी। अन्य निम्नवर्गीय महत्वपूर्ण व्यक्ति उपालि था। यह नापित था। परन्तु अपनी योग्यता के कारण महात्मा बुद्ध का अग्र श्रावक हो गया था।

वर्ण की भाँति बौद्ध संगठन में चतुराश्रमों के लिए भी कोई स्थान न था। गृहस्थाश्रम तो बौद्धों के लिये यथासम्भव त्याज्य था। बौद्ध धर्म विशेषतया परिव्राजकों अथवा भिक्षुकों का धर्म था। परन्तु सामूहिक ब्रह्मचर्य का नियम कार्य रूप में परिणित नहीं किया जा सकता था। यदि महात्मा बुद्ध एक मात्र गृहत्यागी आजीवन ब्रह्मचारियों को ही अपने धर्म में दीक्षित करते तो कदाचित् उनका धर्म कभी भी बहुसंख्यक अनुयायियों को आकृष्ट न कर पाता और व्यापक सहयोग के अभाव में उनका धर्म-तन्तु परिवर्धित होने के पूर्व ही मुरझा जाता

---

१. जातक ४ पृ० ३०३-गा ७२ २. वसल सुत्त २७.

३. जातक ४.७, जातक ५.३१३, जातक २.४२२, जातक ५.१७७, जातक ३.३६४, जातक ४.११०, जातक २.१३६, जातक ३.३००, जातक १ २४५, जातक ४.३९२ आदि।

४. मथुरा सुत्त—या हि स्स भो कच्चान पुब्बे सुद्दो ति समंजा सा स्स अन्तरहिता समनो तेव संखं गच्छतीति।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। धर्म को पल्लवित करने के हेतु यह आवश्यक था कि उसे बहुसंख्य गृहस्थों का भी सक्रिय सहयोग प्राप्त होता। इस सहयोग-प्राप्ति का केवल एक ही उपाय था और वह यह कि बौद्ध धर्म को गृहस्थों के अनुकूल व्यावहारिक रूप देकर उसका द्वार सबके लिए खोल दिया जाता। परिस्थितिजन्य आवश्यकता को अनुभव करते हुए महात्मा बुद्ध ने यही किया। उन्होंने गृहस्थ बौद्धों को आजीवन ब्रह्मचर्य एवं गृहत्याग के नियमों से मुक्त कर दिया और उनके बौद्ध जीवन के लिए एक अन्य नियमावली इकाई जिसका उल्लेख यथास्थान होगा। गृहस्थ बौद्धों को 'उपासक' की लघु संज्ञा दी गई। यद्यपि गृहस्थों को बौद्ध संगठन में पृष्ठद्वार से प्रवेश मिल गया तथापि उनका स्थान सदैव गौण रहा। बौद्ध संगठन का केन्द्र-विन्दु तो भिक्षु, श्रावक अथवा परिव्राजक था। उसका एक मात्र सहायक था। इस प्रकार महात्मा बुद्ध ने एक तो दार्शनिकता के दृष्टिकोण से गृहस्थाश्रम को कुत्सित एवं त्याज्य बताया और दूसरी ओर व्यावहारिकता के दृष्टिकोण से उसे अपने संगठन को आधार-पीठिका बनाया और इस प्रकार परोक्ष रूप से परगामी ब्राह्मण व्यावस्थाकारों द्वारा स्थापित गृहस्थाश्रम की प्रधानता, महत्ता एवं अनिवार्यता को स्वीकार किया।[१]

यह रहा बौद्ध संगठन एवं गृहस्थाश्रम का द्विविध सम्बन्ध। ब्राह्मण व्यवस्थाकारों के शेष तीनों आश्रमों के अनेकानेक विधि-निषेधों को न्यूनाधिक मात्रा में अंगीकार कर महात्मा बुद्ध ने जिस प्रकार के परिव्राजक-जीवन की कल्पना की वह अनेक अंगों में मौलिक न होकर व्यावहारिक ही अधिक था। बौद्ध-कल्पित इस जीवन में ब्राह्मणों के ब्रह्मचर्याश्रम, वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यासाश्रम की अनेक धारायें आकर पुञ्जीभूत हो गई थीं। सिद्धान्तरूप में आश्रम-

१. गौतम ३—ब्रह्मचारी गृहस्थी भिक्षु वैखानस इति
तेषां गृहस्थो योनिरप्रजननत्वादितरेषाम्।

मनु० ३. १०. ७७-८०—यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।
अस्मात् त्रयोप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्सेन चान्वहं
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमी गृही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यवस्था को अस्वीकार कर महात्मा बुद्ध ने प्रव्रज्या ग्रहण करने वाले व्यक्तियों पर से आयु, काल, परिस्थिति एवं योग्यता के अंकुश हटा दिये। अब किसी भी वर्ग, आयु अथवा परिस्थिति का व्यक्ति किसी भी समय गृह-त्याग कर परिव्राजक, बन सकता था। परिणामतः बौद्ध साहित्य में अनेकानेक ऐसे उदाहरण उपलब्ध होते हैं जिनमें मनुष्यों ने अपने सामाजिक एवं कौटुम्बिक उत्तरदायित्वों की अवहेलना कर व्यक्तिगत कल्याण के हेतु अकाल संसार-त्याग किया था। चुल्लसुतसोम जातक में सुतसोम अपने पुत्र-पुत्रियों की अल्पावस्था का विचार किये बिना ही गृह-त्याग कर देता है।[1] युवंजय जातक में संसार-त्याग के लिए उद्यत राजकुमार के समक्ष उसके माता-पिता की सम्मति एवं अनुनय-विनय व्यर्थ हो जाती है और वह तरुणावस्था में ही परिव्राजक बन जाता है।[2] बन्धनागार जातक में एक गृहपति अपनी सुषुप्त गर्भिणी स्त्री एवं शिशु का त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण करता है। अपने आश्रितों के भरण-पोषण का प्रबंध किये बिना ही गृह-त्याग करने वाले इन व्यक्तियों ने समाज-व्यवस्था के लिए एक गम्भीर विषय उत्पन्न कर दिया था। कालान्तर में ही ऐसे ही व्यक्तियों के विरुद्ध कौटिल्य ने राजकीय दंड की व्यवस्था बनाई थी। इस नवीन निवृत्तिमूलक श्रमण-विचार-धारा ने अपरिपक्व बुद्धि नवयुवकों के ऊपर विशेषतया प्रभाव डाला। महावग्ग के साक्ष्यानुसार मगध की जनता महात्मा बुद्ध के धर्म प्रसार के परिणाम स्वरूप अपने बहुसंख्यक नवयुवकों के प्रव्रज्या ग्रहण करने के कारण व्यग्र हो उठी थी।[3] इनमें से अनेकानेक नवयुवक ऐसे भी होंगे जिन्होंने एकमात्र क्षणिक भावना के प्रभाव में आकर ही संसार-त्याग कर दिया होगा और तत्पश्चात् अपने को कठोर परिव्राजक-जीवन के लिए अनुपयुक्त पाया होगा। पुनः प्रव्रज्या का द्वार सबके लिए अबाध रूप से खुला था। कोई भी व्यक्ति किसी भी समय इसमें प्रवेश कर सकता था। अतः बहुधा अवाँछनीय मनुष्य भी अन्यान्य कारणों से ग्रहण कर लेते थे। महावग्ग में अज्ञान एवं अनधात भिक्षुओं का उल्लेख है जो न उपोसथ जानते थे और न पातिमोक्ख।[4] बौद्ध साहित्य में ऐसे ब्राह्मण

---

१. चुल्ल सुतसोम जातक ५. १७७। २ युवंजय जातक ४. ११९

३. महावग्ग १. २४। ४. महावग्ग २. १७, २१, २, ३, ४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवं श्रमणों के उल्लेख भी मिलते हैं जो श्रद्धालु जनता के भिक्षादान पर सुगमतापूर्वक जीवन-यापन करते हुए छलछद्ममय कार्यों में संलग्न थे और स्वार्थसाधन ही उनका एक मात्र ध्येय था।[१] इसी प्रकार मिलिन्दपह्नों में ऐसे परिव्राजकों का उल्लेख है जो राजा के अत्याचारों से पीड़ित होकर डाकुओं से भयभीत होकर, ऋण न चुका सकने के कारण अथवा जीविकापार्जन के हेतु प्रव्रज्या ग्रहण करते थे।[२] ये कथन अवांछित रूप के संघ प्रविष्ट कतिपय बौद्ध परिव्राजकों के लिये भो सार्थक हो सकते हैं। चुल्लवग्ग में कलहप्रिय एवं अपभाषी भिक्षुओं का उल्लेख है जो संघ के अधिवेशन में निरर्थक वैधानिक विवाद किया करते थे। इन समस्त कुत्सित सम्भावनाओं से अवगत होते ही महात्मा बुद्ध ने संघ-प्रवेश पर अनेक महत्वपूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिये। १५ वर्ष से कम अवस्था का कोई भी युवक बौद्ध परिव्राजक न हो सकता था।[३] गृह-त्याग के लिए माता-पिता की अनुमति आवश्यक बना दी गई। चोरी, हत्या और ऋण के अपराधियों के लिये संघ-प्रवेश वर्जित कर दिया गया। महावग्ग के कथनानुसार राजा बिम्बिसार ने आज्ञा प्रसारित की थी कि बौद्ध भिक्षुओं की कोई भी व्यक्ति हानि न करने पाये। राजकीय संरक्षण में पनपने वाले बौद्ध संघ में यदि आत्म-रक्षा के हेतु हत्यारे, चोर, ऋणी इत्यादि प्रविष्ट हो गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं। इसी प्रकार क्लीव, दास अथवा रोगी भी प्रव्रज्या ग्रहण नहीं कर सकता था।

ब्राह्मण साहित्य की भाँति बौद्ध साहित्य में नारी के दो परस्पर-विरोधी रूप प्रदर्शित किये गये हैं। एक ओर वह नितान्त दुष्प्रकृति है। वह किसी एक पुरुष में अनुरक्त नहीं रह सकती।[४] वह पापस्वरूपा है।[५] अवसर मिलने पर वह अवश्य दुराचार करेगी।[६] मैथुन, अलंकरण और प्रजनन के लिए उसकी तृष्णा असीम है।[७] उसका मस्तिष्क छाया अथवा चक्र की भाँति अस्थिर है।[८] मछली

१. डायलाग्ज आफ़ दि बुद्ध १. १५। २. मिलिन्दपन्हों पृ० ३२.।
३. महावग्ग १—५०।
४. जातक १ पृ० ३६३। ५. जातक १ पृ० २८८-गा० ६०। ६. जातक १ पृ० २८९। ७. जातक ३ पृ० ३४२। ८. जातक ५ पृ० ४४५-गां० ३१४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की गति समान उनकी गति अनिश्चित है।[९] अतः वह धार्मिक जीवन के लिये नितान्त बाधक है।[१०] आनन्द के इस प्रश्न पर कि श्रमण को स्त्री के सम्मुख किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए, महात्मा बुद्ध ने उत्तर दिया था कि जहाँ तक सम्भव हो, उसकी ओर न देखो, परन्तु यदि देखना अनिवार्य हो जाय तो उससे सम्भाषण न करो, परन्तु यदि सम्भाषण भी अनिवार्य हो जाय तो भली-भाँति जागरूक रहो।[११] जातकों में अनेकानेक कथायें ऐसी हैं जिनसे स्त्री का विश्वासघात, कामवासना और छलछद्म प्रदर्शित होते हैं।

दूसरी ओर बौद्धों ने नारी को नितान्त शुभ्र वर्णों से अंकित किया है। महात्मा बुद्ध के मतानुसार नारी में कोई भी क्षुद्रता नहीं है और उसे पुरुष की सम्पत्ति-मात्र न समझना चाहिए।[१२] भार्या के रूप में वह पुरुष की 'परम सखा' है।[१३] स्त्री पुरुष की जननी है। अतः वह कभी भी घृणा की पात्र नहीं हो सकती।[१४] जातकों के कथानक मद्दी, सम्बुला, सुजाता, रूजा आदि पतिव्रता सच्चरित्रा स्त्रियों के उदाहरणों में भरे पड़े हैं।

अतः यह स्पष्ट है कि जहाँ कहीं नारी की कटु आलोचना की गई है वह कामिनी के रूप में की गई है। महात्मा बुद्ध ने भी इसी रूप में नारी के संघ-प्रवेश का विरोध किया था। यद्यपि उन्होंने अपने परम शिष्य आनन्द के अनुनय-विनय एवं तर्क-वितर्क से प्रभावित होकर स्त्रियों को संघ प्रवेश की आज्ञा दे दी तथापि उन्हें यह भय लगा रहा कि भिक्षु-भिक्षुणियों का संपर्क कहीं संघ में भ्रष्टाचार न उत्पन्न कर दे। इसी से उन्होंने स्त्रियों को संघ-प्रवेश की आज्ञा आठ शर्तों पर दी थी[१५]—(१) उन्हें अपने कर्तव्यों को भली-भाँति समझना चाहिये। (२) प्रति अर्धमास उन्हें एक भिक्षा लाना चाहिए। (३) भिक्षु-विहीन स्थान 'पर उन्हें 'वस्स' काल न व्यतीत करना चाहिए। (४) उन्हें भिक्षुओं से पृथक्

---

९. जातक ५ पृ० ६४-गा० २६५।
१०. जातक १ पृ० १२८। ११. महा-परिनिब्बान ५२३। १२. दीर्घनिकाय ४।
१३. संयुक्त निकायजातक १ पृ० ३७। १४. जातक ५ पृ० ३६८-गा ११९-२०। १५. टिबेटन लीजेण्ड्स-६१-६२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहना चाहिए जिससे वे उन्हें न देख सकें और न सुन सकें। (५) वे भिक्षुओं को विपथ न करें। (६) वे क्रोध, अपशब्दता एवं पाप से मुक्त रहें (७) प्रति अर्ध-मास वे किसी भिक्षु के समक्ष अपने पापों को स्वतः स्वीकार कर लें और (८) चाहे वे शतायु ही क्यों न हों, उन्हें प्रत्येक भिक्षु के प्रति, अचिरात् दीक्षित भिक्षु के प्रति भी, आदर प्रदर्शन करना चाहिए, उसके आगमन पर खड़ा हो जाना चाहिए और प्रणाम करना चाहिए।

इतने पर भी महात्मा बुद्ध का अन्तिम कथन था कि स्त्रियों के संघ-प्रवेश से संघ की आयु क्षीण हो गई है और अब वह १००० वर्षों के स्थान पर ५०० वर्षों तक ही चलेगा। इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा बुद्ध मानवी चरित्र की दुर्बलताओं से भलीभाँति परिचित थे अब संघ में स्त्री-प्रवेश निषेध के द्वारा उनके उद्दीपन की सम्भावना को निर्मूल करना चाहते थे। परन्तु यह कथन असत्य है कि वे सम्भवतः, स्त्री-द्रोही थे और उसे नितान्त हेय समझते थे। स्त्री-विरोधी उनके कथन स्त्री पर कामिनी रूप में ही लागू होते हैं। उनका ध्येय समस्त स्त्री-समाज की प्राकृतिक अयोग्यता का प्रतिपादन करना न था। दीर्घनिकाय में उनका कथन[१] कि नारी में कोई क्षुद्रता नहीं है, नारी के उज्ज्वलांश की ओर संकेत करता है। आनन्द में अनुरक्त प्रकृति नाम की निम्न-जातीय स्त्री को उपदेश देते हुए तथागत ने जो शब्द कहे थे वे स्मरणीय हैं। 'प्रकृति! तुम सौभाग्यशालिनी हो, क्योंकि यद्यपि तुम मातंग हो तथापि तुम सत्पुरुषों एवं सन्नारियों के लिए एक आदर्श बन जाओगी। तुम निम्नजातीय हो तथापि ब्राह्मण तुमसे शिक्षा ग्रहण करेंगे। न्याय तथा सत्य के मार्ग से न हटो। तुम सिंहासनासीना राजमहिषियों की कीर्ति का अतिक्रमण कर जाओगी।' इन शब्दों में स्त्री की अन्तर्निहित शक्तियों के प्रति महात्मा बुद्ध का विश्वास ही व्यक्त होता है। बौद्ध इतिहास की अमर नारियाँ—खेमा, उप्पलवन्ना, पताचारा, मद्दा, किसा, गौतमी, धम्मदिन्ना और विशाखा—महात्मा बुद्ध के इस विश्वास की सत्यता के साक्ष्य हैं। बौद्ध संघ के परिवर्द्धन में बौद्ध नारियों का विशेष योग रहा है। उदाहरणार्थ, विसाखा श्रावस्ती की एक धनी महिला थी। वह महात्मा

[१]. दीर्घनिकाय ४।

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्ध तथा उनके अनुयायियों के श्रावस्ती-आगमन पर उनकी विधिवत् सेवा-शुश्रूसा करती थी तथा उन्हें वस्त्रान्न-दान करती थी। अन्त में उसने एक स्थायी निधि के द्वारा बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों के हेतु खाद्य-सामग्री, वस्त्र, औषधि आदि का स्थायी प्रबन्ध कर दिया।[१] दूसरी उल्लेखनीय उपासिका सुप्पिय थी जिसने अपनी जाँघ के मांस को काटकर एक रुग्ण भिक्षु की सेवा की थी।[२] इनके द्वारा उपासिकाओं के अतिरिक्त अनेक भिक्षुणियाँ ऐसी थीं जिन्होंने अपनी साधना द्वारा अर्हत-पद प्राप्त कर लिया था। थेरीगाथा में इनके जो गीत संग्रहीत हैं वे इनकी मानसिक शान्ति एवं बौद्धिक विकास के द्योतक हैं।

बौद्धों के संगठन का केन्द्र-विन्दु 'संघ' है। इसी के अन्तर्गत बौद्ध जीवन संगठित हुआ था और बौद्ध धर्म प्रसारित। तथागत ने जिस बौद्ध-जीवन एवं बौद्ध-धर्म को अंकुरित किया था वह संघ के निरन्तर प्रयास से ही पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हुआ था। अन्य संस्थाओं की भाँति संघ का इतिहास भी एक कालीन न होकर क्रमिक है। वह उत्थान-पतन के अनेक सम-विषम मार्गों से होकर विकसित हुआ था। जनतन्त्रात्मक वातावरण में पालित होने के कारण महात्मा बुद्ध के व्यक्तित्व पर जनतन्त्रवाद का जो प्रचुर प्रभाव पड़ा था वह उनके द्वारा स्थापित संघ के आधारभूत सिद्धान्तों में भी परिलक्षित होता है। बौद्ध संघ एक धार्मिक गणतन्त्र था। उसमें न कोई उच्च था, न नीच, न किसी को अल्पाधिकार थे और न विशेषाधिकार। संग में प्रभुत्व अथवा विशेषाधिकार की आकांक्षा करने वाला व्यक्ति मूर्ख समझा जाता था। महात्मा बुद्ध ने न तो अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था और न अपने उपदेशों को लेखबद्ध कराया था। उनके विचार में धर्म सबकी समान सम्पत्ति था। उसकी व्याख्या एवं रक्षा, उसका उज्जीवन एवं उन्नयन संघ का सामूहिक उत्तरदायित्व था। अपने अन्तिम काल में उन्होंने इसी आशय के विचार प्रकट किये

---

१. महावग्ग ८. १४-१४।
२. महावग्ग ६. २२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे—"आनन्द ! यह सम्भव है कि तुम लोगों में से कतिपय यह विचार कर रहे हों कि 'भगवान के प्रवचन नष्ट हो जायेंगे और हम नेतृत्वहीन हो जायेंगे' परन्तु ऐसा नहीं है। जिस धर्म एवं विनय का मैंने उपदेश दिया एवं प्रचार किया है, वही मेरी मृत्यु के पश्चात् तुम्हारे पथ-प्रदर्शक हों।[१]" यही भाव वस्सकर और आनन्द की वार्ता से स्पष्ट होता है। वस्सकर ने आनन्द से प्रश्न किया कि क्या महात्मा बुद्ध ने अपना कोई उत्तराधिकारी मनोनीत किया है। आनन्द का नकारात्मक उत्तर सुनकर वस्सकर को आश्चर्य हुआ और उसने अपनी शंका प्रकट की कि नेतृत्व के अभाव में संघ की एकता कैसे स्थिर रहेगी। इस पर आनन्द ने प्रत्युत्तर दिया कि ऐ ब्राह्मण, हमें नेतृत्व की आवश्यकता नहीं है। धर्म ही हमारा नेता है।[२]

यद्यपि महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् उनका कोई उत्तराधिकारी (सत्था) न हुआ तथापि संघ के पथ-प्रदर्शन का कार्य उनके अनेकानेक शिष्यों में से कतिपय योग्यतम शिष्यों के हाथ में आया। ये शिष्य कालान्तर में स्थविर अथवा महास्थविर के नाम से प्रख्यात हुए। परन्तु ये आयु, अनुभव एवं विद्या के दृष्टिकोण से ही प्रधान थे, अन्यथा बौद्ध संघ में इनका कोई विशेष पद न था।

जैन धार्मिक संगठन

जैन परम्परा[३] के अनुसार आदिकाल में भारतवर्ष नितान्त असभ्य था।

---

१. महापरिनिब्बान सुत्त ६-१ सियखो पन आनन्द तुम्हाकं एवं अस्स: अतीत सत्थुकं पावचन न अत्थि नो सत्थाति। न खो पन एतं आनन्द एवं दत्थब्बं : यो वा आनन्द मया धम्मो च विनयो च देसितो पञ्ञतो सो वो मं अच्चयेन सत्था।

२. गोपक-मोग्गल्लान-सुत्तन्त (मज्झिम निकाय)

३. कल्पसूत्र ७. २०६-२२८, जम्बुद्दीवपन्नति २. १८-४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहाँ के निवासी अग्नि-प्रयोग एवं भवन-निर्माण कला से पूर्णरूपेण अनभिज्ञ थे। उनका समाज व्यवस्थाहीन था और उसमें विवाह प्रथा का भी उदय नहीं हुआ था। वे नितान्त वर्बर थे और अपने शवों को यत्र-तत्र पृथ्वी पर ही छोड़ देते थे जहाँ वे या तो कालातिपात से विलुप्त हो जाते थे या पशु-पक्षी उन्हें खा डालते थे। ऐसी असम्भव अवस्था में लेखन शैली, पाकविद्या, वास्तुकला, स्थापत्य आदि ललित कलाओं के उदय की आशा दुराशा-मात्र है। परन्तु धीरे-धीरे स्थिति बदली। देश में उसभ (ऋषभ) नामक एक व्यक्ति का जन्म हुआ। उसके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप भारतवर्ष में सभ्यता का संचार हुआ। यही व्यक्ति जैनों का सर्वप्रथम जिन और तीर्थंकर था। परन्तु इस तीर्थंकर एवं इसके अनुगामी अन्य २१ तीर्थंकरों के विषय में हमारा ऐतिहासिक ज्ञान प्रायः कुछ भी नहीं है।

सर्वप्रथम हम जिस जैन तीर्थंकर के विषय में कुछ निश्चित रूप से कह सकते हैं वे हैं पार्श्वनाथ। इनका तथा इनके सम्प्रदाय का उल्लेख जैन ग्रन्थों में हुआ है। आवश्यक चूर्णि महावीर के समकालीन पार्श्व-सम्प्रदाय के अनेक परिव्राजकों का उल्लेख करता है। ये पासावच्चिवज्ज के नाम से सम्बोधित होते थे। मुनिचन्द, गांगेय, कालसवैसियपुत्त, पुण्डरीय, कासव, मैहित, कालिय-पुत आनन्लरक्खिय आदि पार्श्व-शिष्यों का उल्लेख जैन साहित्य में उपलब्ध होता है।[१] विशेष महत्व की बात यह है कि पार्श्व के अनुयायियों में महिलायें भी थीं। इनका उल्लेख नायाधम्म कहा[२] और निर्यावलियाओं[३] में विशेषतया हुआ है। सौमा, जयन्मी विजय, पागब्भा, काली और पुष्फचूला आदि कुछ ऐसी ही पार्श्व की शिष्यायें थीं।[४]

---

१. आवश्यक चूर्णि. २८५, २९१, भगवती सूत्र ९.३२, १.९, २.५ नाया धम्मकहा १९. २१८.

२. नायाधम्मकहा २.१०.

३. निर्यावलियाओं ४.

४. आवश्यकचूर्णि २८६, २९१, नायाधम्मकहा २.१. २२२.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पार्श्व की शिक्षाओं के चार आधारभूत सिद्धान्त थे—१. अहिंसा २. मुसावायाओ वेरमण ३. अदिन्नादाताओं वेरमण और ४. बहिद्धाओं वेरमण। इनके अतिरिक्त निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय में तव्र, सुत्त, एगत्त, और बल के रूप में पंच भावना का भी प्रतिपादन किया गया था। परन्तु पार्श्व ने कभी भी नग्नता को धार्मिक साधना के हेतु अनिवार्य न समझा। इसके विरुद्ध उन्होंने सपरिग्गग्र (वस्त्र धारण) को ही प्रतिपादित किया था। •सामण्णफल में दीघनिकाय निगंठ का उल्लेख करते हुए कहता है कि वह पूर्णरूपेण संयत होता है और पाप कर्म से सदा दूर रहता है। इस ग्रन्थ में भी उसके चतुयाम (संवर) का उल्लेख किया है।

इन समस्त उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि महावीर स्वामी के उदय के पूर्व ही निर्ग्रन्थ-मत का प्रादुर्भाव हो चुका था। पार्श्व के संरक्षण में इस मत के बहुसंख्यक अनुयायी भी हो गये थे। तुंगिय नगर पार्श्व स्थीवरों का केन्द्र था।[१] निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय को संगठन एवं स्थैर्य देने के हेतु पार्श्व ने चार गणों की स्थापना की जो चार गणधरों की अध्यक्षता में संगठित थे।[२] इन समस्त साक्ष्यों से विदित होता है कि पार्श्व के समय में जैन-धर्म एवं जन-संगठन की रूप-रेखा बीजरूप में निर्धारित हो चुकी थी। इनके पश्चात् महावीर स्वामी जैन-धर्म के संस्थापक न होकर उसके सुधारक एवं विकासकर्ता ही थे। पार्श्व और महावीर स्वामी की शिक्षाओं में कुछ अन्तर भी दृष्टिगत होता है। उदाहरणार्थ-पार्श्व ने सपरिग्गग्र का प्रतिपादन किया था और इसके अन्तर्गत भिक्षुओं को वस्त्र-धारण करने की अनुमति दे दी थी। परन्तु महावीर स्वामी नग्नता के पोषक थे।[३] इसी प्रकार जहाँ पार्श्व ने केवल चार प्रतिज्ञाओं (व्रतों) का प्रतिपादन किया वहाँ महावीर स्वामी ने पाँच का। इन भेदों से ही प्रतिभासित होता है कि कदाचित् पार्श्व की मृत्यु के पश्चात् निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय के

---

१. भगवती सूत्र २.५।
२. कल्पसूत्र ६.१६०।
३. उत्तराध्ययन २३. २६.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विधि विषेधों में कुछ अन्तर उत्पन्न होने लगा था और महावीर स्वामी ने मूल शिक्षाओं एवं उदित विभेदों को दृष्टि में रखते हुए प्राचीन जैन-धर्म को पुनः संगठित किया।

पार्श्व की भाँति महावीर स्वामी ने भी गणधरों की नियुक्त की, परन्तु उनकी संख्या ४ के स्थान पर ११ थी। जैन साहित्य में[1] इनके नाम इस प्रकार हैं— १. इनद-भूइ २. अग्गिभूइ ३. बाउभूइ ४. वियत्त ५. सुहम्म ६. मण्डिय ७. मौरियपुत्त ८. अकम्पिय ९. अयलभाया १०. मेइज्ज और ११. पभास। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि ये सब ब्राह्मण थे। स्वयं महावीर स्वामी जैन संघ के सर्वप्रधान थे और ये गणधर उन्हीं के नेतृत्व में संघ-संचालन करते थे। महावीर की मृत्यु के पश्चात् गणधर सुहम्म संघ प्रधानाध्यक्ष बना।[2] उसके पश्चात् जम्बु, पभव, सेज्जम्भव, जसौभद्द, सम्भूति-विजय, भद्दबाहु, थूलभद्द, महागीरी सुहत्थी, सुट्ठीय, सुरि, सुप्पडिबुद्ध, भुन्द, दिन्न, कालकाचार्य, अज्ज वैर और अज्ज रक्खिय आदि क्रमशः संघाधिकारी हुए।[3] जम्बु पर्यन्त जैन संघाध्यक्षों को केवलिन् के उपाधि से विभूषित किया गया है। परन्तु इसके पश्चात् वे 'श्रुतकेवलिन' के नाम से सम्बोधित होते हैं।[4] इनमें से भद्र बाहु चन्द्रगुप्त मौर्य का समकालीन था और इसी के समय मगध में महादुर्भिक्ष का प्रकोप हुआ था। उसका उत्तराधिकारी थूलभद्द जैन साहित्य में नवें नन्द के प्रधानमन्त्री सगडाल का पुत्र था, ऐसा कहा गया है कालान्तर में अनेक जैन धर्मावलम्बियों ने नग्नता के सिद्धान्त का परित्याग कर दिया था। जैन साहित्य के कथानानुसार महागिरी ने उसका पुनरुद्धार किया था। उसका उत्तराधिकारी सुहत्थी मौर्य-नरेश सम्प्रति का समकालीन था। उसने जैन-धर्म स्वीकार कर लिया था और बड़े परिश्रम के साथ प्रसार किया था। जैन साहित्य का उल्लेख है कि उनके संघाध्यक्ष कलकाचार्य ने सीथियन नरेशों की सहायता से गद्दभिल्ल को पराजित किया था। अन्य जैनाचार्य अज्ज वैर नहवाण (नहपान) का समकालीन कहा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने दीर्घकालीन इतिहास में सदैव जैनसंघ किसी-न-किसी आचार्य

---

१. कल्पसूत्र ८.१-४। २. कल्पसूत्र ८.४।
३. कल्पसूत्र ८। ४. निशीथ चूर्णि ५.४३.७।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की अध्यक्षता में ही संचालित होता रहा है। बौद्ध-धर्म की भाँति कभी भी उसने प्रधानाध्यक्षता के नियम का परित्याग न किया।

बौद्ध धर्म की भाँति जैन धर्म भी नितान्त निवृत्तिप्रधान था। इसके अनुसार भी मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर तथा संकटाकीर्ण है, गृहस्थ-जीवन में उसके लिए कोई सुख नहीं है।[१] सांसारिक सुख व्याधिमूलक है।[२] संसार का संगीत प्रलाप एवं नृत्य उपहास के समान हैं। मनुष्य के आभूषण भारमात्र हैं। उसके समस्त सुख दुःखोत्पादक हैं।[३] वृद्धावस्था मनुष्य की शक्ति को नष्ट कर देती है और मनुष्य का जीवन नित्य शनैः-शनैः मृत्यु की ओर अग्रसर होता रहता है।[४] अपने कर्मों का उत्तरदायित्व स्वयं कर्ता पर है। अतः कर्ममूलक नाना प्रकार के दुःख स्वयं उसी को भोगने पड़ते हैं। इसमें उसके बन्धु-बान्धव तथा अन्य सम्बन्धी योग नहीं दे सकते।[५] इसलिये मनुष्य को संसार के भोग-विलास का परित्याग कर ज्ञानार्जन करना चाहिए और संयतचित्त होकर तपश्चर्या करना चाहिए।[६] सुख-तृष्णा के कारण पंचालनरेश ब्रह्मदत्त नरक का भागी हुआ था परन्तु इसके विरुद्ध चित्र नामक साधु संयम और नियन्त्रण के द्वारा पूर्णता को प्राप्त हुआ था।[७] अतः मनुष्य को सांसारिक सम्बन्धों का विच्छेद करके निस्पृह हो जाना चाहिए। जो भिक्षु अपने में अनुरक्त व्यक्तियों के साथ भी अनुराग नहीं करता वह समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है।[८]

जैन साहित्य में संसार-त्याग के अनेक कारणों का उल्लेख हुआ है। अरिट्ठनेमि बध के हेतु बंधे हुए पशु-समूह को देखकर संसार की अनित्यता पर विचार करने लगता है और संन्यास ग्रहण कर लेता है।[९] उज्जियिनी-नरेश देविलासत्त अपने सिर पर सफेद बाल देखकर संसार-त्याग कर देता है।[१०] अपनी मुद्रिकाहीन ऊँगली की असुन्दरता को देखकर भरत के हृदय में संसार की असारता का भाव जाग्रत होता है और वह भिक्षु हो जाता है।[११] ठाणांग

---

१. उत्तराध्ययन १४.७। २. उत्तरा० १४.१३। ३ उत्तरा० १०३.१६-१७। ४ उत्तरा० १३.२६।

५. उत्तराध्ययन १३.२१-३। ६. उत्तरा० १४.२८। ७. उत्तरा० १३.३४-३५। ८. उत्तरा० ८.१-२। ९. उत्तराध्ययन २२-१४। १०. आवश्यकचूर्णि २. २०२। ११. उत्तराध्ययन टीका १८. २३२।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में संसार-त्याग के दस कारणों का उल्लेख मिलता है—(१) स्वेच्छा (२) आकस्मिक क्रोध (३) निर्धनता (४) स्वप्न (५) प्रतिज्ञा (६) पूर्व जीवन-स्मरण (७) सरुग्णता (८) पराभव (९) देव-निर्देश और (१०) पुत्र-संन्यास-ग्रहण। इस उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि अनेकानेक अनुपयुक्त मनुष्य भी अवाच्छनीय कारणों से प्रेरित होकर जैन संघ में प्रविष्ट हो जाते थे। परिणामतः उनकी उपस्थिति, आचरणहीनता तथा अयोग्यता ने संघीय जीवन की सुव्यवस्था एवं अनुशासन-शीलता के लिये गंभीर संकट प्रस्तुत कर दिया होगा। इसी संकट के निवारणार्थ बौद्धों की भाँति जैनियों ने भी सार्वजनिक संघ-प्रवेश के ऊपर प्रतिबंध लगा दिये थे। इन प्रतिबंधों के अनुसार बालक, वृद्ध, क्लीव, जड़, रुग्ण, चोर, राजद्रोही, उन्मत्त, अंध, दास, धूर्त, मूढ़, अंगहीन, अनुचर, भृत्य, गर्भिणी तथा बालिकाओं के लिये संग-प्रवेश वर्जित था।[१]

जैन संघ में चार प्रकार के सदस्य होते थे—(१) समण (२) समणी (३) सावय और (४) साविया। इनमें से प्रथम दो संसार-त्यागी होते थे। ये गृहस्थ-जीवन का परित्याग कर भिक्षु-वृत्ति का आश्रय लेते थे। परन्तु अंतिम दो कोटियों के अंतर्गत वे स्त्री-पुरुष आते थे जो गृहस्थ-जीवन का वहन करते हुए भी जैन-धर्म द्वारा प्रतिपादित विधि-निषेधों का पालन करते हुए धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे। यद्यपि जैन-व्यवस्था के अंतर्गत इनका स्थान प्रथम दो कोटि के व्यक्तियों की अपेक्षा निम्न था तथापि निवृत्तिमार्गी एवं संसार-त्यागी जैन भिक्षुओं और भिक्षुणियों का भरण-पोषण इन्हीं गृहस्थों की उदारता एवं दान-शीलता पर निर्भर था।

निवृत्तिमार्गी विचारधारा

ईसा पूर्व सातवीं, छठीं और पाँचवीं शताब्दियाँ भारतवर्ष में ही नहीं वरन् संसार में धार्मिक क्रांति की शताब्दियाँ हैं। इस समय संसार के अनेक क्षेत्रों में नूतनातिनूतन विचार-धारायें निस्सृत हो रही थीं जो अपने उद्दाम वेग में शताब्दियों की पुरातन रूढ़ियों एवं परम्पराओं को प्रवाहित कर जाना

१. ठाणांग ३. २०२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहती थीं। मानव-मस्तिष्क अपनी आलोचनात्मक शक्ति से पुरातनवाद के आवरण को चीर कर प्रत्येक वस्तु को सत् और असत् की कसौटी पर परखना चाहता था। मानवी आत्मा सहस्रों वर्षों को रूढ़िवादिता और अन्धविश्वास-परता का परित्याग कर अपना नवीन पथ निर्धारित करना चाहती थी। युग-युग की पुंजीभूत धूमराशि में दबी हुई दीप-शिखा अपना पूर्ण-प्रकाश चाहती थी। फलतः मनुष्य की इस उदीयमाना जिज्ञासा ने उसके धार्मिक जीवन में हलचल मचा दी। जिस प्रकार फारस में जरथुस्त्र, चीन में कन्फ्यूशिअस और यूनान में सुकरात एवं उसके अनुयायियों ने प्राचीन रूढ़िवादिता के विरुद्ध नवीन विचारों का प्रचार किया उसी प्रकार भारतवर्ष में महावीर स्वामी एवं महात्मा बुद्ध ने धार्मिक क्रान्ति का उद्घोष किया। अन्य देशों की भाँति भारतवर्ष की यह क्रांति भी न तो आकस्मिक घटना थी और न एकमात्र इन दो युग-पुरुषों के प्रचार के कारण हुई थी। वास्तव में इसका बीजारोपण सहस्त्रों वर्ष पूर्व ही हो चुका था। काल-गति के साथ-साथ शनैः-शनैः यह अंकुरित, परिवर्धित और पल्लवित होता रहा। अन्त में ई० पू० छठी शताब्दी में यह कुसुमित और फलित हुआ।

यह धार्मिक क्रान्ति जिन अनेक कारणों से उद्भूत थी उनमें आर्य-अनार्य विचार-धाराओं का पारस्परिक संघर्ष एक प्रमुख कारण था। आर्य विचार-धारा वैदिक काल से ही प्रवृत्ति-मार्गी थी। उसमें संसार-त्याग, वैराग्य, संन्यास, प्रवृज्या अथवा भिक्षु-जीवन के लिये स्थान नहीं था। ये समस्त विचार अनार्य थे जो वैदिक काल से ही उत्तरोत्तर दृढ़ीभूत होकर आर्य-विचारधारा को प्रभावित कर रहे थे। वैदिक साहित्य में जिन संन्यासियों अथवा तपस्यिों का वर्णन है वे अनार्य प्रतीत होते हैं। इनकी निवृत्तिमार्गी विचार-धारा को हम श्रमण विचार-धारा भी कह सकते हैं। ब्राह्मणों की वर्ण-विशिष्टता, वेद-अपौरुषेयता, यज्ञ-प्रधान-कर्मकाण्डता एवं प्रवृत्तिमूलक धार्मिकता के विरुद्ध जो विचार-धाराएँ प्रवाहित होती रही थीं वे श्रमण विचार-धारा से संयुक्त हो गईं और उनकी सम्मिलित शक्ति से ही निवृत्तमार्गी जैन तथा बौद्ध धर्मों का उद्रेक हुआ। यह कोई आकस्मिक घटना न थी कि इन दोनों विरोधी धर्मों का उद्भव पूर्वी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतवर्ष में हुआ। ब्राह्मण धर्म का केन्द्र प्रारम्भ में पंजाब और कालान्तर में आर्यावर्त हुआ। ब्राह्मण-संस्कृति मगध एवं विदेह ऐसे पूर्वी प्रदेशों को छठीं शताब्दी तक पूर्णरूपेण आत्मसात् न कर सकी थी। यही कारण है कि यहाँ के ब्राह्मण भी उदीच्य ब्राह्मणों की अपेक्षा हीन समझे जाते थे। अतः स्वाभाविक था कि ब्राह्मणों का विरोध इन्हीं पूर्वी प्रदेशों में होता जहाँ उनका प्रभाव नगण्य अथवा अल्प था।

जिस प्रकार दीर्घकाल ने प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलक विचारों का संघर्ष चल रहा था उसी प्रकार कर्मकाण्डीय और दार्शनिक विचारों में भी प्रतिद्वन्द्विता थी। यह प्रतिद्वन्द्विता उपनिषद काल में उन्मुख हो चुकी। उद्दालक आरुणि और श्वेतकेतु तत्कालीन दार्शनिक विचार-धारा के परिपोषक थे जो वेदाध्ययन तथा यजन-याजन की अपेक्षा शील और ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति को अधिक महत्वपूर्ण समझते थे। कतिपय विद्वानों का तो विश्वास है कि भारतवर्ष में इस साफिस्ट आन्दोलन (नवी दार्शनिक विचारधारा) के प्रवर्तक यही उद्दालक आरुणि थे।[१] जो भी हो, इतना निश्चित है कि ये दोनों विचार-धाराएँ श्रमण-विंचारधारा और दर्शनिक विचार छठीं शताब्दी ई० पू० तक अत्यंत परिपुष्ट हो गई थीं। इनके परिणाम-स्वरूप जैन और बौद्ध धर्म का तो जन्म हुआ ही, साथ में अनेक अन्य मतों का भी प्रादुर्भाव हुआ, यद्यपि इन दो प्रधान ब्राह्मण-विरोधी धर्मों के तुमुल उत्घोषों के समक्ष अन्य मतों के स्वर मन्द थे तथापि उनका उल्लेख बौद्धों और जैनों के साहित्य में हुआ है।

लौकिक धर्म—परन्तु उपर्युक्त कथन समाज के एक विशिष्ट स्तर के मनुष्यों की ही नवीन विचार-धारा एवं उदीयमान चेतना के द्योतक हैं। बौद्धिक गवेषणा एवं धार्मिक जिज्ञासा मनुष्य के लिए दुरूह थीं। कदाचित् समाज का बहुसंख्यक वर्ग उनसे अधिक प्रभावित न हुआ, दार्शनिक वाद-विवाद एवं धार्मिक वितण्डावाद से परे ग्रामों में निवास करने वाला सामान्य भारतीय कदाचित् उस समय भी इतना ही परम्परानुरागी, रूढ़िवादी और क्रान्ति-निरपेक्ष था जितना

---

१. रीज डेविडज लिखित बुद्धिस्ट इन्डिया पृ० २४७, डा० बरुआ-लिखित हिस्ट्री आव प्री-बुद्धिस्टिक इन्डियन फिलासाफी पृ० १३०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आज है। इसका परिणाम यह हुआ कि यद्यपि समाज के उच्च वर्ग में बौद्धिक क्रान्ति हुई, धर्म-परिवर्तन हुए, जीवन के विभिन्न विषयों का नवीन मूल्यांकन हुआ तथापि सामान्य भारतीय न्यूनाधिक मात्रा में अपरिवर्तित रहा, अस्पष्ट रहा। विवादों के झंझावात आये, सिद्धान्तों के संघर्ष हुए, विभिन्न दर्शन टकराये, नूतनातिनूतन विचार-धाराओं का आप्लावन हुआ परन्तु इन सबके बीच सामान्य भारतीय बहुत-कुछ पूर्ववत् ही रहा। न तो उसके जीवन में और न उसके धर्म में ही क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। यही कारण है कि हम बौद्ध और जैन दोनों के साहित्य में उसे पूर्ववत् अपने परम्परागत लौकिक धर्म का अनुसरण करते हुए पाते हैं जो तर्क के स्थान पर असीम श्रद्धा के ऊपर अवलम्बित है।

यही नहीं, स्वयं बौद्ध और जैन धर्म भी इस लौकिक धर्म के प्रभाव से अछूते न रहे। उन्होंने कालान्तर में इसके अंगों को अपने भीतर समाविष्ट कर लिया।

जैन और बौद्ध धर्मों का प्रसार भी समाज की श्रद्धा, अन्धविश्वास, रूढ़ि और परम्परा की सुदृढ़ भित्तियों को न ढहा सका। जनसाधारण पूर्ववत् अपने परम्परागत देवी-देवताओं की उपासना करता। उन्हें सन्तुष्ट करने के हेतु वह विविध धार्मिक अनुष्ठान, याज्ञिक कर्म एवं अनेकानेक विधि-निषेधों का पालन करता रहा। नवीन धर्मों ने समाज में प्रचलित जन्त्र-मन्त्रों एवं अन्य अन्धविश्वासों का विरोध किया। उनके विरोध का प्रभाव समाज के कितने बड़े वर्ग पर कितनी मात्रा में पड़ा, यह निश्चित रूप से कहना असम्भव है। अनुमानतः तर्क-वादी नवीन धर्मों का प्रचार समाज के अत्यल्पसंख्यक शिक्षित एवं अभिजातवर्ग को प्रभावित कर सका होगा। क्योंकि बौद्ध एवं जैन साहित्य में हम सामान्य मनुष्य के जिस जीवन की झांकी पाते हैं वह बहुदेववादिता, रूढ़ि-वादिता, अन्ध-विश्वासशीलता और परम्पराप्रियता से ओत-प्रोत है। यही नहीं, कदाचित् अपने धर्मों को लोक-प्रिय बनाने के हेतु इनके अनुयायियों ने कालान्तर में उनमें उन समस्त रूढ़ियों और परम्पराओं का समावेश कर लिया जिनका उनके प्रवर्तकों ने प्रारम्भ में विरोध किया था।

स्त्री-समाज—स्त्री समाज की आधार-शिला है। माता और भार्या के रूप में वह जिन कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का संवहन करती है उन्हीं पर समाज का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्कर्षापकर्ष अवलम्बित है । पुरुष के व्यक्तित्व का अंकुरण माता के अंक में ही होता है । वही उसका प्राथमिक एवं सर्व-प्रधान शिक्षालय है वहाँ वह जिन विशेषताओं से प्रभावित होती है वही कालान्तर में दृढ़ीभूत होकर उसके चरित्र के अंग बन जाते हैं । यदि मातृत्व पुरुष के चरित्र की संरोपण-भूमि है तो पत्नीत्व उसके विकास के हेतु प्रसाद-स्तम्भ । पत्नी के रूप में स्त्री पुरुष के सुख-दुःख, आशा-निराशा, उत्थान-पतन आदि द्वन्द्वों में चिर-साहचर्य देती हुई जीवन के सम-विषम पथ पर उसके साथ निरंतर गति से चलती हुई उसके प्रसाद-अभि-शापों की सहभागिनी बनी रहती है । स्त्री इन युगल रूपों में ही उसका चिरंतन महत्व अंतर्निहित है । उसकी सामाजिक स्थिति से सम्पूर्ण समाज प्रभावित होता है । बहुधा ऐसा देखा गया है कि उसकी उन्नति-अनुन्नति का इतिहास समस्त समाज की उन्नति-अनुन्नति का इतिहास बन जाता है । इस दृष्टि से स्त्री सामा-जिक उत्कार्षापकर्ष का मापदंड है । उसके सामाजिक मूल्य से सम्पूर्ण समाज का मूल्यांकन किया जा सकता है । यही कारण है कि स्त्री-समाज का इतिहास अपना एक विशेष महत्व रखता है । भारतीय इतिहास में यह विषय स्त्री के विकास-ह्लास, प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा, संघर्ष-विघर्ष एवं उदय-विलय की एक लम्बी कहानी है जिसमें हमारे सामाजिक इतिहास के विविध मधुर एवं कटु सत्य निहित हैं ।

सम्पूर्ण साहित्य में स्त्री को दो नितांत परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों से देखा गया है । ऋग्वेद के एक अंश के अनुसार स्त्री में संख्यभाव का पूर्ण अभाव है और हृदय वृक के समान क्रूर होता है ।[1] दूसरे स्थान पर उसके मन-मस्तिष्क को नियन्त्रण के परे बताया गया है ।[2] मैत्रायणीय संहिता में स्त्री को मिथ्या-स्वरूप कहा गया है ।[3] तैत्तिरीय संहिता में वह निर्बला के रूप में उल्लिखित है ।[4]

१. ऋ० १०. ९५.१५ न वै स्त्रैणानि संख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ।

२. ऋ० ४. ३३. १७-इन्द्रश्चिद्ध तदब्रवीत स्त्रिया अशास्यं मनः ।

३. मैत्रायणीय सं० १. १० ११—अनृतं स्त्री अनृतं वेषा करोति या पत्युः क्रीता सती अथान्यैश्चरति ।

४. तैत्तरीय सं० ६. ५. ८ २-तस्मात्स्त्रियौ निरिन्द्रिया अदायादीरपि पापात्पुंस उपस्तितरं वदन्ति ।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शतपथ ब्राह्मण के कथनानुसार स्त्री, शूद्र, कुत्ता, कौवा और मिथ्या, पाप तथा अन्धकार के प्रतीक हैं।† उसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थान पर स्त्री को पुरुषाधीन कहा गया है।* इसी का अनुमोदन बोधायन धर्मसूत्र में किया गया है।** गौतम का कथन है कि स्त्री धार्मिक क्रियाओं के लिये स्वतन्त्र नहीं है।[१] वशिष्ठ भी स्त्री को पुरुषनिर्भरा बताते हैं।[२] इसी प्रकार मनु का कथन है कि स्त्री स्वतन्त्रताधिकारिणी नहीं है। बाल्यावस्था में पिता, यौवनावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र उसकी रक्षा करते हैं।[३] महाभारत में भी स्त्री की स्वतन्त्रता का विरोध किया है।[४] दूसरे स्थान पर उसे साथ ही क्षुरधारा, विष, सर्प तथा वह्नि कहा गया है तथा उसे सबसे अधिक पापी बताया गया है।[५] उसी महाकाव्य में की धारणा है कि स्त्री विद्यु च्चांचल्य, शस्त्रतैक्ष्ण्य तथा गरुड़-वेग का अगस्त्य सम्मिश्रण है।[६] उनका जीवन का लक्ष्य एकमात्र संभोग ही होता है।[७] इसकी पूर्ति के हेतु वे किसी भी व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित कर सकती है।[८] इसी प्रकार

---

†. एस० बी० ई० भाग ४४ पृ० ४४६।* शतपथ ब्रा० १३, २, २, ४।** बौधा० धर्मसूत्र २, २, ५०—५२।

१. गौतम १८, १—अस्वतन्त्रा धर्मे स्त्री। २. वशिष्ठः ५. १—अस्वतन्त्रा स्त्री पुरुषप्रधाना।

३. मनु० ९. २-३—पिता रक्षित कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।

४. महा० अनु० २०, १४—न स्त्री स्वततन्त्र्यमर्हति।

५. महा० अनु० ३८, १२ तथा २९—न स्त्रीभ्यः किंचिदन्यद्वै पापीयस्तरमस्ति वै। क्षुरधारा विषं सर्पो बह्निरित्येकतः स्त्रियः।

६. महा० २, १३, ६—
शतह्रदानां लोलत्वं शस्त्राणां तीक्ष्णता तथा।
गरुडानयोः शैघ्र्यनमनुगच्छन्ति योषितः।

७. महा० ४, ३९, ७८—असंभोगो जरा स्त्रीणाम्।

८. महा० १३, ७३, १७—
नासां कश्चिद्गम्योऽस्ति नासाँ वयसि संस्थितिः।
विरूपं वा सरूपं वा पुमानित्येव भुंजते।

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की स्त्री निन्दा रामायण में भी प्राप्त होती हैं। उसमें स्त्री को धर्महीन, चपल, तीक्ष्ण तथा भेदकर के रूप में प्रदर्शित किया गया है।*[१]

बौद्ध साहित्य भी स्त्री के प्रति कुछ कम अनुदार नहीं है। स्वयं महात्मा बुद्ध को उसमें अत्यधिक अविश्वास था। यह कथन महावग्ग सुत्त (७) में तथागत तथा आनन्द के निम्नलिखित वर्तालाप से सिद्ध हो जाता है—

आनन्द : 'भगवन्, हम लोग स्त्रियों के प्रति कैसा व्यवहार करें ?'

तथागत : 'आनन्द उन्हें मत देखो।'

आनन्द : 'देखने पर क्या करें ?'

तथागत : 'आनन्द, उनसे वार्तालाप न करो।'

आनन्द : 'परन्तु यदि वे हमारे साथ वार्ता करें, भगवन् तो ?'

तथागत : 'आनन्द सम्यक् रूप से जाग्रत रहो।'

तैविग्गसुक्त (३३) में स्त्री को पुरुष की सम्पत्ति के रूप में प्रदर्शित किया गया है। यही मत सुल्लवग्ग सुत्त (१८, २१) का है। स्त्री का भाव समझना दुष्कर है। उसकी अस्थिरता जल में मछली के समान है।[१] उसमें सत्य सुदुर्लभ है।[२] उसका मन बानरों की भाँति, वृक्षच्छाया की भाँति और चक्र की भाँति चंचल है।[३] उसकी सम्भोग, अलंकार तथा सन्तान की इच्छा अनन्त है।[४] वह किसी भी व्यक्ति के साथ व्यभिचार कर सकती है।[५] वह कभी भी एक व्यक्ति में अनुरक्त नहीं रह सकती।[६] वह मनुष्य के धार्मिक उत्थान में मल-स्वरूप है।[७] जातकों के कथानकों में अनेक स्थानों पर स्त्रियों का अत्यन्त कुत्सित रूप में चित्रण किया गया। एक जातक में एक स्त्री अपने पति की अनुपस्थिति में अनेक पुरुषों के साथ सम्बन्ध स्थापित करती हुई प्रदर्शित की गई है।[८] एक

---

*१. रामा० अरण्य० ४५, २९-३०-विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा भेद-करा स्त्रियः।

१. जातक ५ पृ० ६४—थीनं भावो दुराजानो मच्छस्सेवोदकेगतन्। २. जातक १ पृ० २९५—सच्चं तेसं सुदुल्लभम्। ३. जातक पृ० ४४५ ४ जातक ३ पृ० ३४२—मेथुनधम्मेन अलंकारेण विजायनेन....५ जातक ५ पृ० ४४० ६ जातक १ पृ० ३९३। ७ जातक १ पृ० १२८-इत्थियो गाम पब्बजितस्स मलम्। ८. जातक ४ पृ० २४५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कन्या जन्म से ही पुरुषों से पृथक रक्खी गई। विवाह के पश्चात् भी वह पति के अतिरिक्त किसी पुरुष के सम्पर्क में नहीं जाने पाई। उसे स्त्री-संरक्षकों द्वारा परिवृत्ति एक उच्च प्रासाद में रक्खा गया फिर भी उसने सबको धोखा देकर एक पुरुष को स्त्री के वेश में अपने महल में प्रविष्ट कर लिया तथा उसके साथ समागम किया।[१] इससे स्त्री की सहज प्रवंचनात्मक मनोवृत्ति सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। एक अन्य जातक[२] में एक दम्पति की यात्रा का वर्णन है। मार्ग में स्त्री अत्यधिक श्रमित हो जाती है। अतः उसका पति उसे अपने कन्धों पर लाद कर यात्रा करता है। मार्ग में स्त्री पिपासार्त्त हो जाता है। परन्तु अभाग्यवश उस स्थान पर कहीं भी पानी न था। अपनी पत्नी की विकलता को देखकर पुरुष अपनी जाँघ को काटकर रक्त द्वारा उसकी पिपासा को शान्त करता है। परन्तु अपने पति के प्रगाढ़ प्रेम की उपेक्षा करती हुई वही स्त्री कुछ काल पश्चात् परपुरुष का वरण कर लेती है और इस प्रकार कृतघ्ना का घृणित दृष्टान्त बन जाती है। मिलिन्दिपन्हों में स्वयं महात्मा बुद्ध का कथन है कि अवसर तथा एकान्त पाने पर स्त्री किसी भी पुरुष के साथ विपथ हो सकती है चाहे वह अंगहीन क्यों न हो।[३] उसी ग्रन्थ में स्त्री को अति अस्थिर एवं नीच कहा गया है।[४]

जैन साहित्य में भी स्त्री के विरोध में अनेक कथन उपलब्ध होते हैं। मनुस्मृति के समान भगवान् भाष्य का कथन है कि स्त्री किसी भी अवस्था में स्वतन्त्रता के योग्य नहीं। उसे बाल्यावस्था में अपने पिता के नियन्त्रण में, विवाहितावस्था में अपने पति के नियन्त्रण में और वैधव्यवस्था में अपने पुत्र के नियन्त्रण में रहना चाहिए।[५] स्त्रियाँ हृदय के क्रूर तथा शरीर, वाणी और दृष्टि से आकर्षक होती हैं। वे स्वर्णजटित कटार के समान होती हैं।[६] जिस नगर में स्त्रियाँ शक्तिशालिनी होती हैं वह निश्चित रूप से संकट-ग्रस्त हो जाता है।[७] उत्तराध्ययन के कथनानुसार स्त्रियाँ अस्थिर-चित्त होती हैं। वे पुरुषों को

---

१. जातक १ पृ० २८९। २. जातक २ पृ० ११५। ३. मिलिन्द० ४.४. ४२। ४. मिलिन्द ४. १. ८। ५. व्यवहार भाष्य ३. २३३। ६. हिन्दू टेल्स में मेयर द्वारा अनूदित अगडदत्त पृ० २८६। ७. व्यवहार भाष्य १. १३०।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रलोभित करने के पश्चात् उनके साथ दासों के समान व्यवहार करती हैं। जैन साहित्य में स्त्रियों की पथभ्रष्टता एवं विश्वासघात के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। दसवेयालिय चूर्णि में एक गृहपति की स्त्री का उल्लेख है जो एक अन्य नवयुवक से अपवित्र सम्बन्ध स्थापित करती है।[1] उत्तराध्ययन टोका में राजा अगड़दत्त की स्त्री मयणमंजरी का उल्लेख है जो अन्य पुरुष के साथ प्रेम करती है और अपने पति की हत्या करने का प्रयास करती है।[2]

धार्मिक क्षेत्र में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की स्थिति हेय थी। अस्थिर-बुद्धि होने के कारण जैन व्यवस्थाकारों ने स्त्रियों के लिए महापरिज्ञा, अरुणा-पपात और दृष्टिवाद नामक धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन करने का निषेध किया है।[3] कल्पसूत्र के अनुसार शतवर्षीया भिक्षुणी के लिए अचिरात दीक्षित भिक्षु भी वन्दनीय हैं। स्त्री स्वयं कभी मोक्षाधिकारिणी नहीं हो सकती। मोक्ष-प्राप्ति के हेतु उसे पुरुष का जन्म लेना आवश्यक है। भिक्षुणी की हीनता इसी बात से भी सिद्ध होती है कि जहाँ १०८ सिद्ध और २३ तीर्थकार हुए हैं वहाँ स्त्रियों में केवल बीस सिद्धों और एक तीर्थकार का उल्लेख पाया जाता है। उत्तराध्ययन में स्वयं महावीर स्वामी का कथन है कि भिक्षु के लिए स्त्री बाइस बाधाओं में से एक है। वह राक्षसी के समान है। उसका चरित्र बड़ा ही संदिग्ध होता है। वह मनस्तः एक व्यक्ति में अनुरक्त रहती है, शब्दतः दूसरे तथा व्यवहारतः तीसरे में। अतः भिक्षु के लिये वह सर्वथा त्याज्य है। प्रमुख तीर्थकर ऋषभदेव ने जहाँ पुरुषों के लिये ७२ कलाओं की व्यवस्था की है वहाँ स्त्रियों के लिये केवल ६४ की। इस सम्बन्ध ये उन्होंने स्पष्टतया कह दिया है कि स्त्री को केवल गृह-कार्यों की शिक्षा देनी चाहिए। उसे साहित्यिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का अधिकार नहीं है।

प्रथम दृष्टि में ही साहित्य के उपर्युक्त स्त्री-निन्दात्मक उद्धरण एक-पक्षीय एवं अतिरंजित प्रतीत होते हैं। अधिक से अधिक ये उद्धरण तथा कथानक स्त्री के कामिनीरूप का ही वर्णन करते हैं। इनमें उनकी पुत्री की शुभ्रता, मातृरूप

---

१. दसवेयालिय चूर्णि पृ० ८९-९१। २. उत्तराध्ययन टीका ४ पृ० ८४-९३। ३. व्यवहार भाष्य ५६. १३६. बृहद्कल्प भाष्य पीठिका १४६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की स्निग्धता तथा भार्यारूप की सहकारिता एवं उपयोगिता की उपेक्षा की गई है। जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म के विरक्ति प्रधान आन्दोलनों ने स्त्री को प्रायः रमणी के रूप में देखा और उसे निवृत्ति-मार्ग के लिए बाधक समझा है। गृहस्थ-जीवन से मनुष्यों को विरत करने के हेतु भी स्त्री को इस कुत्सित रूप में प्रदर्शित किया गया है।[१] बराहमिहिर ने इन निन्दकों को दुर्जन कहा है तथा इनकी घोर भर्त्सना की है।[२] पुनः समाज सुधारक एवं व्यवस्थाकार न्यूनाधिक-मात्रा में निन्दनीय वस्तु को सायास अतिरंजित करके उसकी गर्हितता को ही प्रमाणित करना चाहते हैं। उनसे इस अतिरंजन में उस वस्तु के वास्तविक रूप की अपेक्षा लेखक की सुधारात्मक प्रवृत्ति ही अधिक परिलक्षित होती है।[३]

कुछ भी हो, यदि हम साहित्य का सम्यक् रूप से अध्ययन करें तो हमें स्त्री का दूसरा रूप भी मिलेगा। यह समाज के कतिपय भग्नाश, प्रताड़ित अथवा प्रवंचित मनुष्यों की धारणा की नहीं, वरन् जन-साधारण की सामान्य धारणा का प्रतिनिधित्व करता है। इस रूप में ही स्त्री की वास्तविकता प्रकट होती है। प्राचीन भारत में पुत्री यथेष्ट रूप से वांछनीय थी। उसका जन्म सदैव असन्तोष-कर न था। समाज का शिष्टवर्ग पुत्रियों को पुत्रों के समान ही स्नेह-भाजन समझता था। कन्याएँ शुभात्मक समझी जाती थीं। उनमें लक्ष्मी का वास माना जाता था। इन बातों का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। यह तो रही कन्या की प्रतिष्ठा की बात।

विवाहिता होने पर नारी भार्या रूप में भी अत्यधिक महत्व पाती थी। ऋग्वेद में उसे स्वयं गृह कहा गया है।*[१] तैत्तिरीय संहीता में पत्नी को पुरुष

---

१. बृहत्संहिता ७४.५ येऽप्यंगनानां प्रवदन्ति दोषान् वैराग्यमार्गेण गुणान्विहाय। ते दुर्जना मे मनसो वितर्कः उद्भाववाक्यानि न तानि तेषाम्।

२. बृहत्संहिता ७६.१७-अहो धार्ष्टयमसाधूनां निन्दतामनधाः स्त्रियः। मुष्णतामिव चौराणां तिष्ठ चोरेति जल्पताम्।

३. जैमिनि २.४.२१ पर शबर पृ० ६४० नहि निन्दा निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रयुज्यते। किं तर्हि। निन्दितादितरत्प्रशंसितुम्। तत्र न निन्दितस्य प्रतिषेधो गम्यते किं त्वितरस्य विधिः।

*१. ऋ० ३.५३ ४-जायेदस्तं मघवत्सेदु योनिः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का अर्धभाग बताया गया है।[१] इसी प्रकार का कथन शतपथ ब्राह्मण में भी उपलब्ध होता है। पत्नी के बिना पुरुष पूर्ण नहीं हो सकता।[२] इसी कथन का अनुमोदन ऐतरेय आरण्यक में हुआ है।[३] अपने पति के घर में वह सम्राज्ञी समझी जाती थी।[४] विपथ अथवा विपन्न नारियों के प्रति भी प्राचीन समाज विशेष उदार था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार स्वापराध स्वीकार कर लेने वाली पत्नी पुनः धार्मिक क्रियाओं में सम्मिलित की जा सकती थी।[५] प्रायः यही मत वशिष्ठ का भी है।[६] अपनी धर्मपत्नी का अकारण त्याग करने वाले मनुष्य के लिए आहस्तम्ब में कठोर दण्ड का विधान बताया है।[७] महाभारत के मतानुसार निरपराध भार्या का त्याग करने वाले पुरुष के लिये कहीं भी त्राण नहीं है।[८]

---

१. तैत्ति० सं० ६. १. ८. ५--अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी।

२. सत० ब्रा० ५. २. १. १०--अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्माद्या-वज्जायायां न विन्दते नैव तावत्प्रजायते। असर्वो हि तस्मात्भवति। अथयदैव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते तर्हि सर्वो भवति।

३. ऐत० आर० १. २. ४--तस्मात्पुरुषो जायां वित्वा कृत्स्नतरमिवात्मानं मन्यते।

४. अथर्व० १४. १. ४३—

यथा सिन्धुर्नदीनाँ साम्राज्यं सुषुवे वृषा एवात्वं सम्राज्ञयेधि पत्यरस्तं परेत्य च।

५. शत० ब्रा० ८. ५. २. २०--प्रतिप्रस्थाता पत्नीमुदानेष्यन् पृच्छति केन चरसीति निरुक्त वैनः कनीयो भवति सह्यं भवति।

६. वशिष्ठ २८. २—३-स्वयं विप्रतिपन्ना वा यदि वा विप्रवासिता बलात्कारोपमुक्ता वा चौरहस्तगतापि वा न त्याज्या दुषिता नारी नास्यास्त्या गो विधीयते।

७. आप० १. ६. १८--दारव्यतिक्रमी खराजिनं वहिर्लोम परिधाय दारव्यतिक्रमिणे भिक्षामिति सप्तागाराणि चरेत्। सा वृतिः षण्मासान्।

८. महा० १३. ५८. १३—एवं भार्यास्यजतां नराणां नास्ति निष्कृतिः

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस महाकाव्य में गृहिणी को ही गृह कहा गया है।[१] वह मनुष्य का अर्ध भाग तथा उसका श्रेष्ठतम सखा है।[२] रामायण में भी उसे पुरुष का अनन्यरूप कहा गया है।[३] मनु के लिये भार्या नितान्त सम्मान्य है।[४]

बौद्ध एवं जैन साहित्य में भी भार्या की श्लाघा की गई है। वह पुरुष की परम सखा है।[५] एक स्थान पर पतिव्रता संबुला का वर्णन है जिसने कुष्ठरोग से पीड़ित अपने पति की अनन्य मन से सेवा की थी।[६] पुत्र के द्वारा अपने पति का वध सुनकर कोसलदेवी ने शोकार्त होकर प्राण-त्याग कर दिया।[७] कक्कटा जातक में एक भार्या ने अनुनय-विनय के द्वारा डाकुओं से अपने पति की जीवन-रक्षा की।[८] सुजाता, अमरादेवी, रूजा, उदुम्बरा, उदयभद्दा आदि महिलायें तत्कालीन समाज में पत्नी के उच्च आदर्श को परिलक्षित करती हैं। स्त्री की गणना चक्रवर्ती के १४ रत्नों में की गई है।[९] आपद्काल में सर्वप्रथम स्त्री ही रक्षणीय है।[१०] जैन साहित्य में लब्धप्रतिष्ठ एवं कर्तव्य-परायण स्त्रियों के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। मल्लि अपनी साधना एवं विद्वत्ता के कारण तीर्थंकर हो गई थी।[११] सुभद्रा का नामोल्लेख एक पवित्र एवं पतिव्रता भार्या के रूप में हुआ है। राजीमती नामक एक अन्य भार्या ने अपने पति के साथ ही साथ परिव्राजक-जीवन ग्रहण किया था। और तपश्चर्या करते समय बड़ी ही दृढ़ता के वासनोन्मुख रहनेमि नामक अपने देवर से अपनी रक्षा की थी[१२]। जयन्ती नामक एक राजवंशीया ने संसार-त्याग कर भिक्षुणी-जीवन अंगीकार किया था और भिक्षुणी के रूप में अत्यन्त सम्मान्य थी। अज्ज चन्दणा महावीर स्वामी की

---

१. महा० शान्ति० १४४. ६-न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।

२. महा० १. ७४.४०-अर्धम् भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमा सखा।

३. रामा० ४.२४.३४—अनन्यरूपा पुरुषस्य दारा।

४. मनु० यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते इत्यादि।

५. संयुक्त निकाय भाग २ पृ० ३७—भरिया परमा सखा। ६. जातक ५ पृ० ८८-९८। ७. जातक २३९। ८. जातक २६७। ९. जम्बुद्दीवपन्नति ३. ६७, दीर्घनिकाय २. १७२.७। १०. बृहत्कल्प भाष्य ४, ४३.४८। ११. नायाधम्म कहा ८। १२. दसवेयालिय चूर्णि २, ७-११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्वप्रथम स्त्री शिष्या थी। उसके प्रोत्साहन, निरीक्षण एवं पथ-प्रदर्शन के परिणामस्वरूप बहुसंख्यक भिक्षुणियों को मोक्ष-लाभ हुआ था। जैन साहित्य के साक्ष्यानुसार अनेक महिलायें धर्म-प्रचारक, धर्मोपदेशक एवं शिक्षक भी हो गई थीं।

माता के रूप में स्त्री की सम्मान्यता प्रायः प्रत्येक व्यक्ति ने स्वीकार की है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार शिशु के हेतु माता गुरु का कार्य सम्पादित करती है। तैत्तिरीय उपनिषद् में माता देवता के समान बताई गई है। माता की सर्वमान्य प्रतिष्ठा के कारण ही वैदिक कालीन अनेक ऋषियों के नाम माता के नाम से सम्बद्ध थे। इनमें महिदस, ऐतरेय, जातुकर्ण्य, कात्यायनीपुत्र और कृष्ण देवकीपुत्र विशेष उल्लेखनीय हैं। गौतम के मतानुसार माता-पिता और आचार्य से भी उच्चतर होती है।[१] आपस्तम्ब और बौधायन के धर्मसूत्रों का निर्देश है कि समाज-बहिष्कृत माता भी अपने पुत्र के लिए त्याज्य नहीं हो सकती।[२] वशिष्ठ का उल्लेख है कि शिशु-शिक्षा के दृष्टिकोण से 'स्त्री पुरुष की अपेक्षा शतशः अधिक महत्वपूर्ण है।[३] इसी व्यवस्थाकार के मतानुसार पतित होने पर पिता परित्यक्त किया जा सकता है परन्तु माता नहीं।[४] महाभारत में भी माता को परम गुरु कहा गया है।[५] माता को असन्तुष्ट करने वाले व्यक्ति का कहीं त्राण नहीं।[६] वह भूमि से भी गुरुतरा है।[७]

बौद्ध एवं जैन साहित्य में भी माता का स्थान बहुत ऊँचा है। एक स्थान पर उसे देवता कहा गया है।[†१] वृद्धावस्था में माता का निरीक्षण एवं परिपोषण पुत्र का परम कर्तव्य है। माता के दुख-निवारण के हेतु पुत्र को अपने

---

१. गौतम २, ५१। २. आप० १, १०, २८-९—माता पुत्रत्वस्य भूयांसि कर्माण्यारभते तस्यां शूश्रूषा नित्या पतितायामपि।

बौधा० २, २, २८—पतितामपि तु मातरं विभृयादनभिभाषाणमाणः

३. वशिष्ठ १३-४८। ४. वशिष्ठ १३-४७—पतितः पिता परित्याज्यो माता तु पुत्रे न पतति। ५. महा० १, १९६, १३—गुरूणां चैव सर्वेषां माता परमको गुरुः। ६. महा० १, ३७, ४—न तु मात्राभिशप्तानामभिमोक्षः क्व च विद्यते।७. महा० ४, ३१३, ६०—माता गुरुतरा भूमे....।

†१. जातक ६ पृ० ३६४—पुब्बदेवता नाम मातापितरो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राणों की भी चिन्ता न करनी चाहिए।[१] एक स्थान पर जातक का कथन है कि मातृहीन व्यक्ति को पितृहीन भी समझना चाहिए। जैन साहित्य में राजा पूसनन्दि का उल्लेख है जो अत्यन्त मातृभक्त था और जो अपनी माता को स्नान एवं भोजन कराने के पश्चात् ही स्नान और भोजन करता था। यह दृष्टान्त तत्कालीन समाज में माता की पुत्रवन्द्यता को प्रदर्शित करता है।

स्त्री के विशेष महत्व को स्वीकार करते हुए ही व्यवस्थाकारों ने उसकी अवध्यता को स्वीकृत किया था। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि स्त्री की हत्या नहीं करनी चाहिए।[२] गौतम ने अति जघन्य अपराध निम्नजातीय पुरुष के साथ व्यभिचार करने पर स्त्री के लिये मृत्युदण्ड की व्यवस्था की है।[३] परन्तु यह दण्ड केवल राजा द्वारा ही दिया जा सकता है और तत्पश्चात् उसे भी इसके लिये प्रायश्चित करना पड़ेगा।

मनु ने इस व्यवस्था का अनुमोदन किया है।[४] राजा के अतिरिक्त और कोई भी मनुष्य स्त्री-हत्या नहीं कर सकता। मनु के कथनानुसार स्त्री बालक तथा ब्राह्मणों की हत्या करने वालों को मृत्यु-दण्ड मिलना चाहिए।[५] महाभारत में भी स्त्री को अवध्य बताया गया है।[६] उसी महाकाव्य का दूसरे स्थान पर कथन है कि स्त्रियों, गोओं तथा ब्राह्मणों के विरुद्ध शस्त्र-प्रयोग अधर्म्य है।[७] रामायण के कतिपय उदाहरणों से भी स्त्री की अवध्यता सिद्ध होती है। श्रीराम ने ताड़का-वध बड़ी ही अनिच्छापूर्वक किया था। अनेक बार विचार करने पर भी रावण ने सीता का वध इसीलिये नहीं किया कि वह स्त्री थी बौद्ध साहित्य में भी स्त्री-हत्या के उदाहरण अत्यल्प हैं जिनसे साधारणतया उनकी अवध्यता ही प्रमाणित होती है। हाँ, व्यभिचार के अपराध में उन्हें अवश्य मृत्यु-दण्ड दिया जा सकता था।

---

१. जातक ६ पृ० ५८७।

२. शतपथ ब्रा० ११. ४.३. २—स्त्री वेषा यच्छीर्न वे स्त्रियं धून्ति।

३. गौतम २३. १४। ४. मनु० ८. ३७१। ५. मनु ६. २३२। ६. महा० १. १५८. ३१—अवध्या स्त्रियं इतत्याहुर्धर्मज्ञा धर्मनिश्चये।

७. महा० सभा० ४१.१३ स्त्रीषु गोषु न शस्त्राणि पातयेद्ब्रह्मणेषु च।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन समाज में नारी का विशेष महत्व था। वह स्वयं लक्ष्मी है। सत्कार्य होने पर वह विभूतिदायिनी बन जाती है।[१] जिस कुल में उसे दुःख मिलता है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और इसके विपरीत जिस कुल में वे दुःखरहित होती हैं उस कुल का संवर्धन होता है।[२] रामायण में भी यही धारणा परिलक्षित होती है। मनु ने भी भारतीय विचार-धारा का अनुकरण करते हुए एक स्थान पर स्पष्टतया लिखा है कि जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता वास करते हैं।[३] जिस कुटुम्ब में स्त्री को दुःख मिलता है वह शीघ्र विनष्ट हो जाता है।[४] कामसूत्र ने उसकी उपमा पुष्प से दी है।[५]

आर्थिक संगठन—प्राचीनकाल से भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश रहा है। वेदों में आर्य अपने क्षेत्रों एवं पशुओं की रक्षा जलवृष्टि के निमित्त प्रार्थना करते हुए पाये जाते हैं। उनमें कृषि-सम्बन्धी सभी बातों—हल चलाना बीज बोना, कूपों से जल सींचना, नहरों को खोदना और सिंचाई करना, निराना, धान्य काटना और एकत्रित करना आदि—का उल्लेख मिलता है। कृषि कर्म के साथ-साथ पशु पालन भी महत्वपूर्ण व्यवासाय था। पालतू पशुओं में गाय, बैल, बकरी, भैंस और घोड़े विशेष उल्लेखनीय हैं।

परकालीन साहित्य के अवलोकन से कृषि-कर्म के विशाल विकास पर प्रकाश पड़ता है। कृषि हल-बैल की सहायता से होती थी। हल काष्ठ का और उसका फल लोहे का होता था। हल के अतिरिक्त दात्र, कुद्दाल, कुठार, शर्प आदि उपकरणों का वर्णन मिलता है। खेतों में उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं में शालि, तण्डुल, गोधूम, माष, यव, मिर्च, अदरख, राई, लहसुन, जीरा, तिल, कपास आदि प्रमुख थीं। उपवनों में विविध शाक, आम, जम्बूफल, अंगूर, केला, खजूर,

---

१. महा० १३. ८१. १५—स्त्रिय एता स्त्रियो नाम सत्कार्या भूतिमिच्छता लालितानुगृहीता च श्रीः स्त्रर्भवति भारत।

२. मनु० ३. ५७. शोचन्ति जामया यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम। न शोचन्ति तु यत्रैव वर्द्धते तद्धि सर्वदा।

३. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमान्ते तत्र देवताः—मनु ३. ५६।

४. मनु० ३. ५७. ५. कामसूत्र ३. २—कुसुमसधर्माणो हि योषितः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा पुष्प-लतादिक दृष्टिगत होते थे । फसल काट कर खलमण्डल (खलिहान) में एकत्र की जाती थी और भूसा अलग करने के पश्चात् अन्न संग्रहालयों में रक्खा जाता था । स्वयंरुह आरण्य और पानेय (यथा श्यामक और नीवार) से ऋषि-मुनियों का परिपालन होता था । खेतों की सिंचाई के लिये नदियों, नहरों, कूपों, तालाबों आदि की व्यवस्था थी । इनकी सुरक्षा के निमित्त राजकीय अधिकारी नियुक्त होते थे । कृषकों की दशा सामान्यतया सन्तोषजनक थी । वे युद्ध-कर्मों एवं सार्वजनिक सेवाओं से मुक्त थे । युद्ध-काल में भी प्रस्थानकारिणी शत्रु-सेनायें खेतों में व्यस्त कृषकों को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचाती थीं । दुर्भिक्ष के समय कृषक राजभाग से मुक्त कर दिये जाते थे तथा उन्हें राज्य की ओर से आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी । जातकों में राजभाग उपज के बारहवें अंश से लेकर छठे अंश तक मिलता है । महाभारत ने दसवें भाग से लेकर छठे भाग तक राजभाग स्वीकार किया है । यही व्यवस्था मनु की भी है ।

कृषि-कर्म के साथ-साथ पशु पालन भी ग्रामीण जनता का महत्वपूर्ण व्यवसाय था । वार्ता के अन्तर्गत इसे भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । महाभारत में स्वस्थ पशुओं की उत्पत्ति एवं उनके स्थास्थ्य-संरक्षा के विषय में अनेक ज्ञातव्य बातें पाई जाती हैं । पशुओं के लिये चरागाहों की व्यवस्था थी जिनमें पशु दिन भर चरा करते थे । उनकी देख-रेख के लिये गोपालक, गोप और अज-पाल आदि रहते थे जो संध्या समय पशुओं को घर ले आते थे ।

कृषि-कर्म के साथ-साथ विभिन्न व्यवसाय भी उत्तरोत्तर विकसित होते गये । ये व्यवसाय शिल्प-समूहों (Guilds) में संगठित थे । जिनका उल्लेख पाणिनि, बौद्ध एवं जैन साहित्य, सूत्र साहित्य, अर्थशास्त्र, महाकाव्यों तथा शास्त्रों में समानरूप से उपलब्ध होता है । प्रत्येक शिल्प-समूह का नेतृत्व एक प्रमुख अथवा ज्येष्ठक के द्वारा होता था । इन शिल्प-प्रमुखों की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण होती थी । कभी-कभी वे राजा के विशेष कृपा-पात्र होते थे और उन्हें राजसभाओं में भी स्थान मिलता था । जब कभी दो शिल्प-समूहों में मतभेद हो जाता था तो उसका निर्णय महाश्रेष्ठी करता था जिसकी स्थिति सभी श्रेणियों के प्रधान के

 . Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप में थी। इन श्रेणियों में तन्तुवाय, काष्ठकार, स्वर्णकार, कुम्भकार, चर्मकार, दन्तकार, नलकार विशेष उल्लेखनीय हैं।

व्यावसायिक विकास के साथ-साथ देश ने व्यापारिक उन्नति भी की। स्थानीय क्रय-विक्रय के हेतु नगर में भिन्न-भिन्न व्यावसायियों की वीथियाँ थीं। यह व्यापारिक विशिष्टीकरण एवं स्थानीयकरण का परिणाम था। छोटी-मोटी आवश्यक वस्तुयें फेरीवालों के माध्यम से जनसाधारण के पास पहुँचती रहती थीं। देश के भीतर अनेकानेक व्यापारिक मार्ग थे। इन पर व्यापारी बैलगाड़ियों, गायों, अश्वों आदि वाहनों पर अपना सामान लाद कर इस्ततः आते-जाते दिखाई देते थे। मार्ग में अपनी संरक्षा के निमित्त ये बहुधा दलों में चलते थे और अपने साथ रक्षक रखते थे। देश के प्रसिद्ध व्यापारिक नगर मार्गों के द्वारा एक-दूसरे से सम्बद्ध थे। पूर्व से पश्चिम का प्रमुख मार्ग मगध से लेकर मिथिला, काशी, सहजाति तथा कौशाम्बी तक जाता था। काशी का व्यापार उज्जैन के साथ होता था। इस मार्ग के बीच में कौशाम्बी और चेदि देश पड़ते थे। विदेह से काश्मीर और गान्धार तक स्थल-मार्ग जाते थे। व्यापारियों का मगध से सौवीर के हेतु प्रस्थान का वर्णन मिलता है। पश्चिम में सिन्ध देश के अश्व भारत के अन्य भागों में भेजे जाते थे। राजपूताना के पश्चिम में मरुस्थल को पार करते समय व्यापारी तारात्रों से दिशा-ज्ञान प्राप्त करते थे। अन्तर्प्रादेशिक व्यापार सरिताओं के द्वारा भी होता था। नावों के ऊपर अपना माल लाद कर आते-जाते हुए व्यापारियों के प्रभूत वर्णन भारतीय साहित्य में मिलते हैं। स्थल-भार्गों और जल-मार्गों पर स्थान-स्थान पर राजकीय चुंगी अथवा कर व्यवस्था थी। शुल्काध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, अन्तपाल आदि राजकीय पदाधिकारी चुंगी, तौल और माल आदि का निरीक्षण करते। बहुधा व्यापारियों के लाभ की दरें भी निश्चित कर दी जाती थीं। अतिलाभ करने पर वे राजा द्वारा दण्डित होते थे। खाद्य सामग्री में मिलावट करने वाले व्यापारी भी दण्डनीय थे।

राज्य विदेशीय व्यापार को प्रोत्साहित करता था। मेगस्थनीज के वर्णन से विदित होता है कि पाटलिपुत्र में विदेशियों की सुविधा और सुरक्षा के निमित्त एक विशेष महासमिति थी।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य की ओर से विदेशी बाजारों में देशी वस्तुओं के विक्रय के सभी सम्भाव्य प्रयत्न किये जाते थे। ऐसे निर्यात के विभिन्न शुल्कों का ध्यान रख कर ही उनका मूल्य निश्चित किया जाता था। व्यापारियों को निर्यात के विषय में यथेष्ट सुविधायें दी जाती थीं। आयात के क्षेत्र में राज्य को हानि पहुँचाने वाली वस्तुओं का आयात सर्वथा निषिद्ध था, राष्ट्र के उपयोग में आने वाले अप्राप्य बीजों तथा वस्तुओं के आयात की पूर्ण आज्ञा थी।[१] इस भाँति कौटिल्य की वाणिज्य-व्यवस्था में जहाँ देशीय क्षेत्र में व्यापारियों की अपेक्षा राज्य के वाणिज्य के द्रुत प्रसार की पूर्ण चेष्टा की जाती थी, वहाँ साथ ही विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से वाणिज्य की समस्त सुविधायें व्यापारी-वर्ग को प्रदान की जाती थीं। राज्य प्रतियोगिता द्वारा अपने व्यापार को सर्वोपरि स्थान देता था। व्यापारियों तथा प्रजा के हितों के विषय में राज्य सदैव प्रजा के हित-साधन का प्रयत्न करता था।

वाणिज्य-व्यवस्था का वर्णन महाकाव्यों में वार्ता-शास्त्र के अन्य अंगों की भाँति संकेत रूप से प्राप्त होता है। राम भरत से कृषकों तथा व्यापारियों के हितों की रक्षा कहने के लिए करते हुए दिखाई देते हैं। महाभारत में भी कृषि, गोरक्षा तथा वाणिज्य सांसारिक जीवन के आधार माने गये हैं। रामायण और महाभारत दोनों ग्रन्थों में ही वाणिज्य की उन्नत दशा का उल्लेख है। राज्य का संरक्षण प्राप्त कर वाणिज्य की पूर्ण उन्नति हो रही थी। अयोध्या में अन्य बहुत से देशों के व्यापारी रहते थे। महाभारत में देश के विभिन्न भू-भागों तथा प्रसिद्ध नगरों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने से उद्देश्य के राज्य मार्गों का वर्णन आता है। विदर्भ के राजा भीम की पुत्री दमयन्ती अपने पति नल से वियुक्त होने पर सार्थवाह का आश्रय प्राप्त करना चाहती है, जो अपने सार्थ के सहित समुद्रतट की ओर जाता था। इसी भाँति भरत और भीष्म की यात्राओं में क्रमशः अयोध्या एवं हस्तिनापुर से सम्पर्क स्थापित करने वाले मार्गों का वर्णन प्राप्त होता है।

महाकाव्यों में विभिन्न स्थानीय वस्तुओं का उल्लेख मिलता है, जो अश्वमेध अथवा राजसूय यज्ञों के अवसर पर अधीनस्थ राजाओं के द्वारा

---

१. राष्ट्रपीडाकरं भाण्डमुच्छिन्द्यात् अफल च यत।
महोपकारम् उच्छुल्कं कुर्यात् बीजं च दुर्लभम्॥

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सार्वभौम नरेशों को उपहार-स्वरूप भेंट की जाती थीं। काम्बोज, वाह्लीक एवं वनायु देश अपने अश्वों के लिए प्रसिद्ध थे। एक स्थान पर केकय नरेश काम्बोज के दस सहस्त्र अश्व उपहार स्वरूप भेजते हैं। विन्ध्य क्षेत्र के हाथी अपने आकार एवं शक्ति के लिए विख्यात् थे। अयोध्याकाण्ड में कोतय और अपरान्त के समुद्र रत्नों की भेंट करते हैं। इनके साथ ही उदीच्य, प्रतीच्य तथा दक्षिणात्य देशों के व्यापारी भी अपने उपहार प्रस्तुत करते हैं।

महाभारत में तो आदिपर्व और सभापर्व में विभिन्न वस्तुओं की एक वृहत् तालिका दी गई है, जो उपहारस्वरूप कृष्ण तथा आश्रित राजाओं ने पाण्डवों को भेंट की थी। इनमें पूर्वीय देशों के हाथी, काम्बोज, गान्धार, वाह्लीक तथा प्राग्ज्योतिषपुर के अश्व, पश्चिमी क्षेत्रों के ऊँट, कम्बोज के ऊनी वस्त्र, वाह्लीक तथा चीन के रेशमी वस्त्रों, अपरान्त तथा पूर्वीय क्षेत्रों के सूती वस्त्र, तथा पूर्वीय क्षेत्रों के आयुध प्राग्ज्योतिष, अपरान्त पाण्ड्य तथा म्लेच्छ देशों के मोती तथा सिन्धु देश के शालि विशेष उल्लेखनीय हैं। निस्सन्देह देश के विभिन्न क्षेत्रों की इन प्रसिद्ध वस्तुओं का व्यापार तत्कालीन वाणिज्य-व्यवस्था को उन्नत करने में पूर्ण सहायता पहुँचा रहा होगा, जिसका संकेत महाकाव्यों में स्पष्ट किया गया है।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में देश में अर्थ-वृत्ति (मनो एकानमी) की प्रतिष्ठा होती है। इस संस्था के उदय का प्रधान कारण व्यापारिक वृद्धि है। देशीय एवं विदेशीय व्यापार के परिणामस्वरूप देश में एक ऐसे वर्ग का उदय हुआ जिसे हम आधुनिक भाषा में पूँजीपतियों और उद्योगपतियों का वर्ग कह सकते हैं। बौद्ध साहित्य में इनका वर्णन 'सेट्ठि' के रूप में किया गया है। विशेषतया इन्हीं के कार्य-कलाप ने देश के व्यापारिक जीवन को अत्यन्त व्यस्त एवं जटिल बना दिया था और व्यापारिक जगत् में आदान-प्रदान के एवं क्रय-विक्रय के अनेक साधनों को जन्म दिया। इनमें ऋण-संस्था विशेष उल्लेखनीय है। पाणिनि ने द्वैगुणिक, त्रैगुणिक और दशैकादशिक ब्याज का उल्लेख किया है। इससे यही प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में ब्याज की दर बहुत ऊँची थी।[१] यही कारण है कि ब्याजमूलक ऋण-दान अनेक धर्मसूत्रकारों की

१. पाणिनि ४.४.३० ५.१.४७।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दृष्टि में असत्कर्म था। वसिष्ठ ने ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिये इसे वर्जित बताया है।[१] परन्तु ब्याज की अनेक दरों के उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि ऋण-दान एवं ऋण-ग्रहण समाज में दृढ़ संस्थायें हो चुकी थीं। गौतम ने साधारण ब्याज की दर पंचमांश प्रति २२ कार्षापण बताई है। परन्तु इसके अतिरिक्त उन्होंने चक्रवृद्धि, त्रैगुणिक, चातुर्गुणिक आदि ब्याज की विविध दरों का भी उल्लेख किया है।[२] वसिष्ठ के अनुसार ब्याज की साधारण दर २%से ५% मासिक के बीच में होती थी।[३] ऐसा प्रतीत होता है कि वार्धूषिक-वृत्ति गौतम के काल तक पर्याप्त रूप से विकसित हो चुकी थी और अन्य व्यावसायियों की भाँति ऋण-दाता भी वर्गों में संगठित थे।[४] ऋण प्रायः लिखित ऋण-पत्रों अथवा गिरवी के ऊपर दिये जाते थे।[५] इस विषय पर अर्थशास्त्र से प्रचुर प्रकाश पड़ता है। इसके अनुसार विविध ब्याजों की दरें राज्य की ओर से निश्चित कर दी गई थीं। क्योंकि ऋणदान के विषय के ऊपर ही 'राजन्य योगक्षेम' बहुत कुछ निर्भर है।[६] कौटिल्य के अनुसार साधारण ब्याज १$\frac{१}{४}$ पण, व्यावहारिको ५ पण, कान्तारकों में १० पण तथा सामुद्रिक व्यापारियों में २० पण प्रतिशत प्रतिमास की दर थी।*[७] इन दरों से अधिक ब्याज लेना दण्डनीय था।[८] ब्याज धन-धान्य दोनों पर लगता था।[९] इसी प्रकार कौटिल्य ने गिरवी के सम्बन्ध में भी अनेक नियमों की व्यवस्था की थी। यदि गिरवी रक्खी हुई वस्तु से ब्याज-सहित मूल वसूल हो जाय तो गिरवी की वह वस्तु लौटाने की व्यवस्था थी। यदि गिरवी रखने वाले मनुष्य को पूर्व सम्मति के बिना ही ऋणदाता उसकी वस्तु का किसी प्रकार उपभोग करे तो उसे उपभोग के लिये हर्जाना देना पड़ता था।[१०] कौटिल्य ने आदेश (Bill of Exchange) और आन्वाधि (Bailment for delivery) का भी उल्लेख किया है।[११]

---

१. वसिष्ठ २ ४०। २. गौतम १२. २६। ३. वशिष्ठ २. ४८-४६। ४. गौतम ११.२१। ५. वाशिष्ठ १६ १०। ६. बुक ३

*७. बुक ३। ८. वही। ९. वही। १०. वही, याज्ञवल्क्य २. ६८
११. वही

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राह्मण ग्रन्थों के समान बौद्ध ग्रन्थों में भी यह विषय विविधरूपों में मिलता है। इन ग्रन्थों से ऐसा प्रतीत होता है कि ब्याज की दर बहुधा ऊँची होती थी। अतः ऋण न चुका सकने के कारण कभी-कभी मनुष्यों को दासवृत्ति भी स्वीकार करनी पड़ती थी। थेरीगाथा के वर्णनानुसार इसिदासी के पिता ने मूल और ब्याज के रूप में ऋणदाता को अपनी पुत्री ही दासी के रूप में दे दी थी। ऋणी मनुष्य समाज में अवज्ञा की दृष्टि से देखा जाता था। बौद्ध व्यवस्था के अनुसार उसके लिए संघ-प्रवेश वर्जित था। बौद्ध कदाचित् वार्धूषिक-वृत्ति को असत् समझते थे। इसी से कहीं-कहीं पर उसकी निन्दा की गई है।

प्राचीन भारतवर्ष में आधुनिक काल की भाँति व्यवस्थित बैंक न थे। अतः सुरक्षा के हेतु मनुष्य अपने धन एवं अन्य वस्तुओं को विश्वासपात्र मित्रों एवं विभिन्न निकायों के पास जमा कर देते थे। इस प्रकार सुरक्षा हेतु जमा की गई सम्पत्ति के दो रूप होते थे—(१) उपनिधि जो किसी डब्बे अथवा अन्य पदार्थ में बन्द कर दी जाती थी और (२) निक्षेप जो खुली रहती थी। निक्षिप्त वस्तु की सुरक्षा का उत्तरदायित्व उस व्यक्ति अथवा निकाय के ऊपर रहता था जो उसे अपने अधिकार में रखता था। उसको क्षति अथवा विनाश के हेतु उसे हर्जाना देना पड़ता था। उसका उपभोग करने के अपराध में उसे भोगवेतन देना पड़ता था। बैंक के रूप में निकायों के कार्यों का पर्याप्त ज्ञान अनेक अभिलेखों से प्राप्त होता है। नासिक के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि जुलाहों के एक निकाय में २००० कार्षापण जमा थे। इन पर उस निकाय को १% प्रतिमास ब्याज के रूप में प्राप्त होता था। इसी प्रकार के एक दूसरे निकाय में १००० कार्षापण जमा थे। इन पर उसे $\frac{3}{4}$% प्रतिमास ब्याज मिलता था। बैंक के रूप में कार्य करने वाले इन निकायों को अच्छी आय हो जाती थी और इनमें से अनेक पर्याप्तरूप से सम्पत्तिवान् हो गये थे। इस सम्पत्ति का उपयोग बहुधा ये सार्वजनिक हित के कार्यों के सम्पादन में करते थे। जुन्नार के अभिलेख में एक श्रेणी का उल्लेख है जिसने अपने दो क्षेत्रों की आय को वृक्ष लगाने के कार्य के लिये समर्पित कर दिया था। यहीं के अन्य अभिलेख के अनुसार एक अन्य श्रेणी ने एक गुफा और एक हौज का निर्माण कराया था। इसी प्रकार के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक निकायों और श्रेणियों का वर्णन नासिक और जुन्नार के अभिलेखों में प्राप्त होता है।

वेष-भूषा—ई० पू० छठीं शताब्दी तक आते-आते भारतीय सभ्यता एकमात्र ग्राम्य न रहकर नागरीय होने लगती है। देश में काशी, साकेत, वैशाली ऐसे अनेकानेक नगरों का उदय हो जाता है। यहाँ के निवासियों का जीवन कृषि-प्रधान न रह कर विविध व्यवसाय-प्रधान हो जाता है। इन नगरों में नाना प्रकार के उद्योग-धन्धों का विकास होता है जिनके परिणाम-स्वरूप नागरीय उत्तरोत्तर समृद्धिशील, प्रगतिशील और वैभवशील होता है। नागरीय जोवन को यह भव्य समृद्धिशालीलता तत्कालीन मनुष्यों की वेष-भूषा में यथेष्ठ परिलक्षित होती है। उनमें अलंकरण-प्रियता थी। विशेष अवसरों पर वे बड़ी सजधज के साथ बाहर निकलते थे। एक जातक* में विरूपाक्ष की पुत्री कालकण्डी का उल्लेख है जो सुचिपरिवार नामक सेट्ठी से मिलने के लिये जो वेशभूषा धारण करती है उसके प्रमुख उपकरण नीले रंग के हैं—नीले वस्त्र, नोली मणियाँ एवं नीला विलेपन। यह उदाहरण तत्कालीन समाज में प्रचलित अनेकानेक प्रकार की अलंकरण-रचनाओं की सूचना देता है। महापरिनिब्बान सुत्त[१] का कथन है कि महात्मा बुद्ध के आगमन पर दर्शनार्थी वैशाली-निवासी जब उनसे मिलने चले तो उन्होंने अपने-अपने रंग के अनुकूल वस्त्रों को धारण किया था। इस उल्लेख से भी जनता को विशिष्ट अलङ्करण-रुचि का बोध होता है। स्त्री-पुरुषों के वस्त्र अनेक प्रकार—कर्पास[२], क्षौम[३], कौशेय[४], भांगिक[५], कुशचीर[६], शाण[७], वल्कल[८]

---

* जातक ३, ५५।

[१] महापरिनिब्बान सुत्त २, १८।

[२]. अष्टाध्यायी ६, ३, ६५; जातक ६, ४७; ३, २८६; आचारांग सूत्र २, ५, १, १।

[३]. अष्टाध्यायी ५, २, ४; जातक ६, ४७; महावग्ग ८, १, ३६; आचारांग सूत्र १, ७, ४, १।

[४]. अष्टाध्यायी ४, ३, ४२; जातक ६, ४७; महावग्ग ८ १, ३६, आचारांग सूत्र २, ५, १, ४। [५]. महावग्ग ८, ३, १,। [६]. महावग्ग ८, २८, २-३। [७]. दीघनिकाय भाग २ पृ० ३४९-५०। [८]. महावग्ग ८, २८, २-३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि—के होते थे। इनके अतिरिक्त समाज में चर्मवस्त्रों का भी प्रचलन कम न था। वस्त्र-निर्माण में जिन पशुओं के चर्म का प्रयोग अधिक होता था उनमें व्याघ्र, सिंह, हरिण, भेड़ और बकरी विशेष उल्लेखनीय हैं।*[1] बौद्ध साहित्य वस्त्र-निर्माण-केन्द्रों में काशी का विशेषरूप से उल्लेख करता है। यहाँ के कारीगर अपनी हस्त-दक्षता के लिये सुविख्यात थे। काशी के बने हुए ये वस्त्र काशीय अथवा वाराणसेय्यकं के नाम से प्रख्यात थे[2] और अपने महीनपन तथा अपनी दृढ़ता के लिए सुप्रसिद्ध थे।[3] बुद्धघोष के अनुसार अड्ढकासीय नामक कम्बल का मूल्य ५०० कार्षापण था। इस प्रकार का बहुमूल्य कम्बल काशी नरेश ने जीवक को उपहार-स्वरूप दिया था।[4] यहाँ पर कदाचित् कम्बल शब्द प्रयोग ऊनी वस्त्र के लिये किया गया है।[5]

साधारणतया पुरुष धोती का प्रयोग करते थे। इसके पहनने की विविध प्रणालियों[6]—शतवल्लिक, चतुष्कर्णक, हस्तिशौंडिक, तालवृन्तक आदि—से इस वस्त्र की लोकप्रियता प्रकट होती है। यही धोती ही पुरुषों का अन्तरवासक था। इसके साथ वे प्रायः कायबन्ध का भी प्रयोग करते थे।[7] शरीर के ऊर्ध्व भाग में वे उत्तरासङ्ग, कंचुक और उष्णीष पहनते थे। महिलाओं में प्रायः साड़ी पहनने का प्रचलन था।[8] वस्त्रों से साथ-साथ बौद्ध साहित्य में पदत्राण एवं पादुकाओं के भी उल्लेख मिलते हैं। उनके विविध आकार-प्रकारों[9]—एकचलांसिक, द्विपटल, तिपटल, खल्लकबद्ध, पुटबद्ध, तित्तिरपट्टिक, पालिगुंठिम, कृष्ण, पीत, नील, लोहित आदि—से तत्कालीन जनता की विकसित अभिरुचि पर प्रकाश पड़ता है। इन पदत्राणों के अतिरिक्त कभी-कभी लोग काष्ठ, सोने, चाँदी; राँगे, ताँबे, काँसे, स्फटिक और वैडूर्य आदि का पादुकायें भी पहनते थे।[10]

बौद्ध साहित्य की भाँति अर्थशास्त्र से भी भारतीय वेश-भूषा पर प्रभूत

---

*१. महावग्ग ५, १०, ५-७; ५, १३, ६। २. जातक ६, ५००; मज्झिम निकाय २, ३, ७। ३. महापरिनिब्बान सुत्त ५, २६। ४. महावग्ग ८, २। ५. महावग्ग ८, ३, १। ६. चुल्लवग्ग ५, २९, ४। ७. वही ५, २९, २। ८. जातक ३, ५५, २९६। ९. महावग्ग ५, १, २९; ५, २, २३; ५, २, २। १०. महावग्ग ५, ७, १; ५, ८, ३।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाश पड़ता है। कौटिल्य दुकूल[१] का उल्लेख करते हैं। यह अधिकांशतः बङ्गाल में बनता था इसी से इसे वांगक की संज्ञा दी गई थी। ताने-बाने के विभेद से दुकूल वस्त्र अध्यर्धांकुश, एकांशुक, द्व्यंशुक, अथवा त्र्यंशुक कहलाता था। दुकूल के अतिरिक्त भारतीय कारीगर अनेक प्रकार के सूती वस्त्रों का निर्माण करते थे जो अपने प्रादेशिक नामों—वांगक, कलिंगक, उपरांतक, माधुर, माहिषक आदि—से प्रख्यात थे।[२] इसी प्रकार रेशमी वस्त्रों में कौशेय और चीन-पट्ट विशेष उल्लेखनीय हैं।[३] ऊनी वस्त्रों में कम्बल, वर्णक, तलिच्छक, परिस्तोम, वारवाण, सौमितिका, कलमितिका, समंतभद्रक, केचलक और तुरगास्तरण आदि थे।[४] भारतीय कारीगर कम्बलों की भाँति शाल बनाने के कार्य में प्रसिद्ध थे। ये अनेक रङ्गों के होते थे[५] तथा बहुधा इनके ऊपर नाना प्रकार के अलङ्करण किये जाते थे।[६] अर्थशास्त्र अनेक प्रकार की चवरों का भी उल्लेख करता है। इनमें लुँबरा, प्रावरक, चतुरश्रिका और कटवानक विशेष उल्लेखनीय हैं।[७]

कताई, बुनाई और वस्त्र-निर्माण के अन्य विषयों के सम्बन्ध में कौटिल्य ने जो व्यवस्था की है उससे भी यही प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में वस्त्रों का उत्पादन विविध और प्रभूत था। राज्य इस व्यवसाय को प्रोत्साहित करने के हेतु कुशल कारीगरों को उपहार देता था।[८] अङ्गहीन, वृद्ध एवं विधवा स्त्रियाँ भिखारिणियाँ तथा देवदासियाँ आदि राज्य की ओर से कताई-बुनाई के कार्यों में नियोजित की जाती थीं।[९] ऊनी कम्बल, कृमिजात, क्षौम, दुकूल, आवरण, आस्तरण, वल्कल, चमड़ा और कपास पर लगने वाले कर राजकों के महत्वपूर्ण साधन थे।[१०]

उपर्युक्त अनेक कथनों की पुष्टि यूनानियों के लेखों से होती है। हेरोडोटस के कथनानुसार भारतवासी नरकुल (weed) को पीटकर चटाई की भाँति

---

१. गणपति शास्त्री १, १६४। २. गणपति शास्त्री १, १६५। ३. वही १, १६५।

४. गणपति शास्त्री, १, १६३। ५. वही। ६. वही ७. वही १, १६४। ८. वही १, २८०। ९. वही १, २७६, २८०। १०. वही १, २७६, ७७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुन लेते थे और फिर उसे वस्त्र की भाँति धारण करते थे।[9] केशिअस भारतीयों की वस्त्र रंगने की कला का उल्लेख करता है।[10] निआर्कस भारतीय वेष-भूषा पर और अधिक प्रकाश डालता है।[11] उसके वर्णन से भी प्रतीत होता है कि भारतीय सामान्यतया अंतरवासक, उत्तरासंग और उष्णीष पहनते थे। समाज का धनी वर्ग अपने कानों में आभूषण पहनता था और अपनी दाढ़ियों को रंगता था। आतप से रक्षा करने के हेतु वह छाते का भी व्यवहार करता था। उसके जूते श्वेत चर्म के बने होते थे और उनके ऊपर अलङ्करण रहता था। मेगस्थनीज़[4] भारतवासियों की सौंदर्य-प्रियता एवं अलङ्करण-अभिरुचि का उल्लेख करता है। उसका कथन है कि वे अपने शरीर को सुन्दर करने के लिये अनेक प्रकार के उपायों का प्रयोग करते थे। उनके वस्त्र, स्वर्णजटित एवं रत्नालंकृत होते थे। स्ट्रैबों का कथन हैं कि भारतीय कपास और क्षौम के श्वेत वस्त्र धारण करते थे।[5] और अपनी दाढ़ियों को अनेक रंगों से रंगते थे। वे आभूषण-प्रेमी भी थे।[6]

इन साहित्यक साक्ष्यों के समान पुरातत्व-सम्बन्धी सामग्री ने भी भारतीय वेश-भूषा पर प्रचुर प्रकाश डाला है। परखाम की यक्षमूर्ति चुन्नटदार धोती पहने है। उसकी कटि में कायबन्ध बँधा है और शरीर के ऊर्ध्वभाग पर एक दुपट्टा है। प्रायः इसी प्रकार की वेश-भूषा इंडियन म्यूज़ियम में संरक्षित यक्षमूर्तियों की है।[7] बेसनगर की यक्षिणीमूर्ति भी साड़ी और कायबन्ध धारण किये हुए है तथा करधनी से विभूषित है।[8] परन्तु इन सबकी अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं भरहुत के चित्र। ई० पू० द्वितीय शताब्दी की भारतीय वेश-भूषा पर ये चित्र प्रचुर प्रकाश डालते हैं। इनमें पुरुष धोती पहने हुए हैं। परन्तु आधुनिक प्रचलन की भाँति यह धोती एड़ियों तक नहीं आती वरन् घुटने के कुछ ही नीचे तक आती

८. वही ३, ९८। ९. फ्रैग्मेण्ट २२। १०. एरियन इण्डिका, फ्रैग्मेण्ट १६। ११. फ्रैग्मेण्ट २७।

१. स्ट्रैबो १५. १, ७१। २. वही १५, १, ३०। ३. श्री मजूमदार के मतानुसार ये मौर्यकालीन हैं—एगाइड टु दि स्कलपचर्स इन इंडियन म्यूज़ियम पृ० ६। ४. कुमार स्वामी, हिस्ट्री आफ इंडियन ऐंड इंडोनेशियन आर्ट प्लेट ५, १७।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है।*[१] प्रायः प्रत्येक पुरुष की कमर में एक कमरबन्द दृष्टिगत होता है।[२] शरीर का ऊध्व भाग प्रायः नग्न है। उस पर एकमात्र दुपट्टा पड़ा रहता है जो विविध अवस्थाओं में शरीर से लटका हुआ प्रदर्शित किया गया है।[३] प्रायः समस्त पुरुष अपने शीश पर अपने प्रकार से पगड़ी धारण किये हुए हैं।[४] इनमें से अनेक पगड़ियों की रचना अत्यन्त चित्ताकर्षक है और तत्कालीन मनुष्य की सौन्दर्य-प्रियता की सूचना देती है। कतिपय चित्रों में पुरुष कोट पहने हुए भी प्रदर्शित किये हैं,[५] परन्तु इनकी संख्या अत्यल्प है।

भरहुत के चित्रों में स्त्रियों के भी अनेकानेक चित्र सम्मिलित हैं। स्त्रियाँ साड़ी धारण किये हुए हैं। पुरुषों की धोतियों की भाँति ये साड़ियाँ भी एड़ी तक नहीं आतीं वरन् घुटनों के कुछ ही नीचे तक आती हैं। कटि करधनी और कमरबन्द से अलंकृत है। करधनी में प्रायः अनेक लड़ीयाँ दृष्टिगत होती हैं। कमरबन्द के किनारे-किनारे बेल से अलंकरण किया हुआ मिलतों है। स्त्रियों का उर्घ्व-भाग प्रायः नग्न रूप में प्रदर्शित किया गया है। हाँ, शीश पर प्रायः अलंकरणमयी ओढ़नी अवश्य मिलती है। तत्कालीन स्त्रियो की आभूषणों में अभिरुचि थी। यही कारण है कि प्रायः प्रत्येक चित्र में वे कानों में कुण्डल, गले में मुक्ताहार, कटि में करधनी, अथवा क्षुद्रघंटिकामयी मेखला, करों में चूड़ियाँ और कड़े, उँगलियों में अँगूठियाँ तथा पैरों में अनेक प्रकार के आभूषण धारण किये हुए प्रदर्शित की गई हैं अपनी सुन्दरता बढ़ाने के लिये वे अनेकानेक अन्य प्रसाधनों का भी प्रयोग करती थीं। वे अपने केशों को चोटी के रूप में गूँथती थीं और उसे विविध पुष्पों से अलंकृत करती थीं। इस प्रकार की उनकी चोटियाँ भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में कमर के नीचे तक लटकी हुई प्रदर्शित की गई हैं। अनेक चित्रों में उनके केशों के बीच माँग की भी रचना प्राप्त होती है। अनेक मस्तक बिन्दु (टिकली) और कपोल पत्रभंग से अलंकृत हैं। कभी-कभी स्त्रियाँ पगड़ी धारण किये हुए भी प्रदर्शित की गई हैं। वेश-भूषा की ये विशेषतायें चन्दा, सुदर्शना, चूलकोका आदि यक्षिणियों के चित्र में प्रभूतरूप से दृष्टिगत होती हैं।[६]

*[१]. कनिंघम, भरहुत, प्लेट २१, २०, इत्यादि। [२]. वही प्लेट० १४, २२, इत्यादि। [३]. वही। [४]. वही प्लेट २३, ३, ४; २४; २१; ५७, इत्यादि। [५]. बरुआ, भरहुत २, प्लेट २०; ६२, ७१। [६]. कनिंघम, वही,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भरहुत की भाँति साँची के चित्र भी प्राचीन भारतीय वेश-भूषा का आकार-प्रकार निर्धारित करने में बड़ी सहायता देते हैं। दोनों स्थानों में प्राप्त चित्रों में विभिन्नता की अपेक्षा समानता कहीं अधिक है। वही घुटने तक आने वाली धोती, कमरबन्द, करधनी दुपट्टा, पगड़ी, ओढ़नी, अनावृत वक्षःस्थल एवं विविध आभूषणादि साँची के चित्रों में भी प्राप्त होते हैं। दोनों स्थानों की वेशभूषा में जो अन्तर दृष्टिगत होता है वह सिद्धान्त का नहीं वरन् ब्योरे का ही अधिक है। उदाहरणार्थ साँची में जो पगड़ियाँ मिलती हैं उनको बाँधने की प्रकार-संख्या पहले की अपेक्षा अधिक हो गई है और उनमें अलंकरण की मात्रा अधिक है। पगड़ियों में अनेक प्रकार के लट्टू मिलते हैं। ये शंखाकार, वृत्ताकार, व्यजनाकार, ढोलाकार, बेलनाकार, लम्बोतरा, चक्करदार आदि हैं।[१] इसी प्रकार धोती पहनने में भी कभी-कभी थोड़ी-सी नवीनता दृष्टिगत होती है। एक चित्र में एक पुरुष धोती को एक सिरे से अपनी कमर के चारों ओर लपेटे है और उसका दूसरा सिरा बाईं कुहनी के ऊपर से डालकर नीचे पैर तक लटकाये है।[२] साँची की वेश-भूषा में जो विशेष उल्लेखनीय बात है वह है टोपी का प्रादुर्भाव और सिले हुये वस्त्रों के प्रयोग की पूर्वकाल की अपेक्षा अधिकता। यह परिवर्तन कदाचित् विदेशीय प्रभाव के अन्तर्गत आया था। ये टोपियाँ चौकस, गोल, तुर्कीनुमा, कुलाहनुमा अथवा पुहिल्लेदार हैं।[३] विदेशीय प्रभाव के अन्तर्गत ही कभी-कभी पुरुष तहमदनुमा वस्त्र धारण किये हुए भी प्रदर्शित किया गया है।[४] सिले हुए वस्त्रों में कंचुक विशेष उल्लेखनीय है जिसे धारण किये हुए विदेशीय, ध्वजवाहक सिपाही और सारथी आदि चित्रित किये गये हैं।[५]

---

१. डा० मोतीचन्द्र, भारतीय विद्या, नवम्बर, १९३९, प्लेट ४, १४; प्लेट ५, ५१ १३, प्लेट ६, २४—३०

२. वही आ० १३,

३. वही प्लेट ६, ३१; ७, ३३-३६; ८, ३७, ३८

४. वही प्लेट १२, ६०

५. फर्गुसन ट्री ऐण्ड सर्पेंट वर्शिप प्लेट ३३, ३६, १, २,; ३८, १; ४०; डा० मोतीचन्द्र वही प्लेट ७, ३२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साँची की स्त्रियों की वेश-भूषा भी प्रायः भरहुत की स्त्रियों की वेश-भूषा के समान है। यहाँ भी उनकी साड़ियाँ केवल घुटनों तक ही आती हैं। परन्तु वे कभी-कभी सकच्छ साड़ी पहने हुए भी चित्रित की गई हैं।* उनके भी वक्षःस्थल अनावृत्त हैं। साँची के चित्रों में स्त्रियों के शीश जिन ओढ़नियों से ढके हैं उनके प्रकार पूर्वकाल की अपेक्षा अधिक हैं। ये शीश पर घोघी अथवा पंखे के आकार की; तुकीली, दो तहवाली, दोहरे किनारेवाली, दोलड़ी अथवा चौलड़ी से बँधी हुई हैं।[१] प्रसाधन के वे समस्त उपकरण, जो भरहुत में प्राप्त होते हैं, साँची में भी विद्यमान हैं। वही चूड़ियाँ, कड़े, अँगूठियाँ, कंठे, मुक्ताहार, कर्ण-कुण्डल मेखला, वेणी, सीसमाँग, मस्तक-बिन्दु, पत्रभंग आदि साँची के चित्रों में भी उपलब्ध होते हैं। अन्तर केवल इतना है कि बहुधा उनका आकार-प्रकार पूर्वकाल की अपेक्षा अधिक जटिल, भारी अलंकरण-प्रधान है।

दर्शन—भारतीय संस्कृति का सर्वोत्कृष्ट देन कदाचित् दर्शन है। भारतीय प्रतिभा सदैव से अन्वेषणकारिणी है। उसकी सहज जिज्ञासा ने दृश्य के ही नहीं वरन् अदृश्य के भी असीम अन्तर में प्रविष्ट होकर जिन सूक्ष्म तथ्यों को प्रकाशित किया है वे समस्त विश्व की अमूल्य निधि हैं। भारतीय दार्शनिक जिज्ञासा का परम ध्येय रहा है—प्रत्येक वस्तु के तात्विक स्वरूप की विवेचना और स्थापना। इसके लिये उसने चर और अचर दोनों जगतों को मथ डाला, जीवन और मरण के बीच उठी हुई भित्ति को तोड़ डाला और ब्रह्म एवं जीव के उन सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयों पर रश्मि-राशि बिखेर दी जो अज्ञान की तिमिर-राशि में आच्छन्न थे। भारतीय दर्शन-परम्परा की कुछ विशेषताएँ विचारणीय हैं—

(१) सक्रमता—भारतीय दर्शन का अंकुरण वैदिक काल में हुआ। तत्पश्चात् वह विविध रूपों में संवर्धित होता रहा। भारतीय दर्शन के विकास का इतिहास सुदीर्घकालीन है। इसमें अनेकरूपता है। परन्तु इसका क्रम कहीं पर भी भंग नहीं होने पाया। नाना मत मतान्तरों को लिये हुए भारतीय दर्शन मन्थर-सत्वर गति से सदैव अग्रसर होता रहा है। शतियों के विशाल क्रोड में

---

* डा० मोतीचन्द्र, वही, प्लेट ८, ४२.
१. डा० मोतीचन्द्र प्लेट ९, ४३—४६; १०, ४७-५२.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विस्तीर्ण भारतीय दर्शन की यह अविच्छिन्नता, यह सक्रमता विस्मयकारिणी हैं। उसके सुदीर्घ इतिहास में कहीं भी विराम नहीं है।

(२) विचार-स्वतन्त्रता—भारतीय दृष्टिकोण स्वतन्त्रतामूलक एवं सहिष्णुता-प्रधान है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में विचार-वैभिन्य दृष्टिगत होता है। भारतीय दर्शन भी किसी एक विशिष्ट मत अथवा निश्चित विचार-प्रणाली का प्रतिपादक नहीं। उसमें विविध मतों एवं परस्पर-विरोधी सिद्धान्तों का अति स्वतन्त्र रूप से परिपोषण है। प्रत्येक भारतीय विचारक ने अपनी बुद्धि, क्षमता और इच्छा के अनुकूल निर्बाधरूप से अपने को प्रकट किया है। भारतीय दर्शन में कहीं ज्ञान को प्रधानता है तो कहीं भक्ति अथवा निष्काम कर्म की कहीं निर्गुण एवं निराकार ब्रह्म की दुरूहता है तो कहीं सगुण एवं साकार ईश्वर की लोकरंजनशालिता। कहीं उन्मुक्त सुखवाद का तुमुल झंझावात है तो कहीं सत्वर पलायनवाद की सकम्प सांसारिक भीति। भारतीय दर्शन के सुविशाल क्षेत्र में अनेक दिशाओं से आने-वाली निवृत्ति एवं प्रवृत्ति की परस्पर-विरोधिनी विचार-धारायें तुमुल नाद के साथ टकराती हैं। उन्हीं के सुकूलों पर द्वैत और अद्वैत के गूढ़ सिद्धान्त आत्म प्रतिष्ठा के हेतु बहुधा घोर वाद-विवाद में संलग्न होते हैं। इस प्रकार भारतीय दर्शन में अनेक-रूपता है।

(३) एकता—परन्तु महती अनेकरूपता एवं विचार-विभिन्नता के होते हुए भी भारतीय दर्शन में एक विचित्र एकता दृष्टिगत होती है। वह घात-प्रतिघातकारिणी, बहुरूपा एवं बहुसंख्यका विचार-उर्मियों को वहन करते हुए एक महानद की भाँति प्रवाहित होता रहा है। अपने दर्शन की विभिन्न शाखाओं-प्रशाखाओं के विकास में भारतीय की एकमात्र लोक-कल्याणेच्छा ही दृष्टिगत होती है। यह दार्शनिक विभिन्नता के आवरण को चीरकर किसी ऐसे तथ्य की खोज में संलग्न प्रतीत होता है जो उसकी समस्त ऐहिक एवं पारलौकिक समस्याओं का किसी एकत्व सिद्धान्त के आधार पर समाधान कर सके। बहुत्व के बीच यही एकात्मक की भावना भारतीय दर्शन की आत्मा है। अद्वैतवाद में मानवी विभेदों के नीचे विद्यमान आधारभूत एकता की प्रतिष्ठा का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परम श्लाघ्य प्रयास परिलक्षित होता है ।

(४) धर्म के साथ अविच्छेद्यता—धर्म आचार है और दर्शन विचार। भारतीय समाज ने अपनी व्यवस्था में इन दोनों का कुशल परिपाक किया था। दोनों एक ही वस्तु के दो रूप हैं। धर्म में समाज का लौकिक पक्ष और दर्शन में उसका बौद्धिक पक्ष निहित है। दार्शनिक परम्परायें भारतीय धर्माचार की आधार-पीठिका हैं और धार्मिक परम्परायें भारतीय दर्शन की अन्तर्वर्ती शक्ति हैं।

दो रूप—भारतीय दर्शन को हम दो प्रधान भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) आस्तिक दर्शन और (२) नास्तिक दर्शन। दोनों परस्पर-विरोधी और संघर्ष-शील रहे हैं। इनके घात-प्रतिघात ने भारतवर्ष के बौद्धिक विकास में विशेष योग दिया है। दोनों की क्रिया-प्रतिक्रिया से समय-समय पर जिन दार्शनिक ग्रन्थों की रचना हुई वे समस्त संसार की अमूल्य निधि हैं।

विचार-वैभिन्न के आधार पर आस्तिक दर्शन छः अङ्गों में विभक्त किया जाता है—

आस्तिक दर्शन—(१) पूर्व मीमांसा—यह बीजरूप में संहिताओं में ही विद्यमान है। कालान्तर में शनैः-शनैः इसके विभिन्न सिद्धान्त परिवर्धित एवं विकसित होते रहे। अन्त में ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि जैमिनि ने इन परम्परागत सिद्धान्तों का संकलन, संवर्धन एवं संगठन कर पूर्वमीमांसा को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। इसमें वैदिक यज्ञों एवं कर्मकांडों की विवेचना है।

(२) उत्तर मीमांसा—यह वेदान्त के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसके प्रवर्तक महर्षि बादरायण थे। इन्होंने ब्रह्म एवं जगत् दोनों को वास्तविकता का प्रतिपादन किया है। यद्यपि जीव ब्रह्म से ही उद्भूत है तथापि वह अपनी पृथक् सत्ता रखता है। महर्षि बादरायणकृत वेदान्त-दर्शन सूत्ररूप में लिखित है अतः अनेक स्थलों पर वह अति दुरूह हो गया है। यही कारण है कि आगामी विद्वानों एवं विचारकों ने अपने मतानुसार उसके अर्थों का प्रतिपादन किया है। इनमें शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य और वल्लभाचार्य विशेष उल्लेखनीय हैं जिनके सिद्धांत अद्वैतवाद के ऊपर ही आधारित हैं।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(३) सांख्य—इसके प्रवर्तक महर्षि कपिल थे। इन्होंने द्वैतवाद का प्रतिपादन किया। इनके मतानुसार पुरुष और प्रकृति दो प्रधान तत्व हैं। इन्हीं के सम्मिलन से सृष्टि होती है। प्रकृति में सत्व, रज एवं तम, ये तीन गुण हैं। जब इन तीनों में विषमता उत्पन्न होती है तभी जगत् की सृष्टि होती है। यह दर्शन उपर्युक्त अद्वैतवाद का घोर विरोधी है।

(४) योग—योगदर्शनकारों में सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं महर्षि पतंजलि। इनके मतानुसार मानवी आत्मोत्कर्ष के निमित्त यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि अनिवार्य हैं। पूर्ण मनुष्यत्व ही ईश्वरत्व है। पूर्णता प्राप्त करने के हेतु मनुष्य को कर्म-विपाक से मुक्त होना आवश्यक है।

(५) न्याय—इस दर्शन के प्रणेता गौतम थे। इन्होंने बहुत्वसंवलित यथार्थवाद का प्रतिपादन किया है। ईश्वर सर्वशक्तिमान है। उसी की इच्छा से सृष्टि का आविर्भाव होता है। सृष्टि-निर्वाण अनेक परमाणुओं के संगठन से होता है। ये परमाणु नित्य हैं। परन्तु ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध ये गतिहीन हैं। उसकी इच्छामात्र से ही ये गतिशील हो जाते हैं और तभी उनका सम्मिलन और संगठन सम्भव होता है। आत्मा की भाँति ये परमाणु नित्य हैं।

(६) वैशेषिक—इसके प्रमुख प्रणेता महर्षि कणाद थे। इन्होंने भी बहुत समन्वित यथार्थवाद का प्रतिपादन किया है। इन्होंने भी सृष्टि की उत्पत्ति का समवायी कारण परमाणुओं का माना है। ये द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव नामक सात पदार्थों तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक, आत्मा और मन नामक नौ द्रव्यों का प्रतिपादन करते हैं। विशेष नामक पदार्थ की कल्पना करने के कारण ही यह दर्शन वैशेषिक की संज्ञा से प्रख्यात हुआ।

नास्तिक दर्शन—नास्तिक दर्शन के अन्तर्गत तीन प्रमुख दर्शन—चार्वाक, जैन और बौद्ध—आते हैं। चार्वाक दर्शन नितान्त भौतिकवादी और सुखवादी है। इनका यह सिद्धान्त विशेष प्रसिद्ध है—**'यावज्जीवेत् सुखी जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्। भस्मीभूतस्य जीवस्यपुनर्जन्म कुतो भवेत्॥'** अर्थात् जब तक जीवित रहो, सुख से जीवित रहो। ऋण लेकर घी पियो।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीव के भस्म होने जाने पर पुनर्जन्म कहाँ हो सकता है ? चार्वाक ने प्रत्यक्ष को ही सत्य माना है। ये भूमि, जल, अग्नि और वायु नामक चार तत्वों के सम्मिलन को ही सृष्टि की उत्पत्ति का कारण मानते हैं। इनके मतानुसार आत्मा-परमात्मा आदि के विषय व्यर्थ हैं। मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् कुछ भी शेष नहीं रहता। अतः उसे अपने जीवन में यथाशक्ति भोग विलास करना चाहिए।

आचार-प्रधान होने के कारण जैन व्यवस्थाकारों ने मोक्ष-प्राप्ति के ऊपर विशेष बल दिया है। इसके लिये तीन साधनों—(१) सम्यक् दर्शन (२) सम्यक् ज्ञान और (३) सम्यक् चरित्र—के अनुसरण की सम्मति दी गई है। जैन दर्शन में स्याद्वाद की प्रतिष्ठा की गई है। इसके अनुसरण प्रत्येक वस्तु का वास्तविक ज्ञान एकमात्र कैवल्यप्राप्त मनुष्य को ही हो सकता है। सामान्य प्रत्येक वस्तु का आंशिक अथवा अपूर्ण ज्ञान ही प्राप्त करता है। उसका निश्चय अथवा मत सम्भावना (स्यात्) के ऊपर आधारित होता है। जैन कर्मफल-दाता परमेश्वर की सत्ता में विश्वासनहीं करते। इसी से उनका दर्शन नास्तिक दर्शन के नाम से सम्बोधित होता है।

जैन धर्म के समान बौद्ध भी, प्रारम्भिक अवस्था में, प्रमुखतया आचार-प्रधान था। परन्तु कालान्तर में उसने दर्शन का भी विकास किया। बौद्ध दर्शन को चार सम्प्रदायों में विभक्त किया जाता है—(१) वैभाषिक—इसके अनुसार प्रत्येक पदार्थ वास्तविक हैं। इस प्रकार की विचारधारा के कारण इस सम्प्रदाय का नाम सर्वास्तिवाद भी पड़ा। (२) सौत्रान्तिक—इसके अन्तर्गत अनुमान को प्रमाण माना गया है। इसी से बाह्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। (३) योगाचार—यह चित्त (विज्ञान) को परम सत्य मानता है। (४) माध्यमिक—इसके अनुसार समस्त संसार शून्य है। मत के कारण इस सम्प्रदाय को शून्यवादी सम्प्रदाय भी कहा गया है।

बौद्ध दर्शन सन्तानवादी भी है। संसार चिर-परिवर्तनशील है। जिस प्रकार सरिता का प्रवाह चिर-परिवर्तनशील होते हुए भी एक-सा प्रतीत होता है उसी प्रकार चिर-परिवर्तनशील जगत् का प्रवाह (संतान) भी सक्रम एवं स्थायी प्रतीत होता है। संसार की समस्त वस्तुओं के समान आत्मा भी अनित्य है। उसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है। वह एकमात्र शरीर एवं मनोवृत्तियों का संघात (पुंज) है। इसी से बौद्ध दर्शन संघातवादी भी कहा गया है।

विज्ञान—भारतीय व्यवस्था के अन्तर्गत मनुष्य के सर्वाङ्गीण एवं स्वेच्छानुकूल विकास की सुविधा थी। यही कारण है कि जहाँ उसके ऋषि-मुनियों विचारकों और दार्शनिकों ने अध्यात्म और दर्शन के क्षेत्र में अगोचर अनादि और अनन्त के विषय में भी सूक्ष्म समीक्षा की थी वहाँ उसके विद्वानों ने विज्ञान के क्षेत्र में मानव-जीवनोपयोगी अनेकानेक अन्वेषणों, अनुसंधानों और निर्माणों से संसार को विस्मय में डाल दिया था। भारत की वैज्ञानिक उन्नति कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है।

बीजगणित और अङ्कगणित के क्षेत्र में भारत की विशेष देन है। शून्याङ्क और दशमलव-प्रणाली-इब्न वशिया (नवीं शताब्दी), अलमसूदी (दसवीं शताब्दी) और अलबरुनी (ग्यारहवीं शताब्दी) नामक विद्वान भारतीयों को ही शून्याङ्क और दशमलव का जन्मदाता मानते हैं। भारत से ये अरब पहुँचे और अरब निवासियों ने 'हिन्दसा' का नाम देकर अपने ऊपर भारतीय ऋण स्वीकार किया। अरब से यह खोज योरप के अन्य देशों में पहुँची। प्रसिद्ध भारतीय गणितज्ञ आर्यभट्ट (४९९ ई०) के गणित-विषयक ग्रन्थ 'आर्यभट्टीयम्' में न केवल शून्याङ्क और दशमलव का वर्णन है, वरन् वर्गमूल, धनमूल, भिन्न आदि के सिद्धान्तों का विवेचन है। आर्यभट्ट के अतिरिक्त भास्कर प्रथम (५२२ ई०) और ब्रह्मगुप्त (६२८ ई०) नामक दो अन्य भारतीय गणितज्ञ अपने गणित-ज्ञान के लिये प्राचीन संसार में प्रसिद्ध थे। ज्यामिति क्षेत्र में विकास का बीजारोपण वैदिक काल से ही प्रारम्भ हो चुका था। यज्ञ-वेदियों का निर्माण एवं संगठन इनका प्रमाण है। आर्यभट्ट ने अपने ग्रन्थों में प्रलंबात्माक ज्यामिति के ऊपर विचार किया है। परन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मिस्र-निवासी भारतीयों की अपेक्षा ज्यामिति-ज्ञान में आगे थे।

आर्यभट्ट गणितज्ञ ही न था वरन् ज्योतिष-शास्त्र का भी उद्‌भट विद्वान् था। वह प्राचीन संसार के किसी भी अनुसंधानकारी के समकक्ष रक्खा जा सकता है। उसका वर्षमान यूनानी विद्वान् टालमी से अधिक शुद्ध था। उसने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेकानेक ग्रहों की स्थिति का पता लगाया और पृथ्वी के दैनिक गति के महत्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। प्राचीन भारत का द्वितीय ज्योतिष-शास्त्रज्ञ वराहमिहिर था। इसका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पंच सिद्धान्तिका' अपने अनेक उल्लेखों और गणनाओं के लिये प्रसिद्ध है। परन्तु इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि ज्योतिषशास्त्र में भारत यूनानियों का भी बहुत कुछ ऋणी है। भारतीय इसे स्वीकार करते हैं कि ज्योतिष-शास्त्र का उद्भव यूनानियों ने किया और इसके लिये वे देव-तुल्य सम्मान्य हैं। भारतीय ज्योतिष का रोमक सिद्धान्त यूनानी प्रभाव का साक्षी है। भारतीय ज्योतिष के अनेक शब्द 'द्रेक्काणं', 'हारिज' आदि शब्द यूनानी हैं।

भारत का चिकित्सा-शास्त्र अति प्राचीन है। भारतीय चिकित्सकों ने शरीर के अवयवों, मांसपेशियों, सन्धियों, रक्त-शिराओं एवं त्वचा आदि का अध्ययन जिस सूक्ष्मता के साथ किया था वह विस्मयकारी प्रतीत होता है। भारतीय चिकित्सा-शास्त्र में रोगों के प्रकारों कारणों और निदानों की विस्तृत विवेचना है। भारतीय औषधियाँ प्रधानतः वानस्पतिक हैं, परन्तु अनेक औषधियाँ पशु-तत्वों तथा धातु और पारे की भी होती थी। सामान्य औषधि-चिकित्सा के साथ-साथ शल्य-चिकित्सा भी प्रचलित थी। सुश्रुत ने शल्य-चिकित्सा के हेतु १२० यन्त्रों का उल्लेख किया है। संक्रामक रोगों से संरक्षा के हेतु टीके का भी उपयोग होता था। भारतीयों ने मानव-चिकित्सा के साथ-साथ पशु-चिकित्सा का भी विकास कर लिया था। इस दिशा में पालकाप्यकृत 'हस्त्या-युर्वेद' विशेष उल्लेखनीय है। प्रसिद्ध भारतीय चिकित्सा शास्त्रों में चरक और सुश्रुत के नाम सर्वविदित हैं। इन दोनों द्वारा रचित संहिताओं के सिद्धान्तों का संकलन वाग्भट्ट ने अपने 'अष्टाङ्ग संग्रह' नामक ग्रन्थ में किया। एक अन्य भारतीय चिकित्सा-ग्रन्थ 'नवनीतकम्' की प्रति सन् १८९० में पूर्वी तुर्किस्तान में उपलब्ध हुई थी। इसमें भी चरक और सुश्रुत के सिद्धान्तों का संग्रह है।

भारतवर्ष ने अपने चिकित्सकों के हेतु एक अति उदार एवं सहृदय आचार-परम्परा का भी विकास किया था। उनके लिये नियन्त्रित जीवन, संतुलित स्वभाव तथा परिष्कृत मनोवृत्तियों की शिक्षा दी गई है। चिकित्सा कर्म व्यव-

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साय के रूप में नहीं वरन् लोकोपकार के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए। धनलोलुप मनुष्य चिकित्सा-कर्म के निमित्त सर्वथा अयोग्य है। उसको रोगियों का उपकार करना चाहिए; शोषण नहीं। चिकित्सा के हेतु आन्तरिक एवं वाह्य शुद्धि अति आवश्यक है। इस प्रकार के अनेकानेक उदात्त सिद्धान्तों का प्रतिपादन सुश्रुत ने किया था।

प्राचीन भारत का रसायन एवं धातु-ज्ञान भी उच्चकोटि का था। वराह-मिहिर कृत वृहत्संहिता में इसका विविध विवेचन है। इस क्षेत्र में द्वितीय उल्लेखनीय विद्वान नागार्जुन था। कहते हैं कि भारत के लौह-शास्त्र का जन्म इसी विद्वान के अनुसन्धानों के परिणाम-स्वरूप हुआ था। भारतवर्ष के लौह-शास्त्र की अति विकसित अवस्था का ज्वलन्त प्रमाण दिल्ली का लौह-स्तम्भ है। यह २४ फुट ऊँचा और ६$\frac{१}{२}$ टन भारी है। आधुनिक विद्वान् आज यह सोच नहीं पा रहे हैं कि इस विशाल स्तम्भ की ढलाई कहाँ और कैसे हुई होगी। १५०० वर्ष प्राचीन होने पर भी इस स्तम्भ में मोर्चे अथवा जंग का नाम तक नहीं है।

चित्रकला—चित्रकला में हम भारतीय कलाकार की प्रतिभा का प्रचुर उत्कर्ष पाते हैं। उसके चित्र कला-कृतियाँ ही नहीं वरन् धर्म के सन्देश, साहित्य के लेख, संगीत के स्वर और आपूर्ण जीवन की संचित अनुभूति भी हैं। चित्रों के रंगों में नरेशों का विपुल वैभव सगर्व मुस्करा रहा है, साधकों की कठोर साधना परम पद की प्रत्याशा से प्रदीप्त हो रही है। उनकी क्षीण रेखाओं के बीच शैशव की निष्कलुष किलकारियाँ सुनाई दे रही हैं, यौवन के भीरु आलिंगन काँप रहे हैं और वार्धक्य की सापद जर्जरता कराह रही है। एक ओर जीवन की अभिराम वीथियों की आसक्ति है तो दूसरी ओर मृत्यु के बीहड़ खण्डहरों की दारुण भीति। प्रत्येक दशा में चित्र कलाकार की विषय-तारतम्यता से उत्प्राणित है। स्थूलरूप से भारतीय चित्रकला की विशेषतायें निम्न प्रकार अङ्कित की जा सकती हैं—

(१) **रेखाप्रधानता**—भारतीय चित्रकला विशेषतया रेखा की कला है। रेखाओं के निर्माण; अनुपात और संगठन के द्वारा उसने जीवन के प्रत्येक कर्म और भाव को साकार खड़ा कर दिया है। मानव-चरित्र के सूक्ष्म विश्लेषण से प्राप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विविध तथ्यों को क्षीण रेखाओं में बाँध लेने की भारतीय क्षमता अपनी समता नहीं रखती।

(२) **आध्यात्मिकता**—भारतीय चित्रकार उपदेशक भी था। उसके चित्र भौतिक परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए प्रायः किसी आध्यत्मिक सन्देश का वहन करते हैं। वे बहुधा धार्मिकता और रहस्यवादिता के क्षीण आवरण से आच्छादित रहते हैं। चित्रों की भाषा में भारतीय कलाकार मानव-जीवन के अन्नयन के शत-शत सन्देश देता रहा है।

(३) **व्यक्तिवादिता**—पाश्चात्य चित्रकला समीष्टि के निमित्त है, परन्तु भारतीय चित्रकला प्रधानतः व्यक्ति के निमित्त रही। बौद्ध चित्रकला के अतिरिक्त भारतीय चित्रकला की प्रत्येक शाखा में यह विशेषता दृष्टिगत होती है। इस देश में अधिकांश चित्र छोटे, एकाकी और स्वतःपूर्ण होते हैं जिनके द्वारा एक समय में विशाल समूह का नहीं वरन् एक-मात्र व्यक्ति का ही अभिरंजन हो सकता है।

(४) **उद्भव-असाम्प्रदायता**—साहित्यक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि भारतीय चित्रकला का उद्भव धर्म की छत्रच्छाया में नहीं वरन् राजसभा के क्रोड में हुआ था। राजकीय प्रोत्साहन में ही प्रारम्भिक चित्रकला पनपी थी। उस समय उसके विषय भी प्रमुखतया राजसम्बन्धो ही होते थे। अतः भारतीय चित्रकला की धर्म प्रधानता कालान्तर की देन है, बौद्ध मत के प्रसार का परिणाम है।

(५) **प्राचीराङ्कन**—अधिकांश भारतीय चित्रकला-प्राचीरगता (Mural) है। कलाकारों ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन प्रासादों, भवनों, कन्दराओं और पूजा-गृहों आदि के प्राचीरों पर विशेषरूप से किया है, अन्यत्र कम।

(६) **अनामता**—भारतीय चित्रकला निस्पृह कलाकारों की सतत साधना का फल है; जिन्होंने अपनी कला-परम्पराओं की तो स्थापना की परन्तु जो अपने व्यक्तिगत नामों की रक्षा के हेतु लेशमात्र भी सचिन्त न हुए।[१] परिणामतः

१. 'Indian Painting is largely is largely an anonymous art'

—Percy Brown.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कला तो अवशिष्ट रही परन्तु कलाकारों के नाम काल के कराल गाल में समा गये। किसी भी भारतीय चित्र में उसके चित्रकार का नाम नहीं मिलता।

(७) **भाव-प्रसन्नता**—भारतीय चित्रकार भाव-प्रदर्शन में अति कुशल था। अङ्गुलि-संकेत, कर-सम्पुट, करतल-प्रसारादि के रूप में कलाकार ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह वर्णमयी भाषा की अपेक्षा कहीं अधिक सस्वर है चित्र की सम्पूर्ण मुद्रा को देखते ही भाव-विशेष का ज्ञान हो जाता है। भारतीय चित्रकार के कला-कोष में भाव प्रदर्शनार्थ संख्यातीत सांकेतिक चिह्न थे।

(८) **अभिव्यक्ति-प्रधानता**—उद्देश्य के आधार पर कला तीन कोटियों में विभक्त की जा सकती है। (क) जिस कला का ध्येय बाह्यस्वरूप की अभिव्यक्ति होता है उसे स्वरूप-प्रधान (Formal) कला कहते हैं। इस प्रकार की कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण चीन में मिलेंगे। चीनी स्वभावतः सौंदर्योपासक रहा है। अतः उसने जिस किसी वस्तु का निर्माण किया, चाहे वह मूर्ति हो अथवा चित्र, मृण्भाण्डार हो अथवा धातु-पात्र, उसमें वाह्य सौंदर्य की प्रधानता रक्खी। चीनी कला-कृतियों को वाह्य आकृतियाँ अपनी आकर्षणशीलता के लिये प्रसिद्ध रही हैं। (ख) इसके विरुद्ध जो कला वस्तु के आदर्श-स्वरूप का प्रदर्शन करती है वह प्रतिरूप-प्रधान (Representative) कला कही जाती है। इसमें आदर्श रूप के शत प्रतिशत प्रतिरूप के अङ्कन का प्रयास किया जाता है। उदाहरणार्थ यूनानी कला को लीजिये। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, यूनानी मूर्तियाँ अथवा चित्र प्रमुखतया साधारण देवी-देवताओं वीर पुरुषों के आलेखन नहीं हैं। वे बहुलतया आदर्श देवी-देवताओं और वीर पुरुषों के ही प्रतिरूप हैं। उनकी आकृतियाँ, उनका सौंदर्य, उनके कृत्य सभी कलाकार की आदर्शात्मकता का वहन करते हुए प्रतीत होते हैं। (ग) तीसरी कोटि में वह कला आती है जिसका ध्येय बाह्य आकृतियों की अपेक्षा अन्तस्तल के गूढ़ सन्देशों का प्रकाशन करना अधिक होता है। ऐसी कला में वाह्य सौंदर्य की अपेक्षा अन्तःसौंदर्य के ऊपर अधिक बल दिया जाता है। यह कला भावाभिव्यक्ति-प्रधान (Expressive) कला कहलाती है। भारतवर्ष में इस प्रकार की कला की प्रधानता रही है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय मूर्तियों एवं चित्रों के भीतर से एक अलौकिक, असाधारण भाव निस्सृत होता-सा प्रतीत होता है। उनके वाह्य कलेवर के प्रकोष्ट से उनकी आत्मा का सन्देश निनादित होता है। उदाहरणार्थ बौद्ध प्रतिमायें एवं चित्र किसी दिव्य आभा से आलोकित हैं। उनमें रूप की अपेक्षा दिव्य भाव और सन्देश की प्रधानता है।

(६) **सांकेतिकता**—(Symbolism) अनेक स्थलों पर भारतीय चित्रकला सांकेतिक है। प्रारम्भ में बौद्ध मूर्तिपूजा-विरोधी थे। अतः प्रारम्भिक बौद्ध कलाकार ने कहीं पर भी महात्मा बुद्ध की प्रतिमा अथवा चित्र का निर्माण नहीं किया। यदि कहीं उनकी उपस्थिति का प्रदर्शन आवश्यक होता था तो वह उनकी पादुकाओं अथवा उनके छत्र के द्वारा सम्पन्न होता था। यह कलाकार की सांकेतिक भाषा की परम्परा थी। ब्राह्मण कलाकार भी अपने ईश्वर को असीम और अनन्त समझते थे। अतः उनकी जो मूर्तियाँ अथवा चित्र हैं वे कभी भी उनके ईश्वर प्रतिकृति नहीं हो सकते। वे एकमात्र उनके आराध्य के प्रतीक हैं, उनके देवता के अस्तित्व के संकेत-चिह्न हैं।

भारतीय योजना के अनुसार चित्रकला के ६ अंग माने गये हैं —

(१) **रूपभेद**—इसके अंतर्गत चित्रण के पूर्व विषय के आकार-प्रकार और विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है।

(२) **प्रमाण**—इसके अनुसार चित्रण के पूर्व वस्तु-विशेष का अनुपात एवं दृश्य-कोण आदि निश्चित किये जाते हैं।

(३) **भाव**—चित्रण में भाव-निरूपण अत्यधिक महत्व है। इससे शरीर के ऊपर भावना का प्रभाव प्रदर्शित किया जाता है।

(४) **लावण्य योजना**—इसमें बाह्य सौंदर्य-प्रदर्शन के विविध साधनों का समावेश होता है।

(५) **सादृश्य**—इसके अंतर्गत चित्र और जिस वस्तु का वह चित्र है, उन दोनों में ऐसी समानता होनी चाहिये कि चित्र को देखते ही वस्तु-विशेष को पहचान लिया जाय।

(६) **वर्णिक भेद**—इसके अन्तर्गत, चित्रित विषय के अनुकूल वर्णों

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(रंगों) का विवेचन आता है।

ये समस्त नियम भारतीय चित्रकला की परम्परा के क्रमिक विकास की सूचना देते हैं। चित्रकारों ने अपनी कृतियों में इनका विशेष अनुशीलन किया है।

अन्य देशों की भाँति भारतीय चित्र भी चार कोटियों में विभक्त किये जा सकते हैं —

(१) **भित्ति चित्र**—इस कोटि में चित्र भित्तियों के ऊपर अंकित किये जाते थे। भारतवर्ष में इसी कोटि के चित्रों की प्रचुरता है।

(२) **चित्रपट**—इसके अन्तर्गत चित्र किसी वस्त्र अथवा चर्मादि पर आलिखित होते थे। निर्मित हो जाने के पश्चात् ये लपेट कर सुरक्षित रूप से रख लिये जाते थे और अवसर पड़ने पर प्राचीरों पर टाँगे जा सकते थे।

(३) **चित्रफलक**—इस कोटि के चित्र पाषाण-खण्डों, काष्ठ-खण्डों अथवा हाथी-दाँत आदि पर अंकित किये जाते थे।

(४) **धूलि चित्र**—इस कोटि में चित्र आते हैं जो रंगों के चूर्ण को बिखेर कर पृथ्वी पर बनाये जाते थे।

भारतवर्ष की चित्रकला का इतिहास अति दीर्घ है। ईसा के सहस्त्रों वर्ष पूर्व सिन्धु-सभ्यता के अन्तर्गत जिस चित्रकला का विकास हुआ था वह अपनी प्राचीनता के लिये तो प्रख्यात है ही साथ ही, अपनी सजीवता और सुन्दरता के लिये भी। इसका वर्णन पीछे किया जा चुका है।

प्राचीन ब्राह्मण-साहित्य और बौद्ध-साहित्य में चित्रकला का अनेकशः उल्लेख आता है। इन उल्लेखों से भारतीय चित्रकला की दीर्घ परम्परा का अनुमान किया जा सकता है। परन्तु खेद है कि भारत के अति प्राचीन चित्र काल के कराल गाल में समा चुके हैं।

अजन्ता की कन्दरायें अपनी चित्रकला की उत्कृष्टता के लिए विश्व विदित हैं। इस चित्रकला का निर्माण किसी एक विशिष्ट काल में न होकर भिन्न-भिन्न-कालों में हुआ था। अजन्ता के कुछ चित्र शुङ्गकालीन और कुषाण कालीन (१०० ई० पू०—२०० ई०) भी हैं। ये अपने कुशल रेखा-संगठन, अलंकरण और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गाम्भीर्य के लिये सुविख्यात हैं। महात्मा बुद्ध की मुद्राओं पर परम शान्ति विराजमान है। उनके चित्रों से एक विचित्र प्रकार की दैवी आभा निस्सृत होती-सी प्रतीत होती है। इसी प्रकार एक यज्ञ का चित्र भी अतीव सुन्दर बन पड़ा है। परन्तु अजन्ता के गुप्तकालीन चित्र सुन्दरता और सजीवता से अद्वितीय हैं। कलाकर की तूलिका सहस्त्रमुखी प्रतिभा के साथ निर्बाध गति के चली है। उसने वसुधा-अन्तरिक्ष, चर-अचर, गोचर-अगोचर, मानव-देव-दानव, पशु-पक्षी, पादप लता, पुष्प-पत्र-फलादि सभी को अपने विशाल वृत्त में समेट लिया है। अजन्ता का कलाकार धर्मोपदेशक भी था और सौन्दर्योपासक भी। एक ओर उसने तथागत की करुणामयी मुद्रा में त्रस्त मानवता के आशा-सन्देश अंकित किये हैं और दूसरी ओर उसने सुख-वितान में विलास करने वाली सांसारिक प्रवृत्ति की शत-शत कलियों को विहँसते दिखाया है। कहीं कूलाङ्गना की अन्तःशुचि है, तो कहीं वारांङ्गना की छद्म-प्रदीप्ति। यदि एक स्थान पर लम्पट का साधुवेश अपने क्षीण आवरण में गुरुतम कलुषों को छिपा लेने का ईषत् प्रयास कर रहा है तो दूसरे स्थान पर शान्त योगी का तपःपूत कलेवर अपनी जीर्ण-अवस्था में भी मानव के परम कल्याण के हेतु सचेष्ट है। कहीं प्रतिहार की सजगता है तो कहीं सैनिक की शूरता। किसी चित्र में व्याध की निर्ममता साकार हो उठी है तो किसी अन्य चित्र में सेवक की विवशता आर्द्र होकर निरख रही है। सारांशतः अजन्ता के गुप्त-कालीन कलाकार ने मनुष्य के नाना भावों एवं कर्मों को अपने हस्तलाघव से साकार खड़ा कर दिया है। भित्ति-चित्रों को अलंकृत करने के लिये नाना प्रकार के पुष्प-पत्रों, पादपों एवं लता-वितानों का प्रयोग मिलता है। सर्वत्र रंगों विविधता है। परन्तु प्रत्येक रंग का प्रयोग प्रसंगानुकुल ही किया गया है। चित्रों का रेखा-संगठन तो परम विस्मयकारी है। कलाकार ने रेखा के एक झुकाव से अपने चित्र में जो भाव भर दिये हैं वे शत-शत शब्दों से भी कदाचित् प्रकट नहीं हो सकते। रेखाओं के प्रयोग से आकृतियों में जो उभार, कृशता, स्थूलता, गहराई अथवा गोलाई दी गई है वह प्रेक्षणीय है। चित्रकार की जिन वक्र-रेखाओं ने नारी के नयन का निर्माण किया है उनके अन्तर में रति की आकुल भाव-भंगिमा का अपार पारावार हिलोरें ले रहा है। जिन क्षीण रेखाओं के संगठन ने सहज-

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भीरु हरिणों के तनु पदों की सृष्टि की है उनमें वायु का अव्याहत वेग बँधा है। कलाकार की कतिपय सबल रेखाओं ने कहीं मातृ-हृदय का वात्सल्य उँड़ेल दिया तो कहीं बधिक-हृदय का बर्बर जाड्य। सभी चित्र रेखा-प्रधान हैं।

अजन्ता के कुछ चित्रों का उल्लेख कर देना आवश्यक है। एक चित्र माता-पुत्र का है। महात्मा बुद्ध भिक्षार्थ कपिलवस्तु में स्वयं अपनी भार्या यशोधरा के द्वार पर गये हैं। भारतीय नारी अपनी एक मात्र श्रद्धा-भक्ति के केन्द्र अपने पति को भिक्षा दे भी तो किस वस्तु की? क्षत्राणी ने एक क्षण सोचा होगा। दूसरे ही क्षण वह 'भिक्षा' के साथ उपस्थित हो गई। तथागत ने नेत्र उठाये। उनके समक्ष उनका पुत्र राहुल प्रस्तुत था—सिद्धार्थ और यशोधरा के दाम्पत्य जीवन की प्रणय-ग्रन्थि। अपने पति को देने के हेतु नारी के पास और था ही क्या? नारी के आत्म-समर्पण की यह गाथा अजस्र है।

दूसरा चित्र महात्मा बुद्ध के महाप्रस्थान का है। राजप्रासाद निशीथ की नीरवता में डूबा हुआ है। निश्छला यशोधरा अपने शिशु के साथ प्रगाढ़ निद्रा में मग्न है। कुलवधू की समस्त परिचारिकायें भी सुषुप्ति में बेसुध हैं। तभी निर्मोही सिद्धार्थ गृह-त्याग करने के हेतु तत्पर होते हैं। चित्र में अंकित उनकी मुद्रा पर न विषाद के चिन्ह हैं और न ममता की रेखायें वरन् वह ज्ञानार्थी की लोक-कल्याणेच्छा से प्रदीप्त है।

तीसरा चित्र मरणासन्न राजकुमारी का है। चिकित्सकों के समस्त प्रयासों एवं राजकन्या के स्वजनों की अनवरत प्रार्थनाओं की उपेक्षा करती हुई मृत्यु अपनी चादर पसारती अति सन्निकट आ खड़ी हुई है। संरक्षा का कोई उपाय शेष नहीं है। घोर यंत्रणा का वहन करती हुई विवश राजकन्या अपनी अन्तिम श्वासें ले रही है। स्वजन अवश्यम्भावी मृत्यु से विकल हैं। सम्पूर्ण चित्र अति कारुणिक है। फरगुसन नामक विद्वान् के मतानुसार यह चित्र अपनी सबल भावाभिव्यक्ति के लिये अद्वितीय है।

वास्तुकला—मौर्य-काल के पूर्व भारतीय वास्तुकार अपने निर्माणों में विशेषतया लकड़ी का ही प्रयोग करता था। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र के राज-प्रासाद का वर्णन किया है जो प्रधानतः काष्ठनिर्मित था। इसमें हम काष्ठमयी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वास्तु-कृति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण पाते हैं। इसके निर्माता अपने कलाक्षेत्र में आधुनिक वास्तुकारों की कोटि में रक्खे जा सकते हैं।[१] सम्राट् अशोक के शासन-काल में सर्वप्रथम पाषाण का प्रचुर प्रयोग प्रारम्भ प्रारम्भ हुआ। उसके स्तम्भ पाषाण की सुन्दर कृति हैं। उनकी सुडौलता और सुन्दरता प्रेक्षणीय है। उच्चकोटि की पालिश के कारण वे शीशे की भाँति चमकते हैं। विशुद्ध वास्तुकला के क्षेत्र में भी अशोक के शासन-काल में विशेष उन्नति दृष्टिगत होती है। उसके राजप्रासाद के सौन्दर्य को देख कर चीनी यात्री फाह्यान विस्मय से पड़ गया था। उसे वह सम्पूर्ण प्रासाद देव-निर्मित-सा प्रतीत हुआ।[२]

भारतीय वास्तुकार की प्रतिभा का प्रमुख प्रदर्शन स्तूपों और मन्दिरों के निर्माण में हुआ है। यों तो अशोक ने भी बहुसंख्यक स्तूपों का निर्माण कराया था, परन्तु उनका विशेष विकास शुङ्ग-काल में हुआ। इस समय ईंट और लकड़ी के स्थान पर पाषाण का प्रभूत प्रयोग किया गया। अशोक निर्मित साँची-स्तूप का परिवर्धन किया गया। अब उसका व्यास १२० फुट और ऊँचाई ५४ फुट हो गई। उसके चतुर्दिक १६ फुट ऊँचो एक मेंधी (Terrace) का भी निर्माण किया गया। इस पर चढ़ने के लिये सोपान की भी रचना की गई। इस स्तूप के ऊपर एक हर्मिक (Pedestal) पर आधारित त्रिछत्रधारी यष्टि (Shaft) की स्थापना की गई। स्तूप में पाँच भव्यतोरण हैं जिन पर अति सुन्दर चित्र एवं मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इस स्तूप की चहारदीवारी (Railing) बौद्ध वास्तुकला

---

१. They illustrate 'the absolute perfection of such work and those who executed them would find little indeed to learn in the field of their own art, could they return to earth to day.'

२ 'Made of spirits who piled up the stones, reared the walls and gates and executed the elegant carving and inlaid sculpture work in a way which no human hands of the world could accomplish.'

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का एक सुन्दर उदाहरण है।[१]

साँची स्तूप के समान भरहुत-स्तूप भी अपने सौन्दर्य के लिये सुविख्यात है। इसके व्यास की लम्बाई ६८ फुट है और चहारदीवारी पृथ्वी से ४ फुट ऊँची है। परन्तु साँची-स्तूप की अपेक्षा इसमें अलंकरण कहीं अधिक हैं। सम्पूर्ण स्तूप में रिलीफ प्रणाली पर जातकों के कथानक उत्कीर्ण हैं जो आज भी तत्कालीन कला की उत्कृष्टता के साक्षी हैं।

धरातल पर हुए निर्माण कार्यों के अतिरिक्त प्राकृतिक शिलाखण्डों को काट-कर पर्वतों के अन्तर में बने चैत्य, बिहार और मन्दिरादि भारतीय वास्तुकला के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं।[२] इस प्रकार की कृतियाँ सर्वप्रथम मौर्यकाल में बराबर और नागार्जुनी पहाड़ियों में निर्मित हुई थीं जहाँ भिक्षुकों के निवास के निमित्त पर्वतों को काट कर कन्दरा-कक्ष निर्मित किये गये थे। पत्पश्चात् पश्चिमीय भारतवर्ष में इसी प्रकार चैत्यों का निर्माण भाजा, कार्ले आदि स्थानों पर हुआ। पर्वतों के भीतर निर्मित बौद्ध विहारों में कार्ले, जुनार, नासिक और अजन्ता के विहार विशेष उल्लेखनीय हैं। कालान्तर में इसी बौद्ध निर्माण-प्रणाली पर एलोरा एलिफेण्टा के सुप्रसिद्ध ब्राह्मण-मन्दिरों का निर्माण हुआ था।

जिस प्रकार स्तूपों और विहारों के निर्माण में बौद्ध वास्तुकला का विकास हुआ उसी प्रकार मन्दिरों के निर्माण में ब्राह्मण वास्तुकला का। मन्दिर का सम्पूर्ण स्वरूप विमान कहलाता है। इसका उर्ध्वभाग, जो ऊपर जाते-जाते क्रमशः पतला होता है, शिखर के नाम से सम्बोधित होता है। विमान के भीतर गर्भ-

---

१. The railing at Sanchi on account of the largeness of its proportions and austerity of its treatment is one of the most impressive productions in the whole range of Buddhist constructional art.—Percy Brown.

२. "The fashioning of architectural forms out the natural rock occupies a very prominent place in the development of creative art in India"—Percy Brown.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गृह होता है जिसमें प्रतिमा की स्थापना होती है। मन्दिर के प्रवेश-द्वार के समक्ष एक मण्डप होता था जिसमें भक्त एवं दर्शक एकत्र हो सकते थे। कहीं-कहीं पर प्रवेश-द्वार दिया जाता था। इसे अन्तराल कहते थे। फर्गुसन ने मन्दिरों को दो कोटियों में विभाजित किया है—(१) आर्य शैली पर निर्मित और (२) द्रविड़ शैली के पर निर्मित। प्रथम शैली के मन्दिर बहुसंख्यक हैं और ये उत्तरी भारतवर्ष में उपलब्ध होते हैं। द्वितीय शैली के मन्दिर दक्षिण भारतवर्ष में निर्मित हुये। यद्यपि ये अल्पसंख्या में हैं तथापि अपनी सुविशालता, सुदृढ़ता और अलंकरण-प्रधानता के लिये उत्तरी भारतवर्ष के मन्दिरों की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध हैं। द्रविड़ शैली पर निर्मित दक्षिणी भारत का कैलाश मन्दिर अपनी भव्यता के लिये विश्व विदित है। इस शैली के प्रमुख मन्दिर कांची, मदुरा, रामेश्वरम् आदि स्थानों पर देखे जा सकते हैं। परन्तु भारतीय मन्दिरों में यान्त्रिक (Mechanical) कुशलता की अपेक्षा भव्यता अधिक है।[१]

पाषाण-प्रयोग के अतिरिक्त भारतीय वास्तुकारों के ईंटों का प्रयोग भी प्रभूत मात्रा में किया था। ईंटों की सहायता से भवन-निर्माण की परम्परा अति दीर्घ-कालीन है। सिन्धु-सभ्यता के अन्तर्गत जो भवनादि निर्मित हुए थे उनमें ईंटों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। कालान्तर में गान्धार-कला के प्रभाव के अन्तर्गत जब मथुरा तथा उत्तरी भारतवर्ष में बहुसंख्या में भवनों का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ तो ईंटों के प्रयोग को विशेष प्रतिष्ठा दी गई। लघु कला-कृतियों के निर्माण के हेतु पाषण की अपेक्षा ईंट अधिक उपयुक्त थी। परन्तु छत, द्वार, वातायन आदि को पाटने के लिये लघु ईंटें अनुपयुक्त प्रतीत होती थीं। इस त्रुटि को दूर करने के लिये भारतीयों ने विशाल ईंटों का निर्माण करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार की कुछ ईंटें तो २० इंच तक लम्बी होती थीं। जहाँ कहीं ये ईंटें भी अपर्याप्त होती थीं वहाँ भारतीय वास्तुकार लकड़ी लट्ठों का प्रयोग करता था। गुप्तकाल में ईंटों का प्रयोग बड़ी कुशलतापूर्वक किया गया था। भिटारी गाँव का तत्कालीन ईंट-निर्मित मन्दिर इसका साक्षी है। प्रयुक्त ईंटें १७½ इंच लम्बी,

---

१. 'The Indian builder knew architccture as a fine or liberal art but not as a mechanical art'.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१०½ इंच चौड़ी और ३ इंच मोटी हैं। मन्दिर की ऊँचाई ७० फुट है। इसका निर्माण एक कृत्रिम चबूतरे पर हुआ है। सम्पूर्ण मन्दिर को प्रतीत होता है कि इस समय तक ईंट के प्रयोग की परम्परा अति विकसित हो चुकी थी।

स्थापत्य—भारतीय कलाकार ने स्थापत्य के क्षेत्र में भी अपना हस्तलाघव प्रदर्शित किया उसके पीछे एक सुदीर्घकालीन परम्परा थी। सिन्धु-सभ्यता के प्रागैतिहासिक काल में ही भारतवर्ष के स्थापत्य की जो कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं वही कला की दृष्टि से अति श्लाघ्य हैं। सिन्धु-प्रदेश में हुए उत्खनन कार्य के परिणामस्वरूप प्राप्त बहुसंख्यक देव, मानव, पशु-पक्षी, पादपों, पुष्पपत्रों आदि की निर्मित मूर्तियाँ एवं उत्कीर्ण आकृतियाँ स्थापत्यकार की महती साधना के प्रमाण हैं। इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

भारतीय स्थापत्यकार की साधना इसी प्रकार चलती रही। परन्तु उसकी रूप-रेखा पर विशेष प्रकाश मौर्य-काल में ही पड़ता है। मौर्य-काल राजनीतिक संगठन के साथ-साथ कला के उन्नयन का भी काल था। इस काल का महान् सम्राट् अशोक कला का भी अनन्य पुजारी था। बौद्ध जनश्रुति के अनुसार इसने ८४ हजार स्तूपों का निर्माण कराया था। चीनी यात्री ह्वेनसाँग ने भारत-भ्रमण करते हुए उसके सैकड़ों स्तूप देखे थे। यह रहा वास्तुकला के अपरोक्ष उत्थान के प्रति उसका महान् प्रयत्न। स्थापत्य के क्षेत्र में भी भारत इस बौद्ध सम्राट् का कम आभारी नहीं है। उसके द्वारा निर्मित पाषाण-स्तम्भ आज भी भारत के गौरव हैं। आजकल देश के विभिन्न स्थानों पर उपलब्ध इन स्तम्भों की संख्या तेरह है।

प्रत्येक स्तम्भ ३० फुट से ४० फुट तक ऊँचा है और भार में १००० से १२०० मन तक है। ये समस्त स्तम्भ चुनार के पत्थर के हैं और प्रत्येक केवल दो विशाल पाषाण-खण्डों की सहायता से बनाया जाता था—नीचे की लाट एक पाषाण-खण्ड से और ऊपर का भाग दूसरे से। इस प्रकार निर्मित विशाल-काय एवं अतिगुरु स्तम्भ में एक जोड़ के अतिरिक्त दूसरा जोड़ नहीं है। बिना जोड़ के ये विशाल स्तम्भ किस प्रकार निर्मित हुए, किस प्रकार खड़े किये गये और किस प्रकार साम्राज्य के दूरस्थ प्रदेशों में भेजे गये, यह आज के यान्त्रिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युग में भी विस्मयकारी समस्या प्रतीत होती है। स्तम्भों के ऊपर ऐसी विलक्षण पालिश की गई है कि वे शीशे की भाँति चमकते हैं। दिल्ली के पाषाण-स्तम्भ की चमक को देखकर १९ वीं शताब्दी में विशप हेबर ने उसे पीतल का बना समझा था। आज हजारों वर्ष बीत गये, परन्तु, वह पालिश ज्यों की त्यों चमकदार प्रतीत होती हैं। संसार के किसी भी प्रदेश में इतनी उच्चकोटि की पालिश का निर्माण नहीं हुआ। परन्तु अभाग्य है कि अब भारत स्वयं उसे भूल गया है।

अशोक का प्रति पाषाण-स्तम्भ अनेक भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) नीचे की लाट (२) उस पर पतली मेखला (३) उस पर स्थापित घंटाकृति अथवा उलटा कमल (४) उस पर कंठा (५) उस पर गोल अथवा चौकोर चौकी और (६) उस पर स्थापित एक अथवा एकाधिक पशु-मूर्ति। लाट के ऊपर के शेष पाँच भाग परगहे (ऊर्ध्व भाग) के अन्तर्गत परिगणित होते हैं। नीचे की काट की भाँति प्रत्येक परगहा भी एक पाषाण-खण्ड की सहायता से बनाया गया था। अशोक कालीन स्थापत्यकार ने जिन पशु-आकृतियों को अपने पाषाण-स्तम्भों पर स्थापित किया है वे (१) सिंह, (२) हाथी (३) बैल अथवा (४) घोड़े की हैं। लाट के दृष्टिकोण से लौरिया नन्दनगढ़ का अशोक-स्तम्भ सर्वोत्कृष्ट है। यह ३२$\frac{3}{4}$ फुट ऊँचा है। इसका नीचे का व्यास ३५$\frac{1}{2}$ इंच और ऊपर का व्यास २२$\frac{1}{2}$ इंच है। यह सम्पूर्ण भाग एकाश्मीय है। परगहे (ऊर्ध्व भाग) के दृष्टिकोण से सारनाथ का अशोक-स्तम्भ सबसे सुन्दर है। यह सारनाथ में तथागत के धर्म चक्र-प्रवर्तन का स्मारक है। इसी से इसकी चौकी पर चार धर्म-चक्रों की आकृतियाँ बनी हुई हैं। परगहे पर स्थापित चार सिंह हैं जो अपनी समविभक्तता और सजीवता के लिये विश्व-विदित हैं। स्थापत्यकार ने उनकी प्रत्येक शिरा में प्राण फूंक दिये हैं। उसकी छेनीने उनके अंग-प्रत्यंग में स्फूर्ति भर दी है। उनकी आकृतियाँ ओजपूर्ण हैं, परन्तु भयावह नहीं। उनमें शक्ति है, हिंस्रता नहीं। स्वयं भारतीय कला के अति कटु आलोचक यूनानवादी डाक्टर स्मिथ का कथन है कि संसार की समस्त पशु-मूर्तियों में ये मूर्तियाँ अद्वितीय हैं। प्रसिद्ध पुरातत्व-विद्वान् सर जान मार्शल ने

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी इन्हें प्राचीन विश्व की सर्वोत्तम मूर्तियाँ कहा है।

अनेक पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि अशोककालीन भारतीय कला अपने उत्कर्ष के लिये ईरान की आभारी है। इस कथन की पुष्टि में कतिपय तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं, परन्तु उनमें विशेष बल नहीं है। यहाँ पर उन तर्कों पर विचार कर लेना आवश्यक है—

(१) कतिपय विद्वानों का मत है कि अशोक ने पारसीक राजधानी पर्सीपोलिस के राजकोय सभा भवन के अनुकरण पर ही अपना सभा भवन बनवाया था परन्तु यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि पर्सीपोलिस का वह सभा भवन अशोक के जन्म के सैकड़ों वर्ष पूर्व ही नष्ट हो चुका था। पुनः अशोककालीन भारतीय वास्तुकारों के समक्ष भारत की सुदीर्घकालीन एक सुविकसित कला-परम्परा थी। स्वयं सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य का ही राजप्रासाद इतना सुन्दर था कि वह विदेशियों को देव-निर्मित-सा प्रतीत होता था। अतः इस समुन्नत कला-पम्परा के होते हुए अशोक को आवश्यकता ही क्या थी कि वह ईरानियों का अनुकरण करता। अधिक स्वाभाविक निष्कर्ष यही प्रतीत होता है कि अशोक ने अपनी पूर्वगामी कला का ही उन्नयन किया था। चन्द्रगुप्त मौर्य के काष्ठनिर्मित राजप्रासाद को देखकर यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता कि भारत में पाषाण-निर्माण होता हो न था। यदि भारत में अशोक के पूर्व पाषाण-निर्माण की कला का सम्यक् विकास न हुआ होता तो एकमात्र कतिपय विदेशीय कलाकारों की सहायता से अथवा कतिपय पारसीक कला-कृतियों के आधार पर अति विशाल संख्या में अशोक के भवन, स्तूप और स्तम्भ कभी भी निर्मित न हो सकते।

(२) फारस और अशोककालीन भारत में कतिपय समान कला-प्रणालियों का प्रयोग होता था। उदाहरणार्थ, दोनों ही देशों में सपक्ष वृषभ, सपक्ष सिंह, मानवशीशधारी पक्षो, नर-मकर आदि की मूर्तियाँ एवं चित्र मिलते हैं। इस आधार पर कतिपय पाश्चात्य विद्वानों का कथन है कि भारतीय कला की यह विशेषता फ़ारस से आई। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। ये फारस को स्वदेशीय विशेषताएँ नहीं हैं। वहाँ ये असीरिया से आई थीं। अतः भारत भी उनके लिये असीरिया का ही आभारी है। भारतीय जनश्रुति के अनुसार भारतीय

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वास्तु एवं स्थापत्य का आचार्य असुरमय था। वह असीरिया से ही सम्बन्धित हो सकता है। भारतवर्ष और मध्य एशिया का सम्बन्ध भी अति प्राचीन है। ईसा पूर्व १५वीं शताब्दी के पूर्व ही मध्य एशिया में भारतीयों का प्रभाव पहुँच चुका था। वहाँ के खत्ती, मित्तानी और केसाई राजाओं के अनेक नाम तथा उनके देवताओं के नाम भारतीय हैं। इस प्रकार भारत पर मध्य एशिया अथवा असीरिया का प्रभाव सम्भव है।

मौर्य-काल के पश्चात् शुङ्ग-काल में भी स्थापत्य की अभ्युन्नति सक्रम रही। इस समय साँची और भरहुत कला के सुविख्यात केन्द्र थे। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, साँची में मौर्य-काल के पश्चात् अशोक कालीन स्तूप का विकास किया गया था। इस विकास-कार्य में स्तूप के चतुर्दिक जो पाषाणमयी वेष्टिनी (चहार दीवारी) निर्मित हुई थी वह विशेष महत्वपूर्ण है। इस पर मुकुलित कमल, कमल-कलश और गज-लक्ष्मी आदि के आलेखन हैं। स्तूप के चतुर्दिक चार तोरण (द्वार) हैं। प्रत्येक तोरण १४ फुट ऊँचा है। ये दो लम्बाकार स्तम्भों की सहायता से निर्मित हैं। इनके बीच में तीन बड़ेरियाँ हैं। तोरणों पर महात्मा बुद्ध तथा बोधिसत्वों के जीवन-सम्बन्धी अनेकानेक चित्र उत्कीर्ण हैं। इनके स्तम्भों के अधोभागों पर द्वार रक्षक यक्षों की आकृतियाँ हैं। बड़ेरियों के ऊपर भी अति सुन्दर सिंह हाथी, यक्ष, धर्मचक्र आदि के चित्र उत्कीर्ण हैं। मूर्तियाँ एवं उत्कीर्ण चित्रों की विविधता अति मनमोहक है। पाषाण से ऊपर तथागत के जीवन की बहुसंख्यक घटनायें पुनर्जीवित हो गई हैं; देवी, मानवी, पाशविक एवं वानस्पतिक जगत की अनेक झाँकियाँ सप्राण हो गई हैं। साँची स्तूप अपने निर्माताओं के कला-ज्ञान का ही नहीं वरन् उनके सांसारिक, धार्मिक एवं पौराणिक ज्ञान का भी परिचायक है।

भरहुत में भी एक विशाल स्तूप का निर्माण हुआ था। परन्तु वह काल के प्रकोप से विनष्ट हो गया। अब केवल उसका एक तोरण और पाषाणमयी वेष्टिनी का एक भाग ही कलकत्ता के संग्रहालय में संरक्षित है। वेष्टिनी ७ फुट १ इंच ऊँची थी। इस पर महात्मा बुद्ध की जीवन-सम्बन्धी अनेक घटनायें, देवी-देवता, यक्ष, यक्षिणी, पत्र-लतायें आदि उत्कीर्ण हैं। इसी प्रकार तोरणों के ऊपर भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जातक-लोक, देव-लोक, पशु-लोक और वनस्पति-लोक के अनेकानेक दृश्य एवं उपकरण उत्कीर्ण हैं। कला की दृष्टि से यद्यपि भरहुत की मूर्तियाँ तथा उत्कीर्ण आकृतियाँ पर्याप्तरूप से सजीव हैं पर वे साँची स्तूप की अपेक्षा हीन हैं।

साँची और भरहुत के स्तूप हीनयान काल के प्रतीक हैं। यही कारण है कि इनमें कहीं पर भी महात्मा बुद्ध की मूर्ति अथवा आकृति नहीं मिलती। स्थान-स्थान पर उनकी उपस्थिति छत्र, पादुका और धर्म-चक्र आदि से प्रदर्शित की गई है। पुनः दोनों स्तूपों के कलाकार संसार के प्रति निरपेक्ष न थे। उनकी कला में विरागी-जीवन की शून्यता नहीं है। वह लौकिक जीवन की सर्वाङ्गीणता से उल्लसित है। दोनों स्तूपों की मूर्तियाँ एवं उत्कीर्ण आकृतियाँ धार्मिक भी हैं और लौकिक भी। अनेक अंशों में साँची और भारत का बौद्ध स्थापत्य लोक-स्थापत्य भी है।

कुषाण-काल बौद्ध महायान के उत्कर्ष का काल है। इस यान के अंतर्गत महात्मा बुद्ध को देव-रूप दिया गया और उनको मूर्ति-पूजा प्रतिष्ठित हुई। फिर क्या था, कलाकारों ने बहुसंख्यक बुद्ध-प्रतिमाओं का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। ये नवीन कला-प्रणाली के आधार पर निर्मित प्रतिमायें अधिकांशतः भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिम में गांधार-प्रदेश में उपलब्ध हुई हैं। इसी से उनकी निर्माण-शैली को विद्वानों ने गांधार शैली की संज्ञा दी है। गांधार-प्रदेश यूनानी संस्कृति का केन्द्र था। यहाँ यूनानियों की एक अपनी परम्परा थी। ऐसा प्रतीत होता है कि कुषाण शासकों ने इन्हीं यूनानी कलाविदों को बुद्ध-प्रतिमाओं के निर्माण कार्य में नियुक्त किया। यही कारण है कि गांधार कला-कृतियों में यूनानी तथा भारतीय परम्पराओं का समन्वय करने की चेष्टा की गई थी। इनका विषय प्रायः भारतीय है, बौद्ध है, परन्तु कला यूनानी है। परन्तु एकमात्र भौतिकता-प्रधान यूनानी दृष्टिकोण आध्यात्मिकता-प्रधान भारतीय दृष्टिकोण के साथ सम्यक् रूप से मेल न खा सका। अतः गांधार कला दोनों की परम्पराओं का समुचित समन्वय करने में असफल रही और शीघ्र ही विलुप्त हो गई।

गांधार शैली के आधार पर निर्मित प्रायः समस्त बुद्ध-प्रतिमायें काले स्लेट की हैं। उनमें प्रधानतया महात्मा बुद्ध के शरीर-सौष्ठव को प्रदर्शित करने की ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चेष्टा की गई है। उनका अंग-प्रत्यङ्ग मांसल प्रदर्शित किया गया है। शरीर-सौष्ठव प्रदर्शित करने के लिये ही मूर्तियों को पारदर्शक वस्त्र पहनाये गये हैं। परन्तु तथागत की मुद्रा में न तो कोई आन्तरिक भाव है और न कोई आध्यात्मिक सन्देश। उनकी मूर्ति पूर्णरूपेण लौकिक एवं मानवीय है।

कुषाण-काल का दूसरा कला-केन्द्र मथुरा था। यहाँ पर भी बहुसंख्यक मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। इनमें गांधार शैली के प्रभाव का या तो अभाव है या वह अत्यल्प है। यहाँ जितनी भी मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं वे सब श्वेत चित्तीदार लाल पाषाण की हैं। मूर्तियाँ प्रधानतया खड़ी हुई अवस्था में निर्मित हुई हैं। मथुरा शैली के आधार पर निर्मित बुद्ध-प्रतिमा के मुख के चतुर्दिक प्रभा-मण्डल मिलता है। मुद्रा पर भी आध्यात्मिक शांति परिलक्षित होने लगती है। मथुरा शैली पर निर्मित विशेष महत्वपूर्ण मूर्ति है एक प्रसाधिका की। यह प्रसाधन की समस्त सामग्री—शृंगार (सुगंधित जल रखने के निमित्त एक पात्र), पिटारी, पुष्पमाला आदि—लिये खड़ी है। खड़े होने की विधि अतीव सरल और अकृत्रिम है। मुद्रा की भाँति और अधरों के ईषत् स्मित ने इस मूर्ति को जो भव्यता प्रदान की है वह दर्शनीय है।

जिस समय उत्तरी भारतवर्ष में गांधार और मथुरा शैलियों का प्रयोग हो रहा था। उसी समय के लगभग दक्षिणी भारतवर्ष में अमरावती और नागार्जुन कोंडा में एक नवीन शैली का विकास हो रहा था। इसी शैली के अंतर्गत पाषाण के अतिरिक्त संगमरमर का भी प्रयोग किया गया। कलाकारों ने महात्मा बुद्ध के अस्तित्व को प्रतीकों से भी प्रदर्शित किया और साक्षात् प्रतिमाओं से भी। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कला उस सक्रांति काल का परिचय देती है जब हीनयान की परम्पराओं का क्रमिक परित्याग कर कलाकार महायान की परम्पराओं को अधिकाधिक स्वीकार कर रहे थे। महायान की सम्यक् प्रतिष्ठा का ज्ञान दक्षिण भारत की इस नवीन कला-शैली के अन्तर्गत प्रदर्शित महती भक्ति-भावना से भी परिलक्षित होता है। दक्षिण भारत व्यापारिक समृद्धि का क्षेत्र था। इसने रोम के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये थे।

इस व्यापारिक आदान-प्रदान के साथ-साथ दक्षिण भारत में रोम की कति-

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पय-कला परंपरायें भी आई। अमरावती और नागार्जुन कोंडा की कृतियों के ऊपर रोम-प्रभाव परिलक्षित होता है।

अमरावती में एक विशाल स्तूप का निर्माण हुआ था। अभाग्य से इसका एक भाग ध्वस्त हो चुका है। इस स्तूप की रचना लगभग २०० ई० पू० में हुई थी। सम्पूर्ण स्तूप को श्वेत संगमरमर से ढका गया था। इसकी वेष्टिनी भी संगमरमर से ही निर्मित हुई। वेष्टिनी का सम्पूर्ण घेरा लगभग ६०० फुट था और यह १३-१४ फुट ऊँचो थी। इसको सुन्दर मुकुलित कमलों एवं विभिन्न मानवी तथा पाषविक आकृतियों से अलंकृत किया गया है। इसी प्रकार समस्त स्तूप भी भाँति-भाँति की मूर्तियों से आच्छादित हैं। कहीं तथागत की मूर्तियाँ अपनी मुद्राओं पर गम्भीर विराग की भावना लिये हुए खड़ी हैं। कहीं उनके प्रतीकों के समक्ष उपासिकायें अति श्रद्धा-भक्ति के साथ नतमस्तक हैं। किसी स्थान पर बौने वेष्टिनी का भार वहन करते हुए खड़े हैं तो किसी अन्य स्थान पर प्रफुल्ल कमल अपनी छटा दिखा रहे हैं। पशुओं की आकृतियाँ अति सजीव बन पड़ी हैं। समस्त स्तूप पर स्थापत्य कला का मनोहारी प्रभाव है।

नागार्जुनकोंडा में एक अन्य बौद्ध स्तूप के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। इसका निर्माण भी अमरावती के स्तूप के समान ही हुआ था। परन्तु कला की दृष्टि से यह अमरावती स्तूप की अपेक्षा हीन है।

गुप्त काल

भारतीय कला-परम्परा का सर्वोच्च उत्कर्ष होता है गुप्त-काल में। इस समय कला की अन्य शाखाओं की भाँति स्थापत्य भी विदेशीय प्रभावों का परित्याग कर विशुद्ध भारतीयता से उत्प्राणित हो उठता है। गुप्तकालीन स्थापत्य की कतिपय विशेषतायें हैं जो उसे पूर्वगामी स्थापत्य से पृथक् करती हैं—

(१) **आध्यात्मिकता**—गुप्तकालीन कला जड़ीभूत कोरी भौतिकता का नहीं वरन् संकेतमयी आध्यात्मिक का वहन करती है। यह विशेषता गुप्तकालीन बुद्ध मूर्तियों में स्पष्टतया परिलक्षित होती है। महात्मा बुद्ध के मुखमण्डल पर एक दैवी शान्ति है जो उनकी तपःपूत भावना का प्रतिबिम्ब है।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनकी मुद्रा किसी नैसर्गिक आभा से ओत-प्रोत है जो उनके तत्व ज्ञान का परिचय देती है। गुप्त स्थापत्यकार की छेनी उन आध्यात्मिक भावों को आभाषित करने में सफल हुई है जो शब्दातीत हैं।

(२) **नैतिकता**—गुप्त स्थापत्यकार सौन्दर्य के साथ-साथ नैतिकता का भी पुजारी है। यही कारण है कि उसने कुषाण स्थापत्यकार की भाँति शरीर के नग्न सौन्दर्य के प्रदर्शन को प्रधानता नहीं दी। उसने अपनी मूर्तियों के ऊपर पारदर्शक अथवा झीने वस्त्रों का प्रयोग नग्नता को प्रकाशित करने के हेतु नहीं वरन् उसे ढकने के हेतु किया है। इसी अभिप्राय से अनेक स्थलों पर उसने वस्त्रों को आवर्तित (Folded) रूप में भी प्रदर्शित किया है।

(३) **समानुपातिता**—गुप्त स्थापत्यकार की मूर्तियों में एक अतिकुशल समानुपातिता है, समविभक्तता है। देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उन पर न एक छेनी अधिक लगी है और न एक छेनी कम। शरीर के किसी भी भाग में न तो अत्यधिक गुरुता है और न तनुता। न कहीं अलंकरणों की खटकने वाली न्यूनता है और न कृतियों को बोझिल करने वाली उनकी अधिकता। प्रत्येक मूर्ति अति स्वाभाविक प्रतीत होती है।

(४) **सुन्दरता**—गुप्तकालीन कलाकार सौंदर्य का अनन्य उपासक था। उसने कला के क्षेत्र में किसी भी असुन्दर प्रणाली को ग्रहण नहीं किया। सुन्दरता की इन प्रकृष्ट भावना का ही यह परिणाम है कि उसने पूर्वगामी स्थापत्यकारों की भाँति कभी भी मुण्डित शीश एवं कृषगात-तथागत की मूर्ति की रचना न की। उसकी बुद्ध-मूर्तियाँ अति सुडौल हैं। उनके बाल घुँघराले हैं जो बाह्य सौन्दर्य को और भी उद्दीप्त करते हैं। मूर्तियों के मुख के चतुर्दिक जो प्रभा-मंडल होता है वह पहले अति सरल और अनलकृत रहता था। गुप्त स्थापत्यकार की सौन्दर्य-भावना ने उसे अलंकृत करना प्रारम्भ किया।

(५) **समन्वयशालिता**—गुप्तकालीन स्थापत्यकार ने विभिन्न कला-परम्पराओं का साधिकार समन्वय किया है जो उसकी परिपक्वता का प्रमाण है। उसकी मूर्तियों में अन्तःसौन्दर्य के साथ बाह्य सौन्दर्य का, भौतिकता के साथ आध्यात्मिकता का, वास्तविकता के साथ आदर्शवादिता का, कलात्मकता के साथ

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नैतिकता का और कर्म के साथ भाव का अति रोचक समन्वय दृष्टिगत होता है।

(६) विविधता—गुप्त-स्थापत्य में एक व्यापक विविधता दृष्टिगत होती है। स्थापत्यकार ने बौद्ध, जैन एवं ब्राह्मण मूर्तियों का समान श्रद्धा के साथ सृजन किया। जहाँ महात्मा बुद्ध एवं बोधिसत्वों की जीवन-संबंधी अनेक मूर्तियाँ हैं वहाँ जैन तीर्थङ्करों तथा ब्राह्मणों के पौराणिक देवी-देवताओं की भी बहुसंख्यक प्रतिमायें हैं। गुप्त स्थापत्यकार की प्रतिभा धर्म के क्रोड़ में ही सीमित नहीं रही। उसने उसकी सीमाओं का अतिक्रमण कर धर्मेतर विषयों को भी मूर्तिमान् किया। उसकी कला का विषय साधारण नर-नारी और पशु-पक्षी भी हैं।

यहाँ पर कुछ गुप्तकालीन स्थापत्य-कृतियों का उल्लेख कर देना अति आवश्यक प्रतीत होता है—

(१) मथुरा की खड़ी हुई बुद्ध-मूर्ति—यह मूर्ति अपनी कलात्मकता के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध है। महात्मा बुद्ध अति शान्त एवं सरल मुद्रा में खड़े हैं। उनके मुख से मानव-कल्याण की करुणामयी अभिलाषा फूट रही है। मुख के चतुर्दिक प्रभा-मण्डल है जो उनके आध्यात्मिक तेज की परिचायक है। सस्मित मुख के चतुर्दिक अलंकृत प्रभा मण्डल है।

(२) सारनाथ की आसनस्थ बुद्ध-मूर्ति—इसमें महात्मा बुद्ध पद्मासन में बैठे हुए प्रदर्शित किये गये हैं। हस्तमुद्रा से धर्म चक्र-प्रवर्तन का बोध कराया गया है। मूर्ति इतनी सजीव और स्वाभाविक है कि महात्मा बुद्ध वास्तव में उपदेश देते हुए से प्रतीत होते हैं। मुख पर शान्ति विराजमान है। मुख के चतुर्दिक अलंकृत प्रभा-मण्डल है।

(३) ताम्रनिर्मित बुद्ध मूर्ति—यह मूर्ति सुलतानपुर में प्राप्त हुई थी। इसकी ऊँचाई ७½ फुट है। इसमें महात्मा बुद्ध का दाहिना हाथ अभय-मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। उनके मुख-मण्डल पर सकरुण शान्ति विराजमान है।

(४) सारनाथ संग्रहालय की लोकेश्वर (शिव) की मूर्ति—इसके मुद्रा पर अपूर्व उल्लास प्रदर्शित किया गया है। शीश के ऊपर अति कलापूर्ण जटाबन्ध है।

(५) देवगढ़ के मन्दिर का स्थापत्य—देवगढ़ के एक गुप्तकालीन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन्दिर के कुछ अवशेष उपलब्ध हुए हैं। मन्दिर के बाहरी प्राचीर पर एक स्थान पर शेषशायी लक्ष्मी-सेवित भगवान् विष्णु की मूर्ति है जो अति सजीव है। दूसरे स्थान पर नर-नारायण की मूर्ति है। इनमें तपस्या का चित्र अपनी स्वाभाविकता एवं शान्तिमयता के लिये प्रख्यात है।

ये समस्त मूर्तियाँ भारतीय कला की अमूल्य निधियाँ हैं। संसार की किसी भी कला-प्रदर्शिनी में इन्हें विशिष्ट स्थान मिल सकता है।

साहित्य

संस्कृत साहित्य—भारतीय ने साहित्य की बड़ी विशद व्याख्या की है **'सहितस्य भावः इति साहित्यम्'** के अनुसार सहित शब्द और अर्थ का प्रत्येक भाव साहित्य के अन्तर्गत आता है। दूसरे शब्दों में सम्पूर्ण वाङ्मय ही साहित्य है। भर्तृहरि ने संस्कृत एवं भद्र मनुष्य के लिये जिन विशेषताओं को अनिवार्य बताया है उनमें 'साहित्य' भी है।[१] राजशेखर ने साहित्य की अन्य चार विद्याओं का सार कहा है।[२]

संस्कृत साहित्य भारतीय सभ्यता की समस्त आधारभूत विशेषताओं को वहन करता है। वह अति प्राचीन है। भारतवर्ष के वेद संसार के प्राचीनमत साहित्य में परिगणित होते हैं। संस्कृत साहित्य में एक विलक्षण सर्वांगीणता है। उसमें निवृत्ति मार्ग की विरक्ति है और प्रवृत्तिमार्ग की विलासिता भी; नास्तिक की सर्वस्पर्शिणी शङ्कापरता है और आस्तिक की अनन्य श्रद्धालुता भी; प्रकृतिवादी की नैसर्गिक अल्पता है और भौतिकवादी की प्रसाधित बहुलता भी। संस्कृत साहित्यकार ने राजकीय एवं अभिजात वर्ग से लेकर समाज के निम्नातिनिम्न वर्ग तक के जीवन की सांगोपांग विवेचना की है। उसने मानव

---

१ **साहित्यसंगीत कलाविहीनः**
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः—भर्तृहरि

२ **पंचमीसाहित्यविद्येति यायावरीयः। सा हि चतसृणां विद्यानामपि निष्यन्दः।**

—राजशेखर कृत काव्यमीमांसा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के समस्त भावों एवं कर्मों को प्रकाशित किया है। संस्कृत साहित्य ने जीवन को भीतर से देखा है। इसी से उसमें सत्यानुभूति रही है और स्थिरता भी।

संस्कृत साहित्य की सुरुचि का ज्ञान वेदों से ही होने लगता है। वेदों की ऋचाओं में ऋषिओं के सरल हृदय की अभिव्यक्ति है, आशापूर्ण जीवन की झाँकी है, देवी-देवताओं के प्रति निस्सीम श्रद्धा-भक्ति का प्रकाशन है। उनके उषस् सूक्त कोमल भावनाओं एवं अति सरस साहित्यिक सर्जना के प्रतीक हैं।

वेदों के पश्चात् दीर्घकाल तक धार्मिक साहित्य की सृष्टि होती रही। ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषदों से भारतीय की रचनात्मक प्रगल्भता का आभास मिलता है। उपनिषदों में जो सूक्ष्म एवं गूढ़ विचार-धारा प्रवाहित हुई थी उसने कालान्तर में अनेक सबल दार्शनिक पद्धतियों को जीवन-दान किया।

तत्पश्चात् वेदांग साहित्य का उदय हुआ। इसके अन्तर्गत व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, कल्प, शिक्षा और छन्द परिगणित होते हैं। साहित्य के इस विकास एवं विभाजन से आर्यों की बौद्धिक परिपक्वता के प्रमाण मिलते हैं। व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि-कृत अष्टाधायी लेखक के अगाध अध्ययन, मनन, चिन्तन, विश्लेषण एवं संगठन की विस्मयकारिणी क्षमता का अक्षय स्मारक है। अष्टाध्यायी के ऊपर कालान्तर में कात्यायन ने शोधनात्मक वार्तिक लिखे और पाणिनी के सूत्रों तथा कात्यायन के वार्तिकों को सुगम एवं संशोधित करने के निमित्त पतंजलि ने अपना प्रसिद्ध महाभाष्य लिखा। भारतवर्ष का अति प्राचीन लगध कृत ज्योतिष ग्रंथ विशेष महत्वपूर्ण है। इसके पश्चात् उत्तरोत्तर भारतीयों की ज्योतिर्विद्या विकसित होती रही। आर्यभट्ट, लल, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य आदि ज्योतिष और गणित के उद्भट विद्वान् आज भी प्रख्यात हैं। निरुक्त की रचना वेदों के शब्दों की व्युत्पत्ति, संगठन और अर्थ समझाने के लिये की गई थी। वेदों के अर्थ समझने के लिये निरुक्त की अनिवार्यता सर्वमान्य है। कल्प को श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र और ग्रन्थसूत्र में विभाजित किया जाता है। इनसे याज्ञिक; धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक अवस्था का परिचय मिलता है। शिक्षा में वेद-मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के संबंध में नियम हैं। छन्दःशास्त्र में प्राचीनतम पिंगल के छन्द-सूत्र हैं। कतिपय विद्वानों का मत है कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पिंगल सम्राट् अशोक के गुरु थे। परन्तु यह मत असन्दिग्ध नहीं है।

तदुपरान्त भारतवर्ष में शास्त्र-ग्रन्थों की सर्जना हुई। इनमें समाज को सुव्यवस्थित करने की सायास अभिलाषा परिलक्षित होती है। इनका रचना काल लगभग ६०० ई० पू० से आरम्भ होता है। व्यवस्थाकारों में गौतम बौधायन, आपस्तम्ब, मनु, याज्ञवल्क्य आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। इन्हीं की व्यवस्थायें आज के हिन्दू समाज-संगठन की आधार हैं।

महाकाव्यों को परम्परा में महाभारत तथा रामायण भारतवर्ष के सबसे अधिक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण महाकाव्य हैं। इनके रचयिताओं का अपार ज्ञान, व्यापक दृष्टिकाण एवं कलात्मक हृदय स्तुत्य हैं। महाभारत का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंश गीता है जिसका दार्शनिक विवेचन अपनी गम्भीरता एवं सूक्ष्मता में संसार के समक्ष अद्वितीय है।

कालान्तर में महाकाव्यों की रचना संस्कृत साहित्य का सर्वप्रिय विषय बन गई। अश्वघोष का बुद्ध चरित प्रसिद्ध है। अनेक विद्वानों का यह विचार है कि महाकवि कालिदास के महाकाव्यों के अनेक स्थलों पर बुद्ध चरित का प्रभाव परिलक्षित होता है। बुद्ध चरित का अनुवाद 'लाइट ऑव एशिया' के नाम से अंग्रेजी भाषा में भी हो चुका है। अनुवादक हैं एडविन आर्नल्ड महोदय। बुद्ध चरित के अतिरिक्त अश्वघोष कृत सौन्दरानन्द भी कम महत्व नहीं रखता। परन्तु साहित्य-क्षेत्र में जो ख्याति महाकवि कालिदास को मिली है वह 'न भूतं न भावी' के तथ्य को प्रकट करती है। इस अमर कवि के तीनों महाकाव्य—रघुवंश मेघदूत और कुमारसम्भव—भारतीय साहित्य के अमूल्य त्रिरत्न हैं। महाकाव्यों की परम्परा अजस्र रूप से चलती रही। कालान्तर में भारवि ने किरातार्जुनीयम्, माघ ने शिशुपाल वध और श्री हर्ष ने नैषधीयम् नामक सुप्रसिद्ध महाकाव्यों को रचना की। इनमें महाकवि कालिदास के महाकाव्यों की भाँति सौन्दर्य तो नहीं है, परन्तु वाग्विदग्धता अधिक है। पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना से प्रेरित होने के कारण ये महाकाव्य पूर्ववर्ती महाकाव्यों की अपेक्षा अधिक अलंकृत और दुरूह हैं।

संस्कृत का नाटक-साहित्य भी कम धनी नहीं है। कीथ महोदय के शब्दों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में 'संस्कृत नाटक को यथार्थ में भारतीय काव्य की सर्वोत्कृष्ट उत्पत्ति कहा जा सकता है जिसमें साहित्य के सावधान प्रणेताओं की कला की अन्तिम कल्पना में निष्पन्द आ गया है।' अपनी आशावादिनी चिरशुभाकांक्षिणी परम्परा का अनुकरण करते हुए भारतीय नाटककारों ने सदैव सुखान्त नाटकों की ही रचना की। प्राचीन संस्कृत साहित्य में दुःखान्त नाटकों के लिये कोई स्थान न था। निस्सन्देह रूप से सर्वोत्तम संस्कृत नाटक कालिदास का अभिज्ञान शाकुन्तलम् है। शिष्ट संसार की प्रायः समस्त भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। जर्मनी के महाकवि गेटे ने इस भारतीय नाटक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अन्य संस्कृत नाटकों में भासकृत स्वप्नवासवदत्तम्, भवभूतिकृत उत्तर रामचरितम् और सम्राट् हर्ष कृत नागानन्दम्, प्रियदर्शिका तथा रत्नावली विशेष उल्लेखनीय हैं। विशाखदत्त नामक प्रसिद्ध विद्वान् ने मुद्राराक्षसम् नामक ऐतिहासिक नाटक की रचना की। उसका दूसरा नाटक मृच्छकटिकम् भी सुन्दर है।

संस्कृत साहित्य पद्यप्रधान है, परन्तु उसमें गद्य सर्वथा उपेक्षित न था। अनेक उद्भट विद्वानों ने गद्य में भी रचनायें कीं। इनमें बाणकृत कादम्बरी और हर्षचरितम्, सुबन्धुकृत वासवदत्तम् और दण्डीकृत दशकुमार चरितम् विशेष उल्लेखनीय हैं।

गल्प एवं कहानी के क्षेत्र में सर्वोत्तम कृति है पंचतन्त्र। आर्थर राइडर महोदय इसे संसार का सर्वोत्तम कथा-संग्रह मानते हैं। अनेक देशों के कथा-साहित्य पर पंचतन्त्र का प्रभाव परिलक्षित होता है। पंचतन्त्र के अतिरिक्त दूसरा भारतीय कथा-ग्रन्थ कथा सरित्सागार है।

इनके अतिरिक्त कौटिल्य का अर्थशास्त्र, भर्तृहरि का नीतिशतक, वात्स्यायन का कामसूत्र, चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट के चिकित्सा-ग्रन्थ, कल्हण की राजतरंगिणी आदि कुछ ऐसे ग्रन्थ हैं जो संस्कृत साहित्य की विविधता पर प्रकाश डालते हैं।

साहित्य की अभिवृद्धि के साथ-साथ भारतीयों ने समालोचनात्मक ग्रन्थ भी लिखे। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र सर्वविदित है। तदनन्तर दण्डी, भामह,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाभन, कुन्तक, राजशेखर आदि के अलंकारशास्त्रीय एवं समालोचनात्मक ग्रंथ आते हैं।

वृहत्तर भारत

वृहत्तर भारत से भारतवर्ष के किसी राजनैतिक मानचित्र का बोध नहीं होता। उससे भारतीय-संस्कृत के विशाल विकिरण तथा निकटवर्ती देशों पर उसकी छाप का ज्ञान होता है। उसे भारतवर्ष की सांस्कृतिक एवं धार्मिक विजय भी कह सकते हैं। तभी तो किसी कवि ने यह गर्वोक्ति भी की है कि 'मेरी धर्म-विजय यात्रा के स्तूप अभी अमर हैं।' भारतीय संस्कृति अपने अतीत-काल में भास्कर के समान थी जिसकी स्वर्ण-रश्मियों ने निकटवर्ती देशों को भी भासित कर उनमें नवजीवन का संचार किया था। जिस भू-खण्ड में भारतीय संस्कृति-मार्तण्ड ने प्रकाश-संचार किया था वह ईरान एवं अफगानिस्तान से लेकर प्रशान्त महासागर के वक्षस्थल पर स्थित बोर्नियों और बालि द्वीपों तक तथा साइबेरिया से लेकर सिंहल (श्रीलंका) तक विस्तीर्ण है। भारत की यह बड़ी ही विलक्षण विजय थी। सर्वप्रथम उसने लङ्का, बर्मा, स्याम, चम्पा (अनाम), कम्बोज (कम्बोडिया), मलाया, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो, बालि आदि तक के भू-प्रदेश को अपना सांस्कृतिक दान दिया। अतीत के उस युग में कुछ लोग इन प्रदेशों को भारत के ही भाग मानते थे। यूनानवासी उसे 'गंगापार का हिन्द' कहते थे। आज भी इसे परला हिन्द के नाम से सम्बोधित किया जाता है। कालान्तर में उत्तर एवं उत्तर-पश्चिम में सम्पूर्ण मध्य एशिया तथा अफगानिस्तान आदि को 'उपरला हिन्द' की संज्ञा दी गई। निकटवर्ती होने के कारण भारतीय संस्कृति ने मिश्र, यूनान तथा अरब प्रदेश पर भी, अपनी छाप छोड़ी थी।

इस सांस्कृतिक प्रसार के दो प्रधान कारण कहे जा सकते हैं। प्रथम था आर्थिक। अपने व्यापार के प्रसार हेतु तथा सम्पत्ति-प्राप्ति के हेतु भारतीय सुदूर देशों तक गए। हिन्द महासागर में अपनी केन्द्रीय स्थिति से लाभ उठा कर भारत के व्यापारी सिकंदरिया तथा चीन के सागर तक जाने का साहस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर सके। भारतीय यह भी समझते थे कि बर्मा, जावा, सुमात्रा इत्यादि में सोने की खानें हैं। यह समस्त प्रदेश सुवर्णद्वीप अथवा सुवर्ण-भूमि के नाम से विख्यात था। भारतीय व्यापारी संस्कृति के अग्रदूत भी थे। जहाँ कहीं भी उनके पद-चिह्न पड़े, वहाँ उन्होंने अपनी सांस्कृतिक मुहर भी लगा दी। दूसरा कारण था भारतीयों की लोक-कल्याण की भावना और धर्म-प्रचार की महती अभिलाषा। धर्म-प्रचार की भावना से प्रेरित होकर ऋषि-मुनि और बौद्ध भिक्षु अपने प्राणों की बाजी लगा असभ्य अथवा अर्ध-सभ्य लोगों के मध्य में जाते और उन्हें अपनी संस्कृति के रंग में रंग लेते। अशोक की धार्मिक दिग्विजय के परिणाम-स्वरूप बौद्ध भिक्षुओं ने इन प्रदेशों में प्रवेश किया। इस भाँति भारतीय इन प्रदेशों में व्यापारी, उपनिवेषक अथवा धर्म-प्रचार के रूप में गये।

प्रसार-क्रम—भारतीय संस्कृति ने सर्वप्रथम श्री लङ्का में प्रवेश किया। उपरले हिन्द में भारतीय ईसा-पूर्व तीसरी शती में गये तथा वहाँ उन्होंने अपने उपनिवेश भी बसाये। ईसा की पहली शती में भारतीय संस्कृति ने चीन में प्रवेश किया। वहाँ से यह कोरिया और फिर छठवीं शती ईस्वी में जापान पहुँची। ईसा की सातवीं शती में इसने तिब्बत में पदार्पण किया और वहाँ से ईसा की १६वीं शताब्दी में मंगोलों के सम्पर्क में आकर यह मंगोलिया, मंचूरिया तथा साइबेरिया तक भी गयी। ईसा की प्रथम शती में इसने हिन्द चीन, मलाया प्रायद्वीप, जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों पर अपनी पताका फहराई। वहाँ हिन्दू-राज्य स्थापित हुआ जो प्रायः डेढ़ हजार वर्ष रहा। ईसा की सोलहवीं शती में इस्लाम के प्रवेश ने इन हिन्दू राज्यों का अन्त किया। पश्चिमीय एशिया पर भी भारत की सांस्कृतिक छाप पर्याप्त-रूप से महत्वपूर्ण थी।

श्री लंका—भारतीय जनश्रुति तथा महाकाव्यों के अनुसार महाराज रामचन्द्र ने सर्वप्रथम लंका में प्रवेश किया था। सिंहल के इतिहास-ग्रन्थों का कथन है कि काठियावाड़ के राजकुमार विजय ने छठों शताब्दी ईसा पूर्व में लंका में उपनिवेश बसाया था। उसके उपरान्त ईसा की तीसरी शती पूर्व में महाराज अशोक ने बौद्ध-प्रचार-हेतु अपने पुत्र महेन्द्र को लंका भेजा था। वहाँ का राजा तिस्स उसका शिष्य बना तथा यह भी कहा जाता है कि तिस्स के अनुरोध पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही अशोक ने अपनी पुत्री संघमित्रा और बोधि वृक्ष की एक शाखा वहाँ भेजी थी। महेन्द्र और संघमित्रा द्वारा स्थापित बौद्ध शाखा आज बड़ी ही विशाल हो चुकी है। धर्म के साथ ही भारतीय भाषा, साहित्य, कला-कौशल इत्यादि भी वहाँ गये। बौद्ध-धर्म ने ही लंका-निवासियों को ब्राह्मी लिपि और पाली भाषा दी थी। इस प्रकार भारत ने लंका को सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध बनाया और उस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी।

उपरला हिन्द—ईसा पूर्व तीसरी शती में भारतीय संस्कृति ने मध्य एशिया, चीनी तुर्किस्तान अथवा सीक्यांग में भारतीय उपनिवेश बनाने प्रारम्भ किए थे। इसका प्रमाण फाहियान का वर्णन है। यह भी कहा जाता है कि पाँचवीं शती तक भारतीयता समस्त मध्य एशिया में व्याप्त हो चुकी थी। कुमार जीव नामक बौद्ध ने कूचा नामक नगर में उपनिवेश की स्थापना की।

भारतीय संस्कृति का चीन-प्रवेश सचमुच उसकी महत्ता और समृद्धता का द्योतक है। कश्यप मातंक तथा धर्मरत्न नामक बौद्ध भिक्षुओं ने वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार एवं विस्तार प्रारम्भ किया था। सम्राट मिंगती ने उन्हें बड़ी श्रद्धा के साथ रखा था। इन्होंने बौद्ध धर्म-ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद कर वहाँ पर सांस्कृति विजय का श्रीगणेश किया। ईसा की छठी शताब्दी में चीन के राजा अशोक बूती ने बौद्ध धर्म को राजकीय संरक्षण दिया और उसे प्रसारित भी कराया। कुछ काल में ही चीन में बौद्ध मंदिरों की संख्या ३० हजार हो गई। चीन के स्वर्णयुगीन तंगवंश ने बौद्ध धर्म की उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया था। इसी वंश के शासनकाल में चीनी यात्री ह्वेनसाँग भारत आया था।

तेरहवीं शती में मंगोल सम्राटों ने इनका स्वागत किया तथा उसे मंगोलिया, मंचूरिया तथा साइबेरिया में प्रसारित किया।

शीघ्र ही बौद्ध धर्म चीन से कोरिया और कोरिया से जापान पहुँचा। वहाँ के सम्राट ने उसे राज्य-संरक्षण प्रदान किया तथा बुद्ध की एक बहुत बड़ी काँस्य-मूर्ति बनवाई।

तिब्बत—सातवीं शती में विजयी राजा स्त्रोगचन गम्पो ने तिब्बत में बौद्ध धर्म का बड़ा प्रचार किया। काश्मीर से उनको वर्ण-माला मिली और भारतीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रन्थों के अनुवाद ने शीघ्र ही वहाँ भारतीय संस्कृति का प्रकाश फैला दिया। आचार्य शान्ति रक्षित ने वहाँ सर्वप्रथम बौद्ध विहार बनवाया और बौद्ध धर्म का प्रचार कराया। पद्मसम्भव ने शान्ति रक्षित का कार्य पूरा किया।

परला हिन्द—दक्षिण पूर्वीय एशिया के इस प्रदेश में केवल भारतीय संस्कृति ही विस्तृत नहीं हुई वरन् कई शक्तिशाली राज्य भी स्थापित हुए।

हिन्द चीन के राज्य—हिन्दचीन में भारतीय राज्य कम्बोडिया तथा अनाम में स्थापित हुए थे। कम्बोडिया में पहले फूनान नामक हिन्दू राज्य था। फिर कम्बुज का उदय हुआ। अनाम में भी, जिसका प्राचीन नाम चम्पा था, भारतीय राज्य स्थापित हुआ था।

फूनान—फूनान को भारतीय के रंग में रँगने वाला हुएनलीन या कौण्डिन्य नामक ब्राह्मण था। इसके वंशजों ने १०० वर्षों तक वहाँ राज्य किया। फिर सेनापति फन-ये-मन राजा बना। इसके पड़ोसी राज्य स्याम, लाओस और मलाया प्रायद्वीप में अपना राज्य स्थापित किया था। ४८४ ई० में यहाँ पर शैव-धर्म की प्रधानता थी और बौद्ध धर्म का भी कुछ प्रचार था। छठीं शताब्दी में कम्बुज के आक्रमणों द्वारा इसका अन्त हो गया।

कम्बुज—छठीं शताब्दी में यह श्रुतवर्मा द्वारा स्वतंत्र किया गया। ईसा की ९ वीं शताब्दी में कम्बुज के स्वर्ण युग का आरम्भ हुआ। वहाँ का राजा यशोवर्मा एक विख्यात राजा था। उसे लोग द्वितीय मनु के नाम से भी पुकारते हैं। कम्बुज में इसने भारतीय गुरुकुलों के आधार पर कई आश्रम भी खोले थे। उनका अध्यक्ष एक कुलपति होता था। हिन्दू संस्कृति इन आश्रमों से अबाध रूप से निस्सृत हुई। ११वीं शती में भी यहाँ बड़ी उन्नति हुई। यहाँ के राजाओं—सूर्यवर्मा द्वितीय तथा जयवर्मा सप्तम—ने अङ्कोरवत और अङ्कोर थोम नामक विश्व-विख्यात मन्दिरों का निर्माण कराया।

चम्पा—चम्पा भी एक हिन्दू राज्य था जो १८२२ तक भारतीय संस्कृति का एक गढ़ बना रहा। महाराज श्री भद्रवर्मा से लगाकर चमराजा के राज्य तक यहाँ भारतीय संस्कृति का निवास-स्थान रहा। साहित्य तथा धर्म ने यहाँ के लोगों के मन हर लिए थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मलाया द्वीपसमूह (सुवर्ण द्वीप)—मलाया द्वीप समूह में, जिसे सुवर्ण-द्वीप के नाम से भी पुकारते हैं, भारतीयों ने ईसा पूर्व छठीं शताब्दी में प्रवेश किया। शीघ्र ही इन लोगों ने मलाया, जावा, सुमात्रा, बालि और बोर्नियों में अपने हिन्दू राज्य स्थापित कर लिए थे। परन्तु १५वीं तथा १६वीं शती में इस्लाम ने इन राज्यों को पी डाला।

जावा—जावा की जनश्रुतियाँ पराशर मुनि, व्यास तथा पाण्डु को इसका उपनिवेशक बताती हैं। पर चीनी इतिहास ग्रंथ घोषित करते हैं, कि दूसरी शती में यहाँ भारतीय राज्य स्थापित हुआ था। जावा ने शीघ्र ही भारतीय संस्कृति को अपना लिया।

बालि—बालि द्वीप ही एक ऐसा द्वीप है जहाँ भारतीय संस्कृति अब भी जीवित है। भारतीय संस्कृति का यह प्रबल गढ़ रहा है।

बोर्नियो—बोर्नियों (बकुलपुर) द्वीप चौथी शती के लगभग बसाया गया। यहाँ का मूलवर्मा नामक शासक भारतीय धर्म का बड़ा ही पोषक था। उसने 'बहुसुवर्णक' यज्ञ करके अपार धन तथा बीस हजार गौवें ब्राह्मणों को दान में दी थीं। पुरातत्व-वेत्ताओं ने यहाँ से महादेव, कार्तिकेय, गणेश, नंदी, अगस्त्य, ब्रह्मा तथा स्कन्द की मूर्तियाँ ढूँढ़ निकाली हैं। निकट ही—सेली बीज द्वीप में महात्मा बुद्ध की विशाल पीतल-प्रतिमा भारतीय संस्कृति की अमिट छाप का स्मरण कराती है।

सांस्कृतिक प्रभाव—भारतीय संस्कृति ने दक्षिण पूर्वीय एशिया को एक नवीन जीवन-दान दिया था। यह प्रदेश बर्बरता के तिमिर में निपीडित था। पर जैसे ही भारतीयों ने यहाँ प्रवेश किया, ये भूखण्ड भी भारतीय धर्म, विज्ञान, साहित्य और कला के प्रसार क्षेत्र बन गए। यहाँ पर विशेषतया शैव और वैष्णव धर्मों का प्राधान्य था। बोर्नियों से तो हिन्दू देवों की मूर्तियाँ मिली हैं, परन्तु जावा से भी शिव, विष्णु, लक्ष्मी, गरुड़ की अनेकानेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। क्राफोर्ड नामक प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता ने बतलाया है कि पौराणिक धर्म की ऐसी कोई मूर्ति न होगी जो जावा में न पाई गई हो। अब भी बालि के निवासी वहाँ पर इन्द्र, विष्णु, कृष्ण की मूर्तियाँ गढ़ते हैं। वहाँ का कर्मकांड तथा पूजा-पद्धति सभी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दुओं जैसी है। हिन्दुओं की भाँति ये भी जल-पात्र, कुशा, तिल, घृत, मधु, अक्षत, धूप, दीप, घण्टी, माला और मन्त्रों का उपयोग करते हैं। उनके संस्कार भी हिन्दू जैसे ही हैं।

साहित्य और कला के क्षेत्र में भी सुवर्ण द्वीप में संस्कृत भाषा और ब्राह्मी वर्णमाला प्रयोग की जाती थी। चम्पा और कम्बोज से प्राप्त शिलालेख इस तथ्य के द्योतक हैं कि इनके निर्माताओं को भाषा का बड़ा ही अच्छा ज्ञान था। इसके भी प्रमाण प्राप्त हुये हैं कि वहाँ के मन्दिरों में रामायण, महाभारत, पुराण इत्यादि का अखंड पाठ होता था। लौकिक साहित्य का भी अभूतपूर्व अनुशीलन हुआ था। कम्बुज के राजा यशोवर्मा कृत पातंजल महाभाष्य की टीका इसका समुचित प्रमाण देती है।

सुवर्ण द्वीप ने भारतीय कला को भी प्रचुर रूप में ग्रहण किया था। कम्बुज की मूर्तिकला गुप्त काल से ही अपना जन्म मानती है। उसके कलाकार इतने चतुर शिल्पी बन गये थे कि उन्होंने 'पाषाणों में अमर काव्यों' की उत्कृष्ट रचना की थी। कम्बोडिया तथा जावा के मन्दिर भी उनकी मूर्तिकला के ज्ञान तथा उस पर भारतीय धर्म के प्रभाव की दुहाई देते हैं। अङ्कोर तथा बरोबुदुर के मन्दिर उसकी निर्माण कला के प्रबल साक्षी हैं। भारतीय संस्कृति के ये अमर स्मारक भारतीयों के गौरवशील इतिहास के स्वर्णाङ्कित पृष्ठ हैं। भारत की सांस्कृतिक विजयों का यह इतिहास विश्व को राजनैतिक विजयों से सर्वथा भिन्न है। यह शांति की विजय थी, जो आज भी इन दूरस्थ देशों के निवासियों और भारतीयों की सांस्कृतिक एकता और विश्वबन्धुत्व की भावना को दृढ़िभूत कर रही है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १०

चीन की सभ्यता

चीन का इतिहास अत्यन्त प्राचीन तथा गौरवशाली है। नील, दजला-फरात और सिन्धु सरिताओं की भाँति चीन ह्वाँग-हो और याँग-टिसी-क्याँग सरिताओं ने भी मानव की प्राचीनतम सभ्यता के एक रूपांतर को अपने तटों पर अवतरित होते देखा था। चीन को ऐतिहासिक दीवार पर अङ्कित कर्मठ करों के चिह्न आज भी में चीन के उन पूर्वजों का स्मरण दिलाते हैं जिन्होंने अपने बाहुबल का परिचय देते हुए एशिया में एक अति शक्तिशाली एवं समृद्ध साम्राज्य की स्थापना की थी, जिन्होंने अपने मस्तिष्क का परिचय देते हुए अति सुदृढ़ राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था की थी और जिन्होंने अपने हृदय का परिचय देते हुए साहित्य और कला की ऐसी सरस सर्जना की थी जो आज भी मर्मज्ञों की उन्मुक्त सराहना की पात्री है। आज भी गोधूलिवेला में जब कभी क्लान्त-श्रान्त चीनी पथिक अपनी सरिताओं के तटों पर खड़ा हो जाता है तो उसे लाओ, कन्फ्यूशियस और तथागत के वे युग-सन्देश निनादित होते-से प्रतीत होते हैं जिन्हें काल का सर्ववाही प्रवाह भी न बहा सका। चीनी सभ्यता अजस्र है।

आधुनिक युग में जब कि मिस्र, सिन्धु घाटी और मेसोपोटामिया की सभ्यताएँ अतीत के गर्त में विलीन हो चुकी हैं, चीन की सभ्यता अत्यन्त प्राचीन होने पर भी नवीनता धारण किये हैं। चीन की सभ्यता का सत्वर प्रवाह आज भी दृष्टि-गोचर हो रहा है। याँग-टिसी-क्याँग, ह्वाँगहो और पीत (येलो) इस देश की मुख्य नदियाँ हैं। पूर्व की ओर प्रशान्त महासागर, उत्तर की ओर गोबी का मरु-स्थल तथा टुंड्राप्रदेश, पश्चिम की ओर तिब्बत और तुर्किस्तान तथा दक्षिण की ओर हिन्द चीन से घिरा हुआ यह देश एशिया का विशाल राष्ट्र है। इसकी जनसंख्या विश्व के किसी भी देश से अधिक है। नील, दजलाफरात और सिन्धु नदियों की घाटियों की भाँति चीन में भी सभ्यता का विकास ह्वाँगहो तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

याँग-टिसी-क्यांग नामक नदियों को घाटियों में हुआ। चीनी लोग प्रारम्भ से ही कृषि और व्यापार में दक्ष थे। जलवायु सम है, परन्तु कहीं-कहीं गर्मी अधिक पड़ती है। उत्तरी मन्चूरिया का प्रदेश ठण्डा है। अनावृष्टि के कारण कभी-कभी चीन में उपज को भारी क्षति पहुँचती है। यहाँ की मुख्य उपज चावल है। खनिज पदार्थों में कोयला, लोहा और तेल की खानें हैं। चीन का नामकरण वहाँ की एक राजसत्ता के आधार पर हुआ जो बीसवीं शताब्दी ई० पू० चीन में वर्तमान थी। चीन के लोग मंगोल जाति के हैं। इनका चेहरा गोल होता है, आँखें छोटी, नाक चपटी और सिर पर काले-काले बाल होते हैं। इनका कद नाटा और हाथ-पैर भी छोटे होते हैं।

प्राचीन राजनीतिक इतिहास

आरंभ से ही चीन के निवासी इस कथन में विश्वास रखते थे कि सभ्य मानव समाज के लिये केवल एक ही राजनीतिक शासन की आवश्यकता है। चीन मुख्यतः दो भागों में विभाजित था—पहला वह भाग जहाँ की जनसंख्या अधिक थी और दूसरा मन्चूरिया के समीपवर्ती प्रदेश का भाग था जहाँ जनसंख्या अल्प थी। चीन की प्रसिद्ध जनश्रुति के अनुसार 'आकाश और पृथ्वी एक अंडे की भाँति श्वेत रंग के थे।' 'पानकू' नामक व्यक्ति ने पृथ्वी और आकाश को उनके वर्तमान स्वरूप दिये। आकाश को उसने चमकीले और स्वच्छ पदार्थों से बनाया और पृथ्वी को मैली और शक्तिहीन वस्तुओं से। दिन में नौ बार वह अपना स्वरूप बदलता था। इस प्रकार आकाश प्रति दिन दस फुट ऊँचा होता गया, पृथ्वी दस फुट मोटी और 'पानकू' दस फुट लम्बा। उसने १८००० वर्ष तक राज्य किया। जब पानकू ने द्रवित होकर रोना प्रारम्भ किया तो उसके आँसुओं से दो नदियाँ प्रवाहित हुईं जो याँग-टिसी-क्याँग और येलो (पीत) के नाम से प्रख्यात हैं। वह श्वास लेता था तो हवा बहने लगती थी और जब वह बोलता था तो गरज सुनाई पड़ती थी। उसकी चमकदार आँखों के खुलने से बिजली चमकती थी। उसके प्रसन्न रहने से ऋतु और उपज अच्छी होती थी और अप्रसन्न होने से अकाल या बाढ़ से जनता को कष्ट होता था। मृत्यु के पश्चात्

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसका विशाल शरीर पाँच भागों में विभक्त होकर पृथ्वी पर गिरा। जहाँ वे अङ्ग गिरे वे पाँचों स्थान चीन के पवित्र पहाड़ हैं। उसकी दोनों आँखें क्रमशः सूर्य और चन्द्रमा हैं। इस प्रकार ग्रीस, बैबीलोन तथा मिस्र की सभ्यता की तरह चीन की सभ्यता में भी अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। पानकू का साम्राज्य ईसा के कई हजार वर्ष पूर्व संगठित किया गया था। इस समय फुसी नामक व्यक्ति ने विवाह के नियम बनाये और चित्रलिपि, ज्योतिष, पंचांग, वाद्य-संगीत, यंत्रों आदि का आविष्कार किया। इसके शासन की अवधि १८५२ ई० पू० से २७३८ ई० पू० तक बताई जाती है।

नवीं शताब्दी में सुमाचिन नामक एक प्रसिद्ध इतिहासकार हुआ था। इसने बहुत सी पुस्तकें लिखीं जिसमें बहुत थोड़ी सामग्रियाँ अवशेष रहीं। इसने बहुत भिन्न-भिन्न राजाओं के शासन-काल का वर्णन किया है। इसके अनुसार नवम् काल में तीन शासक हुए जो क्रमशः ताई हो, रानो नू तथा शेनेङ्ग के नाम से प्रख्यात थे। इनके विषय में अनेक कथायें तथा किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। दशवें काल में पीले राजा का वर्णन है। इस पीले राजा ने शेनुङ्ग के वंशज पर विजय प्राप्त कर अपना साम्राज्य स्थापित किया। इस राजा को चीनी जाति का प्रपिता कहा जाता है। इस सम्राट् के समय रहन-सहन में प्रगतिशीलता आई और सामाजिक संगठन की भावना से अनेक कार्य किये गये। नये घरों, मन्दिरों तथा राजप्रासादों का निर्माण हुआ। सारी भूमि की नाप की गई और सारा देश प्रान्तों और जिलों में विभाजित किया गया। इस सम्राट् की रानी ने रेशम के उद्योग में सहायता प्रदान कर व्यापार की उन्नति की। पहनावा और रहन-सहन पर विशेष प्रकार के नियम लागू किये गये। मुद्रा तथा रथ का आविष्कार हुआ। लेखन-कला के साथ-साथ पंचांग का भी आविष्कार किया गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग में चीनी सभ्यता को अधिक महत्वपूर्ण बनाने वाली सामग्रियाँ उपलब्ध हो रही थीं। इस सम्राट् के पश्चात् दो शासकों के नाम उल्लेखनीय हैं यू तथा युन। चीन के महान् दार्शनिक कनफ्यूशियस के अनुसार ये दोनों राजा सिद्धान्तवादी शासक थे और इनका जनता पर प्रभाव था। इन्हें सांसारिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पदार्थों से रुचि नहीं थी, बल्कि साधारण मनुष्य की देख-भाल में ही वे अपना समय व्यतीत करते थे।

इनके पश्चात् हसिया नामक वंश की स्थापना हुई। हसिया वंश में लगभग १७ सम्राटों ने राज्य किया जिनका शासन काल ४३९ वर्षों का था। अनेक युद्धों के पश्चात् शैंग नामक एक नवीन वंश ने हसिया-साम्राज्य का अन्त कर दिया। शैंग वंश को चिन वंश भी कहते हैं। इसका शासन-काल १७६६ ई० से ११२५ ई० पू० तक था। शैंग वंश में २८ सम्राट् हुये और अपनी प्रतिभा एवं योग्यता के फलस्वरूप उन्होंने ६४१ वर्ष तक राज्य किया। खेती की उन्नति में इन सम्राटों ने अधिक समय लगाया। इस समय चीन में साहित्य और कलाकौशल के क्षेत्र में भी पर्याप्त उन्नति हुई। प्रारम्भ से ही चीनी लोग पीतल और हाथी दाँत पर चित्र लिपि अंकित करते थे। परन्तु इस युग में बाँस के पत्रों पर भी लिखना प्रारम्भ किया गया और अक्षरों को टिकाऊ बनाने के लिये एक प्रकार की स्याही का प्रयोग किया गया। इस प्रकार इनके लेख सुरक्षित होने लगे। लिखने के लिये वे कूचिका का प्रयोग करते थे सारे समाज के जीविकोपार्जन का साधन खेती थी। समाज दो भागों में विभक्त था—कुछ जमीन्दार थे और कुछ कृषक। इस युग में चीते, भालू और भेड़ियों का शिकार होता था। पालतू जानवरों में भेड़, कुत्ते, घोड़े पाये जाते थे। सेना का संगठन सुदृढ़ था। पैदल, रथ और घोड़े सेना के मुख्य अंग थे। एक सेना में लगभग ५००० सैनिक रहते थे, लोहे का प्रयोग कम था परन्तु पीतल का प्रचुर प्रयोग होता था। इस समय पत्थर की वास्तुकला अत्यंत सुन्दर और आकर्षक होती थी। तत्कालीन उपलब्ध सामग्री में हस्थि-निर्मित सामग्री तथा धातु-पात्र विशेष महत्वपूर्ण हैं। कभी-कभी इन पर अङ्कित लेख भी मिलते हैं। दैनिक जीवन में धर्म का विशेष महत्व था। नदियों तथा पृथ्वी पर बलिदान दिये जाते थे। मुख्य-मुख्य अवसरों पर ही बलिदान होता था। मनुष्य से भाग्य तथा तारों के बीच रहस्यमय सम्बन्ध समझा जाता था। इसी से कालान्तर में नक्षत्र-शास्त्र का सूत्रपात हुआ। शौंग सी इस समय सबसे बड़ा देवता था। इसको प्रसन्न रखने के लिए यदा-कदा मनुष्यों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की बलि भी दी जाती। मनुष्य के जीवन में आमोद-प्रामोद का विशेष महत्व था। सामाजिक उत्सवों पर नृत्य-संगीत का आयोजन होता था। वाद्य में ढोलक और बाँसुरी प्रमुख थे।

शैंग वंश की साम्राज्य-सीमा में पीली नदी, शांसी के प्लेटो से लेकर शाटुंग के पर्वतों तक के प्रदेश सम्मिलित थे। इस प्रदेश में अनेक ऐतिहासिक सामग्रियाँ उपलब्ध हुई हैं। अभाग्य से वहाँ के निवासियों ने बहुत सी सामग्री का समय-समय पर विक्रय भी कर दिया। परन्तु अब भी अनेक सामग्रियाँ ब्रिटेन, स्काटलैंड और शिकागो के संग्रहालयों में संरक्षित हैं।'

चाऊ वंश

शैंग वंश का अन्तिम सम्राट् शाऊ सिन (Shou Hsin) था। ११२२ ई०पू० में जनता ने उसके वंश के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। जनता की सहायता से वू वांग ने शाऊ सिन को पराजित किया और अपने चाऊ वंश की नींव डाली। चाऊ वंश का इतिहास चीनी सभ्यता के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यद्यपि इस वंश के सम्राट् उत्तरी चीन के निवासियों से सम्बन्धित थे तथापि संस्कृति एवं जाति में कुछ भिन्न थे। प्रसिद्ध विद्वान मेब्सस के अनुसार ये पश्चिमीय आक्रमणकारी जाति के थे। वू वाँग को पश्चिम का नेता कहा जाता था। चाऊ वंश की सभ्यता और सामाजिक संगठन शैंग वंश से भिन्न था। वू वाँग सिद्धान्तवादी पुरुष था। इतिहासकारों ने इसके चरित्र की प्रशंसा की है। यह बात सर्वथा न्यायसंगत सी प्रतीत होती है कि चाऊ वंश को अधिक पुष्ट बनाने का श्रेय वू वाँग को ही था। तीन वर्ष तक इस सम्राट् ने पूर्व के आश्रित राज्यों से युद्ध किया और उन्हें अपने अधिकार में कर लिया। इस वंश में ३७ सम्राट् हुये और उनके जीवन काल में चीन ने प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की। उच्चाधिकारियों की नियुक्ति परीक्षा पास कर लेने पर होती थी। शासन एवं राज्य के इन अधिकारियों का कार्य, प्रजा में नैतिकता एवं संगठन की भावना को जाग्रत करना था। इस वंश के अधिकतर राजाओं ने पाठशालाओं, अस्पताल तथा विश्रामगृहों का निर्माण किया। साम्राज्य भर में अनुचित कार्यों पर प्रति-

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बन्ध था। प्रान्तीय सरकार शक्तिशाली थी, परन्तु केन्द्रीय सरकार से प्रान्तीय सरकार का संबंध उतना घनिष्ठ नहीं था जितना होना चाहिये। इसका परिणाम यह हुआ कि केन्द्रीय सरकार पतनोन्मुख होने लगी। आपसी वैमनस्य ने देश की संगठन शक्ति को नष्ट कर दिया। ऐसे ही गम्भीर परिस्थिति में हूणों ने चीन पर आक्रमण किया। इस आक्रमण के फलस्वरूप सामंतों ने शासन की बागडोर अपने हाथ में लेकर स्वतंत्र राज्यों की स्थापना करना प्रारम्भ किया। बहुत से सामंत चाऊ वंश के ही थे। ये सामंत स्वयं शासक बने। इनका अधिकार एक सम्राट् की तरह था। समय-समय पर ये सामंत परस्पर युद्ध किया करते थे। इनके पारस्परिक युद्ध की भर्त्सना चीन के महान् दार्शनिक कन्फ़्यूशियस ने की है।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार के० सी० लातूरे के अनुसार ८वीं शताब्दी ई० पू० से तीसरी शताब्दी के मध्य तक चीन की दशा मध्यकालीन योरप के सदृश थी। मध्यकालीन यूरोप की भाँति चीन में भी छोटे-छोटे राज्यों का समूह था, परन्तु इसके साथ ही साथ सभ्यता का विकास हुआ। जिस प्रकार यूरोप में सभ्यता की सीमा जर्मनी, ग्रेटब्रिटेन, स्कैंडीनेविया और रूस तक विस्तृत हो चुकी थी। उसी प्रकार चीन में पूर्व की ओर शटुंग तक, पश्चिम की ओर सेजवान तक और दक्षिण में यांगटिसी की घाटी तक सभ्यता का उदय हो चुका था। योरोप में जिस प्रकार सांस्कृतिक समाजों की स्थापना हुई, उसी प्रकार चीन में भी सांस्कृतिक समाजों का विकास हुआ। साहित्य, दर्शन और कला के क्षेत्र में चीन यूरोप के आगे ही रहा है। सामंतवादी युगों में विभिन्न सामंतों का प्रादुर्भाव हुआ। इन सामन्तों के निम्नलिखित पाँच प्रमुख राज्य थे। ची (६२५-६४३ ई० पू०), मुंग (६५०-६३७ ई० पू०), शिन (६३९-६२८ ई० पू०), चिन (६ ९-६२१ ई० पू०) और चू (६१३-५९१ ई० पू०)।

इन पाँच राज्यों में सबसे सुदृढ़ एवं सबल राज्य 'ची' था। चीन के सामंतों में विभाजन-प्रथा थी। वे ड्यूक, मार्क्विस, अर्ल, वाइकाउण्ट और बैरन की भाँति पाँच श्रेणियों में विभक्त थे। एक ड्यूक और मारक्विस को लगभग ⅓ मील का क्षेत्र शासन के लिये दिया गया था। नगरों के राज्य-विधान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवं शासन पद्धति की देख-भाल करने के लिये अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। पाँच जिलों के अफसर को प्रधान या चैंग (Chang) कहा जाता था। दस जिलों के अधिकारी को मार्शल की उपाधि दी जाती थी जिसे चीनी भाग में शुई (Shuai) कहते हैं। और तीस जिलों के अधिकारी को सुपीरियर की उपाधि मिलती थी। ये सारे अधिकारीगण कोर्ट के सदस्य तथा सामन्त के सलाहकार को शासन की सूचना देते थे। इन राज्यों का प्रमुख उद्देश्य देश में समान्तवाद का प्रचलन करना था। ये सामन्त न्याय और दण्ड अपने अधिकार में रखते थे। समय-समय पर ये सामन्त कोर्ट में इकट्ठे होते थे। प्रत्येक पाँचवें वर्ष सम्राट देश का भ्रमण करता था। देवताओं को प्रसन्न रखने के हेतु सम्राट् जिस-जिस स्थान का भ्रमण करता था, वहाँ बलिदान दिया जाता था।

पुराने लोगों पर सम्राट का अधिक विश्वास था। वयोवृद्ध लोगों को पुरस्कृत किया जाता था। कोर्ट लगने पर संगीतज्ञ और कवियों को आमंत्रित कर सम्राट् अपना मनोविनोद करता था। खेतों तथा बीजों का निरीक्षण किया जाता था। नये खेतों को जोतने वाले व्यक्ति सरकार से सहायता प्राप्त करते थे। चाऊ वंश के सामन्तवादी युग का भूमि-वितरण, इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कन्फ्यूशियस के शिष्यों ने इसे Well Field System कहा है। "कविता की पुस्तक" से हमें इस साम्राज्य के रीति-रिवाजों का पता लगता है। साधारण जनता में आखेट करने की प्रथा जारी थी। ग्रीष्म काल एवं वसंत के दिनों में जंगली पशुओं का बध किया जाता था। निम्न कोटि के मनुष्यों के लिये यह युग कठिन परिश्रम का युग था। राज्य के सारे बेगार कार्य निर्धन व्यक्तियों द्वारा किये जाते थे। प्रत्येक अनुभवी पुरुष को, जिसकी आयु, २० वर्ष से ६० वर्ष के अन्दर थी, सरकार द्वारा भूमि दी जाती थी। साठ वर्ष के पश्चात् वह भूमि पुनः सरकार की हो जाती थी।

खेती-बारी की उन्नति के अतिरिक्त व्यापार एवं कला तथा दर्शन के क्षेत्र में भी चीनी जनता ने यथायोग्य उन्नति की। चाऊवंश के शासकों के युग में रंगाई, वास्तुकला, सात प्रकार की काष्ठ कला, हस्त कला, एवं चमड़ों पर तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धातु पर नक्काशी का कार्य अधिक सफलता के साथ किया गया है। लाऊ चेन, च्याँग, तुजुयू इत्यादि इस युग के प्रसिद्ध कलाकार थे। ताँबे के सिक्कों का प्रचलन था। सोना, मोती और जवाहरात का उपयोग होता था। इस प्रकार चाऊवंश के युग में सामाजिक संगठन सराहनीय हो चला था। चाऊवंश के वेन तथा उसके दो पुत्रों का और तान का कार्य अधिक सराहनीय था। सम्राट वेन की कर्त्तव्य-निष्ठा, जागरूकता और तत्परता से निरंतर साम्राज्य की उन्नति होती रही और थोड़े ही समय में चीन एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया था। चाऊवंश का पाँचवा सम्राट मू था। मू के पश्चात् बारहवें सम्राट यू के समय में साम्राज्य की अंतिम घड़ी आ पहुँची और ७७१ ई० पू० में उसकी मृत्यु हो गई। यू विलास प्रिय शासक था। इसकी मृत्यु के पश्चात् ही चीन के छोटे-छोटे राज्यों के सामन्तों में विद्रोह फैल गया। चिन, चू, येन और हान इत्यादि राज्यों में युद्ध होने लगे और इन पारस्परिक युद्धों से केवल चिन ही शक्तिशाली बन पाया।

चिन-वंश

जिस प्रकार चाऊ वंश से लोगों ने पश्चिम से आक्रमण कर शैंग वंश पर आधिपत्य जमाया था उसी प्रकार चिन-राज्य के लोग पश्चिम से चलकर एक नवीन राष्ट्र के निर्माण में संलग्न हुए। जंगली क्षेत्र के निवासियों पर विजय प्राप्त कर चिन वंश के लोगों ने उनके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार पूर्वी चाऊ वंश, जिसका सम्राट पिंग था, २४९ ई० पू० में नष्ट हो गया। चू यूवान एक बुद्धिमान एवं सदाचारी मंत्री था जो चू राज्य के राजकुमार के अधीन कार्य करता था। कालान्तर में उस मंत्री को देश-निष्कासन का दंड देकर राजकुमार ने पृथक् कर दिया। "ली से ओ" नामक कविता की रचना चू यूआन ने ही की थी। इस कविता की भाषा बड़ी ही रोचक है। साहित्य के क्षेत्र में इस कविता का विशेष महत्व है।

शी ह्वाँग-टी—सामन्तवादी युग की अराजकता, अशान्ति एवं वैमनस्य का अन्त शी ह्वाँग-टी ने किया। कहते हैं कि वह चिन की सम्राज्ञी का अवैध पुत्र था। सूमा चीन के कथनानुसार उसने अपने पिता को आत्म-हत्या करने पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवश किया और अपनी माता का भी बध कर डाला। इस प्रकार दोनों से उऋण होने के पश्चात् वह रक्तरंजित सिंहासन पर आसीन हुआ। वह अति शूर और महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसके नेत्रों के समक्ष एकच्छत्र आधिपत्य के स्वप्न नाच रहे थे। अतः शीघ्र ही उसने अपना राज्य-विस्तार करना प्रारम्भ किया। अपनी निरन्तर विजयों के फलस्वरूप वह अचिरात् हान, चाउ, वी, चू, येन और ची राज्यों का अधिपति बन गया। इतिहास में सर्वप्रथम एकीकृत केन्द्रीभूत संगठित चीन का उदय हुआ। एकीकरण के इस कार्य के लिए उसकी तुलना जर्मनी के बिस्मार्क से की जा सकती है। उसकी उग्र नीति ने सामन्तों का पूर्ण दमन कर दिया। उनके हाथ के राजनीतिक एवं सामाजिक विशेषाधिकार जाते रहे। अभी तक चीनी राज्य स्थानीय स्वतन्त्रता पर आधारित था। शी ह्वाँग-टी ने सामन्त-शक्ति को भंग करने के ध्येय से स्थानीय स्वतन्त्रता का अपहरण कर लिया और उसके स्थान पर केन्द्रीय सरकार की सर्वव्यापी मान्यता की प्रतिष्ठा की। अधिकार-हीन सामन्तों के स्थान पर बहुसंख्यक राजकीय पदाधिकारियों की नियुक्ति की गई। सामन्तों के भूमिखण्ड छीन-छीन कर कृषक-वर्ग में विभाजित और वितरित कर दिये गये। भिन्न-भिन्न स्थानीय कानूनों के स्थान पर केन्द्रीय सरकार द्वारा व्यवस्थित समान कानूनों की स्थापना हुई। प्रत्येक जिले में एक गवर्नर नियुक्त किया गया। परन्तु इसके अधिकार सिविल थे। पुलिस विभाग उससे पृथक् और स्वतन्त्र कर दिया गया। इन समस्त कार्यों से सामन्त-शक्ति जर्जरित हो गई। फिट्जेरैल्ड के मतानुसार चीन में दो महान क्रान्तियाँ हुई—प्रथम २२१ ई० पू० (शी ह्वाँग-टी के शासन) में जिसने सामन्तवादी प्रथा का अन्त कर दिया और द्वितीय १९११ ई० में जब चीन ने अतीतकालीन सभ्यता के आवरण से निकल कर अन्तर्राष्ट्रीय देशों से सम्बन्ध स्थापित कर नवीन राजनीतिक एवं सामाजिक संगठन का कार्य किया।

प्राचीन संसार में राज्य की संरक्षा का प्रमुख साधन सैन्य-बल था अतः शी ह्वाँग-टी ने अपनी सेना का संगठन किया। राज्य के प्रत्येक पुरुष को सैन्य-विभाग के लिये प्रस्तुत रहना पड़ता था। सेना के उच्चाधिकारियों का विशेष सम्मान होता था। चीन की उत्तरी सीमा बर्बर जातियों के आक्रमणों के कारण

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सदैव अरक्षित रहती थी। अतःशी ने उत्तरी सीमा पर एक महान दीवार का निर्माण कराया जो संसार के सात आश्चर्यों में से एक है। यह लगभग १६०० मील लम्बी और २० फीट चौड़ी है। इसके समक्ष मिश्र के पिरामिड निष्प्रभ प्रतीत होते हैं। इस दीवार के कारण चीन हूणों के आक्रमणों से बहुत दिनों तक सुरक्षित रहा। चीन की ओर मार्ग अवरुद्ध हो जाने के कारण हूणों ने अब रोम पर आक्रमण किया और उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। एक विद्वान का कथन है कि चीनी दीवार के निर्माण के कारण रोम का पतन हुआ।[१]

चीन की ऐतिहासिक दीवार के अतिरिक्त शी ने अपनी राजधानी में अनेक भव्य नगरों का भी निर्माण किया था जो उसकी कलात्मकता के प्रमाण हैं। गमनागमन की सुविधा के लिये राज्य में बहुसंख्यक मार्ग बनवाये गये और सरिताओं के ऊपर पुल बाँधे गये।

शी पुरातन रूढ़ियों एवं परम्पराओं का घोर विरोधी था। वह चीन का नव-निर्माण करना चाहता था। ऐसा नव-निर्माण, जिसके शिलान्यास का श्रेय इतिहास उसी को प्रदान करे। नूतनता की अभिरुचि ने प्रमाद का रूप धारण कर लिया। सम्राट ने चीन के प्राचीन इतिहास-ग्रन्थों, काव्य-ग्रन्थों एवं धार्मिक ग्रन्थों को विनष्ट करने का आदेश दिया। पुरातनवादी होने के कारण वे अन्धकार प्रसारक थे। निषिद्ध ग्रन्थों का प्रच्छन्न रूप से अध्ययन करने वाले सैकड़ों व्यक्ति जीवित जलवा दिये गये।

उसकी एकतन्त्रवादिनी क्रूर प्रवृत्तियों एवं नवीनता-प्रमाद के कारण देश का अधिकांश शिक्षित वर्ग उसका घोर विरोधी हो गया। अनेक बार सम्राट की हत्या करने के षड्यन्त्र किये गये, परन्तु वे सब अति कठोरता से विफल कर दिये गये। चीनी विस्मार्क के हाथ में जब तक तलवार रही तब तक सिंहासन उसका था। मृत्यु के पश्चात् वह एक अतिभव्य मकबरे के भीतर समाधिस्थ कर दिया गया। साहचर्य के निमित्त कई सौ सुन्दर नारियों को भी उसी के साथ जीवित दफ़न होना पड़ा।

चिन वंश के नाम से ही चीन का नामकरण हुआ है। चिन वंश की सीमा

---

१. 'Rome fell because China built a wall.'

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर में पीली नदी तक, पूर्व में समुद्र तट तक, दक्षिण में उस स्थान तक जहाँ पर लोगों ने हवा से बचत के कारण नवीन गृहों का निर्माण किया था और पश्चिम में हिन्दू-कुश पहाड़ों तक थी। वर्तमान चीन का नक्शा इसी चिन वंश की राज्य-सीमा पर आधारित है। इस वंश के अन्तर्गत सामन्तवादी प्रथा का अन्त हुआ। सारा देश छत्तीस-प्रान्तों में विभक्त था। राज्य का प्रत्येक खेत सम्राट का था। शक्तिशाली शासन के बल से शी ह्वाँग-टी ने तानाशाह के रूप में राज्य किया। शिक्षा-प्रसार, कला, लेखन-कला, चित्रलिपि, वास्तुकला इत्यादि सरकारी अफसरों की देख-रेख में प्रसारित की जाती थी। लोसू ने मोहर का आविष्कार किया जिससे चीनी लिपि में सहायता मिली। २१० ई० पू० में शी ह्वांग-टी की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र सिंहासनारूढ़ हुआ परन्तु उसकी दुर्बलता के कारण राज्य का सारा कार्य मंत्रियों के हाथ में चला गया। इसके फलस्वरूप सम्राट का व्यक्तित्व नष्ट हो गया। चिन वंश के राज्य के कानून इतने कड़े थे कि सम्राट के निधन के पश्चात् उनका पालन कठिन हो गया। मेंगहिन को, जो चीनी सेना का कमांडर था और जिसकी शक्ति से सीमावर्ती प्रान्तों की रक्षा होती थी, आत्म-हत्या करने के लिये आदेश दिया गया। प्रधान मंत्री ली लू को कारावास का दंड मिला। सेना-अधिकारियों का अपहरण हुआ। जनता और सेना के कतिपय अधिकारियों ने विद्रोह किये। पारस्परिक ईर्ष्या पदलिप्सा एवं अकर्मण्यता के कारण चिन वंश का नाश हुआ।

हान वंश

चिन के पश्चात् ल्यू पैंग ने २०६ ई० पू० में हान वंश की स्थापना की। चिन वंश की अपेक्षा हान वंश के सम्राटों ने अधिक उदारता एवं कुशलता से शासन किया। इस वंश का महान् सम्राट बू ती था। इसके शासन काल में कविता, दर्शन, कला के क्षेत्र में सम्यक उन्नति हुई।

इस युग की जनता का बौद्धिक स्तर उच्च था। सामाजिक चेतना से सांस्कृतिक अभ्युत्थान हुआ और "सामंतवाद" के साथ-साथ प्राचीन रीति-नीति का अंत हुआ। चीन के इतिहास में चिन-हानवंश की क्रान्ति अपना महत्वपूर्ण

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थान रखती है। इस युग में सारा देश तेरह प्रान्तों में विभक्त था और प्रान्त जिलों में। प्रत्येक प्रान्त में एक गवर्नर होता था। हानवंश की राजधानी दक्षिण पूर्व के ध्वंशावशेषों के मध्य निर्मित की गई थी। १७९ ई० पू० ल्यूपंग के पश्चात् एक कुशल सम्राट सिंहासनारूढ़ हुआ जिसका नाम वेन था। इसको "सभ्य" की उपाधि मिली थी। वेन तथा उसके पुत्र चिंग ने चीन के इतिहास में रीति, सभ्यता और रचनात्मकता के युग की स्थापना की। ये दोनों सम्राट दर्शन और प्राकृतिक नियमों द्वारा चालित सरकार को संसार की सर्वोत्कृष्ट सरकार मानते थे। इन्होंने राज्य में भूमिकर बन्द कर दिया था। वास्तविक दृष्टि से ये दोनों सम्राट साधु प्रकृति के थे। इनका जीवन विलासमय नहीं था। जनता की सुख-समृद्धि में ही ये अपना सुख समझते थे। जीवन-यापन सरलता-पूर्ण था। अधिकारी वर्ग सुखी था। साधारण जनता का स्तर ऊँचा था। उपज अधिक होती थी। अन्न-प्राचुर्य से यह वंश सम्पन्न था। सम्राट का शासन काल महत्वपूर्ण था। इसने चीन को समस्त पूर्वी देशों से शक्तिशाली राष्ट्र बनाया।

हानवंश का सर्वप्रमुख सम्राट् बू ती (ई० पू० १४०—ई० पू० ८७) था। इसने अपने साम्राज्य की सीमाएँ कोरिया से लेकर कैस्पियन सागर तक विस्तृत की। इस साम्राज्य में चीन प्रदेश के अतिरिक्त मंचूरिया, कोरिया, आन्नाम इंडो-चीन और तुर्किस्तान भी सम्मिलित थे। यद्यपि हूणों ने अनेक बार इस साम्राज्य पर आक्रमण किये, परन्तु वे पराजित करके भगा दिये गये। शान्ति और सुव्य-वस्था के निमित्त सम्पूर्ण साम्राज्य तेरह प्रान्तों में विभक्त था। प्रत्येक प्रान्त में एक गवर्नर साम्राट् के प्रतिनिधि के रूप में शासन करता था। सामन्तों की बची-खुची शक्ति का भी विनाश कर दिया गया। उनके हाथ से समस्त व्यापारिक एवं राजनीतिक विशेषाधिकारी छीन लिये गये। अब राज्य के प्रत्येक पद पर नियुक्त प्रतियोगिता-परीक्षा के आधार पर होने लगी। देश में दास प्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। आर्थिक शोषण को समाप्त करने के लिये सरकार ने राष्ट्रीयकरण के सिद्धान्त को अपनाया। मदिरा, लोहा, नमक, मुद्रा आदि अनेक वस्तुओं पर सरकार ने अपना एकाधिकार स्थापित किया। कृषकों की सुविधा

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिये नहरें और तालाब बनवाये गये। उन्हें व्याज रहित राजकीय ऋण देने की भी व्यवस्था की गई। साम्राज्य में समान करों की व्यवस्था की गई और क्रय-विक्रय की वस्तुओं के मूल्यों पर नियन्त्रण स्थापित किया गया। सड़कों और पुलों के निर्माण के द्वारा गमनागमन को अधिक सुविधाजनक बनाया गया। व्यावसायिक उन्नति के निमित्त चाँदी और टीन की सम्मिश्रित मुद्रा का प्रसार किया गया। विदेशीय व्यापार की भी अभिवृद्धि हुई। चीन और भारत की व्यापारिक सम्बन्ध दृढ़तर हो गया। इस समय रोम-साम्राज्य भी अभ्युन्नत अवस्था में था। चीन ने उसके साथ भी व्यापारिक सम्बन्ध को दृढ़ीभूत कर लिया। प्रतिवर्ष रोम से मसाले, मोतियाँ और चमकीले रत्न चीन भेजे जाने लगे। इनके बदले चीन उसे अपना रेशमी वस्त्र देता था। रेशम के उत्पादन के लिए चीन सुविख्यात था। रोम-निवासी चीन को 'रेशम का देश' कहते थे। च्यांग यान को टालमी ने 'रेशम-नगरी' की उपाधि दी है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र का स्थान अधिकाधिक महत्वपूर्ण होने लगा। साम्रट् बू विद्यानुरागी भी था। उसके पुस्तकालय में ३१२३ प्राचीन ग्रन्थ, १३१८ कविता-ग्रन्थ, २००५ दर्शन-ग्रन्थ, २५२६ गणित ग्रन्थ, ८६८ चिकित्सा-ग्रन्थ और ७९ युद्ध-ग्रन्थ थे।

परन्तु सम्राट बू की मृत्यु के पश्चात् ऐसा कोई भी शक्तिशाली सम्राट् नहीं हुआ जो साम्राज्य को एक सूत्र में बाँधकर उन्नतिशील बना सके। सम्राट बू के आँख मूंदते ही चीन की जनता में व्यापक अग्नि भड़की और विद्रोह के लक्षण दृष्टिगत होने लगे। स्थान-स्थान पर साम्राज्य के प्रति विरोध प्रकट किया गया। खासकर वेंग नामक वंश ने हान वंश की रीढ़ तोड़ दी और उसे भविष्य में पनपने से पूर्णतया रोक दिया। ९ वर्ष ई० पू० वेंग मेंग ने अपने को चीन का सम्राट घोषित किया और एक नये वंश की स्थापना की जो शिन के के नाम से प्रसिद्ध है। उसने सारे देश की शासन पद्धति एवं विधान को परिवर्तित करने के लिये दृढ़ संकल्प किया। वह प्राचीन शासन पद्धति के अनुसार चीन में पुनर्जागरण लाना चाहता था। उसने चीन की सारी भूमि को पुनः वितरित किया और निर्धन व्यक्तियों के जीवकोपार्जन के लिये यथेष्ट प्रबन्ध किया। यद्यपि इस सम्राट ने रचनात्मक दृष्टि से चीन में अनेक कार्य किये,

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु राजनीति में वह शून्य के बराबर ही था। क्योंकि चीन में तत्कालीन परिस्थिति और प्राचीन रीति-रिवाजों में सामञ्जस्य न होने के कारण साम्राज्य शक्तिशाली न बन सका। यही कारण था कि विद्रोह के समय उसे और उसके वंश को नतमस्तक होना पड़ा।

उत्तर हान-वंश

हान वंश के एक राजकुमार ने वेंगमेंग को मार कर लोप्यांग को राजधानी बनाया और एक नये वंश की स्थापना की जो उत्तर हान वंश के नाम से विख्यात हुआ। उक्त घटना २५ ई० में घटित हुई। नये राजकुमार कुआँग वू ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। कुआँग वू कनफ्यूशियस के सिद्धान्तों को मानने वाला था।

इसके समय शिक्षा की उन्नति हुई और चीन के प्रथम विश्वविद्यालय का निर्माण हुआ। उसके साम्राज्य में विद्वानों का मेला-सा-लगा रहता। उत्सव बड़े उत्साह के साथ मनाये जाते थे। ये उत्सव कनफ्यूशियस के सिद्धांतों पर ही आधारित थे। पाठशालाओं में केवल पुस्तकीय विषय ही नहीं पढ़ाये जाते थे अपितु चारित्रिक जीवन-यापन का भी ज्ञान कराया जाता था। पूर्व हान वंश से कहीं अधिक कार्य उत्तर हान वंश द्वारा किये गये थे। राजाओं के महल बड़े सुन्दर बने थे। उनमें हीरा, जवाहिरात की बनी सामग्रियाँ सुसज्जित थीं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सम्राट को विलासप्रिय सामग्रियों से ढक कर रक्खा गया था। हान वंश के समय व्यापारी धनवान बने। परन्तु कृषि का कारबार ढीला पड़ता गया। विश्व के अन्य देशों से यातायात हुआ करता था। सड़कों का निर्माण हुआ। सरायें बनवाई गईं। यात्रियों को सुविधा के लिए गर्मी और सर्दी के दिनों में विशेष प्रबन्ध किये गये थे।

पोस्ट आफिसों का संगठन किया गया। क्वांगवांग के पश्चात् इस वंश का नाश होने लगा और सम्राट दुर्बल होने लगे। जो विद्वान हान वंश के राज्य की शोभा थे उन पर अब प्रतिघात होने लगे और वे समाज में अपना व्यक्तित्व खो बैठे। उत्तर हान वंश की अभ्युन्नति अवरुद्ध हो गई और पतन के काले बादल

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मँडराने लगे। जन-संगठन का ह्रास हुआ, राज्य में वैमनस्य के कारण फूट हो गई। लगभग सौ विद्वानों को मार डाला गया और सात सौ के लगभग बन्दी बनाये गये। ६९वीं ईसवी में सामान्य जनता में सामाजिक चेतना में उत्पन्न हुई और वह हान वंश के विरुद्ध आवाज उठाने लगी। तुंग नाम जनरल ने सम्राट का अपहरण कर राजधानी को लूटा। इस जनरल ने एक नये वंश की स्थापना की पर वह वंश अधिक टिकाऊ न रह सका और थोड़े ही दिन के पश्चात् इस जनरल को मार डाला गया। इसकी मृत्यु के पश्चात् हान वंश का पतन हो गया। हान वंश के पतन से चीन की सभ्यता को एक भारी धक्का लगा। इस वंश के पतन का एक भारी कारण पीली पगड़ी वालों का विद्रोह भी था। यह समुदाय कनफ्यूशियस के विरुद्ध संगठित हुआ था।

समीक्षा—हान वंश के समय चीन एक शक्तिशाली राष्ट्र था। इसकी राज्य-सीमा पश्चिमी सीमान्त देशों तक थी। वर्तमान यारकन्द और खोतान तक के राज्य चीन के हान राज्य के आश्रित थे। पान चाऊ इस युग का एक महान् विधानवेत्ता था जो प्रसिद्ध इतिहासकार पान कू का भाई था। 'पान चाऊ' ने चीन को सुदृढ़ राष्ट्र बनाने में सक्रिय सहयोग दिया।

व्यापार के क्षेत्र में चीन ने उन्नति की। रोम, यूनान, ईरान और भारत आदि देशों से व्यापारिक सम्बन्ध घनिष्ठ थे। चमड़ा एवं धातु की बनी कुछ सामाग्रियाँ भूमध्य सागरीय प्रदेशों को भेजी जाती थीं। इन वस्तुओं के स्थान पर विदेशों से शीशा, ऊन, घोड़ा तथा कीमती पत्थर इत्यादि चीन को भेजे जाते थे। कला के क्षेत्र में रोम एवं चीन देशों का गहरा प्रभाव चीनी कला पर पड़ा था। शीशे का आविष्कार इसी युग में हुआ था। यूनानी औषधियाँ चीन भेजी जाती थीं। चीनी जनता ने यूनानियों से अंकगणित तथा फलित ज्योतिष भी सीखा था। चीनियों का भूगोल ज्ञान अधिक विस्तृत हो चला था। साहित्य तथा धर्म की अभिवृद्धि हुई। तथागत भगवान बुद्ध-द्वारा प्रचारित बुद्ध धर्म चीन में इस युग में प्रचलित हुआ था। इसके पश्चात् लाओवाद एवं कनफ्यूशियसवाद का प्रचलन भी इसी युग में हुआ। ये दो धार्मिक विचार-पंथ चीनी सभ्यता के सुदृढ़ स्तम्भ थे। लाओवाद का प्रचलन चीन के न्यायालयों में अधिक था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चीन के हान वंश का युग एक सम्पन्न युग था। चिन वंश की भाँति हान वंश ने संगठन की भावना जाग्रत की और विधान एवं संस्कृति के क्षेत्र में अपूर्व ख्याति प्राप्त की। हान वंश के शासकों में अपूर्व शासन-क्षमता थी। उन्होंने राजनीति एवं राज्य में सामंजस्य उपस्थित किया। हानवंश चीन का मौर्य वंश कहलाता है। इस समय सारे देश में नवीन संस्कृति का जन्म हुआ और सभ्यता का विकास हुआ। व्यक्तिगत चरित्र ही जनता का विशेष गुण समझा जाता था। चीन की सभ्यता में इस वंश का योग अवर्णनीय है।

आज भी चीन के निवासी अपने को "हानजेन" (हान के मनुष्य) के नाम से पुकारते हैं।

तंग काल चीन का स्वर्ण-काल

हान वंश के पश्चात् चीन की राजसत्ता सुय वंश के हाथ में आई। परन्तु यह वंश अधिक समय तक स्थिर न रह सका। इसके पतन के पश्चात् तंग-वंश का आविर्भाव हुआ। चीन के इतिहास में इस वंश का अत्यधिक महत्व है। कतिपय विद्वानों ने हान-काल को चीन का 'स्वर्ण-युग' माना है। परन्तु यह उपाधि तंग-काल के लिये अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। हान-काल में जो सांस्कृतिक धारायें विकासोन्मुख हो रही थीं उनकी पूर्ण परिणति तंग-काल में ही हुई। संस्कृति-सभ्यता की तन्वी-लता के लिये हान-काल यदि धरा-आधार था तो तंग-काल प्रस्तर-स्तम्भ। मानवी जीवन के चतुर्मुखी विकास की जो विभिन्न प्रवृत्तियाँ हान-काल में दृष्टिगोचर होती थीं वे तंग-काल में आकर अति सबल और साकार हो गईं। प्रगति का जो बीज हान-काल की उर्वर धरा में अंकुरित हुआ था वह तंग-वंश की जीवन-दायिनी शक्ति को ग्रहण कर पल्लवित, पुष्पित और फलित हो उठा। 'यह एक बहुमुखी युग था, यह अन्य युगों की अपेक्षा कम परम्परा-निगडित और नवीन प्रभावों के लिये अधिक ग्रहणशील था।' तंग-काल में राजनीति, धर्म, साहित्य, कला आदि सभी क्षेत्रों में हम चीन की प्रतिभा का अपूर्व नवोन्मेष देखते हैं। इस समय चीन-निवासी अपनी पुरातन रूढ़ियों का उत्सर्ग कर उस पथ का अनुगमन करता है जो अन्ततोगत्वा निस्सीम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उदारता, निर्बन्धता और सहिष्णुता के पावन क्रोड में प्रविष्ट होता है। तंग-कालीन प्रसिद्ध विद्वान् फू के मतानुसार तंग-वंश के तत्वावधान में समस्त चीन में पुनर्जागरण का काल आया और सम्पूर्ण देश नवीनता के साँचे में ढाला गया। इस युग में इस देश की सुप्त आत्मा जाग उठी थी।

राजनीतिक अवस्था—तंगवंश के अन्तर्गत चीन पूर्व एशिया का एक अति शक्तिशाली राज्य हो गया था। पश्चिम में मध्य एशिया और फारस के समीपवर्ती प्रदेश तथा पूर्व में कोरिया और जापान तक के प्रदेश चीनी साम्राज्य में सम्मिलित थे। इस समय तुर्क मध्य एशिया के ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे। तंग-वंश के लिये यह असह्य था। अतः दोनों में संघर्ष हुआ। तुर्क पराजित हुए और उनका सम्राट् बन्दी बना लिया गया। इस प्रकार चीनी साम्राज्य की सीमा सुरक्षित हो गई। यह विशाल साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था। केन्द्रीय शासन के शक्तिशाली होने के कारण प्रान्तीय गवर्नर पूर्णरूप से चीनी सम्राट् के नियन्त्रण में रहते थे। कुशल सम्राटों ने चीन को अपूर्व सुख-शान्ति दी जिससे संस्कृति-सभ्यता के विविध अङ्गों का द्रुतगति से संवर्धन हो सका।

तंग-वंश का सर्वप्रमुख सम्राट् ताइ सुंग (६२७—६५० ई०) था। हान-वंश के पतन के पश्चात् चीन में अव्यवस्था प्रारम्भ हो गई थी और अनेक अधीन राज्य स्वतन्त्र हो गये थे। उधर बाह्य शत्रुओं ने पुनः अपने आक्रमण प्रारम्भ कर दिये थे। ताइ सुंग ने इन समस्त विपत्तियों का बड़े धैर्यपूर्वक सामना किया। अपने शौर्य का परिचय देते हुए उसने बर्बर आक्रमणकारियों को पराजित किया और उन्हें भगाकर अपने प्रदेशों में शरण लेने पर विवश किया। विद्रोही राज्य पुनः अधीन कर लिये गये। इस प्रकार बाह्य आक्रमणों तथा आन्तरिक विद्रोहों का दमन करने के पश्चात् ताइ सुंग ने अपने साम्राज्य का संगठन करना प्रारम्भ किया। उसने अपनी सम्पूर्ण सेना को छः भागों में विभक्त किया। प्रत्येक भाग में ८०० से लेकर १००० तक सैनिक थे। यही सेना चीन-साम्राज्य की संरक्षा करती थी। वह प्रशासनीय विषयों में अति दक्ष था। उसने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य को दस ताओं (प्रान्तों) में विभक्त कर दिया तथा प्रत्येक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रान्त में एक कुशल गवर्नर की नियुक्ति की। पुनः साम्राज्य के सिविल और पुलिस विभाग पृथक् कर दिये गये। पद-नियुक्ति के लिये प्रतियोगिता-परीक्षा की प्रतिष्ठा तो पहले ही की जा चुकी थी, परन्तु ताइ सुंग ने उसका पूर्ण विकास किया। परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिये विज्ञान, भूगोल, कानून, इतिहास और गणित आदि विषयों का ज्ञान आवश्यक था। उत्तीर्ण होने के पश्चात् पदार्थी को पहले स्थानीय सरकार के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता था।

अपने आन्तरिक प्रशासन में ताइ-सुंग अति उदार एवं सहिष्णु शासक था। उसके साम्राज्य में बौद्ध, ज़रथुस्त्र मतानुयायी, ईसाई और कनफ्यूशियस-मतानुयायी समान स्वतन्त्रता के साथ अपने-अपने धर्मों का प्रचार एवं अनुसरण करते थे। सम्राट् स्वयं कनफ्यूशियन था, परन्तु अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णु न था। समकालीन धर्मविग्रह-संत्रस्त योरप के लिये चीन की धार्मिक सहिष्णुता का यह प्रयोग नितान्त विस्मयकारी था। ताइ सुंग की इस धार्मिक सहिष्णुता और उदारता से प्रोत्साहित होकर योरप और भारत के विभिन्न धर्मावलम्बी चीन आये। उनके पारस्परिक विचार-आदान-प्रदान से मानव संस्कृति के विकास को पर्याप्त योग प्रदान हुआ। ताइ सुंग के शासन-काल में ही ह्वेनसाँग ने भारत की ऐतिहासिक यात्रा की थी।

धार्मिक दृष्टिकोण के समान सम्राट् की न्याय-व्यवस्था भी उदार थी। वह अभियुक्तों के साथ नम्रता का व्यवहार करता था और उनके हृदय में अपने कुकृत्यों के लिये पश्चाताप उत्पन्न कर उनका सुधार करना चाहता था। उसका दण्ड-विधान नम्र और उदार था। कहते हैं कि जब उसके मन्त्रियों ने इस दण्ड-विधान को कठोर करने का परामर्श दिया तो उसने उत्तर दिया 'यदि मैं व्यय कम करूँ, कर हलके कर दूँ, एकमात्र ईमानदार पदाधिकारियों को नियुक्त करूँ जिससे जनता को पर्याप्तरूप से वस्त्र मिल सके, तो ये कार्य कठोरतम दण्डों की अपेक्षा चोरी-डकैती दूर करने में अधिक सहायक होंगे।' इस प्रकार का सुधारात्मक दृष्टिकोण आधुनिक शासकों के लिये भी आदर्श है।

सम्राट् कलाप्रेमी और साहित्य-प्रेमी भी था। उसने अपनी राजधानी में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेकानेक भव्य भवन बनवाये और उसे उसे विविध रूप में प्रसाधित किया। राजधानी के वैभव को देखने के लिये प्रतिवर्ष बहुसंख्यक विदेशी चीन आते थे। प्रसिद्ध सुधारक कनफ्यूशियस की पुण्य स्मृति में प्रायः प्रत्येक प्रान्त में मन्दिरों का निर्माण हुआ था। ये साहित्य, धर्म और कला के केन्द्र-विन्दु थे। ताइ सुंग स्वयं विद्वान् था। उसने कनफ्यूशीय मत के प्रायः समस्त प्रमुख धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन किया था। स्वयं उसके बहुसंख्यक पदाधिकारी भी कवि और साहित्यकार थे। इस प्रकार ताइ सुंग का शासन-काल चीनी जनता के लिये सुख-शान्तिदायक था। एक इतिहासकार का कथन है कि उसकी मृत्यु पर जनता को असीम दुःख हुआ; विदेशियों तक ने अपने हाथ से अपने शरीर से रक्त निकाल कर सम्राट् की अरथी पर छिड़का और इस प्रकार अपना शोक प्रदर्शन किया। ताइ सुंग लोक-प्रिय शासक था।

तंग वंश का द्वितीय लब्धप्रतिष्ठ शासक मिंग ह्वाँग था। इसने ७१३ ईसवी से लेकर ७५६ ईसवी तक राज्य किया। चीन के इतिहास में यह एक विलक्षण शासक था। करवाल और लेखनी के प्रयोग में वह समान रूप से कुशल था। उसकी रौद्रता के समक्ष टर्की, फारस और समरकन्द नतमस्तक हो गये थे। साम्राज्य-विस्तार करने के पश्चात् उसने प्रशासनीय सुधार किये। न्यायालयों और काराओं का पुनः संगठन किया गया तथा करों की वृद्धि कर राजकोष समृद्ध किया गया। विधान से मृत्यु-दण्ड हटा दिया गया। शासक के साथ-साथ मिंग ह्वांग एक उच्च कवि भी था। कविता के अतिरिक्त उसने संगीत की भी उपासना की थी। संगीत की अभ्युन्नति के निमित्त उसने अपने बाग में एक संगीत भवन का निर्माण किया था।

सम्राट् का कवि-हृदय सौन्दर्योपासक भी था। साठ वर्ष की अवस्था में वह यान क्वी-फी नामक एक भ्रष्ट परन्तु सुन्दर रमणी के सम्पर्क में आया जो उसको विनाश का कारण बनी। विलासिता के गर्त में पड़कर वृद्ध सम्राट् प्रशासनीय कार्यों से विरत हो गया। जिस समय मिंग ह्वांग अपने मन-मस्तिष्क की समस्त अवशिष्ट शक्तियों के साथ रति की उद्दाम उपासना कर रहा था उसी समय यान-क्वी-फी के एक अन्य प्रणयी आन लू-शान (जो सम्राट् के अधीन उत्तरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रदेश का गवर्नर था) ने सम्राट् के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और चीन साम्राज्य की राजधानी चंग-ग्रान को नष्ट-भ्रष्ट करके संख्यातीत निरीह जनता को तलवार के घाट उतार दिया। इस सम्पूर्ण विपत्ति का मूल थी यान क्वी-फी। अतः सम्राट् के क्षुब्ध सैनिकों ने उसके समक्ष ही उस विलासिनी को हत्या कर डाली। अन्त में आन लू-शान स्वयं अपने पुत्र के द्वारा मार डाला गया। कुछ समय पश्चात् मिंग ह्वांग पुनः अपनी राजधानी में लौटा। परन्तु प्रणय और युद्ध के दुःसह आघातों ने उसके वृद्ध कलेवर को जीर्ण-शीर्ण कर दिया था। नारी की उन्मुक्त उपासना के अन्तर्दाही दुष्परिणाम से बोझिल उसका जीर्ण हृदय ७६२ ईसवी में निस्पन्द हो गया।

कला—चीनी कला का इतिहास सुदीर्घ है। उसे अपने जीवन में अनेकानेक सम-विषम पथों पर चलना पड़ा है, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है। परिणामस्वरूप उसका इतिहास न तो सक्रम है और न विकास एक रूप ही। चीनी कला का इतिहास विभिन्न कालों का इतिहास है। परन्तु अभाग्यवश इसके सम्यक् अध्ययन के हेतु आज हमारे पास साधनों की अत्यल्पता है। चीन को अधिकांश प्राचीन कला-कृतियाँ विनष्ट हो गई हैं। उनके विनाश के दो प्रमुख कारण हैं। प्रथम चीनी कलाकारों ने अपनी कृतियों के निर्माण के निमित्त अपेक्षाकृत निर्बल सामग्री—लकड़ी और ईंट—का प्रयोग किया था। यह मृदुल सामग्री कालातिपात को सहन करने में सर्वथा अक्षम रही और शीघ्र ही नष्ट हो गई। द्वितीय, चीन की भूमि पर जल-प्रभाव होते रहे हैं, उस पर आप्लावन आते रहे हैं अथवा वह कृषि-कर्म के हेतु पुनः जोती-बोई जाती रही है। इन सबका परिणाम यह हुआ कि भूगर्भ में दबे हुए कला के भग्नावशेष भी छिन्न-भिन्न हो गये और हम कला के इतिहास-निर्माण में उनका अधिक संख्या में उपयोग न कर सके। यदि मिस्र की भाँति चीन के कला-प्रतीक किसी मरुस्थल की दुर्गम एवं अव्यवहृत पट्टी के नीचे दबे होते तो किसी न किसी दिन अवश्य ही वे पुरातत्ववेत्ता के समक्ष आते जाते। परन्तु ऐसा न हो सका। ऐसी परिस्थिति में हमें चीन के कला-इतिहास-निर्माण में अत्यल्प एवं परोक्ष साधनों से ही सहायता मिल सकती है। ये साधन निम्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार के हो सकते हैं —

(१) **ग्रन्थ**—चीन के इतिहासकारों एवं लेखकों ने अपने ग्रंथों में विभिन्न चीनी कला-कृतियों का यत्र-तत्र वर्णन किया है। उनसे विभिन्न कालों की चीनी कला की अभ्युन्नति एवं रूप-रेखा निर्धारित की जा सकती है।

(२) **विदेशीय कला-कृतियाँ**—भारतीय तथा यूनानी प्रभाव के अंतर्गत अनेक स्थलों पर अपेक्षाकृत समानरूपा कला कृतियों का सृजन हुआ था। बौद्ध धर्म एकमात्र भारत की सीमाओं के भीतर ही सीमित न रहा था। वह मध्य एशिया होता हुआ चीन पहुँचा और वहाँ से जापान। इसी प्रकार यूनानी परंपरायें उत्तरी पश्चिमी भारत में प्रविष्ट हुईं और वहाँ से वे मध्य एशिया और चीन पहुँची। इस प्रकार बौद्धिक आदान-प्रदान के परिणाम-स्वरूप चीन की अनेक कृतियाँ भारत एवं जापान की कलाकृतियों के सदृश बनीं। अतः आज यद्यपि चीन की वे अधिकांश कृतियाँ विलुप्त हो गई हैं तथापि उनके सदृश तत्कालीन एवं जापानी कला-कृतियों के आधार पर हम उनके विषय में बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं।

(३) **चित्रों एवं उत्कीर्ण आकृतियों से सहायता**—कालातिपात ने सबसे अधिक क्षति चीनी वास्तुकला को पहुँचाई है। आज चीन की प्राचीन वास्तुकला के अत्यल्प उदाहरण मिलते हैं। परन्तु हम शिला-खण्डों के ऊपर चित्रित अथवा उत्कीर्ण भावनाकृतियों से चीनी वास्तुकला के आकार-प्रकार का अनुमान कर सकते हैं।

चित्रकला—कला के क्षेत्र में चीन निवासियों ने सबसे अधिक उन्नति की थी चित्रकला में। आदिकाल से ही चित्रकला को कलात्मक विचार प्रकाशन का सर्वोत्कृष्ट माध्यम मानते आये हैं। परन्तु खेद है कि आज चीनी चित्रकला की अधिक कृतियाँ उपलब्ध नहीं होतीं। रेशमी वस्त्रादि मृदुल आधारों के ऊपर अंकित होने के कारण वे दीर्घकाल तक अक्षत न रह सकीं। पुनः आन्तरिक युद्धों एवं वाह्य आक्रमणों के परिणाम-स्वरूप भी चित्रकला के बहुसंख्यक प्रतीक राजप्रासादों तथा देवालयों के साथ-साथ ध्वस्त कर दिये गये थे।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चीनी चित्र-कला सुलेखन-कला (Clligraphy) और कविता (Poetry) का समन्वय है । इसमें प्रथम का तत्व सुदर्शन है और द्वितीय का रस । प्रधानता सदैव चित्र-फलकों (Painted boards) और चित्र-पटों (Painted scrolls) की ही है, चित्र-भित्तियों (Mural Painting) की नहीं । ये चित्र और चित्र-पट इच्छानुसार यत्र-तत्र प्रदर्शित किये जा सकते थे ।

हान-काल के अन्तिम चरण से ही कला के क्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रभाव परिलक्षित होने लगा था, परन्तु यह प्रभाव चौथी और पाँचवीं शताब्दियों तक आते-आते अधिक दृढ़ीभूत हो गया था । तंग कालीन कलाकार बौद्ध प्रचारक भी हैं । कलाकार की छेनी और तूलिका ने तथागत के जीवन की विविध घटनाओं एवं उनके अजस्त्र सन्देशों को साकार कर मानव के व्यक्तित्व की अन्तर्निहित सद्शक्तियों के पूर्ण विकास की योजना प्रस्तुत की थी । भारतीय बौद्ध प्रभाव के साथ-साथ तंग-काल पर यूनानी प्रभाव कम नहीं है । कतिपय स्थलों पर सामन्तवादी युग अथवा हान-काल की कृतियों का भी अनुकरण किया गया है । तंग कालीन कला-कृतियों में सौन्दर्य-प्रदर्शन भद्र एवं अनुशासन-शील है ।

परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि यद्यपि चित्रकला पर धर्म का प्रभाव था तथापि चीनी कलाकार एकमात्र धर्म-चित्रकार न था । उनके समक्ष जीवन के अन्याय विषय भी थे । चीनी चित्रकार भी था और विद्वान् भी । इसलिए उसकी सुरुचि में विविधता थी । वह निर्बाधरूप से किसी भी विषय पर चित्राङ्कन कर सकता था । परिणामतः चीनी चित्रकला की स्वच्छन्दता और असाम्प्रदायता कभी भी नष्ट न हो सकी ।

जैसा कि अभी कहा गया है, चीनी चित्रकला के विषय विभिन्न हैं । एक ओर बौद्ध और ताओ मत में प्रतिष्ठित अनेक धार्मिक विषयों को मूर्तिमान् किया गया है; दूसरी ओर ऐतिहासिक वृत्तों का सरुचि आलेखन है । कहीं भूतल की घटनायें हैं तो कहीं आकाश-मण्डल के आश्चर्य । परन्तु चीनी चित्रकार की मनोवृत्ति प्राकृतिक सुषमा के चित्रण में अधिक रमी है । पार्वतीय प्रदेश, विस्तीर्ण

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षेत्र, अगाध जलनिधि, उन्मुक्त खग-वृन्द, स्वच्छन्द पशु-वर्ग के चित्र अति सबल और सजीव हैं ।

चीनी साहित्य में चित्रकला के विकास के प्राचीन उल्लेख मिलते हैं । परन्तु अभाग्यवश प्राचीन चित्र अधिकांशत: विनष्ट हो चुके हैं । हान-वंश के जो एकाध उदाहरण मिले हैं उनमें से एक सुविकसित चित्रकला-परम्परा के अस्तित्व का परिचय मिलता है । कोरिया में प्राप्त कछुए की हड्डी से बने हुए एक बाक्स पर जो हान-कालीन चित्र मिले हैं वे बहुत सुन्दर हैं । इसी प्रकार एक अन्य शृंगार-दान के ढक्कन पर अङ्कित एक पौराणिक पक्षी (Phoenix) का सजीव चित्र हान-कालीन चित्रकला का उत्तम उदाहरण है । चिनवंश अथवा हानवंश में चीनी ने तूलिका का आविष्कार किया जिसने कला की अभ्युन्नति में विशेष योग दिया ।

हानवंश के पतन के पश्चात और तंग-वंश के उदय के पूर्व का काल भी चीनी चित्रकला के निरन्तर विकास का काल है । लगभग ३६४ ईसवी से कू-काइ-चीह (Kn Kai Chih) का उदय हुआ । यह अभी तक हुए चीन के प्राचीन चित्रकारों में सर्वश्रेष्ठ था इसने अनेक सुन्दर चित्रों का निर्माण किथा था । इनमें 'राजकीय धर्माचार्यों की भर्त्सना' नामक चित्र विशेष प्रसिद्ध है ।

४७५ ईसवी के लगभग चीन के कलाविद् हो (Hsieh Ho) ने अपना सुप्रसिद्ध कला-ग्रंथ लिखा । इसमें चित्रकला के छः अंगों का प्रतिपादन किया था—(१) लयबद्ध ओजस्विता (२) शारीरिक संगठन (३) प्रकृति के साथ तादात्म्य (४) रंगों की उपयुक्तता (५) कलात्मक संगठन (६) प्रकृष्टता । अच्छे चित्रकार के लिये इन विशेषताओं का अनुसरण करना आवश्यक था ।

इसके पश्चात् आता है तंग-काल जो कला के दृष्टिकोण से भी चीन का स्वर्णकाल था । फिट्जेरल्ड नामक इतिहासकार का कथन है कि यद्यपि आगामी सुंगकालीन चित्रकला प्रकृष्टता की दृष्टि से उच्चतर है तथापि रुचिव्यापकता, प्रत्यक्षता और सबलता में वह तंगकालीन चित्रकला की अपेक्षा हीन है । तंगकालीन २२० चित्रकारों के नाम आज भी संसार के समक्ष हैं । इनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय है वू ताओ-से । इसमें सहज प्रतिभा थी । अल्पावस्था से ही यह एक कुशल चित्रकार हो गया था । इसने बहुसंख्यक

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्रों का निर्माण किया था जो अपनी सजीवता और सुन्दरता के लिये विश्व-विख्यात थे। इसके द्वारा निर्मित बुद्ध-चित्र आध्यात्मिक रहस्यात्मकता से ओत-प्रोत थे। कहते हैं कि जिस समय वह राजधानी के एक मन्दिर में तथागत के कुछ चित्र अङ्कित कर रहा था उस समय नगर की समस्त जनता उन्हें देखने के लिये आ खड़ी हुई। जिस समय वह महात्मा बुद्ध के मुख के चतुर्दिक आभा-मण्डल चित्रित कर रहा था तो उसके हाथ की झंझागति को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि कोई दैवी शक्ति उसे प्रेरित कर रही हो। एक बार उसने नरक का एक चित्र निर्मित किया। कहते हैं कि इसकी रौरवता एवं भयंकरता को देखकर अनेक कसाइयों एवं मछुओं ने अपनी हिंसात्मक वृत्ति का परित्याग कर दिया। इतना सजीव एवं प्रभावोत्पादक था वह चित्र। वू चीन में अपने रेखा-संगठन में अद्वितीय था।[१] इस चित्रकार के विषय विविध थे। दैवी एवं मानवी आकृतियों के चित्रण में इसकी मनोवृत्ति जितनी रमती थी उतनी ही प्राकृतिक दृश्यों के अंकन में। वू की तूलिका एक ओर पशु-पक्षियों के स्वच्छन्द विचरण को चित्रित करती है तो दूसरी ओर दैत्य-दानवों के क्रूर कर्मों को। कहीं वैराग्य की शुचिता है तो कहीं विलास का अनुराग सभी विषयों के चित्रण में कलाकार की महाप्राणता स्पन्दित हो रही है। सभी चित्र सजीव हैं।

तंगकालीन दूसरा प्रमुख चित्रकार (Li Ssu-Hsiin) था। यह मिंग ह्वाँग की राजसभा में रहता था। इसके चित्र भी अपनी स्वाभाविकता और सप्राणता के लिये प्रसिद्ध हैं। एक बार राजप्रासाद के एक पर्दे पर इसने एक तालाब का चित्र बनाया था। यह इतना सजीव था कि कभी-कभी सम्राट को इसके जल के कलरव सुनने का भ्रम हो जाता था।

वाँग वी इस युग का तृतीय उल्लेखनीख चित्रकार था। यह अपने रहस्यात्मक एवं सांकेतिक चित्रण के लिये प्रख्यात था। इसके चित्र सामान्य स्वरूपों के द्वारा गूढ़ एवं गम्भीर सन्देशों का वहन करते थे। इसके द्वारा निर्मित प्रत्येक चित्र किसी काव्य-खण्ड की गरिमा रखता था।

---

१ 'Never had art known such mastery and delicacy of line'.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वास्तु कला—वास्तुकला का चरम उत्कर्ष प्रायः राज्य और धर्म की छत्रच्छाया में होता देखा गया है। परन्तु चीन में न तो शक्तिशाली केन्द्रीय शासन की अव्याहत परम्परा रही थी और न संगठित पुरोहित-वर्ग की संस्था। इसलिये इस देश में कभी भी बहुसंख्या में भव्य राजप्रासादों, राज-समाधियों और मन्दिरों का निर्माण न हो सका था। परन्तु अन्य कालों की अपेक्षा तंगकाल में राजकीय सत्ता की मान्यता और देशीय सम्पन्नता अधिक थी। अतः इस समय प्रासादों और मन्दिरों आदि का निर्माण भी अन्य युगों की अपेक्षा अधिक हुआ। पीछे कहा जा चुका है कि ताइ सुंग और मिग ह्वांग दोनों सम्राट इस युग के प्रसिद्ध निर्माता थे। इन्होंने अपनी राजधानी में अनेक भव्य भवनों का निर्माण कराया था। चीनी वास्तुकला की कतिपय विशेषतायें हैं —

(१) कृत्रिम चबूतरे का प्रयोग—प्रायः अधिकांश भवन कृत्रिम चबूतरों के ऊपर बनाये जाते थे। इन चबूतरों के ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ बनाई जाती थीं। धनिकों के भवनों एवं मन्दिरों, पेगोडा आदि के चबूतरों और सीढ़ियों के ऊपर अनेक प्रकार का अलंकरण भी होता था।

(२) प्राङ्गण की प्रधानता—चीनी परिवार प्रायः सम्मिलित रूप से एक ही स्थान पर रहते थे। किसी विस्तीर्ण प्रांगण के भीतर ही उनके अनेक भवन बनते थे जिनमें विशाल परिवार की पृथक्-पृथक् उपशाखायें रहती थीं। प्रांगण के द्वारा ही एक भवन दूसरे से पृथक् किया जाता था। व्यक्तिगत भवनों के भीतर भी प्रांगण की प्रधानता होती थी।

(३) प्राचीर-वेष्टिका का प्रयोग—चीनी वास्तुकला में प्राचीर-वेष्टिकाओं का विशेष महत्व था। प्रायः नगरों, उद्यानों, राजप्रासादों, सामान्य भवनों, मन्दिरों एवं पैगोडादि के चतुर्दिक चीनी वास्तुकार सदैव प्राचीर निर्मित किया करता था जिसका उद्देश्य एकमात्र चोरों-डाकुओं एवं पशु इत्यादि से रक्षा करना था। कभी-कभी तो भवनों के प्रवेश-द्वार के भीतर भी लघु प्राचीर खड़े कर दिये जाते थे। इन्हें 'आवरण-प्राचीर' (Screen wall) कहते हैं। इनका निर्माण अन्धविश्वासमूलक था। चीनियों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वास था कि दानवी शक्तियाँ सदैव सीधे चलती हैं। यदि उनके समक्ष कोई अवरोध खड़ा कर दिया जाय तो वे घूमकर वक्रपथ से अग्रसर न होंगी। इसी आधार पर चीनी अपने गृह-द्वारों के भीतर दानवी शक्तियों के प्रवेश-निरोध के हेतु लघु प्राचीर खड़े कर देते थे।

(४) **लकड़ी का प्रयोग**—चीनी भवनों में पाषाण और ईंट की अपेक्षा लकड़ी का प्रयोग अधिक होता था। कभी-कभी भवनों के बाह्य तो लकड़ी के बनते थे, परन्तु उनके भीतर कच्ची-पक्की ईंटें भर दी जाती थीं। भवन के स्तम्भ और छतें भी प्रायः लकड़ी की ही बनती थीं। परन्तु धनिक व्यक्तियों के भवनों में छतों की पटान बहुधा पक्की ईंटों और पत्थरों (Tiles) की सहायता से होती थी।

(५) **उत्तुङ्गता विहीनता**—चीन के भवनादि विस्तीर्ण तो होते थे, परन्तु अधिक ऊँचे नहीं। प्रायः उनमें एक अथवा दो मंजिल ही होते थे।

(६) **स्तम्भ-योजना**—छतों के भार को रोकने के लिये अधिकांशतः स्तंभों का निर्माण किया जाता था। स्तंभों के ऊपर जिस प्रकार के शीर्षभाग भारतवर्ष में मिलते हैं उस प्रकार के चीनी स्तम्भों के ऊपर नहीं। अधिक से अधिक उनके ऊपर एक पीठिका होती थी जिस पर छत टिकी रहती थी।

(७) **छतें**—चीनी भवनों की छतें प्रायः तम्बू की भाँति ढालू होती थीं। उनमें दोहरी और तेहरी पटान होती थी। बहुधा किनारों पर जाकर छत के दोनों ढाल फिर ऊपर की ओर घूम कर वक्राकार हो जाते थे। इस प्रकार सम्मुख से चीनी छतों के दोनों छोरों पर दो सींग से निकले हुए प्रतीत होते थे। छतों का बहिर्भाग इतना अधिक अलंकृत रहता था कि उसकी रेखायें भी स्पष्टतया दृष्टिगत न होती थीं।

(८) **आकार**—चीन के अधिकांश भवन आयताकार होते थे।

(९) **रंग**—चीनी भवनों का बहिर्भाग और अन्तर्भाग, प्राचीर, छतें, स्तम्भ और द्वार सभी लाल, पीले तथा अन्य प्रकार के रंगों से रंगे रहते थे।

चीनी मन्दिरों का आकार-प्रकार भी चीनी भवनों के समान ही होता था। उनका आधार भी एक विस्तीर्ण प्रांगण होता था। इसी प्रांगण के चतुर्दिक

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक हाल (Hall) निर्मित किये जाते थे। मध्य का हाल पूजा गृह होता था। उसके इतस्ततः साधुओं एवं भिक्षुओं के निवास-गृह होते थे। प्रमुख हाल विविध अलंकरण-प्रणालियों, विशेषतया बौद्ध अथवा गान्धार प्रणालियों, से प्रसाधित होता था। परन्तु अभाग्यवश शांसी में उपलब्ध एक मन्दिर के अतिरिक्त तंग-कालीन किसी अन्य मन्दिर का अभी तक पता नहीं लगा है। परन्तु जापान की वास्तु-परम्परा तंगकालीन चीन से आई थी। अतः जापानी मन्दिरों की सहायता से हम तंगकालीन मन्दिरों का आकार-प्रकार निर्धारित कर सकते हैं। जापान के होर्युजी मठ का स्वर्ण-कक्ष तंगकालीन वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसका निर्माण ६०७ ईसवी के लगभग हुआ था।

चीनी वास्तुकला की प्रमुख कृति पैगोडा है। चीन में इसका आविर्भाव बौद्ध धर्म के आगमन पर हुआ। कदाचित् यह भारतीय स्तूप का ही रूपान्तर था। तंगकालीन अनेक पैगोडा आज भी विद्यमान हैं। इसकी उत्तुङ्गता दर्शनीय है। ये पन्द्रह मंजिल तक के होते थे। कभी-कभी इनकी ऊँचाई ३६० फुट तक होती थी। आज जो पैगोडा उपलब्ध होते हैं वे प्रायः पक्की ईंट और पत्थर के बने हैं। सम्भव है कि लकड़ी के बने हुए पैगोडा विनष्ट हो गये हों। चीनी पैगोडा प्रधानता षडभुजाकार अथवा वर्गाकार होता था।

चीन के भवन, समाधि, मन्दिर और पेगोडादि दो शैलियों पर निर्मित हुए थे—(१) उत्तरी शैली और (२) दक्षिणी शैली। उत्तरी शैली को प्रसाद शैली भी कहते हैं, क्योंकि इस शैली के आधार पर ही चीन के सुन्दरतम राजप्रासादों एवं राजसमाधियों का निर्माण हुआ था। इसके अन्तर्गत छतें अथवा ऊर्ध्वभाग अत्यधिक ढाल और वक्र नहीं होते थे। अधिक से अधिक उनकी वक्रता (Curvature) तम्बू के ढाल के सदृश होती थी। अलंकरण भी अल्प एवं संयत परिणाम में होता था। प्रसाधन-मूर्तियाँ भी एकमात्र छोरों पर ही होती थीं, सम्पूर्ण छत अथवा ऊर्ध्व भाग पर नहीं। इन मूर्तियों का आकार छोटा, परन्तु निर्माण अधिक कलात्मक होता था।

इसके विरुद्ध दक्षिणी शैली में छतों अथवा ऊर्ध्व भाग की वक्रता अधिक नहीं होती थी। वे गहरे ढाल की भाँति नीचे उतरते और पुनः घूमकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छोरों पर सींगों की भाँति वक्राकार हो जाते थे। छत अथवा ऊर्ध्वभाग अलंकरण से सम्पूर्णतः आच्छादित रहता था। यही दशा स्तम्भों की भी होती थी। देवी-देवताओं एवं नाना प्रकार के पौराणिक तथा वास्तविक पशुओं की मूर्तियाँ भवन-प्रसाधन के निमित्त विशेष प्रकार से प्रयुक्त होती थीं। इनमें कला की अपेक्षा बहुलता ही अधिक होती थी।

तंगकालीन नगरों की निर्माण योजना अपने पूर्णगामी और अनुगामी नगरों के सदृश ही थी। प्रायः प्रत्येक नगर में दो प्रमुख सड़कें होती थीं। ये सीधी आकर नगर के मध्य में एक-दूसरे को काटती थीं। इस प्रकार नगर चार आयतों में विभक्त हो जाता था। नगर के मध्य-स्थल पर जहाँ दोनों सड़कें चौराहा बनती थीं वहाँ एक सुदृढ़ चतुर्द्वार गढ़ होता था। द्वार चारों दिशाओं में होते थे। गढ़ के ऊपर पैगोडा के समान एक तिमंजिला टावर होता था। इस पर सदैव एक सैनिक दल रक्खा जाता था। टावर के ऊपर रक्खा हुआ विशाल ढोल जनता को समय की सूचना देता रहता था। बाह्य आक्रमण से संरक्षण के निमित्त प्रत्येक नगर के चतुर्दिक एक आयताकार प्राचीर होता था। इस प्राचीर के चारों कोनों पर भी एक-एक टावर निर्मित किया जाता था। नगर में प्रवेश करने के हेतु इस प्राचीर में चार प्रवेश द्वार होते थे। प्राचीन संसार में चीन के ये प्राचीर अपनी सुदृढ़ता और उत्तुंगता के लिये प्रसिद्ध थे। साधारणतया न तो ये तोड़े जा सकते थे और न चढ़े ही जा सकते थे।

चीनी प्रकृत्या सौन्दर्योपासक था। अतः उसके प्रत्येक नगर और प्रायः प्रत्येक गृह में उद्यानों एवं वाटिकाओं की योजना थी। इनमें वह नाना प्रकार के पादप, लतायें एवं झाड़ियाँ आदि लगाता और पशु-पक्षी पालता। उद्यानों में बहुधा तालाब और कृत्रिम स्रोत भी होते थे। इनमें चीनी मछलियाँ भी पालता था। इस प्रकार भौतिक वातावरण में रहते हुए भी चीनी प्रकृति से सम्पर्क स्थापित किये रहता था। यह सम्पर्क उसके मन मस्तिष्क में उदात्त एवं कलात्मक विचारों की सृष्टि करता था।

स्थापत्य, तक्षण एवं धातु-कलायें—चीनी स्थापत्य, तक्षण एवं धातु कलाओं का चरमोत्कर्ष तंग-काल में देखा जाता है। परन्तु उस काल के आग-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन के पूर्व भी इन कलाओं की एक सुसम्बद्ध परम्परा विकसित हो रही थी। आदि काल से ही इन कलाओं के प्रदर्शन के हेतु चीनी कलाकार विविध प्रकार के साधनों का प्रयोग करता रहा है। इनमें पाषाण, संगमरमर, ईंट, धातु और हड्डी विशेष उल्लेखनीय हैं। सभी पर समानरूप से चीनी स्थापत्यकार एवं तक्षणकार का हस्तलाघव प्रदर्शित किया गया है। कुछ में गढ़ाई का काम है, कुछ में ढलाई का काम है, कुछ में ढलाई का और कुछ में खुदाई का। परन्तु प्रत्येक स्थिति में कला-परम्परा के क्रमिक विकास का इतिहास दृष्टिगत होता है।

शैंग-काल के अति प्राचीन अस्थि-खण्ड मिलते हैं जिन्हें 'ओरेकल बोन्स' (Oracle Bones) कहते हैं। इनके ऊपर कुछ अंक, रेखायें और नाम उत्कीर्ण मिलते हैं। यह धार्मिक कला-सामग्री है। इसके ऊपर उत्कीर्ण प्रश्नोत्तर कदाचित् तत्कालीन भविष्यवेत्ताओं की महत्ता को सूचना देते हैं।

शैंग और चाउ काल की धातु-कृतियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। इनमें प्याले, कटोरे, कलश, तश्तरियाँ, ढक्कन, घण्टियाँ तथा विविध प्रकार की पशु-आकृतियाँ हैं। इन सबके ऊपर विविध रेखा-संगठनों के द्वारा भारी अलंकरण उत्कीर्ण है। कभी-कभी तो अलंकरण इतना अधिक है कि कहीं पर भी धातु की रिक्त सतह नहीं दिखाई देती। धातु में अधिकांशतः काँसे का ही प्रयोग किया गया है। अनेक स्थलों पर जेड नामक पाषाण-विशेष की सहायता से निर्मित पौराणिक एवं वास्तविक पशुओं की आकृतियाँ, कटारें, बक्सुए, आभूषण आदि भी उपलब्ध हुए हैं। कुछ सामग्री अस्थिनिर्मित भी है। सबके ऊपर समान रूप से अलंकरण की बहुलता है। विशुद्ध कला की दृष्टि से समस्त सामग्री सुन्दर है।

हान-काल के आगमन पर यह कला-परम्परा और भी विकसित हो गई। हानकालीन राजनीतिक संगठन एवं सामाजिक संरक्षा ने कला की और भी प्रोत्साहन दिया। शैंग और चाऊ काल में अधिकांश कला-सामग्री समाधियों के निमित्त बनाई जाती थी, उसका केन्द्र-बिन्दु धर्म था। परन्तु हान-काल में वह विविध-विषया हो गई। जीवन की अनेकानेक नूतन अनुभूतियों एवं अभिलाषाओं ने कला के क्षेत्र को व्यापक कर दिया। अब वह एकमात्र राजाओं एवं सामन्तों तक ही सीमित न रही। वह जनसाधारण के सामान्य गृहों में भी अवतरित हुई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हान-काल का रिलीफ-स्थापत्य प्रगल्भ है। यद्यपि यह समाधियों पर मिलता है तथापि इसके विषय धर्मेतर हैं।[१] उदाहरणार्थ एक में हूणों के विरुद्ध युद्ध का दृश्य प्रदर्शित है, दूसरे में कन्फ्यूशियस और लाओत्से का सम्मिलन। अन्यत्र दल-बल के साथ किसी राजकुमार के जलूस का दृश्य है। एक स्थल पर शी ह्वांग टी की हत्या करने के प्रयास का दृश्य विशद और सजीव है।

हान कलाकारों ने पशुओं की आकृतियाँ भी बड़ी कुशलता के साथ निर्मित की थीं। उनका सर्वप्रिय पशु घोड़ा था। जेड पाषाण की सहायता से निर्मित हान-कालीन एक अश्व-शीश मिला है जो अपनी शक्ति और सजोवता के लिये विशेष प्रसिद्ध है। अश्व के अतिरिक्त एक पौराणिक पक्षी-विशेष (Dragon) के उत्कीर्ण करने में भी हान-स्थापत्यकार ने अपना विशेष चातुर्य प्रदर्शित किया है। तत्कालीन एक रिलीफ में इस अद्भुत पशु की आकृति अति सुन्दर है। कला के क्षेत्र में पाषाण का यह प्रचुर प्रयोग चीन में विदेशों से आया। हान-साम्राज्य का यूनानी संसार और पार्थिया से सम्पर्क था जो पाषाण-प्रयोग में सिद्धहस्त थे। वहीं से चीनियों ने कला के इस स्थायी माध्यम को ग्रहण किया। यद्यपि हान-शैली में भी यत्र-तत्र ईरानी और यूनानी प्रभाव दृष्टिगत होता है तथापि साधारणतया वह स्वदेशीय परम्पराओं की ही अनुगामिनी है।

हान-कलाकारों ने अपनी कलाभिव्यक्ति के लिये लोहे का भी उपयोग करना प्रारम्भ किया, यद्यपि याज्ञिक एवं धार्मिक उपकरणों के निर्माण के निमित्त पूर्व-प्रतिष्ठित काँसे का ही प्रयोग होता रहा। धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयुक्त होने वाले कुछ हानकालीन काँस्य-निर्मित दर्पण उपलब्ध हुए हैं जो कला की दृष्टि से सुन्दर हैं। अन्य धातु-खण्डों के ऊपर पशु-आकृतियों की सहायता से जो अलंकरण किया गया है उस पर सिथियन शैलो का प्रभाव है। पश्चिमीय एशिया में छोटे-छोटे धातु-खण्डों के ऊपर विशिष्ट पशुओं की आकृतियों को उत्कीर्ण करने एवं उन्हें ताबीजों की भाँति पहनने की प्रथा थी। इसी प्रथा का अनुकरण करते हुए चीनियों ने भी अपने लघु-धातु-खण्डों के ऊपर पशुओं की सुन्दर आकृतियाँ उत्कीर्ण कीं। इनमें घोड़े तथा ड्रैगन और फोयनिक्स नामक पौराणिक पक्षियों

१. It is the secular scenes which predominate.—Fitzerald.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की आकृतियाँ विशेष लोक-प्रिय थीं।

चाउ और हान कालों की चीनी कला मूलतः स्वदेशीय थी। उसमें विदेशीय अंश गौण एवं अप्रत्यक्ष थे। यदि चीनी कलाकार किसी विदेशीय परम्परा का प्रयोग भी करता था तो उसे अपनी अभि- रुचि एवं परिस्थिति के अनुकूल बनाकर। परन्तु तंगकाल में यह स्थिति न रही। तंगकाल चीन में बौद्ध धर्म के महान प्रसार का काल है। बौद्ध धर्म के साथ-साथ बौद्ध कला की परम्परायें भी चीन में प्रविष्ट हुईं। यह कला प्रधानतः गान्धार-कला थी जो भारतीय एवं यूनानी कला-प्रणालियों के सम्मिश्रण से उद्भूत हुई थी। तंग-काल में यह गान्धार-कला उत्तर-पश्चिमीय भारत से चलकर मध्य एशिया से होती हुई चीन पहुँची और वहाँ की कला को प्रभूतरूप में प्रभावित किया। यों तो यह विदेशीय प्रभाव तंगकालीन कला की समस्त शाखाओं पर दृष्टिगत होता है, परन्तु वह चीनी स्थापत्य के ऊपर सबसे अधिक अंश में पड़ा। बौद्ध धर्म के प्रविष्ट होते ही चीनी स्थापत्यकार ने महात्मा बुद्ध तथा बोधि-सत्वों की बहुसंख्यक प्रतिमाओं का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि शैली के दृष्टिकोण से इन पर यूनानी प्रभाव भी दृष्टिगत होता है, परन्तु उनकी आत्मा पूर्णरूपेण भारतीय है। चीनी स्थापत्यकार ने तथागत को यूनानियों की भाँति आदर्श मानव के रूप में नहीं वरन् निस्पृह लोकोत्तर पुरुष के रूप में प्रदर्शित किया है। यही कारण है कि उसकी बुद्धि-प्रतिमाओं में शरीर-सौष्ठव के ऊपर इतना ध्यान नहीं दिया गया है जितना आध्यात्मिक सन्देश के ऊपर। चीनी स्थापत्यकार की इन प्रतिमाओं की मुद्राओं से तथागत का तत्व-ज्ञान एवं संत्रस्त मानवता के प्रति उनका असीम करुणा-भाव निस्सृत होता है। उनके मुख पर निस्पृह शान्ति विराजमान है। तंगकाल के प्रथम चरण में इस प्रकार की अनेकानेक बौद्ध-प्रतिमाओं की सर्जना हुई थी।

परन्तु तंगकाल के द्वितीय चरण से, जब चीन की कला अधिक परिपक्व हो गई, उसने बौद्ध प्रतिमाओं का निर्माण स्वदेशीय मनोवृत्ति के अनुकूल करना प्रारम्भ किया। इन प्रतिमाओं में कठोर असांसारिकता एवं निवृत्ति-शालिता के स्थान पर संयत एवं अनुशासनशील मानवीयता के प्रदर्शन की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चेष्टा की गई है। परन्तु महात्मा बुद्ध और बोधिसत्वों को अधिकाधिक मानवीकृत करने के प्रयास ने कालान्तर में चीन के बौद्ध स्थापत्य की अधोगति कर दो। मानवी सौन्दर्य के प्रदर्शन ने आध्यात्मिक सन्देश की इतिश्री कर दी। सातवीं शताब्दी के अन्तिम चरण के ताओ (Tao Hsiian) नामक एक बौद्ध भिक्षु का कथन है कि तत्कालीन धार्मिक प्रतिमाओं को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि वे नर्तकियों की प्रतिमायें हों। उन्हें देखकर राजसभा की प्रत्येक नारी यह कल्पना करतो थी कि मैं स्वरूप में बोधिसत्व के ही समान हूँ। बौद्ध-प्रतिमाओं में नारी-सुलभ अतिशय सौंदर्य के आरोपण का यह दुष्परिणाम था।

तंगकाल में पूर्वकालीन समाधि-स्थापत्य (Tomb Sculpture) भी सक्रम रहा। सम्राट् ताइ सुंग की समाधि पर रिलीफ में उत्कीर्ण छः अश्वों की आकृतियाँ अति सजीव हैं। घोड़ी का अंग-प्रत्यंग चेतना से उत्प्राणित है। उनकी पीठ पर काठी कसी हुई है और वे द्रुतगति से आक्रमण करते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। उनके विस्फारित नेत्र, उन्मुख आयाल तथा उत्पतनशील खुर स्वाभाविकता के साथ उत्कीर्ण किये गये हैं। इस रिलीफ-स्थापत्य को देखने से प्रतीत होता है कि चीनो कलाकार गतिशील मूर्तियों के निर्माण में भी दक्ष था। इसी प्रकार तुंगवंश के तृतीय सम्राट् काओं सुंग की समाधि पर उत्कीर्ण शुतुर्मुग की मूर्तियाँ भी कलात्मक हैं।

धातु, विशेषतया काँसे, के ऊपर कला-प्रदर्शन भी पूर्ववत् होता रहा। परन्तु तंगकालीन कलाकारों ने धातुखण्डों के ऊपर एकमात्र पौराणिक पक्षियों को ही उत्कीर्ण नहीं किया वरन् अन्यपक्षियों एवं पुष्प-पत्रों को उत्कीर्ण कर अपनी नव अभिरुचि का परिचय दिया। काँस्य-खण्ड पर उत्कीर्ण एक उड़ते हुए पौराणिक पक्षी (Phoenix) का चित्र-तंगकालीन धातु-कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

चीनी कलाकार की प्रतिभा का प्रदर्शन मृण्कला में भी हुआ है। मृण्कला ही वास्तव में चीन का स्थापत्य है।[१] इस देश के चाय के प्रति असीम अनुराग ने लघु मृण्पात्रों के निर्माण को विशेष प्रोत्साहन दिया था। चीनी मिट्टी को सुलभता के कारण इस कला का विकास भी सुगम हो गया। अल्पमूल्य परन्तु सुन्दर और

१. Pottery is the sculpture of the Chinese—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपयोगी मृणपात्रों को लोकप्रियता स्वाभाविक थी। यही कारण है कि चीन में इस कला का प्रयोग प्राचीन और प्रचुर दोनों था। इस कला के अन्तर्गत प्यालों, तश्तरियों, कटोरों, गिलासों और कलशों आदि का तो निर्माण हुआ है ही, साथ में देवी-देवताओं, मनुष्यों, पशु-पक्षियों आदि की सुन्दर आकृतियों का निर्माण भी प्रचुर मात्रा में हुआ। लोक-कला होने के कारण यह चीनियों की सहज सौन्दर्य भावना की प्रतीक है।

तंगकालीन मृणमूर्तियाँ अपनी सजीवता और वास्तविकता की दृष्टि से अपूर्व हैं। इनके निर्माताओं ने मूर्तियों में असाधारण प्रतिभा अथवा लोकोत्तर व्यक्तित्व के प्रदर्शन की चेष्टा नहीं की है। उनकी मूर्तियाँ प्रधानतः सामान्य मनुष्यों की भावनाओं को ही अभिव्यक्त करती हैं। इसी प्रकार मृणभाण्ड एवं मृणपात्र जीवन की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। अपनी सार्वजनीनता के कारण चीनी मृणकला अति लोकप्रिय हो गई थी।

साहित्य—तंग-युग साहित्य के लिए भी स्वर्ण-युग था। इतिहास-प्रसिद्ध विशाल प्राचीर के निर्माता उदात्त साहित्य के भी निर्माता थे। तंग-युग रचनात्मक युग था। तंगयुगीन शब्द-शिल्पी ने जिन गद्यात्मक एवं पद्यात्मक कला-कृतियों का निर्माण किया है वे किसी भी युग में किसी भी देश के साहित्य-मण्डल को अपनी स्वर्ण-रश्मियों से साभिमान प्रदीप्त कर सकती हैं। तंग-कालीन साहित्य-सर्जना साहित्यिक आप्लावन था जो चीनी हृदय के अतल रचनात्मक स्रोत से परिपुष्ट हो रहा था। यह आप्लावन चीनी साहित्य-क्षेत्र की समस्त दिशाओं में प्रकट हुआ था। चीन-निवासी की रचनात्मक प्रतिभा साहित्य के समस्त क्षेत्र में समानरूप से प्रस्फुटित हुई।

तंग-काल कविता के हेतु उत्कर्ष-काल था। इसके पूर्व भी चीन में कवि हुए थे, परन्तु उनकी संख्या अत्यल्प थी। चाउ काल में चाउ यु आन नामक एक प्रसिद्ध कवि हुआ था। हान-काल भी शेन यो नामक एक ही कवि के लिए प्रख्यात है। परन्तु तंग-काल में तो कवियों का मेला-सा दृष्टिगत होता है। ताई सुंग और मिंग ह्वांग के शासन-काल में चीनी कविता अपने विकास की परा-काष्ठा को प्राप्त कर चुकी थी। उच्च पद प्राप्त करने के लिए कविता-ज्ञान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महत्वपूर्ण समझा जाता था। परिमाणतः राज्य के अनेक पदाधिकारी कवि भी थे। ताई सुंग के समय तो कविता की इतनी प्रतिष्ठा हुई कि सम्राट के समक्ष प्रस्तुत होने वाले आवेदन-पत्र भी पद्यबद्ध होने लगे। मिंग ह्वांग कवियों का प्रख्यात आश्रयदाता था। उसकी राजसभा में उच्चकोटि के कवि रहते थे। उत्कृष्ट कवियों को राज्य समय-समय पर पुरस्कृत करता था। राजकीय प्रोत्साहन के परिणाम-स्वरूप तंग-काल में बहुसंख्यक कविताओं की रचना हुई। अठारहवीं शताब्दी के एक मंचू सम्राट् ने इनका विशाल संग्रह कराया था। इस संख्या में २३०० कवियों की ४८६०० कविताएँ उपलब्ध होती हैं। तंगकालीन बहु-संख्यक कवियों में ली पो, तू फू, पो चुई और वेंग वे सर्वप्रमुख हैं। प्रसिद्ध रचनाओं में लो पो-रचित 'वंश-समाधि से षट आलसी, (Six Idlers of the Bamboo grave), पो चुई रचित 'अनन्त भ्रम' (Ever-Lasting wrong) और तू फू रचित 'अष्ट अमर' (Eight Immortals) के नाम आते हैं। वेग वे चीन का प्रसिद्ध कवि भी था और चित्रकार भी। लेखनी और तूलिका के प्रयोग में यह निर्विशेषरूप से पटु था। चीनी कविता के विषय विविध हैं। कहीं उसमें युद्ध की रौद्रता है तो कहीं मित्र की स्निग्धता। कहीं कौटुम्बिक जीवन की शुचि है तो कहीं प्राकृतिक सौन्दर्य के चल-चित्र। प्रणय की अपेक्षा धर्म में चीनी कवि की मनोवृत्ति अधिक रमी है। यही कारण है कि चीनी साहित्य में प्रणय-काव्यों की अल्पता और धार्मिक काव्यों की बहुलता है। फिट्जेरैल्ड के शब्दों में 'चीन के समस्त कवि उच्चकोटि के विद्वान् थे। कविता पर ताओवाद का उतना ही गहन प्रभाव पड़ा था जितना कन्फ्यूशियस का मनुष्य के चरित्र-निर्माण पर।' चीन के प्रमुख कवियों की रचनाओं का विश्व की प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

तंग-काल में पद्य के साथ-साथ गद्य की भी सम्यक् उन्नति हुई। हान यू इस समय का अद्वितीय गद्य-लेखक था। इसके लेख राष्ट्रीय उन्नयन की भावना से ओत-प्रोत हैं। इसकी शैली में नवीनता और पुरातनता का सामंजस्य है। वह नितान्त सरल और भावपूर्ण है। तू यू नामक एक अन्य गद्य-लेखक ने विधान के ऊपर तंग तायेन (Tung Tien) नामक एक पुस्तक की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रचना की । लियू ची नामक एक सुविख्यात इतिहास-लेखक था। चीन के प्रायः समस्त उत्तरकालीन इतिहास-लेखकों ने हान कालीन सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक सु-मा चीन की 'शीह ची' नामक इतिहास-कृति का अनुकरण किया है। चीन के निवासियों के इतिहास-ग्रंथों की रचना में विशेष रुचि थी। यही कारण है कि जितने इतिहास-ग्रंथ चीन में रचित हुए उतने किसी भी देश में नहीं। चीनियों ने आख्यायिका-साहित्य का भी सृजन किया था। तंग काल में इस साहित्य को शु-आन-शौ (Ch'uan Chi) के नाम से पुकारते थे। इसमें पौराणिक एवं लोकश्रुत पुरुषों के साहसिक प्रणय-सम्बन्धी कर्मों का वर्णन होता था। जहाँ तक उपन्यास-रचना का सम्बन्ध है, चीनी साहित्यकार इसकी ओर निरपेक्ष था। वह बहुत दिनों तक इसे साहित्य का अंग मानने के लिए ही प्रस्तुत न था।

चीन में नाटकों का प्रादुर्भाव कालान्तर में हुआ, यद्यपि उसका बीजारोपण तंग-काल में ही हो जाता है। तंग नरेश अपनी विजयों के उपलक्ष में समारोह करते थे। इन समारोहों में नृत्य-संगीत का विशेष स्थान था। ऐसे अवसरों पर कवि छोटे-छोटे गीत लिखते थे जो उपस्थित जनता के समक्ष नृत्य एवं वाद्य के साथ ही साथ गाये जाते थे। यही प्रदर्शन नाटक का प्रारम्भिक रूप था। ताइ सुंग के शासन-काल में पो चेन ने इसी प्रकार 'युद्धरेखा का ध्वंस' (Breaking the Battle Line) नामक एक गीत बनाया था। यह नृत्य के साथ प्रस्तुत किया गया था। मिंग ह्वांग ने पियर गार्डन (Pear Garden) नामक प्रथम नाट्यशाला की स्थापना की थी। इसमें वस्तुतः नृत्य-संगीत की ही शिक्षा दी जाती थी।

चीनी-धर्म—'पानकू' के समय से चीनी लोग प्रकृति-पूजा में विश्वास रखते थे। प्रागैतिहासिक काल में उर्वरा शक्ति की पूजा होती थी। इनका यह विश्वास था कि यदि प्रकृति देवी प्रसन्न हैं तो हमारी खेती-बारी अच्छी होगी और यदि वह अप्रसन्न हैं तो बाढ़ एवं अकाल से जनता को कष्ट होगा। ऋतु आगमन के समय विशेष समारोह मनाया जाता था। अपने विविध उत्सवों में ये वायु, वृक्ष, सर्पों तथा दैत्यों की बलि देते थे। पूर्वजों की पूजा

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करना चीनी जनता का विशेष क्रम था। सम्मिलित पारिवारिक जीवन की प्रथा चीन में बहुत पहले से ही थी। ये लोग लौकिक एवं पारलौकिक जीवन में विश्वास रखते थे। प्राचीन काल से शासक की पूजा की जाती थी क्योंकि उसे ईश्वरीय देन समझा जाता था।

चीन का साधारण जनसमुदाय भारतीयों की तरह दिवंगत आत्मा के लिए अपने भोजन का अंश निकालता था। यह उसका दैनिक क्रम था।

उर्वरता देवी की पूजा के अतिरिक्त चीनी शाँग टी (Shangti) नामक एक अन्य देवता की पूजा करते थे। सामंतवादी युग में आकाश की पूजा भी प्रारम्भ हुई। राजा को इस समय देवपुत्र माना जाता था। ग्रह नक्षत्रों पर विश्वास किया जाता था और अपने व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं से उसका प्रभाव आँका जाता था। ज्योतिषियों का स्थान ऊँचा था।

तंग-वंश अपनी धार्मिक अभ्युन्नति के लिए प्रसिद्ध है। जिस समय योरप के विभिन्न देशों में धार्मिक वैमनस्य का सघन तिमिर आच्छादित था उसी समय चीन में धार्मिक जागरण की रश्मियाँ विकीर्ण हो रही थीं। तंग-वंशीय समाज का प्रमुख धर्म बौद्ध था। तथागत के अजस्र सन्देश दुरूह भौगोलिक अवरोधों का अतिक्रमण कर चीन-देश में प्रविष्ट हुए थे और अपनी पीयूष-वर्षा से वहाँ की धर्मानुकुल जनता के अतृप्त प्राणों को सरस कर रहे थे। बौद्ध धर्म की असीम प्रगति के कारण ही तंग-वंश 'बुद्ध-युग' के नाम से भी प्रख्यात है। भूतकाल में ताओ धर्मानुयायियों की असहिष्णुता से बौद्ध धर्मानुयायियों को अनेक सांघातिक आघात सहने पड़े थे। परन्तु अपनी अदम्य जीवनी-शक्ति के कारण वह फिर भी जीवित रहा और अन्त में तंग-काल में राज्य का प्रमुख धर्म बन गया। चीनी बौद्ध धर्मावलम्बियों और भारतीय बौद्ध धर्मावलम्बियों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना हो चुकी थी। तंग-काल में अनेक भारतीय बौद्ध चीन आये थे और इसी प्रकार ह्वेनसांग प्रभृति अनेक चीनी बौद्धों ने भारतवर्ष का भ्रमण किया था। धर्म एवं सभ्यता के इन संवाहकों के द्वारा दोनों प्राचीन देशों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान अधिक सुलभ हो सका। फिट्जेरैल्ड के मतानुसार तंग-युग उत्साही बौद्ध यात्रियों और उपदेशकों की भी शताब्दी है।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि तंग-कालीन समाज से अन्य धर्मों का विलोप हो गया था। धार्मिक समभाव तंग-सम्राटों की विशेषता थी। अतः उन्होंने किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय के प्रति असहिष्णुता का व्यवहार न किया। परिणामतः चीन में बौद्ध धर्म के समकक्ष ईसाई धर्म, जरथुस्त्रमत, लाओमत और कन्फ्यूशियस मत भी अव्याहत रूप से पनप रहे थे। राज्य ने इन धर्मों के उन्मुक्त प्रचार के लिये पूर्ण सुविधायें दी थीं। इनके अनुयायियों को अपनी विशिष्ट पूजा-प्रणालियों का अनुसरण करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इनके पूजा-गृह कर-मुक्त कर दिये गये थे। पाठशालाओं के पाठ्य-क्रम में कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों को विशेष स्थान मिलता था।

लिपि—वर्तमान चीनी लिपि का उद्भव हान-काल में हुआ था। यह लिपि कदाचित् संसार की विचित्रतम लिपि है। इसमें वर्ण नहीं हैं वरन् उनके स्थान पर चिह्न हैं। भिन्न-भिन्न शब्दों और भिन्न-भिन्न विचारों का बोध किसी न किसी विशिष्ट चिह्न के द्वारा होता है। इस प्रकार चीनी लिपि पचपन हजार चिन्हों का वृहद् कोश है। इन समस्त चिन्हों को स्मरण करना सरल नहीं है। अतः साधारणतया चीनी तीन-चार हजार चिन्हों से ही अपना काम चलाते हैं।

सामाजिक जीवन—चीन का समाज चार वर्गों में विभक्त था—(१) अध्यापक वर्ग (२) कृषक वर्ग (३) व्यवसायी वर्ग और (४) व्यापारी वर्ग। परन्तु यह विभाजन पूर्णरूपेण कर्मज था। वर्गों का निर्धारण जन्म के आधार पर न होकर कर्म के आधार पर होता था। यदि कोई मनुष्य अपने पैतृक कर्म को छोड़ कर अन्य कर्म ग्रहण करना चाहता था तो उसे पूर्ण स्वतन्त्रता थी। बुद्धिजीवी एवं अनुशासनशील होने के कारण अध्यापक-वर्ग का सब से अधिक महत्व था। वह समाज में अत्यधिक समादृत था। कृषक-वर्ग की दशा अधिक सन्तोषजनक न थी। राज्य के संचालन हेतु जो करादि लगते थे उनका अधिकांश कृषकों को ही वहन करना पड़ता था। जब तक चीन में सामन्त प्रथा का बोल-बाला था तब तक कृषकों का खूब शोषण होता था। उन्हें विवश होकर बेगार करनी पड़ती थी। चीन में जन-संख्या अधिक होने के कारण प्रत्येक कृषक के भाग में जो भूमि-खण्ड पड़ता था वह बहुधा उसके भरण-पोषण के लिये अपर्याप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता था। जैसे-जैसे चीन का व्यापारिक प्रसार एवं व्यावसायिक विकास होता गया वैसे हो वैसे अंतिम दो वर्गों को आर्थिक अवस्था सुधरती गई। अपने व्यावसायिक कर्म के कारण चीनी समाज का कोई भी वर्ग हेय न समझा जाता था।

समाज की ईकाई परिवार थी। परिवार में पिता के अधिकार अत्यधिक थे वह स्वेच्छया अपनी स्त्री तथा सन्तान का विक्रय भी कर सकता था। वंश-वृक्ष को सक्रम रखना प्रत्येक व्यक्ति का प्रधान कर्तव्य था। अतः समाज में अविवाहित रहना अथवा भ्रूण-हत्या करना अति निन्दनीय कर्म समझे जाते थे। बहुधा सन्तानहीन पत्नी पुत्र-प्राप्ति के हेतु अपने पति से द्वितीय विवाह कर लेने के लिये स्वयं आग्रह करती थी। प्रायः अन्य देशों की भाँति चीन में भी पुत्री की अपेक्षा पुत्र का जन्म अधिक वांछनीय था। पुत्र-जन्म पर परिवार में अनेक प्रकार से उत्सव मनाये जाते थे। स्त्रियों में परदे की प्रथा थी। अविवाहित कन्या को भी पर्दे में रहना पड़ता था। उनकी चारित्रिक पवित्रता पर अत्यधिक बल दिया जाता था। आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से स्त्री पुरुष के अधीन थी। पुरुषों में चारित्रिक भ्रष्टाचार भी क्षम्य था। वे बहुधा विवाहित स्त्री के रहते हुए भी रखेल स्त्रियाँ रखते थे। पति को अधिकार था कि वह किसी भी कारण से अपनी पत्नी से सम्बन्ध-विच्छेद कर ले। अपने घरों में भी स्त्रियों के लिये पृथक् अन्तःपुर थे। उनका सामाजिक मूल्य एकमात्र माता के रूप में ही था। समस्त सार्वजनिक कार्यों से वंचित रह कर वे शिशु-पालन और गृह-कार्य करती थीं। परन्तु उच्च वर्ग की स्त्रियों के ऊपर इतने कठोर बन्धन न थे। उनकी सामाजिक स्थिति निम्न वर्गों की स्त्रियों की अपेक्षा अच्छी थी। उनमें शिक्षा का भी प्रसार था। पान कू नामक इतिहासकार की मृत्यु के पश्चात् उसकी बहन ने उसके अपूर्ण ग्रंथ की समाप्ति की थो परन्तु सामान्यतया पारिवारिक जीवन सुखमय था। परिवार की अभ्युन्नति के लिये रीति-रिवाज, आचार-विचार, कर्तव्य-पालन आदि आवश्यक समझे जाते थे।

प्रत्येक परिवार में वयोवृद्ध पुरुषों का सम्मान था। चीनी ईश्वर के साथ-साथ पूर्वजों और वीरपुरुषों की भी अर्चना-वन्दना करते थे। उनका विश्वास था

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि यदि वे पूर्वजों की दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धा-भक्ति का प्रदर्शन न करेंगे तो वे उन्हें कष्ट देंगी।

सामान्तवादी युग में चीन की स्थिति बहुत-कुछ सामान्तवादी योरपीय देशों को भाँति थी। प्रसिद्ध इतिहास लेखक टूची के अनुसार चीन में भी सामन्त-वर्ग ड्यूक, मार्क्विस, अर्ल, वास्काउण्ट और बैरन की भाँति पाँच वर्गों में विभक्त था। ये सामन्त स्थानीय न्यायाधीश होते थे और कृषकों एवं श्रमजीवियों के परिश्रम पर सुख-समृद्धि का जीवन व्यतीत करते थे। इनका नैतिक स्तर ऊँचा न था। ये भोग-विलास में लिप्त रहते और बहुधा पारस्परिक युद्ध किया करते थे। इनके करों और बेगार से कृषक वर्ग पीड़ित था।

चिन-वंश और हान-वंश का समाज अपनी स्थिरता के लिये राजनीति और प्रशासन पर आधारित था परन्तु तंग वंश को सामाजिक रचना का प्रेरणा-स्रोत दर्शन एवं साहित्य थे। कल-कलनिनादिनी अजस्र सरिताओं के मध्य में निर्मित तंग-समाज काव्य के मधुर स्रोत में बहता हुआ-सा परिलक्षित हो रहा था। वह जीवन की समस्त अनुभूतियों का दर्शन और धर्म के आधार पर मूल्यांकन कर रहा था। काव्य प्राचुर्य ने जनता के हृदय में अपूर्व उल्लास भर दिया था। धार्मिक नवचेतना के कारण सामाजिक प्राणियों में उदारता और सहिष्णुता के उदात्त भावों की प्रतिष्ठा हो गई थी। साधु-सन्तों के प्रति असीम श्रद्धा तथा विद्वानों के प्रति असीम सम्मान ने चीनी जीवन को विनीत, अनुशासनशील और गुणग्राही बना दिया था। तंग-काल सामाजिक दृष्टिकोण से भी स्वर्ण युग था।

आर्थिक जीवन—आर्थिक दृष्टिकोण से कृषि का विशेष महत्व था। प्राचीन काल से चाऊ-वंश एवं सामंतवादी युग तथा चिन साम्राज्य के युग में समाज के जीविकोपार्जन का साधन कृषि ही थी कृषि के साधन सरल थे। लकड़ी तथा पत्थर के हलों का प्रयोग होता था। कूपों और तालाबों आदि के अतिरिक्त नदियों तथा नहरों से सिंचाई को व्यवस्था की जाती थी। सामंतवादी युग में चीन की आर्थिक दशा असंतोषजनक थी परन्तु हान-वंश के सत्तारूढ़ होते ही वह सुधरने लगी। साम्राटों ने नहरों का निर्माण किया, खाद के प्रयोग से अधिक उपज की गई। आर्थिक समृद्धि का दूसरा साधन व्यापार था। हान वंश के समय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विदेशों से व्यापार होता था। चीनियों की मधुर पेय चाय थी। हान वंश के पश्चात् तंग-वंश के प्रारम्भ तक चाय की खेती की अवनति हो गई। परन्तु तंग-वंश के समय में चाय की खेती आर्थिक आय का एक साधन मानी जाने लगी। बैलों को खेतों को जीतने में प्रयुक्त किया जाता था। पालतू पशुओं में भेड़, गाय तथा सुअर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। पिछले समुद्र के तटों पर तथा सरिताओं में मछलियाँ मारी जाती थीं। ग्रामीण चीनियों की जीविका का यह एक मुख्य साधन था।

तंग कालीन कृषकों की दशा संतोषजनक थी। कृषि एवं उद्योग-धन्धे ही राज्य के मुख्य साधन थे। प्रथम सम्राट के शासन काल में भूमि का पुनर्वितरण हुआ और राज्य के सारे कृषकों को समान भाव से भूमि वितरित की गई। इस भूमि को विक्रय करने की राज्य की ओर से मनाही थी। परन्तु यह प्रथा अधिक दिन तक न चल सकी क्योंकि जमीदारों ने निर्धन किसानों की भूमि पर अधिकार जमा कर उन्हें भूमिहीन कर दिया। इस समय राज्य की ओर से नहरों का निर्माण हुआ और सिंचाई का विशेष प्रबन्ध किया गया। यद्यपि समय-समय पर अकाल पड़ता था जिससे जनता का स्तर नीचे गिर जाता था, परन्तु सरकार द्वारा सहायता दी जाती थी। विभिन्न प्रकार के कर लगाये गये थे। इनमें भूमि कर तथा व्यापार कर मुख्य थे। भूमि कर वर्ष में दो बार वसूल किया जाता था।

प्राचीन काल में चीन के निवासी गृह-निर्माण एवं मूर्तिकला इत्यादि के निर्माण में मिट्टी का प्रयोग करते थे। मिट्टी के प्रयोग के पश्चात् पत्थरों का प्रयोग हुआ। परन्तु चीन के निवासी इस खोज में थे कि वे अपने उद्योग-धन्धों में पत्थर या ईंट को अपेक्षा कोई अधिक मुलायम वस्तु का प्रयोग करें। अतएव लकड़ी का प्रयोग करना उन्होंने प्रारम्भ किया। लकड़ी के प्रयोग के साथ बाँस के लट्ठों का भी प्रयोग होता था। हान काल सुख-समृद्धि काल था। अतः इस समय लकड़ी के प्रयोग से पारिवारिक उपयोग के लिए मेज, कुर्सियाँ, आलमारियाँ इत्यादि बनाई जाने लगीं। चीन की मृणकला अति प्राचीन है। चीनी मिट्टी के बर्तन मज़बूत और आकर्षक होते थे। मिट्टी के बर्तनों के साथ ही साथ शीशे के भी सुन्दर बर्तन का निर्माण होता था। प्यालों, तश्तरियों, घड़ों, कलशों, लोटों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और गिलासों आदि का प्रयोग सामाजिक जीवन में विशेष रूप से होता था। परन्तु फिर भी गृह-उद्योग-धन्धों में चीन ने उतनी उन्नति नहीं की जितनी कला, और साहित्य के क्षेत्र में। वस्त्र-निर्माण में चीनी कुशल थे। चीन सिल्क का देश कहा जाता था। रोम, ग्रीस एवं भूमध्य सागरीय देशों तक चीन के बुने कपड़े और सिल्क भेजे जाते थे। विश्व में सिल्क या रेशम का सर्वप्रथम आविष्कार चीन ने किया। रेशम के डोरों को करघे पर तैयार किया जाता था। रेशम के आविष्कार के पश्चात् सूती कपड़ों का प्रयोग किया जाने लगा। चीन के औद्योगिक समुदाय ने कागज का भी निर्माण किया। कागज़ के आविष्कार के साथ एक प्रकार की स्याही भी बनाई गई। वृक्षों की खाल तथा रेशों से चीनी कागज बनाया जाता था। लोहे की वस्तुयें तथा सोने का आभूषणों के बनाने में बहुधा चीन के कारीगर ने विदेशों का अनुकरण किया है। सब प्रकार की धातुओं के प्रयोग से वे अनभिज्ञ थे। वे न तो धातु का मिश्रण करना ही जानते थे और न तो धातु को ढालना ही। यह चीनी कारीगरों की बड़ी दुर्बलता थी। यदि ये कलाकार धातुओं का प्रचुर प्रयोग जानते होते तो चीनी उद्योग-धन्धों का विशेष विकास होता। चीन में जन निर्माण-कलाओं का विकास हुआ था उनका वर्णन पीछे किया जा चुका है।

चीन के प्राचीन काल में सामाजिक क्षेत्र में व्यापारियों का स्थान महत्वपूर्ण नहीं था। चाऊ वंश तथा चिन एवं सामंतवादी चीन में व्यापार निम्न-कोटि का था। यद्यपि कला तथा साहित्य के क्षेत्र में सम्यक अभ्युत्थान हुआ, तथापि व्यापार के क्षेत्र में न्यूनता परिलक्षित होती रही।

हान वंश के सत्तारूढ़ होते ही व्यापार के क्षेत्र में भी उन्नति हुई। राज्य में व्यापार तो बढ़ा ही परन्तु विदेशों से भी व्यापारिक सम्बन्ध घनिष्ठ हुए। रोम, ग्रीस, भारत और अफ़गानिस्तान के देशों से व्यापार होता था। भारत तथा लंका के व्यापारी चीन-यात्रा करते थे और मूल्यवान वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता था।

ईसा की मृत्यु के पश्चात् लगभग १२० जादूगर चीन के दक्षिणी प्रदेशों के दूतावास में भेजे गये थे। "लोयांग" नामक नगर में जाकर इन्होंने पाश्चात्य

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देशों से घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध बनाने की प्रार्थना की। लगभग १६६ व्यापारी "ता चिन" नामक स्थान से लोयांग पहुँचे और दूतावास की घोषणा की। ये व्यापारी सम्राट् अण्टोनियस के राज्य से आये थे। रोम साम्राज्य का चीन के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था। "पान चाऊ" ने जिस व्यापार-मंडल को रोम भेजा था उसे यह आदेश था कि वह रोम से सीधा सम्बन्ध स्थापित करे। चीन से ऊँटों पर लदे रेशमी कपड़े, चाय, चीनी बर्तन, बारूद, कागज, सूखे फल ईरान, भारत और मेसोपोटामिया आदि देशों को भेजे जाते थे। ये व्यापारी स्थल मार्ग से अपने सामान ले जाया करते थे। स्थल मार्ग के अतिरिक्त जल मार्ग की भी उपयोगिता से व्यापार में अच्छी सफलता मिली थी। फारस की खाड़ी से भारतवर्ष होते हुए विदेशों के जलयान चीन जाते थे। इन वस्तुओं के अनुदान में विदेशों से ऊनी कपड़े, शीशे के सामान, घोड़े, हीरे तथा मूल्यवान जवाहिरात चीन भेजे जाते थे।

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक टूची के कथनानुसार हान वंश के सम्राटों ने बाह्य स्थल अथवा जल मार्गों के निर्माण की अपेक्षा आंतरिक मार्गों का निर्माण प्रचुर मात्रा में किया जिसके फलस्वरूप उत्तर तथा दक्षिण के प्रदेशों में व्यापारियों का ताँता लगने लगा। हान वंश के शासन काल में चीन में सैकड़ों सड़कों का निर्माण हुआ, बाजार बनवाये गये, नहरें खुदवाई गईं और सारे चीन में लगभग ३०,००० विश्रामगृह बने जहाँ व्यापारी गर्मी और जाड़े के दिनों में विश्राम किया करते थे। उनकी देखभाल के लिए अधिकारी नियुक्त थे और उनको यथोचित प्रबन्ध के लिए राज्य की ओर से सहायता मिलती थी। व्यापार की इस उन्नति से चीन का सांस्कृतिक विकास हुआ।

तंग-काल में व्यापार की अभूतपूर्व उन्नति हुई। तंग वंश के समय स्थल मार्ग एवं जलमार्ग दोनों प्रचलित थे। तारिम की घाटी से सीमान्त प्रदेशों के मार्ग से होते हुए विदेशी व्यापारी चीन जाते थे। आठवीं सदी के मध्य तक चीन के व्यापारिक सम्बन्ध इतने घनिष्ठ हो गए थे कि विदेशी व्यापारियों को चीन अपना घर-जैसा प्रतीत होता था। चीन के राज्य में विदेशी व्यापारियों का स्वागत होता था और उनके साथ मैत्री भाव रक्खे जाते थे।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तंग-काल में व्यापार-व्यवसाय की अभूतपूर्व उन्नति के अनेक कारण थे—(१) साम्राज्य में अपेक्षाकृत सुव्यवस्था एवं सुरक्षा (२) सड़कों और पुलों आदि के निर्माण के फलस्वरूप गमनागमन की सुविधा (३) निश्चित मुद्रा-नीति की प्रतिष्ठा (४) क्रय-विक्रय पर राजकीय नियन्त्रण और (५) विदेशीय संबंध। इन विशेषताओं का सामूहिक परिणाम यह हुआ कि देश के स्थानीय उद्योग-धंधों का प्रचुर विकास हुआ और चीन विश्व में एक महत्वपूर्ण व्यापारी-देश बन गया। देश के भीतर की नदियाँ और नहरें सदैव व्यापारियों की नावों और लघु जल-पोतों से भरी रहने लगीं। चीन के बन्दरगाह सदैव व्यापारिक कार्य-कलापों से व्यस्त रहने लगे। चीन से प्रति वर्ष हजारों रुपये का रेशमी वस्त्र, मसाला, धान और अनाज विदेशों को निर्यात होने लगा। इनके बदले चीन विलासिता एवं आमोद-प्रमोद की विविध सामग्री विदेशों से आयात करता था। आर्थिक समृद्धि ने चीन-निवासी के जीवन को वैभवशाली एवं आकर्षक बना दिया। उसके गृहों में विभिन्न प्रकार की विलास-सामग्री एकत्र होने लगी। चीनी के सुन्दर वस्त्राभरण, आभूषण, प्रसाधन-उपकरण, धातु-पात्र मृणभाण्ड, पलंग, कुर्सी, मेज तथा खाद्य-पेय उसके जीवन की वैभवशालिता के प्रमाण थे। सारांशतः अपनी चतुर्दिक अभ्युन्नति के कारण तंग-काल चीन का पेरिक्लीज-काल अथवा आगस्टस-काल कहा जा सकता है। इस समृद्धिशाली काल की पुण्य-स्मृति में आज भी चीनी अपने को तंग-पुत्र कहता है।

चीन की बौद्धिक क्रान्ति—जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, ई० पू० छठीं शताब्दी विश्व के अनेक देशों के लिए बौद्धिक क्रान्ति का काल था। जिस समय भारत, फारस जूडिया और यूनान में स्वतंत्र विचारक, धर्मोपदेशक एवं समाज-सुधारक अपने प्रवचनों से समाज के पुंजीभूत कल्मष को दूर कर सत्य और शिव की विशुद्ध कल्पना से जनता के अन्तर को आभासित कर रहे थे, उसी समय चीन में भी सुधारकों का एक समुदाय अपदस्थ मानव को आत्म-विस्मृत के गर्त से उठाकर उस सुपथ पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा कर रहा था जो उसे मुक्ति-द्वार तक ले जा सके। चाऊ वंश के पतन के पश्चात् चीन की सम्पूर्ण व्यवस्था विशृंखल हो गई थी। राजनीतिक विघटन, सामाजिक अरक्षा और

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्थिक विषमता ने चीन-निवासी के नैतिक एवं धार्मिक जीवन की सद्‌वृत्तियों का हनन कर दिया था। जीवन के उच्चतर मूल्यों को भूल कर वह क्षुद्र सिद्धान्तों के अनुशीलन में आत्म-कल्याण की खोज कर रहा था। लोकोत्तरवाद की मृग-मारीचिका ने उसे ऐहिक जीवन के प्रति निरपेक्ष बना दिया था। रूढ़ियों, अन्ध-विश्वासों एवं अनुष्ठान-आडम्बरों ने आत्म-चिन्तन और आत्म-मनन का मार्ग अवरूद्ध कर दिया था। ऐसे काल में चीन की संत्रस्त धरा पर कन्फ्यूशियस, लाओत्से, मेन्सियस और मोजे जैसे विचारकों एवं सुधारकों का अवतरण हुआ, जिनकी वाणी में लोक-कल्याण के अजस्र सन्देश निहित थे।

कन्फ्यूशियस का चरित्र (ई० पू० ५५१—ई० पू० ४७९)—इस महान सुधारक का जन्म ५५१ ई० पू० लू नामक राज्य के एक सुप्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। उसके पूर्वज युद्धकर्मा थे। स्वयं उसका पिता निर्भीक एवं वीर सैनिक था। बाल्यकाल से ही कन्फ्यूशियस शान्तिप्रिय एवं चिन्तनशील था। सत्रह वर्ष की अल्पावस्था में ही उसने समकालीन विद्वानों में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर ली थी। अल्पावस्था में ही पितृहीन हो जाने के कारण परिवार की संरक्षा का भार कन्फ्यूशियस के कन्धों पर आ पड़ा था। इस गुरु उत्तरदायित्व के कठोर वहन ने उसकी प्रवृत्ति को और भी अधिक चिन्तनशील एवं दार्शनिक बना दिया। उन्नीस वर्ष की अवस्था में कन्फ्यूशियस ने विवाह कर लिया, परन्तु ३-४ वर्ष के पश्चात् ही उसने अपनी स्त्री का परित्याग कर दिया।

बाईस वर्ष की अवस्था से उसका सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ होता है। उचित शिक्षा के द्वारा नवयुवकों के मार्ग-प्रदर्शनार्थ उसने अपने घर में एक विद्यालय खोला और अध्यापन-कार्य करने लगा। शीघ्र ही उसकी ख्याति चतुर्दिक फैलने लगी और अधिकाधिक संख्या में विद्यार्थी उसके विद्यालय में आने लगे। अपने जीवन के अन्तिम चरण में उसकी स्वयं उक्ति थी कि मैंने ३००० नवयुवकों को शिक्षा प्रदान की थी। तत्कालीन गमनागमन की असुविधाओं को देखते हुए यह संख्या अत्यधिक थी। उसकी शिक्षा-प्रणाली मौखिक थी। शिक्षा-विषयों में इतिहास, कविता और सदाचारशास्त्र ही प्रमुख थे। कन्फ्यूशियस ने कदाचित् पाँच ग्रन्थों की रचना की थी जो चीन में 'पाँच चिंग' (धार्मिक ग्रन्थ) के नाम

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से प्रख्यात हैं।

(१) 'ली-ची' (Li-Chi Record of Rites)—इनमें चिर-सम्मानित आचार-नियमों का संग्रह है।

(२) 'आई-चिंग' (J-Ching Book of Changes)—इसमें सृष्टि विषयक गम्भीर विचारों का प्रतिपादन है।

(३) शी-चिंग (Shi-Ching Book of Odes)—इसमें मानव-जीवन का विश्लेषण एवं नैतिकता के नियम हैं।

(४) चुन-चिउ (Chun-Chiu Spring and Autumn Annals)—इसमें लू-राज्य के इतिहास का वर्णन है।

(५) शू-चिंग (Shu-Ching Book of History)—यह भी ऐतिहासिक ग्रंथ है। इसमें अतीतकालीन राज्य-वंशों का इतिहास है।

ग्रंथों की इस विषय-विविधता को देखकर हमें कन्फ्यूशियस के व्यापक अध्ययन, मनन एवं ज्ञान का अनुमान होता है।

कन्फ्यूशियस के सिद्धान्त—अधिकांश पाश्चात्य विद्वानों का यह विश्वास है कि कन्फ्यूशियसवाद चीन का एक धर्म है। परन्तु यह धारणा सर्वथा मिथ्या है। यह एक मात्र विशुद्ध एवं व्यावहारिक जीवन का मार्ग है जो मनुष्य को सुख-शान्ति की ओर अग्रसर करता है। कन्फ्यूशियस न तो धर्मोपदेशक था और न किसी नूतन मत का प्रवर्तक। उसे अधिक से अधिक हम नीति-उपदेशक ही कह सकते हैं। उसने जनता के समक्ष जिस नीति का प्रतिपादन किया वह अनेक अंशों में सार्वभौम मान्यता रखती है। सदाचार इस नीति का आधार-पीठ था। समाज की महती इकाई परिवार है और परिवार की लघुत्तम इकाई व्यक्ति है। अतः समाज को सुधारने के लिए व्यक्ति को सुधारना अनिवार्य है। व्यक्ति का सुधार तभी सम्भव है जब यह मनसा, वाचा और कर्मणा सत्य एवं ज्ञान का अनुशीलन करे। यदि प्रत्येक मनुष्य आत्म-विकास का प्रयास करे तो समाज़ की विषमता स्वतः दूर हो जायेगी। अधिकांश सामाजिक दोषों का मूल व्यक्तिगत अनुदारता तथा स्वार्थपरता है। अतः कन्फ्यूशियस ने उपदेश दिया कि 'अपने प्रति जिस प्रकार का व्यवहार की अपेक्षा तुम दूसरों से नहीं करते, उस प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का व्यवहार स्वयं तुम दूसरों के प्रति न करो।' उत्कृष्ट मनुष्य के लिए जहाँ प्रतिभा और साहस की आवश्यकता है वहाँ परोपकार की भावना की भी। ये तीन गुण मानव-चरित्र के त्रिपाद हैं। इस मोहमयी जगती पर विद्वान् सदैव सजग रहता है। सजगता आत्म-परीक्षण से आती है। आत्म-परीक्षण करने वाला मनुष्य कभी परिछिद्रान्वेषी अथवा परनिन्दक नहीं हो सकता। आत्मोत्कर्ष की सतत साधना में रत वह सदैव विनीत और अनुशासनशील रहेगा। कन्फ्यूशियस ने उत्कृष्ट मनुष्य के लिये कतिपय आवश्यक बातें बताई हैं—

(१) आँखों से स्पष्ट देखे (२) मुख-मुद्रा दयापूर्ण हो (३) व्यवहार आदर-पूर्ण हो (४) वाणी सच्ची हो (५) कार्य में श्रद्धामयी सजगता हो (६) सन्दिग्ध विषयों में दूसरों के साथ विचार-विनियम करे (७) क्रोध में विवेक न खोये। (८) उचित साधनों से लाभ करे।

कन्फ्यूशियस की कल्पना से आदर्श मनुष्य वह है जो आत्मोत्कर्ष के साथ-साथ समस्त मानव जाति के उत्कर्ष की आकांक्षा करे। यही कारण है कि उसने समस्त लोक के प्रति करुणापूर्ण व्यवहार एवं मैत्री भाव का संदेश दिया है। कनफ्यूशियस के ये समस्त सिद्धान्त नितान्त उदात्त हैं। इनकी व्यावहारिकता एवं सार्वभौमता ने उसे चोन का ही नहीं वरन् समस्त कालों की समस्त मानव-जाति का भो नीति-उपदेशक बना दिया है।

अपने दृष्टिकोण की व्यावहारिकता के कारण ही कन्फ्यूशियस ने आत्मा-परमात्मा अथवा स्वर्ग-नरक आदि गहन विषयों पर विचार नहीं किया। उसके मत में इस प्रकार के विचार मानव-प्रगति के लिये अनिवार्य नहीं। हमारे ऐहिक विषय ही इतने अधिक हैं कि पारलौकिक विषयों पर चिन्तन करने की न तो हमें आवश्यकता है और न उसके लिये समय ही है। उसकी दृष्टि में लोकोत्तर-चिन्ता शक्ति और समय दोनों का अपव्यय थों। कन्फ्यूशियस के अनुयायियों के कथनानुसार वह कभी (१) असाधारण वस्तुओं (२) शक्ति-कौतुक प्रदर्शन (३) अव्यवस्था और (४) आध्यात्मिक जीवों के विषय में वार्ता न करता था। एक बार उसके एक शिष्य ने उससे मृत्यु के विषय में प्रश्न किया तो उसने अति सरलता से उत्तर दिया कि 'जब तुम जीवन के विषय में ही नहीं जानते तो मृत्यु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के विषय में कैसे जान सकते हो ?' इसी प्रकार प्रेतात्माओं के विषय में प्रश्न पूछे जाने पर कन्फ्यूशियस ने कहा था कि 'जब तुम मनुष्य की ही सेवा नहीं कर पाते तो उनकी प्रेतात्माओं की सेवा कैसे करोगे ?' इस प्रकार कन्फ्यूशियसवाद दर्शन की अपेक्षा आचारशास्त्र ही अधिक है।

कन्फ्यूशियस के राजनीतिक विचार—कन्फ्यूशियस क्रान्तिकारी न था। जो सरलता और अतिविहीनता उसके नैतिक सिद्धान्तों में दृष्टिगत होती है वही राजनीतिक विचारों में भी। उसका विश्वास था कि कोई भी सरकार एकमात्र शस्त्रबल पर स्थिर नहीं रह सकती। राज्य की स्थिरता के निमित्त लोकमत की अनुकूलता आवश्यक है। लोकमत की अनुकूलता के लिये आवश्यक है कि राजा सुशासक, सदाचारी एवं लोकोपकारी हो। राजा का अनाचार वन्य पशुओं से भी अधिक घातक होता है। अतः वह अन्ततोगत्वा प्रजा के लिये असह्य हो जाता है। राज्य के पदाधिकारी राज-प्रतिनिधि होते हैं। अतः उनके गुण-दोषों का उत्तरदायित्व भी राजा पर ही आता है। लोकमत की सन्तुष्टि के लिये यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि राजा एकमात्र सदाचारी पदाधिकारी की ही नियुक्ति करे जो लोक-रंजन के हेतु कल्याण-वितरण कर सकें। सदाचार ही समाज की मेरुदण्ड है। इसके अभाव में कोई भी समाज अधिक समय तक खड़ा नहीं रह सकता। अतः राज्य की स्थिरता के लिये यह आवश्यक है कि राज्य प्रजा की नैतिकता और सदाचार की भावना को निरन्तर पुष्ट करता रहे। वह राजसत्ता की सहायता से सामाजिक सुधार करना चाहता था। यही कारण है कि वह स्वयं किसी न किसी राजा का गुरु बनना चाहता था। दीर्घकालीन निराशा के पश्चात् लू प्रान्त के शासक ने उसे राज्य में अनेक उच्च पद दिये। कन्फ्यूशियस के लिये अपनी नैतिक एवं राजनीतिक योजनाओं को कार्यान्वित करने का यह सुअवसर था। उसने इसका पूर्ण लाभ उठाया। कहते हैं कि उसके सुशासन के परिणाम-स्वरूप राज्य में भ्रष्टाचार अपराध आदि का पूर्ण विलोप हो गया और सर्वत्र शुचि, सत्यता और कर्तव्य-निष्ठा की प्रतिष्ठा हुई। परन्तु अन्त में ईर्ष्यालु शत्रुओं की कुमन्त्रणा से कन्फ्यूशियस को अपना पद छोड़ना पड़ा। महती विभूतियों की सम्मान्यता उनके

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चले जाने के पश्चात् ही प्रकट होती है।

कन्फ्यूशियस की शिक्षाओं का प्रभाव—कन्फ्यूशियस की मृत्यु के पश्चात् भी उसके सिद्धान्त जीवित रहे। उसके अनुयायियों ने उसके सिद्धांतों के आधार पर विभिन्न मतों का प्रतिपादन किया। इनमें मेन्सिअस का मत सर्व-प्रथम था। जो कन्फ्यूशियसवाद का विकसित रूप था। अपनी सरलता और सत्यता के कारण कन्फ्यूशियस की शिक्षाओं में कुछ ऐसी जीवनी शक्ति आ गई थी कि प्रतिकूल वातावरण भी उन्हें विनष्ट न कर सका। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, शी हाँग टी ने कन्फ्यूशियसवाद एवं उसके ग्रंथों का उच्छेदन करने का तुमुल प्रयास किया। परन्तु वह असफल रहा। बहुसंख्यक जनता प्रच्छन्न रूप से युग-प्रवर्तक के ग्रंथों का अध्ययन करती रही। बहुसंख्यक अनु-यायियों ने कन्फ्यूशियसवाद के अनुसरण में अपने प्राणों का भी उत्सर्ग कर दिया। अन्ततोगत्वा कन्फ्यूशियसवाद की ही विजय हुई। सम्राट वू ती और ताई सुंग ने इस 'वाद' की पुनःप्रतिष्ठा की। कन्फ्यूशियस की पुण्य-स्मृति में नगर-नगर में मन्दिरों का निर्माण किया गया। उनके प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन के निमित्त धार्मिक अनुष्ठानों एवं यज्ञों की व्यवस्था की गई। उसकी शिक्षाओं को प्रसार एवं स्थायित्व देने के लक्ष्य से वे पाषाण-खण्डों पर अङ्कित कराई गईं। उन्हें विद्यालयों के पाठ्य-क्रम में सम्मानपूर्ण स्थान दिया गया। परिणामतः कान्फ्यू-शियस के सिद्धान्त सदैव जीवित रहे, उन्होंने अनेकानेक मतों को जन्म दिया और चीन के अवनति-कालों में भी जनता को साहस, सान्त्वना और सुविचार देते हुये उसका पथ-प्रदर्शन करते रहे। कन्फ्यूशियसवाद की सार्वभौमता ने चीनी राष्ट्र को एकता दी, उसकी गम्भीरता ने चीनी जनता को दार्शनिकता दी और उसकी अमरता ने संस्कृति को अजस्रता दी; आज भी चीनी जनता सगर्व अपने को कन्फ्यूशियस की सन्तान कहती है। आज भी कन्फ्यूशियस की शिक्षाएँ उसकी संस्कृति की अक्षय निधि हैं। कन्फ्यूशियस-मत का अवलम्ब लेकर ही चीन का राष्ट्र अपने सुदीर्घकालीन इतिहास-पथ पर शत-शत अवरोधों का तिरस्कार करता हुआ सदैव अग्रसर रहा है। चीन जनता अपने महात्मा के प्रति कोटिशः आभारी है।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों की कठोरता और कठोर अनुशासनशीलता ने चीनी राष्ट्र में जड़ता को भी जन्म दिया। दीर्घकाल तक एक परिवर्तनहीन निश्चित आचारशास्त्र का अनुगमन करने से चीनी जनता का बौद्धिक विकास बहुत कुछ अवरुद्ध हो गया। उसमें अन्ध परम्परानुगामिता छा गई। चीन रूढ़िवादी राष्ट्र हो गया। कठोर सदाचारिता और अनुशासनशीलता ने चीनी राष्ट्र को उन विभिन्न क्षेत्रों से पराङ्मुख कर दिया जिनमें आमोद-प्रमोद और प्रणय की तरंगिणी के सुकूलों पर जीवन की सरस अनुभूतियों की शतशः सर्जना होती है।

लाओत्से—चीन का दूसरा महान् दार्शनिक लाओत्से था। इस दार्शनिक द्वारा प्रचारित सिद्धान्त चीन के इतिहास में लाऊवाद या ताओवाद के नाम से विख्यात हैं। लाओ का शाब्दिक अर्थ है 'अधिक उम्रवाला' और तू का अर्थ है 'सभ्य मनुष्य' परन्तु पश्चात्य देशों में इसका सिद्धान्त ताओवाद के नाम से प्रसिद्ध है अर्थात् वह मार्ग (Tao) जिसका प्रदर्शन लाओत्से ने किया है। यद्यपि इनके जन्म के वारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता तथापि इतना अवश्य है कि वह कन्फ्यूशियस का समकालीन था और चाऊ वंश के राजकीय पुस्तकालय का प्रधानाध्यक्ष था। लाओत्से के समय कन्फ्यूशियस ने चाऊ साम्राज्य के नगरों का भ्रमण किया था और लाओत्से से भेंट की थी। इन दोनों दार्शनिकों का मिलन चीन के इतिहास में इतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि कई सौ वर्षों के पश्चात्, सम्राट नैपोलियन और गेटे का मिलन। लाओत्से का व्यक्तित्व ऊँचा था। वह कुशल दार्शनिक था। चरित्रनिष्ठा उसके जीवन का विशेष गुण था। कन्फ्यूशियस ने अपने विद्यार्थियों से लाओत्से के बारे में कहा था—"अरे! मैं जानता हूँ कि पक्षी उड़ते हैं, मछलियाँ तैरती हैं और पशु भागते हैं। भागने वाले को मैं पकड़ सकता हूँ। तैरने वाले को मैं फँसा सकता हूँ और उड़ने वाले को मैं धनुष बाण से मार सकता हूँ किन्तु सपक्ष नागों (ड्रैगन—एक पौराणिक सर्पाकार व्यक्तित्व) के विषय में मुझे कोई ज्ञान नहीं है—सपक्ष नाग जो वायु और बादलों के ऊपर सवार होकर आकाश में विचरण करते हैं। लाओत्से जिसे मैंने आज देखा है, ऐसा ही है। वह सपक्ष नाग की भाँति ही शक्तिशाली है।"

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लाओत्से के सिद्धान्त—चाऊ वंश के पतन के पश्चात् उसने अपने पद से त्याग-पत्र देकर पश्चिमीय प्रदेशों का भ्रमण करना प्रारम्भ किया। जब वह हान कू के दर्रे के समीप पहुँचा तो उसे वहाँ पर इस स्थान के अधिकारी ने रोका और उसके सिद्धान्त के बारे में पूछा। इनके उत्तर में लाओत्से ने 'ताओं ले चिग' अर्थात् श्रेय-मार्ग (The Way of Virtue) नाम की पुस्तक की रचना की। उक्त पुस्तक चीनी इतिहास की अनुपम निधि है। इस पुस्तक में प्रकृति-दर्शन के वास्तविक स्वरूप का वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें लाओत्से के सिद्धान्त हैं। इसके अनुसार मृत्यु और जीवन मानव जीवन के दो प्रमुख केन्द्र हैं। सांसारिक वस्तुएँ, जो दृष्टिगत हो रही हैं, नाशवान् हैं। उनका अस्तित्व शून्य के बराबर है। केवल ताओ (मार्ग) ही परिवर्तन-विहीन है। ज्ञान की प्राप्ति व्यर्थ है। व्यवहार कृत्रिम है। इच्छा या वासना हानिकारक है। धन धूलि के समान है। समस्त सुख, विलास एवं आकांक्षा स्वप्न की भाँति अस्थायी और निरर्थक है। इस प्रकार की अनेक बातें इस पुस्तक में वर्णित हैं। लाओ का मत था कि सम्पूर्ण समाज का जागरण प्रकृति के द्वारा ही हो सकता है। इस सिद्धान्त के मानने वाले ताओवादी (Taoist) कहे जाते हैं। इनका यह विश्वास था कि संसार को त्यागकर प्राचीन सरलता को अपना कर मनुष्य उन्नतिशील बन सकता है। यह प्रकृति को ही इस संसार मूल समझता था। इसका यह कथन था कि अतीतकालीन सभ्यता के आधार पर ही वर्तमान तथा भविष्य की सामाजिक उन्नति हो सकती है। इसने ज्ञान की प्राप्ति के लिए तत्पर मनुष्यों को अज्ञानी कहा और ज्ञान की प्रवंचना को त्याग कर प्रकृति के विधान द्वारा आत्मोत्कर्ष करने की शिक्षा दी इसके मतानुसार दार्शनिकों के सिद्धान्त व्यर्थ हैं क्योंकि वे अपने गुरु सिद्धान्तों से जनता को बोझिल बना देते हैं और जनता उनको पालने में नितान्त असमर्थ हो जाती है। इसका उपदेश था कि मृत्यु से मत घबराओ—परन्तु मनुष्य को उसके प्राकृतिक साधन पर लाने का प्रयास करो। जीवन मनुष्य का पथ तभी सुलभ हो सकता है जब कि वह कला, विज्ञान एवं शिक्षा के विषयों का आश्रय न ले। रेखागणित की भाँति समाज का निर्माण करो। व्यक्तिगत अनुभव ही स्वतंत्र राज्य के निर्माण में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक उपयुक्त हो सकता है। राज्य किसी सम्राट द्वारा शासित न हो। प्रेम एवं सहयोग की भावना से प्रकृति के विशाल साम्राज्य में ही निवास करो। मनुष्य का जीवन सादा होना चाहिए। अतीतकालीन मनुष्यों के विषय में लाओत्से ने कहा है कि प्रकृति-सुन्दरी के क्रोड़ में पलने वाले व्यक्ति कितने सुखी और हृष्ट-पुष्ट थे। परन्तु समाज के बंधन और दार्शनिकों के सिद्धान्तों के आवरण से ढके हुए वर्तमान मनुष्यों ने अपने जीवन को संघर्षमय बना दिया है। नम्रता मनुष्य का दूसरा गुण है। लाओत्से ने इस बात पर अधिक जोर दिया है कि "बुराई करने वालों के प्रति भी दयालु बनो।" अपनी बौद्धिक उत्कृष्टता का मिथ्या प्रदर्शन न करो। जीवन को सुखमय बनाने के लिए नम्रता की परिधि आवश्यक है। उसके सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य मनुष्य के जीवन एवं प्रकृति के मध्य तादात्म्य स्थापित करना था। स्वतंत्रता का विकास प्रकृति के वृहद् क्रोड़ में ही सम्भव है। वास्तविक विजय प्राप्त करने के लिए विचारवान् पुरुष के दिखाए मार्ग का अनुकरण करो।

ताओवादी विचारधारा के पोषक 'चुअंजू' ने लिखा है—'Confucius founded the Classical school of China and Loatze the Romantic'। अर्थात् कन्फ्यूशियस ने चीन की प्राचीन विचार प्रणाली का आविर्भाव किया और लाओत्से ने रोमैंटिक प्रणाली का। वह लाओत्से के सिद्धांतों को चीन की साधारण जनता के मध्य प्रचारित करना चाहता था। 'प्रकृति के कार्य में हस्तक्षेप न करो यह ताओवाद का मुख्य सिद्धान्त था। लाओत्से कहता था कि समाज की बेड़ियाँ तोड़ डालो और शांत वातावरण में निवास करो। प्रत्येक वस्तु को बिना हस्तक्षेप के कार्य करने दो। कुछ समय के पश्चात् ताओवाद बुद्ध की भाँति चीन का एक धर्म बन गया। परन्तु उसके सिद्धान्त इतने जटिल थे वह स्थायी न रह सका। इस धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन कन्फ्यूशियस की 'परिवर्तन की पुस्तक' के आधार पर किया गया था। इस धर्म का मुख्य उद्देश्य समस्त विश्व के मनुष्यों के बीच सामंजस्य स्थापित करना और भ्रातृभाव का सम्पादन करना था।

मैन्सियस—मैन्सियस के सिद्धान्त राजनीति पर आधारित थे। वह राज-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तन्त्र का पोषक था। उसका विश्वास था कि गलतियों को सुधारने से राज्य के शासक स्वयं सुधर जायेंगे और शासकों के सुधरने पर राज्य भी संगठित हो जायेगा। वह प्रत्येक व्यक्ति को समानाधिकार देना चाहता था, वे चाहे जिस जाति में हों। मैन्सियस जनता के स्तर को अधिक ऊँचा मानता था। वह कहता था कि राज्य के निवासियों को विद्रोह करने का पूर्ण अधिकार है। न्याय एवं प्रशासन में जनता की सलाह लेना आवश्यक है राज्य-प्राप्ति ईश्वर की देन है। अतएव कुशासन से बचकर धार्मिक एवं ईश्वरीय आदेशों पर राज्य-संचालन करना चाहिए। व्यक्तित्व के विकास के लिए प्रजा और शासक में सहयोग होना चाहिए। शासक प्रजा के कल्याण के लिए है। प्रजा विमुख शासक को पदच्युत कर सकती है। दंड देना उचित है, परन्तु नियत एवं निश्चित अपराध पर।

मैन्सियस शान्तिप्रिय दार्शनिक था। यह कहता था कि यद्यपि मैं युद्धवीर एवं कुशल कूटनीतिज्ञ हूँ परन्तु मैं युद्ध की भर्त्सना करता हूँ। युद्ध मानव-जीवन के लिये विनाशकारी है। ये सैनिक तथा उच्चाधिकारी नरसंहारक हैं। इन्हें सभ्य समाज का कलंक समझो। राज्य-संचालक एवं दैनिक जोवन में धर्म का स्थान प्रमुख है। अतएव अपनी सुख-समृद्धि के लिए पूजा आवश्यक है। धर्म पर आधारित राज्य ही समृद्धिशाली बन सकता है। इसके सिद्धान्त कन्फ्यूशियस एवं लाओत्से की तुलना में अधिक लोकप्रिय न हो सके, क्योंकि वे उतने सरल न थे।

मैन्सियस के सिद्धान्तों की समीक्षा लो पुतांग ने इतिहास की पुस्तक में की है। इसके सिद्धान्त 'रेटिफिकेशन आफ टर्मस' (Ratification of Terms)' के नाम से विख्यात हैं।

मोत्सू (ई० पू० ५००-४२० ई० पू०)—चीन के दार्शनिकों की श्रेणी में दूसरा नाम मोत्सू का है। इसने एक विद्यालय की स्थापना की थी। इसके विद्यार्थी 'मोहिस्ट के नाम से प्रसिद्ध हैं। मोत्सू ने ताओवाद एवं कन्फ्यूशियसवाद के सिद्धान्तों की आलोचना की है।

मोत्सू ने अपने सिद्धान्तों पर ५३ पुस्तकें लिखी हैं। उन पुस्तकों में एक प्रकार की आकांक्षा वर्णित है जो सामयिक प्रवृत्ति से पृथक रहकर, एक दर्शन की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परचायिका है। मोत्सू को टूची ने 'गोदनावाला शरीफ (Tattooed gentleman) कहा है वह कानून का कट्टर अनुयायी था।' उसने स्वयं अपने लड़के को मृत्यु का आदेश दिया। उसका कथन था कि संसार का दुःख हट सकता है, यदि मनुष्य सबके साथ प्रेम करे। युद्ध करना पाप है। वह समस्त विश्व में प्रेम का साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। जहाँ पर कन्फ्यूशियस पारिवारिक प्रेम को प्रधानता देता है वहाँ पर मोत्सू विश्व-प्रेम की भावना जाग्रत करना चाहता है। उसकी शिक्षा थी 'अपने मित्रों से अपने समान व्यवहार करो, उनके पूर्वजों से अपने माता-पिता के समान व्यवहार करो। यदि तुम किसी क्षुधा-पीड़ित मित्र को देखो तो उसे भोजन दो, यदि शीतग्रस्त है तो उसे वस्त्र दो, यदि पीड़ित है तो उसे सहारा दो, यदि वह मर गया है तो उसे दफना दो।'

मोत्सू की सम्मति थी कि यदि किसी सम्राट् का निधन हो जाता है तो हमें तीन वर्ष तक शोक मनाना चाहिए। दूसरों के परिवारों को अपना परिवार समझना चाहिए। अपरिचित से भी अपने निकट साथियों की तरह व्यवहार करना चाहिए। मनुष्य के जीवन में संगीत का कोई विशेष महत्व नहीं है। मोत्सू ने कन्फ्यूशियस के मार्ग तथा उसके मुख्य सिद्धान्तों की कड़ी आलोचना की है। ईसाई-धर्म और मोत्सूवाद में आंशिक समानता है उदाहरणार्थ विश्व-प्रेम, शान्ति एवं निःशस्त्रीकरण के सिद्धान्त। उसका विश्वास था कि युद्ध में क्षति की दृष्टि से विजेता और विजित दोनों की दशा प्रायः एक सी हो जाती है।

यदि **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना के साथ सार्वभौम प्रेम की कल्पना की जाय तो धनवान्, निर्धनों को उत्पीड़ा नहीं पहुँचा सकते और न बहुसंख्यक अपने समीप के अल्पसंख्यकों पर आघात ही कर सकते हैं। अतएव प्रेम के साधन से ही निर्मित मार्ग अधिक पुष्ट एवं स्थायी होगा। उस पंथ पर चलने वालों में सजीवता होती और नैतिक आस्था। प्रेम का आदर्श ऊँचा है, यदि प्रेम प्रधान है तो सम्मानित मनुष्य निम्नकोटि के मनुष्यों से घृणा नहीं करेंगे और न उनको किसी प्रकार का कष्ट देंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि मोत्सू दार्शनिक की अपेक्षा नीति-उपदेशक अधिक था।

लीगलिस्ट (Legalist)—चीन के दार्शनिक क्षेत्र में कभी-कभी लीगलिस्ट

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का भी उल्लेख आता है। परन्तु जैसा कि फिट्जेराल्ड ने लिखा है, ये लोग दार्शनिक नहीं थे वरन् विधानपोषक थे। इनका विश्वास था कि मनुष्य स्वभाव से ही दुष्ट होता है। अतएव कानून कठोर बनाने चाहिए।

इस सिद्धान्त का प्रचारक 'हानफी' (Hanfei) था। उसके शिष्य भी कानून की कठोरता में विश्वास रखते थे। हानफी का निम्नलिखित कथन प्रसिद्ध है—

"यदि बाण के लिए निसर्गजात सीधा लौहदण्ड खोज रहे हो तो सैकड़ों पीढ़ियों तक तुम्हें बाण न प्राप्त होगा। यदि तुम प्रकृतिजन्य गोल काष्ठ-खण्डों की प्राप्ति की प्रतीक्षा में हो तो सहस्रों पीढ़ियों तक तुम पहिये को न पा सकोगे। किन्तु तुम देखते हो, संसार में सर्वत्र मनुष्य रथ चला रहे हैं, और शिकार करते हैं। यह कैसे संभव होता है? केवल इसलिए कि उनके पास इन वस्तुओं को रूपान्तरित करने के औजार हैं।"—टूची

इसी प्रकार स्वभावतः दुष्ट मनुष्य को भी सुपथ पर लाने के लिए कानून एक उपयुक्त हथियार अथवा औज़ार है।

चीन में बुद्ध धर्म—हान वंश के समय बुद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। भारतीय सीमाओं का उल्लंघन कर बौद्ध धर्म चीन की उर्वरा भूमि में प्रविष्ट हुआ और अचिरात् ही वह चीनी जनता का लोकप्रिय धर्म बन गया। जहाँ कन्फ्यूशियस ने जटिल आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, लाओत्से तथा मोत्सू ने दर्शन के सम्प्रदायों की नींव डाली वहाँ बुद्ध के उदात्त व्यक्तित्व एवं सरल शिक्षाओं ने ऐसा प्रभाव जमाया कि पूर्वोक्त विचारकों के नैतिक तथा जटिल आध्यात्मिक सिद्धान्त निष्प्रभ हो गए। बुद्ध धर्म केवल चारित्रिक अभिरुचियों पर ही अवलम्बित नहीं था। वरन् उसमें मनुष्य की जटिल समस्याओं के समाधान का सुन्दर मार्ग भी प्रदर्शित किया गया है। जैसा कि टूची ने लिखा है—'It centered round the problem of human suffering' अर्थात् 'वह मानवीय कष्ट की समस्या के इर्द-गिर्द केन्द्रित था।' बुद्ध के मतानुसार समस्त काँटों का मूल कारण आकांक्षा है। इस आकांक्षा का दमन करना चाहिये। इच्छारहित होकर कार्य करो। जीवन से मुक्ति पाने के लिए 'निर्वाण' आवश्यक

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। इस प्रकार के सिद्धान्तों का प्रचलन चीन में खूब हुआ। चीन में बौद्ध धर्म के प्रवेश के विषय में एक जनश्रुति प्रसिद्ध है।

कहते हैं कि ६५ ई० में सम्राट मिंग ने एक स्वर्णकाय मनुष्य को स्वप्न में देखा था। उस मनुष्य के शरीर से जो आभा निस्सृत हो रही थी वह सम्राट के महलों में प्रवेश कर रही थी। इस पर सम्राट ने अपने मंत्रियों से इस स्वप्न के बारे में पूछा। मंत्रियों ने यह उत्तर दिया कि आपने महात्मा बुद्ध के दर्शन किए हैं। इस उत्तर को सुनकर सम्राट ने बहुत से व्यक्तियों को बुद्धधर्म के ग्रंथों को लाने के लिए भेजा। ऐतिहासिक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि बुद्धधर्म का प्रचार ई० पूर्व मध्य एशिया के कतिपय स्थलों पर हो चुका था। हानवंश के समय बौद्ध मंदिर बनवाये गए और स्थान-स्थान पर बुद्ध-प्रतिमाएँ स्थापित की गई। हान वंश के पतन के पश्चात् जब कि चीन तीन राज्यों में विभाजित किया गया, बुद्ध धर्म राज्यधर्म बना। 'सम्राट फे' के समय एक भारतीय भिक्षु बुद्ध धर्म के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का चीनी अनुवाद लेकर राजसभा में उपस्थित हुआ। छः राज-वंशों के युग में बुद्ध धर्म ने अपूर्व उन्नति की। राज्य के कुछ सम्राट् बौद्ध भिक्षु भी बने। यूरोप में ईसाई धर्म ने जिस तत्परता से उन्नति की उससे कहीं अधिक तत्परता से बुद्ध धर्म ने चीन में उन्नति की थी। परन्तु समय-समय पर ताओ धर्म और बुद्ध धर्म के अनुयायियों में पारस्परिक संघर्ष हो जाया करता था। वे वंशीय 'ताई वू' नामक सम्राट ने ताओवादियों के प्रभाव में पड़कर एक पत्र प्रकाशित किया था। जिसका सारांश यह था कि विदेशों के सारे देवताओं को हटा दो और यदि कोई भी व्यक्ति इन देवताओं को पूजा करता है अथवा उसकी प्रतिमा स्थापित करता है तो उसे सपरिवार मृत्यु-दंड मिलेगा। इस राजाज्ञा के अनुसार बुद्ध की प्रतिमायें तथा उनके चित्र जलवा दिए गए और बहुसंख्यक बौद्धानुरागी युवक एवं बौद्ध भिक्षु जीवित ही दफना दिए गए थे। इस प्रकार यह युग बुद्ध धर्म के लिए बड़े संकट का समय था। परन्तु आगे चलकर ताओवाद तथा बुद्ध धर्म के सिद्धान्तों में समन्वय हो गया और इस मिश्रित धर्म का प्रभाव चीनी जनता पर व्यापक रूप से पड़ा।

इस संघर्ष के लगभग पचास वर्षों के पश्चात् बुद्धावलम्बियों ने चीन में

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यापक प्रचार किया। चीन के प्रत्येक नगर में गीत गाते हुए बौद्ध भिक्षु दृष्टि-गोचर होने लगे। पशु हत्यागृहों एवं मदिरा की दूकानों पर धरना देकर ये साधु अपने सिद्धान्त प्रचारित करने लगे। बुद्ध धर्म पुनः अपने विकसित रूप में निखरा और थोड़े समय के भीतर ही चीन में तीस हजार मंदिरों का निर्माण हो गया। 'वे' साम्राज्य के पूर्वकथित घृणित व्यवहार की निन्दा प्रत्येक स्थान पर की जाने लगी और बुद्ध धर्म के पुनः प्रचलन के लिए प्रयत्न किये जाने लगे।

सम्राट 'वू' बौद्ध-धर्म का अनन्य भक्त था। उसने बौद्ध धर्म के प्रारम्भिक ग्रंथों का अध्ययन किया और उसके प्रचार के लिए अनेक कार्य किए। इसका वैयक्तिक जीवन एक बौद्ध साधु की भाँति था। उसने अहिंसा के पक्ष में तथा भ्रष्टाचार के विरुद्ध कानून बनाये और पशुओं के बलिदान की प्रथा को रोका। सम्राट 'वू' के समय में ही "बोधि धर्म" नामक एक भारतीय साधु चीन में भक्ति मार्ग के प्रचार के लिए गया। उसका प्रभाव व्यापक पड़ा और इस मार्ग के अनुयायियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

इस साधु के मतानुसार यह सम्भव था कि मनुष्य वह ज्योति पा सके जिसके माध्यम से निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है। ग्रंथों के अध्ययन मात्र से मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकता। शांत चित्त होकर एक स्थान पर तपस्या करने से उस ज्योति की प्राप्ति हो सकती है। इसके भ्रमण-प्रभाव से समस्त उत्तरी तथा दक्षिणी भाग में इस धर्म का प्रचार बढ़ा।

'तंग-वंश' के तीन सौ वर्षों के शासन काल में साहित्यिक एवं बौद्धिक उन्नति के साथ ही साथ धर्म के क्षेत्र में भी उन्नति हुई। बुद्ध धर्म भी इस युग में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा। इस समय संस्कृत के ग्रंथों का अनुवाद चीनी भाषा में किया गया। इसी समय बौद्ध साधु ह्वेनसांग ने भारत का भ्रमण किया और चीन तथा भारत के धार्मिक सम्बन्ध को और अधिक पुष्ट बनाया। तंग-वंश को चीन का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस उपाधि में बुद्ध धर्म का विशेष योगदान था। वास्तुकला, स्थापत्य एवं मूर्तिकला में धर्म का विशेष प्रभाव था। ह्वेनसांग ने भारत में ६५० ग्रंथों का संग्रह किया और उनका चीनी भाषा में अनुवाद किया। वह भारत का भ्रमण कर जब चीन वापस लौटा तो राजधानी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा वहाँ के नगरों की जनता ने उनका अपूर्व स्वागत किया।

'चीन में बौद्ध गीतों और कहानियों का संग्रह स्वांन चुंग (Hsuan Chung) नामक व्यक्ति ने किया था। इस युग में बुद्ध धर्म ही नहीं था वरन् वह मानवी जीवन के उन्नयन का एक साधन भी था। मनुष्य के विकास एवं चारित्रिक निष्ठा के लिये धर्म ने चीन को सुयोग दिया था।'

चीनी सभ्यता की विशेषतायें

सम्पूर्ण अतीतकालीन चीन का अध्ययन करने के पश्चात् हमारे मस्तिष्क पर चीनी सभ्यता की कतिपय आधारभूत विशेषतायें अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाती हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण चीनो सभ्यता आज समस्त विश्व में समादृत है। अतः उल्लेख कर देना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है।

(१) शान्तिप्रियता—भारतीय सभ्यता की भाँति चीनी सभ्यता भी शांतिप्रधान है। इसका इतिहास अपने युद्धों एवं योद्धाओं के लिए नहीं वरन् शान्ति, शान्तिजन्य बौद्धिक विकास और शान्ति-सन्देशवाहक अपने विचारकों, कलाकारों और साहित्यकारों के लिए सुप्रख्यात है। चीनियों ने अधिक से अधिक युद्धों को आवश्यक बुराई (Necessary Evil) ही समझा। यद्यपि विवशतावश चीनियों को राष्ट्रीय संगठन एवं संरक्षा के लिए कतिपय अवसरों पर युद्ध करने पड़े तथापि सैद्धान्तिक दृष्टि से युद्ध की संस्था को कभी भी मान्यता अथवा वाँछनीयता प्रदान न की गई। चीन में बारूद का आविष्कार उसके निवासियों की अनुसंधानात्मक क्षमता का परिचायक है, विध्वंसात्मक कर्मों में अभिरुचि का नहीं।

चीन के दीर्घ इतिहास में कोई भी पृष्ठ ऐसा नहीं जो क्रूरकर्मा योद्धा-वर्ग के उत्तेजन अथवा अभिवादन से सस्वर हो। चीन में सैनिक कर्म सम्मान्य न था। एच० जी० वेल्स का यह कथन सार्थक प्रतीत होता है कि 'चीनी सभ्यता हिन्दू सभ्यता से भी अधिक शान्ति के लिए संगठित है और उसका योद्धा सामाजिक व्यवस्था में विशेष महत्व नहीं रखता है।'

(२) सहिष्णुता—चीनी सदैव से सहिष्णु रहा है। उसकी सभ्यता में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहीं पर भी कट्टरता अथवा अनुदारता दृष्टिगत न होगी। यही कारण है कि उसने उन्मुक्त हृदय से विदेशियों को अपने देश में आमन्त्रित किया और स्वयं अपने निवासियों को निस्संकोच विदेशों में भेजा। चीनी धरा पर ताओ मत, बौद्ध धर्म और कन्फ्यूशियस मत समानरूप से समादृत हुए। चीन में समानरूप से भारतीय, यूनानी, ईरानी, पार्थियन एवं मध्य एशिया की अनेकानेक विचार-धारायें आईं। धर्म अथवा जाति के नाम पर चीन में कभी युद्ध न हुए। उसके विचारकों ने स्वतन्त्ररूप से सार्वभौमता, प्रकृतिवाद और जनवाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

(३) व्यापकता—चीन निवासी का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक रहा है। वह अपने देश और राष्ट्र की सीमाओं का अतिक्रमण कर विश्व-कल्याण की बात सोचता रहा है। कन्फ्यूशियस का लोकसत्तात्मक शासन-प्रणाली का मत, मेन्सियस का प्रकृतिवाद ओर मोत्सू की विश्वबन्धुत्व की कल्पना चीनी दृष्टिकोण की व्यापकता के प्रमाण हैं।

(४) गुणग्राहिता—चीन-निवासी की गुणग्राहिता इतिहास प्रसिद्ध है। वह गुण का समादर करता है, आभिजात्य अथवा धनाढ्यता का नहीं। उसे जहाँ भी गुण मिलेगा वह उसे ग्रहण कर लेगा। यही कारण है कि वह विदेशीय सभ्यता के सन्देशों की ओर निरपेक्ष न रह सका।

(५) विद्यानुराग—चीनी प्रकृत्या विद्यानुरागी है—यह विद्या चाहे साहित्य की हो, दर्शन की हो, विज्ञान की हो अथवा कला की। युद्धानुराग से विरत चीनी से अपने साहित्य, कला की अभ्युन्नति करके विद्यानुराग की प्रगाढ़ता का जो परिचय दिया है वह समस्त संसार को विदित है। सर राबर्ट हार्ट का कथन यथार्थ है कि 'चीनी गुण की पूजा करते हैं, वे साहित्य से आनन्द प्राप्त करते हैं और प्रत्येक स्थान पर उनकी लघु गोष्ठियाँ होती हैं, जहाँ वे एक दूसरे के निबंधों और कविताओं पर परस्पर विचार व्यक्त करते हैं।' कार्लाइल का कथन है कि 'चीनियों के सम्बन्ध में सबसे रोचक बात यह है कि वे अपने साहित्यिकों को अपना शासक बनाने का प्रयास करते हैं।' इस सत्य में चीनियों की विद्या-मान्यता निहित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चीन की देन—अपनी इन विशेषताओं के कारण ही चीनी सभ्यता में स्थायित्व रहा है। एच० जी० वेल्स के शब्दों में 'आक्रमणकारी और राजवंश आये तथा चले गये, परन्तु चीनी सभ्यता का जीवन-क्रम आज भी अपरिवर्तितरूप में विद्यमान है।' एशिया की इस महान् एवं सुविशाल सभ्यता ने विश्व-सभ्यता के ऊपर अपना अमिट प्रभाव डाला है। अनेक अंशों में आधुनिक सभ्यता चीनी सभ्यता की ऋणी है। जहाँ तक पूर्वी एशिया का प्रश्न है, भारत के अतिरिक्त और किसी भी देश ने इस क्षेत्र में अपनी संस्कृति का प्रभाव इतना अधिक नहीं डाला है जितना कि चीन ने। वी० ए० रेनफ का कथन है कि 'कलाओं साहित्य और दर्शन में सुदूर पूर्व के पास जो कुछ भी है वह लगभग सम्पूर्णतः प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से चीनी प्रतिभा की उपज है।' इस कथन में चीन के साथ यदि हम भारत को भी सम्मिलित कर लें तो वह अधिक सारगर्भ हो जायेगा। जहाँ तक कोरिया और जापान का प्रश्न है वे निश्चितरूप से चीनी सभ्यता से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। इन देशों में अनेक ऐसी कला-कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं जो असन्दिग्ध रूप से चीनी कलाकृतियों की अनुकृति हैं। मध्य एशिया के ऊपर भी चीनी प्रभाव नगण्य नहीं है। यहाँ पर भी उसकी धार्मिक, दार्शनिक एवं कला-सम्बन्धी पद्धतियों का आगमन हुआ था।

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, चीन की दार्शनिक पद्धतियों ने समस्त विश्व को प्रभावित किया है। कन्फ्यूशियस ने लोकसत्ता की प्रतिष्ठा का मत प्रतिपादित करके जिस राजनीतिक शासन-पद्धति को सर्वमान्य बताया था वह आज विश्व के अधिकांश में व्यवहृत है। मोत्सू की विश्वबन्धुत्व की कल्पना तो आज सत्य बनती जा रही है। मेन्सियस के प्रकृतिवाद में आधुनिक युग के कोलाहलमय एवं अतिकार्य-संकुल जीवन की भर्त्सना है।

विशुद्ध आविष्कारों के क्षेत्र में भी आधुनिक विश्व चीन का अत्यधिक आभारी है। चीन ने कागज और मुद्रण का आविष्कार करके मानव को विचार-प्रकाशन एवं विचार-वितरण का एक अमूल्य साधन दिया। यदि आधुनिक संसार के समस्त कागज जला दिये जायँ तो हमारी सभ्यता ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विलीन हो जायेगी। इसी से हम चीन के इस ग्राविष्कार का महत्त्व समझ सकते हैं। पुनः संसार को दिशासूचक यन्त्र (कुतुबनुमा) चीन से ही प्राप्त हुआ। इसने भौगोलिक एवं ज्ञान के विकास और आनुसान्धानिक कार्यों में कितना योग दिया है, यह सर्वविदित है। बारूद का आविष्कार भी चीनियों ने ही किया था। यह अरब-निवासियों के माध्यम द्वारा योरप पहुँचा। चाय तथा चीनी मिट्टी के बर्तन दोनों का आविर्भाव चीन देश में ही हुआ। आज ये दोनों ही सभ्य मनुष्य के सार्वजनिक जीवन की आवश्यक वस्तुयें हैं। रेशम के व्यवसाय का जन्म भी सर्वप्रथम चीन में हुआ था। वहीं से यह संसार के विभिन्न देशों में पहुँचा। इस प्रकार एशिया का यह प्राचीन देश अनेक क्षेत्रों में संसार का शिक्षक रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ११

पारसीक सभ्यता

चैल्डियन सभ्यता में ५३९ ई० पू० में विनाश के पश्चात् मेसोपोटामियन घाटी पर कुर्दिस्तान के आस-पास रहने वाली 'पर्शुआ' (Parsua) नामक जाति का आधिपत्य स्थापित हुआ। इसकी सर्वप्रथम उत्पत्ति शालमेनसीर तृतीय शासक के एक प्रस्तर-पत्र से ज्ञात होती है जिसमें ३७ जातियों के वर्णन के साथ इनका भी नाम आया है। ये लोग बुखारा से होते हुये फारस में आये और उसे अपना स्वर्ग-स्थान (Land of Paradise) बनाया जो आगे चलकर पारसीक इतिहास के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

विश्व-इतिहास में पारसीक इतिहास अपना एक विशेष महत्व रखता है। आधुनिक पारसीक जब पेसारगेडाय और पर्सिपलिस (Persepolis) के क्षीण गुल्मों, जीर्ण प्राचीरों और शीर्ण समाधियों के बीच खड़ा होता है तो अनायास ही उसे अपने उस अतीत की याद आ जाती है जब उसके पूर्वजों ने अपने शौर्य से देश, जाति, भाषा, आचार-विचार, अन्नपान आदि की दुस्तर सीमाओं का अतिक्रमण कर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी तथा उसे संचालित करने के लिये एक निश्चित शासन-प्रणाली का निर्माण किया था, जब उन्होंने- अपनी सुविकसित प्रतिभा से एक ऐसे धर्म का सृजन किया था जो अद्यावधि अन्तर्धार्मिक समष्टि में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है तथा जब उन्होंने अपनी कल्पना से ऐसी कला-कृतियों का निर्माण किया था जो अपने संगठन-सौष्ठव के लिये आज भी सुविदित हैं।

अभी तक सभ्य संसार का इतिहास प्रायः सेमेटिक जातियों का इतिहास था जिन्होंने सूसा (Susa), बेबीलोन (Babylon) और निनेवा (Ninevah) की विशाल राजधानियों की स्थापना कर शतियों तक संसार के एक विशाल भूखण्ड पर राज्य किया। परन्तु पारसीक इतिहास आर्य जाति का इतिहास है।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तरीय प्रदेश से आने वाले कर्मठ एवं बलिष्ठ आर्यों के समक्ष सेमेटिक जाति की प्रतिभा एवं शक्ति मन्द होने लगी और अन्त में पूर्णरूपेण अस्त हो गई। संसार के रंगमंच पर आर्यों का पदार्पण हुआ और दीर्घकालीन आगामी विश्व-इतिहास 'आर्य-इतिहास' के नाम से पुकारा जा सकता है। इस समय हमारा तात्पर्य केवल पारसीक आर्यों से है।

वीरगाथा काल—पारसीकों का प्रारम्भिक इतिहास वीरगाथाओं का इतिहास है। परन्तु यह कहना बड़ा कठिन है कि इनमें वास्तविकता कहाँ तक है। जनश्रुति के अनुसार जमशेद पारसीकों के इस प्राचीन काल का सबसे प्रसिद्ध राजा ठहरता है। कहते हैं कि इसी शूरकर्मा नरेश ने पर्सिपोलिस (Perse-Polis) का निर्माण कराया था और अपने राज्य में अनेक कलाओं को जन्म दिया था। फारस में मदिरा-उत्पादन भी इसी नरेश के शासन-काल से प्रारम्भ हुआ। उसके पश्चात् अन्य अनेक नरेश हुये परन्तु पारसीक चेतना में जो नाम सदैव अजर-अमर रहेंगे वे हैं इस काल के दो वीर पुरुषों—रुस्तम और सोहराब के। अपने शौर्य एवं अद्भुत कर्मों के लिये ये दोनों व्यक्ति पारसीक जनश्रुति में उतने ही लोकप्रिय हैं जितने की भारतीय जनश्रुति में आल्हा और ऊदल।

ऐतिहासिक काल—फारस का ऐतिहासिक काल साखामनीष वंश के उत्कर्ष से प्रारम्भ होता है। हेरोडोटस नामक विद्वान् के कथानुसार प्रारम्भ में फारस में आर्य जातियाँ थीं—पेसारगेडाय (Pasargadae) मेराफियन (Mara-phians) और मैस्पियन (Maspians)। उपर्युक्त साखामनीष वंश इनमें से पहले की ही एक शाखा थी। इसने कालान्तर में अन्य शाखाओं को अपने पराक्रम से पराभूत कर दिया और सबके ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस बलशाली वंश के एक पूर्वज का नाम साखामनीष था। यूनानी एकामेनिस (Achaemenis) के नाम से पुकारते हैं। इसी आदि पुरुष की पुण्य स्मृति में यह वंश इस संज्ञा से प्रख्यात हुआ।

मीडीज़—परन्तु साखामनीष-वंश के इतिहास का अध्ययन करने के पूर्व हमें मीडीज़ नामक एक अन्य जाति का इतिहास जान लेना नितान्त आवश्यक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। यह भी एक इण्डो-योरोपीय (Indo-European) जाति थी जिसने उत्तर से आकर मीडिया पर स्वायत्त स्थापित किया था । इस जाति का सर्व प्रथम ऐतिहासिक राजा डायोसीज था जिसने एकबटना (Ecbatna) को अपनी राजधानी बनाया था। उसका उत्तराधिकार ज़ियाग्ज़ेरीज़ (Gyaxares) था जो अपने पूर्वगामी से भी अधिक शूर और प्रतिभाशाली था। वह जानता था कि तत्कालीन संसार में मीडिया के उत्कर्ष मार्ग में सबसे बड़ा कण्टक था असीरिया। अतः सर्वप्रथम उसने उसी का मान मर्दन करने का निश्चय किया। वह किसी सुअवसर की प्रतीक्षा में ही था कि इसी समय बैबिलोनिया के गवर्नर नेबोपोलासर (Nabopolassar) ने अपने स्वामी असीरिया नरेश के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। कूटनीतिज्ञ ज़ियाग्ज़ेरीज़ (Gyaxares) नेबोपोलासर (Nabopolassar) से सन्धि कर ली। दोनों की सम्मिलित वाहिनी ने असीरिया की राजधानी निनेवा पर आक्रमण किया और उसे ध्वस्त कर दिया। इस विजय से दोनों ही आक्रमणकारियों को लाभ हुआ। असीरिया की धूमिल पृष्ठभूमि पर मीडिया का गौरव प्रज्ज्वलित हो उठा। निनेवा के भग्नावशेषों के ऊपर एकबटना की यशःप्रशस्ति उत्कीर्ण हुई। जिस समय ज़ियाग्ज़ेरीज़ मरा उस समय मीडिया की प्रभुत्व-पताका एलम, सूसा, फारस, एशिया माइनर के कुछ प्रदेशादि पर फहरा रही थी।

परन्तु मीडिया की कीर्ति प्रातः उदित उस नक्षत्र की भाँति थी जो उषा की प्रथम रश्मि के साथ ही तिरोहित हो जाता है। ज़ियाग्ज़ेरीज़ का उत्तराधिकारी एस्टाजेज (Astyges) नितान्त भोगी और सुख-लोलुप था। 'यथा राजा तथा' प्रजा के सिद्धान्त के अनुसार उसका अनुकरण उसकी प्रजा ने किया। परिणामतः तरुणी और वारुणि की आसक्ति में दोनों ही समान रूप से अशक्त हो गये। देश ने चण्डी-पाठ के स्थान पर रति की उपासना प्रारम्भ की। जिन मिडिया-निवासियों के कठोर करों में असि-धार चमकती थी उन्हीं में अब मधु-प्याले हिलोरें लेते थे। आमोद-प्रमोद के इस अथाह उद्वेलन में मीडिया-राष्ट्र की लघु नौका निमज्जित हो गई।

साइरस (Cyrus)—जिस समय मिडिया का सम्पूर्ण राष्ट्र मधुर तन्द्रा में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
आत्मविभोर था उसी समय फारस में एक लौह-पुरुष का उद्भव हुआ जो इतिहास में साइरस के नाम से प्रख्यात है। अभी तक फारस का राज्य मीडिया के अधीन था। साइरस ऐसे महत्वाकांक्षी के लिये यह परतन्त्रता असह्य थी। उसके सौभाग्य से एस्टाजेज़ के कुशासन ने मीडिया को नितान्त निर्बल कर दिया था। अतः साइरस ने बड़ी सुगमता से मीडिया को फारस के अधीन कर लिया। इसी तिथि से फारस का स्वतन्त्र इतिहास प्रारम्भ होता है। इस प्रारम्भिक सफलता ने साइरस की महत्वाकांक्षा को और भी अधिक प्रदीप्त कर दिया। आँखों में साम्राज्यवाद के स्वप्न और मस्तिष्क में उसे स्थापित करने के साधन लिये हुए साइरस ने चतुर्दिक दृष्टिपात किया। उसकी प्रखर दृष्टि सर्वप्रथम लीडिया पर पड़ी। इस समय लीडिया में उसका सर्वशक्तिशाली नरेश क्रोशश (Croeses : ५७० ई० पू० ५४६ ई० पू०) राज्य कर रहा था। अपनी कूटनीति तथा शूरता के सहारे उसने समस्त एशिया माइनर पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। इस सुदृढ़ साम्राज्य की राजधानी सार्डिस थी। इसके अक्षुण्ण रहते हुए पर्सीपोलिस का उत्कर्ष सीमित हो रहता। फारस के विस्तार के लिये लीडिया का विलय आवश्यक था। साइरस ने आक्रमण किया, क्रोशश ने सामना। परन्तु पारसीक उष्ट्र-वाहिनी के समक्ष लीडिया के अश्वारोही उखड़ गये। बहुसंख्यक लीडिया-सैनिक हताहत हुए। विजयोल्लास के साथ साइरस ने क्षत-विक्षत सार्डिस में प्रवेश किया। क्रोशश वीर था और स्वाभिमानी भी। वह पराजय को सहन न कर सका और सपरिवार प्रज्ज्वलित चिता में जलकर आत्मगौरव की रक्षा करने का निश्चय किया। कहते हैं कि इसी समय साइरस वहाँ पहुँच गया और उसने चिता को बुझाकर क्रोशश की प्राण-रक्षा की। अपने वीर शत्रु की स्वाभिमान-भावना से मुग्ध होकर साइरस ने उसे अपनी राजसभा में सादर एक उच्च पद दिया।

लीडिया के पराभाव के साथ निकटवर्ती एशिया माइनर के यूनानी नगर राज्यों का भी पराभव हो गया। उन्होंने भी साइरस की अधीनता स्वीकार कर ली। निकटवर्ती प्रदेश में अब तक केवल बैबिलोनिया का राज्य ही ऐसा था जो अभी तक स्वाधीन था। मीडिया और लीडिया के पश्चात् उसकी बारी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आई। जिस समय देश की रक्षा के निमित्त बैबिलोनिया-निवासियों को एक शूरकर्मा योद्धा नरेश की आवश्यकता थी उस समय भाग्य की विडम्बना से मिला उन्हें पुरातत्व-प्रेमी। जिस समय बैबिलोनिया-नरेश नैबोनीडस(Nabonidus) प्राचीन कला-कृतियों, शिला-खण्डों एवं भग्न गुल्मों को संग्रहीत कर इतिहास के अतीत का निर्माण कर रहा था उसी समय उसके राष्ट्र का वर्तमान रसातल की ओर जा रहा था। राजा की निष्क्रियता प्रायः संक्रामक होती है। नैबोनीडस का अनुकरण कर उसकी प्रजा भी युद्ध-विरत हो गई थी। परिणाम यह हुआ कि जिस समय साइरस ने आक्रमण किया उस समय बैबिलोनिया निवासियों ने स्वयं ही अपनी द्वार-शृंखला खोल दी। ५३८ ई० पू० बैबिलोनिया का सरलता-पूर्वक पतन हो गया।

इसके पश्चात् साइरस ने अपने साम्राज्य का और भी विस्तार किया। उसने पारसीक तुर्किस्तान (Persian Turkistan) पर अधिकार किया और पूर्व में भारतीय सीमा तक अपनी साम्राज्य-सीमा बढ़ाई। अन्त में कैस्पियन प्रदेश की एक अज्ञात जाति (Massagetae) के साथ युद्ध करते हुए इस वीर पुरुष की मृत्यु हुई। उसने अपने भुजबल से एक विशाल साम्राज्य की स्थापना तो की परन्तु मृत्यु ने उसे संगठित करने का समय उसे न दिया।

साइरस का चरित्र—इतिहासकार इमर्सन[१] ने ठीक ही लिखा था कि साइरस विश्व के उन स्वाभाविक शासकों में था जिनके राज्यारोहण पर प्रजा रक्तपात नहीं वरन् पुष्प वर्षा करती है। वह न केवल महत्त्वाकांक्षी शासक एवं कुशल राजनीतिज्ञ था परन्तु अनेकों अमानुषिक गुणों से भी अलंकृत था। आश्चर्य की वस्तु तो यह है कि भविष्य के महान यूनानी नाटककारों ने उसे अपनी कृतियों का अजेय नेता बनाया तथा कहीं-कहीं सिकन्दर महान के समकक्ष भी प्रदर्शित किया है। साइरस एक दुर्दमनीय विजेता एक महत्वाकांक्षी साम्राज्यवादी था। उसने अपनी अनवरत विजयों के परिणाम-स्वरूप असीरिया, बैबिलोनिया, लीडिया

---

१. "He was one of those natural rulers at whose coronation all men rejoice."

—Emersson.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
और एशिया माइनर पर अपनी पताका फहराई। ये समस्त प्रदेश अब एक राजनीतिक सूत्र में बँध गये। रोम-साम्राज्य के पूर्व दारा महान के समय का पारसीक साम्राज्य संसार का सबसे अधिक विस्तृत राजनीतिक संगठन था। इसका शिलान्यास साइरस ने ही किया था। उसके साम्राज्य में अनेक जातियों एवं धर्मों के मनुष्य रहते थे। वह सबके साथ-साथ सहिष्णुता और उदारता का व्यवहार करता था। साइरस जानता था कि एकमात्र शस्त्रबल साम्राज्य को विस्तार तो दे सकता है, परन्तु चिरस्थायित्व नहीं। यही कारण है कि साइरस ने अनावश्यक रूप में कभी कठोरता का प्रदर्शन नहीं किया। पराजित शत्रु के साथ कभी उसने पाशविक व्यवहार नहीं किया। उसने बैबिलोनिया पर विजय प्राप्त की पर उसकी अरक्षित निरीह जनता के ऊपर कोई अनाचार नहीं किया। यहीं नहीं, उसने वहाँ के 'काफ़िर' देवी-देवताओं की पूजा भी की। उसने लीडिया पर अधिकार किया परन्तु उसके राजा क्रोशश को आत्म-हत्या से बचाकर अपनी राजसभा में एक महत्वपूर्ण पद प्रदान किया। उसने अपने अधीनस्थ यहूदियों को यरूसलम लौट जाने की अनुमनि दे दी और उनको वे समस्त सोने और चाँदी की ऐतिहासिक निधियाँ लौटा दीं जिन्हें नेबूशेडेजर यरूसलम के मन्दिर से उठा लाया था। इस प्रकार का उदारतापूर्ण व्यवहार यूनानियों के साथ भी किया गया। वे पराजित हुए, उन्हें कर देना पड़ा तथा पारसीक सेना में भर्ती होना पड़ा। परन्तु उनकी आन्तरिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्वाधीनता पर कोई आघात न किया गया। इस प्रकार साइरस की युद्धप्रियता एवं साम्राज्यवादिता अनावश्यक नरसंहार एवं अधिकार-अपहरण से कलङ्कित न हुई थी।

केम्बीसस—साइरस की मृत्यु के पश्चात् केम्बीसस (Cambyses) ५२८ ई० पू० राज्याधिकारी हुआ इस समय मिस्र अवनत में अवस्था था। राजकीय निर्बलता एवं अकर्मण्यता, पुरोहितों के हस्तक्षेप एवं विशेषाधिकार और धार्मिक अन्ध-विश्वास दिवसानुदिवस मिस्र को अशक्त कर रहे थे। उसके अधीनस्थ देश —लीबिया, इथिओपिआ और असीरिया आदि—स्वतन्त्र हो चुके थे। ऐसी परिस्थिति से फारस ने भी लाभ उठाया। ५२५ ई० पू० केम्बीसस ने स्वेज पार किया और मिस्र पर अधिकार प्राप्त कर लिया। केम्बोसस के जीवन को यह

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम और साथ ही साथ अन्तिम सफलता थी । वह स्वभाव में अपने पूर्वगामी साइरस से नितान्त प्रतिकूल था । उसने सहिष्णुता एवं उदारता की नीति का परित्याग कर दिया । विदेशी देवी-देवताओं की आराधना तो दूर रहा, उसने अप्रच्छन्नरूप से उनका उपहास करना आरम्भ किया । अनेक देवालयों की पवित्रता नष्ट कर दी गई तथा बहुसंख्यक प्रतिमायें खंडित कर दी गईं । इसने अपने शासनकाल में अनेक कार्य ऐसे किये जिनसे इसके असन्तुलित मस्तिष्क का परिचय मिलता है । इसने अपने राज्यकाल का श्रीगणेश अपने भाई स्मर्डिस की हत्या से किया । कालान्तर में इसने अपनी स्त्री और अपने पुत्र को भी जीवन मुक्त कर दिया । आवेश में आकर एक बार इसने बारह प्रमुख पारसीक सामन्तों को जीवित ही पृथ्वी के भीतर समाधिस्थ करा दिया । यही नहीं, क्रोध में इसने चिरसम्मानित क्रोशश को भी मृत्युदण्ड दिया । कुछ काल पश्चात् यह जानकर कि अभी तक उसके पदाधिकारियों ने उस दण्ड को कार्यान्वित नहीं किया है, वह अत्यन्त हर्षित हुआ; परन्तु दूसरे ही क्षण उसने उन पदाधिकारियों की हत्या कर डाली जिन्होंने राजाज्ञा पालन करने में विलम्ब किया था । स्पष्ट है कि ऐसे असंयत एवं अप्रगल्भ व्यक्ति का शासन दीर्घकालीन नहीं हो सकता था । एक बार फारस में उसकी अनुपस्थिति से लाभ उठाकर सामन्तों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और एक अन्य व्यक्ति को सिंहासनासीन किया । उस समय से केम्बीसस ऐतिहासिक रङ्गमंच से सदैव के लिये विलीन हो गया । उसका कैसे अन्त हुआ—यह आज भी हमारे लिये एक पहेली है ।

दारा—कुछ समय तक सिंहासन के लिये युद्ध चलता रहा और जब फारस में शान्ति की स्थापना हुई तो हम उसके सिंहासन पर फारस के सबसे महान् सम्राट् दारा को आसीन पाते हैं । इस सम्राट का शासन रक्तपात से प्रारम्भ हुआ । प्रारम्भिक अशान्ति से लाभ उठाकर दूरस्थ प्रदेशों ने स्वधीनता प्राप्त करने की चेष्टा की । मिस्र, लीडिया, बैबिलोनिया, मीडिया, असीरिया, आरमीनिया इत्यादि ने विद्रोह कर दिया । परन्तु दारा कोई सामान्य व्यक्ति न था जो इन संकटों के समक्ष घुटने टेक देता । वह ऐसी धातु से बना था जो संघर्षण से और अधिक प्रदीप्त होती है । सर्वप्रथम उसने बैबिलोनिया पर आक्रमण किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और दीर्घकाल के घेरे के पश्चात् उस पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात उसके ३,००० प्रमुख नागरिकों का सामूहिक वध करके उसने वैर-शोधन किया। इस रक्तिम प्रतिशोध की स्मृति दीर्घकाल तक उसके विस्तृत साम्राज्य में विद्रोह की भावना को हतोत्साह करती रही। इसी प्रकार का क्रूर दमन अन्य विद्रोही प्रदेशों में भी किया गया और एकानुएक वे पुन: अधीन बना लिये गये।

परन्तु इस चतुर्दिक विद्रोह से दारा ने फारस के विशाल साम्राज्य के अस्थिर एवं अनिश्चित रूप को देख लिया था। वह समझ गया था कि इसका आधार कितना निर्बल है। भय और आतङ्क निर्बल सूत्र हैं जो किसी भी समय टूट सकते हैं। वे विशाल साम्राज्य को दीर्घकाल तक बाँधे नहीं रख सकते। अतः दारा ने अपने युद्ध-किरीट और शरीर-त्राण का उन्मोचन कर और उनके स्थान पर एक ऐसे उपादान का प्रयोग किया जो उसके विशाल साम्राज्य के विभिन्न एवं सुदूरस्थ प्रान्तों को सङ्गठन-रज्जु में बाँध सके। यह उपादान था उसकी नवीन शासन-योजना। उसने अपनी शासन-योजना की जो रूप-रेखा निर्धारित की थी वह रोम-साम्राज्य के उदय तक अनेक दोषों के रहते हुए भी संसार के एक विशाल भूखण्ड के लिये आदर्श बनी रही। इस व्यवस्था के अन्तर्गत पारसीक साम्राज्य को जो शान्ति और समृद्धि उपलब्ध हुई वह अभूतपूर्व थी। इतिहासकार विल ड्यूरेन्ट ने तो उसकी समृद्धि की तुलना रोमन शासक ट्रोजन हेड्रियन एवं एन्टोनाइन से किया है।[१]

अपने साम्राज्य को संगठित करने के पश्चात् दारा ने पुन: शस्त्र ग्रहण किये और अद्यावधि अपराभूत थ्रेस (Thrace) के ऊपर आक्रमण किया। यह आक्रमण सफल हुआ और सम्पूर्ण थ्रेस एवं मेसिडोनिया उसके अधिकार में आ गये। तत्पश्चात् उसने अफगानिस्तान पार किया और अपने साम्राज्य की पूर्वी सीमा सिन्धु नदी तक विस्तृत की।

---

१. "Under Darius the Persian Empire was an achievenment in political organization only Trajan, Hadrian and the Antonine would equal it."

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पारसीक-यूनानी युद्ध—इस समय के पश्चात् यदि दारा शान्त हो जाता, अपनी आक्रमण-नीति का परित्याग कर देता तो संसार में कदाचित् वह अजित एवं अजेय दारा के नाम से प्रख्यात होता। परन्तु नियति को कुछ और ही अभीष्ट था। उसने एक ऐसे युद्ध का श्रीगणेश किया जो उसके पराभव का कारण बना। यह युद्ध था पारसीक-यूनानी युद्ध—उसके जीवन का अन्तिम, आक्रमण और प्रथम पराजय। कहते हैं कि इस विनाशकारी युद्ध की प्रेरणा उसे अपनी स्त्री से मिली थी। नारी के प्रसाद के लिये पुरुष ने फिर एक बार आत्म-विनाश का अभिनय किया। इस आक्रमण का कारण राजनीतिक भी हो सकता है। यूनानी स्वतन्त्र नगर-राज्य पश्चिमी एशिया में पारसीक साम्राज्य के लिये घातक हो सकते थे। किसी भी समय वे संघीभूत होकर वहाँ विद्रोह कर सकते थे। अतः दारा उनके दमन के लिये किसी बहाने की प्रतीक्षा में था। शीघ्र ही यह बहाना उपलब्ध हो गया। यूनानी संसार में आयोनिया ने विद्रोह किया। एथेन्स और स्पर्टा ने विद्रोही की सहायता की। बस, फिर क्या था। दुर्धर्ष दारा की प्रतिशोध-भावना प्रज्ज्वलित हो उठी। उसने समस्त यूनानियों से सामूहिक आत्म-समर्पण की माँग की। बहुतों ने घुटने टेक दिये। परन्तु एथेन्स और स्पार्टा की वीर-परम्परा के लिये विदेशी की यह धृष्टता असह्य थी। उन्होंने पारसीक आह्वान स्वीकार किया। परिणामतः विशाल पारसीक साम्राज्य और लघु यूनानी राज्य एथेन्स में जो युद्ध हुआ वह विश्व इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। मरेथान के युद्ध में संसार के विस्मय-विस्फारित नेत्रों के समक्ष दारा महान् की विशाल वाहिनी अत्यल्प-संख्यक यूनानियों के द्वारा पराजित हुई। इस युद्ध में यूनानियों ने जिस अपार बलिदान और आत्मोत्सर्ग का परिचय दिया वह आज भी संसार में एक विस्मय की कहानी है। यह युद्ध यूनानी इतिहास का राष्ट्रीय गौरव है।

युद्ध के परिणाम—(१) मरेथान के युद्ध ने एथेन्स की ही नहीं वरन् समस्त यूनान की रक्षा की। यदि एथेन्स पराजित हो जाता तो यूनानियों का गरिमा अङ्कुरित होने के पूर्व ही जर्जरित हो जाती। उसकी स्वातन्त्र्य प्राण शासन-पद्धति, संस्कृति एवं सभ्यता फारस के निरङ्कुश एकतन्त्रवाद के दुर्वह भार से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
जीर्ण-शीर्ण हो जाती।

(२) तत्कालीन संसार पारसीक वाहिनी को अजेय समझे बैठा था। परन्तु मरेथान-युद्ध में क्षत-विक्षत पारसीक सैनिकों के शोणित के साथ उसका अजेयता सदैव के लिये बह गई।

(३) पारसीक अपकर्ष के साथ यूनानी उत्कर्ष प्रारम्भ हुआ। पारसीक मर्सिये के साथ-साथ यूनानियों के यशोगीत प्रारम्भ हुए।

जरक्सीज—पराभूत दारा की शीघ्र ही मृत्यु हो गई और उनका पुत्र राज्याधिकारी हुआ। वह फारस का सबसे अधिक सुन्दर व्यक्ति था और साथ ही सबसे बड़ा विलासी भी। जिस समय उसके मृतक पिता की सन्तप्त आत्मा तथा पारसीकों की दंशित प्रतिष्ठा मरेथान की पराजय के प्रतिशोध की माँग कर रही थी उस समय जरक्सीज (Xerxes) विलास के तुमुलनाद से बधिर होकर आमोद-प्रमोद में ही अपने जीवन की सार्थकता ढूँढ़ रहा था। ऐसा व्यक्ति राष्ट्रीय पुनरुत्थान के कार्य के लिये सर्वथा अयोग्य था। पहले तो वह निष्क्रिय रहना चाहता था, परन्तु अन्त में लोक-मत से प्रेरित होकर उसने तलवार ग्रहण की। प्रगाढ़ विलासिता ने उसकी धार को कुण्ठित कर दिया था। जरक्सीज दीर्घकालीन युद्ध का संचालन न कर सकता था। परन्तु प्रारम्भ में भाग्य ने उसका साथ दिया। थर्मापली के दर्रे में पारसिकों और यूनानियों का प्रथम युद्ध हुआ। राजपूत-इतिहास में जो महत्व हल्दीघाटी का है वही यूनानी इतिहास में थर्मापलो का है। यहाँ अल्पसंख्यक यूनानियों ने जिस शौर्य और साहस से बहु-संख्यक पारसीकों का सामना किया वह इतिहास में एक रोमांचकारी घटना है। जब तक एक भी यूनानी जीवित रहा तब तक पारसीक सेना इस दर्रे से एक इंच भी आगे न बढ़ सकी। गौरवमयी मृत्यु के पुजारियों में स्पार्टा नरेश भी था जितने प्राणों का मूल्य चुकाकर अपनी तथा देश की प्रतिष्ठा को रक्षा की थी। अन्त में पारसीकों की विजय हुई। परन्तु यह विजय शौर्य की नहीं वरन् संख्या की विजय थी। यूनानियों की पराजय पारसीकों की इस विजय से कहीं अधिक गौरवपूर्ण थी।

इस सम्मानपूर्ण पराजय ने यूनानियों के शरीरों में प्राण फूंक दिये। अपनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वतन्त्रता को अक्षय रखने के लिये यूनानियों ने सब कुछ दाँव पर लगा दिया। जरक्सीज ने एथेन्स पर आक्रमण किया। बहुसंख्यक पारसीक वाहिनी के विरुद्ध विजय की कोई आशा न देखकर यूनानियों ने एथेन्स का परित्याग कर दिया। जिस समय जरक्सीज ने उसमें प्रवेश किया उस समय उसने उसे नितान्त शून्य, निस्तब्ध और निर्जन पाया। उसका विजयोल्लास विजय नगर के विशाल प्राचीरों से टकराकर चकनाचूर हो गया। जरक्सीज प्रतिहिंसा की भावना से प्रज्ज्वलित हो उठा। अपने अन्तर-दाह को शान्त करने के निमित्त उसने नगर को दग्ध करवा दिया इस प्रकार मरेथान की पराजय को प्रतीकार किया गया।

परन्तु इसके पश्चात् भाग्य ने करवट ली। यूनानियों का सुदीर्घ आत्मोत्सर्ग सालमीज (Salamis) के समुद्री युद्ध में पुरस्कृत हुआ। पारसीक जलपोत इतने विशाल और मन्दगति थे कि यूनानी लघुपोतों ने इन्हें घेरकर एक-एक करके नष्ट कर दिया। पारसीकों की गौरव-गरिमा सालमीज (Salamis) के जल में निमज्जित हो गई। इसके पश्चात् द्विगुणित उत्साह के साथ स्पार्टा और एथेन्स की सम्मिलित वाहिनी ने पारसीकों को प्लेटा (Plataea) और माईकेल (Mycale) के युद्धों में परास्त किया। इन यूनानी विजयों ने फारस की कमर तोड़ दी। उसने अपनी पताका झुका ली।

पारसीक पराजय के कारण :

(१) यूनान की दूरस्थता—यूनान पर आक्रमण करने के हेतु पारसीकों को दुर्गम मार्गों का अतिक्रमण करना पड़ता था। उसकी आधी शक्ति तो मार्गीय संकटों से संघर्ष करने में ही व्यय हो जाती थी। पुनः यातायात के साधनों को सुरक्षित रखना भी दुष्कर था। उनके नष्ट हो जाने के न तो खाद्य-सामग्री और न सैनिक सहायता ही पहुँच सकती थी।

(२) पारसीक सेना में एकता न थी। उसमें अनेक जातियों, आकृतियों, भाषाओं और रण-विधियों के मनुष्य सम्मिलत थे। वास्तव में उसके लिये सेना की संज्ञा अनुपयुक्त है। वह विभिन्न मनुष्यों का संगठन-विहीन समुदायमात्र था।

(३) पारसीक सैनिक किराये के टट्टू थे। युद्ध में उनका कोई उच्च ध्येय न था। या तो वे राजाज्ञा का पालन करते हुए विवशतावश युद्ध करते थे या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एकमात्र धनोपार्जन के हेतु। इनके विरुद्ध यूनानियों के लिये यह युद्ध जीवनमरण का प्रश्न था। इसी के परिणाम पर उनके जीवन, शासन संस्कृति आदि का भविष्य निर्भर था। यही कारण है कि उनकी उद्देश्य-शीलता ने उनके प्रयत्नों में अदम्य उत्साह भर दिया था।

पारसीक साम्राज्य की अवनति के कारण

जरक्सीज़ का सम्पूर्ण शासन असफलता एवं अयोग्यता की कहानी है, नैतिक पतन की गाथा है। बारह वर्ष तक शासन करने के पश्चात् वह अपने ही एक दरबारी के द्वारा मार डाला गया। उसके पश्चात् राजसिंहासन के निमित्त हत्यायें और प्रतिहत्यायें प्रारम्भ हुईं। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का बध कर सिंहासन प्राप्त करता, पर अल्पकाल के पश्चात् वह स्वयं किसी की तलवार का लक्ष्य बनता और इस प्रकार सिंहासन तीसरे व्यक्ति के हस्तान्तरित हो जाता। इसी प्रकार हत्याओं, षड्यन्त्रों और भ्रष्टाचार की कहानी चलती रही। इस वंश का अन्तिम राजा दारा तृतीय था जो आरबेला (Arbela) के युद्ध में सिकन्दर महान् द्वारा ३३१ ई० पू० मारा गया। उसके साथ साखामनीष वंश की इति हो गई। सिकन्दर ने पर्सीपोलिस को भस्मसात् कर एथेन्स के विनाश का प्रतिकार किया।

इस प्रकार साइरस और दारा के द्वारा निर्मित पारसीक साम्राज्य अनुगामी निर्बल एवं अयोग्य नरेशों के द्वारा विनष्ट कर दिया गया।[१]

(१) विभिन्नता—पारसीक साम्राज्य विभिन्न राज्यों का एक विशाल समुदाय था। ये राज्य जाति, आकृति, भाषा, आचार-विचार, संस्कृति सभ्यता में एक दूसरे से नितान्त पृथक् थे। अतः निश्चित था कि वे दीर्घकाल तक एक राजनीतिक संगठन में नहीं रह सकते। पारसीक नरेशों में से किसी ने भी कभी ऐसे साधन का प्रयोग न किया था जो इस सर्वतोमुखी विभिन्नता को स्थायी एकता का रूप प्रदान कर सकता। परिणामतः साम्राज्य के अंग—विभिन्न

---

१. Cyrus and Darius created Persia, Xerxes inherited it and his successors destroyed it.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य—अपने को विदेशीय समझते थे और सदैव अपनी स्वतन्त्रता स्थापित करने के निमित्त सचेष्ट रहते थे।

(२) **केन्द्रीय दौर्बल्य**—इस प्रकार के शिथिल संगठन का एक मात्र आधार शस्त्रबल था। जब तक केन्द्रीय सत्ता शक्तिशालिनी रही तब तक यह संगठन चलता रहा। परन्तु उसके दुर्बल होते ही साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया। जैसा कि पीछे कहा गया है, दारा महान् के अनुगामी नरेश अत्यन्त निर्बल थे। उनके समय में पारसीक साम्राज्य दिवसानुदिवस क्षीण एवं संकीर्ण होता गया और अन्त में पूर्णरूपेण विकीर्ण हो गया।

(३) **प्रान्तीय शासकों का अत्याचार**—पारसीक शासन-योजना के अन्तर्गत प्रान्तों के शासन-संचालन निमित्त प्रान्तीय शासक थे। इनके ऊपर अनेक प्रकार के अंकुश थे, तथापि अपने आन्तरिक विषयों में ये बहुत-कुछ स्वच्छन्द थे। जब तक ये अपने सम्राट् को नियत धन-जन की सहायता देते रहते थे तब तक सम्राट् इनके आन्तरिक शासन-कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता था। अतः बहुधा ये प्रान्तीय शासक अपनी स्वाधीनता का दुरुपयोग भी करते थे और प्रजा का शोषण करते थे। अतः जन-मत पारसीज साम्राज्य के विरुद्ध हो गया था।

(४) **उत्तराधिकार के हेतु संघर्ष**—जरक्सीज के पश्चात् उत्तराधिकार के प्रश्न का हल बहुधा हत्याओं और षड़यन्त्रों से होने लगा। परिणाम-स्वरूप चतुर्दिक अशान्ति का वातावरण छा गया। राज्य की स्थिरता जाती रही। देश का धन-जन अरक्षित हो गया। नित्यपति के पारस्परिक युद्धों में देश के शूरकर्मा मारे गये। जो शेष रहे वे नितान्त कायर, भीरु और चाटुकार थे। उनसे देश के उत्थान की आशा दुराशा-मात्र थी। सिकन्दर के विरुद्ध द्वारा तृतीय ने जो सेना खड़ी की थी वह का पुरुषों का समुदाय थी जो राष्ट्रीय गौरव की अपेक्षा अपने प्राणों की रक्षा के निमित्त अधिक चिन्तित थी।

(५) **असंगठित सैन्यबल**—पारसीक साम्राज्य का सर्वप्रधान आधार सैन्यबल था, परन्तु वही सबसे अधिक असंगठित था। जैसा कि पीछे कहा गया है, उसमें भिन्न-भिन्न देशों, जातियों और भाषाओं के सैनिक सम्मिलित थे। इनके आयुध, इनका सैन्य-संचालन, इनकी युद्ध-प्रणाली, सभी कुछ एक दूसरे से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिन्न थे। अतः यह सेना युद्ध-भूमि में एक संगठन विहीन समुदाय के समान व्यवहार करती थी। यही कारण है कि सिकन्दर महान् के संगठित द्रुतगामी अश्वारोहियों के समक्ष क्षण भर में इसके पैर उखड़ गये।

(६) **नैतिक पतन**—दारा के पश्चात् का पारसीक अपने पूर्वजों से नितान्त भिन्न था। सरलता और साधना के कठोर जीवन का परित्याग कर वह विलासिता का प्रतीक बन गया था। बात यह थी कि साम्राज्य-काल में फारस अति समृद्धिशाली हो गया था। अब चतुर्दिक समृद्धि का दुरुपयोग प्रारम्भ हुआ। अति धन ने फारस को विलासप्रिय बना दिया। वह रणचण्डी को भूलकर रति की आराधना में लीन हो गया।

(७) **यूनानियों से युद्ध**—यूनानियों के विरुद्ध मरेथान (Marathon) सालमीज (Salamis), प्लेटा (Plataea) और माइकेल (Mycale) के युद्धों ने पारसीक साम्राज्य की कमर तोड़ दी। धन-जन को अपारक्षति से भी बड़ी जो क्षति हुई वह थी नैतिकता को, आत्मविश्वास की। इन पराजयों ने पारसीक अजेयता को खर्व कर दिया। इन युद्धों ने निश्चितरूप से घोषित कर दिया कि पारसीकों का नक्षत्र अस्तप्राय हैं, उनके गौरव का अन्त समीप है और उनके स्थान पर यूनानियों का उत्कर्ष अवश्यम्भावी है। यही हुआ। सिकन्दर के रूप में कुशल नेतृत्व पाकर यूनान ने अपने पुरातन बैरी फारस के ऊपर आघात किया और उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। इतिहास ने दूसरी करवट ली।

शान्ति पक्ष—प्रत्येक देश के इतिहास में दो पक्ष होते हैं—(१) संघर्ष पक्ष और (२) शान्ति पक्ष। हमने अभी तक संघर्ष पक्ष पर विचार किया और देखा कि किस प्रकार पारसीक साम्राज्य की स्थापना, विकास और विनाश हुआ। अब हम उसके शान्ति पक्ष पर विचार करेंगे। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं दैनिक जीवन की सम-विषम घटनायें राजनीतिक क्रान्तियों की भाँति न तो हमारी इतिहास-पुस्तकों में रक्तिम पंक्तियों से ही लिखी जाती हैं और न सैनिक अभियानों की भाँति प्रतिध्वनित ही होती हैं, परन्तु विश्व के सांस्कृतिक इतिहास में उनका अपना महत्व है। अतः अब हम इसी शान्ति पक्ष के विभिन्न अंगों पर विचार करेंगे। इस क्षेत्र में फारस साम्राज्य के विविध संगठनों,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्थाओं, यम-नियमों एवं जीवन के बहुमुखी प्रसंगों का समावेश है।

राजा—फारस के विशाल साम्राज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी राजा था। सैद्धान्तिक रूप से वह सर्वसत्ताधारी था। उसका वाक्य लिखित अधिनियम की गरिमा रखता था। उस समय तक लोक-मत का संगठित रूप से उदय न हुआ था। अतः वह बिना कारण बताये ही किसी भी व्यक्ति को कारावास अथवा मृत्यु का दण्ड दे सकता था। उसकी सत्ता असीम थी। उच्चातिच्च सामान्त भी उनकी कटु आलोचना न कर सकता था। वह पूर्णरूपेण स्वच्छन्द एवं अनियन्त्रित था। राजा अपने आमोद के लिये किसी युवा को अपने वाण का लक्ष्य बनाता तो उसके पिता को राजा के हस्तलाघव की प्रशंसा करनी पड़ती। कभी पिता की खाल खींची जाती और उसी की बनी हुई कुर्सी पर उसके पुत्र को बैठना पड़ता। राजा ही देश का सर्वोच्च सेनापति और न्यायाधीश था। परन्तु इतना होते हुए भी व्यावहारिक रूप में राजा के अधिकारों पर कुछ अंकुश थे—

(१) राजकीय कार्यों में उसे राजसामन्तों से परामर्श लेना पड़ता था। तत्कालीन फारस में राजसामन्तों के छः प्रमुख वंश थे। इन्हीं वंशों के प्रतिनिधि राजकार्य में परामर्शदाताओं का कार्य करते थे। देश में ये सामन्त अत्यन्त सम्मान्य थे और साधारणतया राजा इनके मत की उपेक्षा न करते थे।

(२) राजा को अपने देशीय विधि-विषेधों, कौटुम्बिक प्रथाओं और सामाजिक रीतियों का पालन करना पड़ता था।

(३) उसे अपने वचन का पालन करना पड़ता था। पारसीक समाज में वचन-रक्षा और सत्य-भाषण का विशेष महत्व था। राजा इनमें अपवाद न था।

उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्टतया ऐसी स्थिति की कल्पना की जा सकती हैं जब सिद्धान्त और व्यवहार में संघर्ष उपस्थिति हो। वास्तव में प्रत्येक देश के संविधान में ऐसी सम्भावना अन्तर्निहित रहती है। इस प्रकार के संघर्ष का हल बहुत-कुछ शासक की व्यक्तिगत क्षमता पर निर्भर करता है। यही बात फारस के विषय में भी सत्य है। वहाँ ऐसे राजा हुए जो अधिकारों के रहते हुए भी उदार, सहिष्णु और अविरोधी थे और ऐसे भी जो नियन्त्रणों एवं अंकुशों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
के रहते हुए भी अत्याचारी और अतिवादी थे।

राजसभा—पारसीक नरेश ने एक विशाल राजसभा आयोजित की थी। इस राजसभा में सबसे अधिक आकर्षक स्वयं नरेश था। धरावाही राजवस्त्रों को धारण किये हुए वह एक उच्च एवं भव्य स्वर्णजटित सिंहासन पर बैठता था। कुंडल, बाजूबन्द, स्वर्णमेखला आदि आभूषणों से उसका शरीर अलंकृत रहता और उसके हाथ में रहता था उसकी अनियन्त्रित सत्ता का प्रतीक राज-दण्ड। उसके पीछे दो चवँरधारी होते थे और चतुर्दिक सेनापति, सामन्तों, अङ्ग-रक्षकों, गुप्तचरों आखेटकों, दूतों, प्रतिहारों और संगीतज्ञों का विशाल समुदाय रहता था। यूनानी लेखों से प्रकट होता है कि पारसीक नरेश प्रतिदिन अपनी राजकीय पाठशाला से १५,००० सभासदों को भोजन कराता था। भोजन-सामग्री में अन्य खाद्यान्नों एवं पेयों के साथ-साथ भेड़, बकरी, ऊँट, बैल, घोड़े, गदहे आदि विविध पशुओं का स्वादिष्ट मांस भी रहता था। इस प्रकार यह विशाल सभा राजकीय कोष के लिये एक भारी भार थी।

सामन्त वर्ग—फारस की शासन-व्यवस्था सामन्तवादी थी। राज्य में छः प्रमुख राज-सामन्त वंश थे। जैसा की पीछे कहा गया है, ये सामन्त राज्य में समिति के रूप में कार्य करते थे और राजकीय विषयों में राजा को परामर्श देते थे। राज्य की ओर से इन्हें अनेकानेक विशेषाधिकार प्राप्त थे। इनके पास बड़े-बड़े भूमिखंड थे जहाँ ये छोटे-छोटे राजाओं की भाँति शासन करते थे, कर लगाते थे, न्याय करते थे और अपनी सेनायें रखते थे। इन समस्त विशेषाधिकारों के बदले इन्हें राजा को धन-जन की सहायता करनी पड़ती थी। सामन्त-वाद का आधार पारस्परिक आदान-प्रदान है।

सेना—पारसीक विशाल साम्राज्य सेना पर निर्भर था। जैसा कि एक विद्वान् विलड्यूरेण्ट का तीखा कथन है, 'साम्राज्य तभी तक स्थिर रह सकता है जब तक उसमें सामूहिक बध करने की सर्वोच्च शक्ति हो।' यह सर्वोच्च शक्ति सेना से ही मिलती है। पारसीक सेना का केन्द्र-बिन्दु राजकीय अंग-रक्षक दल (Royal Body-Guard) था। इसमें २,००० पदाति और २,००० अश्वारोही थे। इस दल के अतिरिक्त १०,००० सैनिकों का एक दल और था जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी रक्तशुद्धता और वीरता के कारण 'अमर दल' (Immortals) के नाम से प्रख्यात था। इसमें केवल मीडीज़ और पारसीकों को ही स्थान प्राप्त था। बस, यही दो दल फारस की स्थायी सेना थे। अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये राजा भिन्न-भिन्न प्रान्तों के शासकों से सैनिकों की सहायता लेता था। इसके अतिरिक्त युद्ध-काल में अनिवार्य भर्ती होती थी। जिसके अनुसार १५ वर्ष से ५० वर्ष की आयु के प्रत्येक व्यक्ति को सेना में भरती होना पड़ता था। इस नियम से बचने का मार्ग केवल मृत्यु था। उदाहरणार्थ, अपने दो पुत्रों को युद्ध ने भेजने के पश्चात् एक वृद्ध ने अपने तीसरे पुत्र को अनिवार्य सैनिक सेना से मुक्त कराने के लिये दारा से प्रार्थना की। दारा ने प्रार्थना सुन ली और उदारता-प्रदर्शन के रूप में उसके तीनों पुत्रों की हत्या करवा दी। इसी प्रकार अपने चार पुत्रों को सेना में भरती कराने के पश्चात् एक अन्य वृद्ध ने जरक्सीज से अपने पाँचवें पुत्र को अपने अवलम्ब के निमित्त घर पर रहने की विनती की। इस पर उस पुत्र के शरीर के दो भाग कर डाले गये और सेना के प्रयाण-मार्ग के दोनों ओर रख दिये गये। जिससे उन्हें देखकर अन्यान्य मनुष्य भविष्य में अनिवार्य सैनिक सेवाओं से मुक्त होने का दुस्साहस न करें। अस्तु, इस प्रकार के आतंक-पूर्ण नियमों से राजा को संख्या तो मिल जाती थी, परन्तु वीरता और अनु-शासनशीलता का बहुधा अभाव रहता था।

जैसा कि पहले बताया गया है, भिन्न-भिन्न प्रान्तों से एकत्र की गई पारसीक सेना में भिन्न-भिन्न जातियों, भाषाओं और रीति-रिवाजों के व्यक्ति सम्मिलित थे। इनकी वेश-भूषा, इनके अस्त्र-शस्त्र और इनकी युद्ध-पद्धति एक-दूसरे से भिन्न थी। परिणामतः सम्पूर्ण सेना में अनुशासन का अभाव था। सैनिकों के प्रमुख आयुधों में धनुष-बाण, बर्छी-भाले और तलवार विशेष उल्लेखनीय हैं।

स्थल-सेना के अतिरिक्त पारसीकों के पास जलपोत भी थे जो युद्ध और व्यापार दोनों के लिये प्रयुक्त होते थे। ये पोत प्रायः बड़े होने के कारण मन्द-गति होते थे। यही कारण है कि सालमीज के जल-युद्ध में यूनानियों के द्रुत-गामी लघु पोतों का सामना वे न कर सके और सब के सब नष्ट कर दिये गये।

न्याय विभाग—पारसीक कल्पना में राजा राष्ट्रीय देवता अहुर-मज्दा का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संसार में प्रतिनिधि था। अतः राजकीय व्यवस्था दैवी व्यवस्था थी। राजा का विरोध देवता का विरोध था जिसका प्रायश्चित्त केवल मृत्यु था। दैवी प्रतिनिधि होने के कारण राजा राष्ट्र का सर्वोच्च न्यायालय भी था। उसके विरुद्ध न तो कोई कानून था और न नज़ीर। मनुष्य का धन-जन उसकी कृपा पर था। वह उसका भाग्य-विधाता था।

राजा के नीचे एक न्यायालय होता था जिसमें सात न्यायाधीश रहते थे। उसके नीचे अन्य स्थानीय न्यायालय थे जो साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में न्याय करते थे।

राजकीय व्यवस्था पुरोहित-व्यवस्था थी। प्रारम्भ में पुरोहित ही न्यायाधीश हुआ करते थे। परन्तु कालान्तर में अन्य वर्ग के मनुष्य भी न्यायाधीश पद पर नियुक्त होने लगे। यत्र-तत्र महिला-न्यायाधीशों के उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं। अभियोग पर विचार करते समय न्यायाधीश अभियुक्त के भूतकालीन चरित्र पर भी विचार करता था। प्रारम्भ में न्याय-व्यवस्था सरल थी, परन्तु जैसे-जैसे उनका विकास होता गया वैसे ही वैसे वह जटिल होती गई। उसमें ज़मानत, पैरवी आदि आधुनिक संस्थाओं का भी प्रादुर्भाव हो गया। परन्तु गम्भीर अभियोगों में जमानत न होती थी। पैरवी वकीलों द्वारा की जाती थी। प्रायः प्रत्येक अभियोग के निर्णय के हेतु कालावधि निर्धारित कर दी जाती थी।

फारस की न्याय-व्यवस्था अति कठोर थी। राजद्रोह भयंकर अपराध समझा जाता था। पकड़े जाने पर राजद्रोही पंक्तिबद्ध खड़े किये जाते थे। उनके हाथ और सिर एक साथ एक लम्बे लट्ठे में बाँध दिये जाते थे और इसी रूप में वे राजसभा में उपस्थित किये जाते। वहाँ पर उनके नाक-कान काट लिये जाते थे और सब मनुष्यों को दिखाये जाते थे। इनके पश्चात् वे अपने-अपने प्रान्तों में भेज दिये जाते थे जहाँ उन्होंने विद्रोह किया था और वहीं पर उनकी हत्या की जाती थी। राजद्रोह के समान हत्या और बलात्कार के अपराधों में भी मृत्यु-दण्ड मिलता था। यही नहीं कभी-कभी अपेक्षाकृत लघु अपराधों में भी इसी दण्ड का विधान था। पारसीक न्याय व्यवस्था की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कठोरता के प्रदर्शनार्थ हमें अनेक दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। सिसैम्नीज एक न्यायाधीश था। एक बार उसने उत्कोच ग्रहण कर अनीतिपूर्वक न्याय किया। इसका पता लग गया और केम्बीसस (Cambyses) ने उसे मृत्यु-दण्ड दिया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके शरीर की त्वचा निकाली गई और उससे वह कुर्सी मढ़वाई गई जिस पर बैठ कर उसने अन्यायपूर्ण न्याय किया था। केम्बीसस ने सिसैम्नीज के पुत्र को उसके स्थान पर न्यायाधीश बनाया और उसे उसी कुर्सी पर बैठने के लिये बाध्य किया जिससे उसे सदैव राजकीय विधान की कठोरता का स्मरण रहे और वह कभी अपने पिता के समान कोई अनाचार न करे। कभी-कभी अपराधी के साथ उसका निरीह परिवार भी मारा जाता था। इस प्रकार पारसीक निरंकुशवाद बहुधा नृशंसता-द्वारा संचालित होता था।

प्रान्तीय शासन—विशाल पारसीक साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था। इनकी संख्या समय-समय पर २० से २८ तक थी। सम्राट् को सदैव प्रान्तीय विद्रोहों का भय लगा रहता था। इनकी सम्भावना को दूर करने के लिए दारा महान ने 'शक्ति-विभाजन' नीति का अवलम्ब लिया। किसी एक व्यक्ति के हाथ में प्रान्तीय सत्ता केन्द्रीभूत न हो जाय, इस भय से उसने प्रत्येक प्रान्त में एक सत्ताधारी अधिकारी के स्थान पर तीन पदाधिकारी नियुक्त किये। ये एक-दूसरे से स्वतन्त्र थे। और सम्राट् के द्वारा नियुक्त होने के कारण उसी के प्रति उत्तरदायी थे। एक ही स्थान पर समानाधिकारों के साथ तीनों का स्वतन्त्र अस्तित्व कलहमूलक था। परन्तु व्यवस्थाकार भी तो यही चाहता था कि परस्पर द्वेषी होने के कारण वे कभी-कभी संघीभूत न हो सकें, सभी मिलकर सम्राट् के विरुद्ध विद्रोह आयोजित न कर सकें। यही इस योजना का मन्तव्य था। यह योजना 'विभाजन करके राज्य करो' तथा 'निरोध और सन्तुलन' के कूटनीतिक सिद्धान्तों पर आधारित थी।[१] इससे पारसीक सम्राट् की प्रखर शासन-निपुणता का परिचय मिलता है। उपर्युक्त तीन पदाधिकारी थे—क्षत्रप (गवर्नर), सेनापति और लेखक (सेक्रेटरी)। सम्राट् के प्रति क्षत्रप के तीन

१. Divide et impera तथा Check and Balance.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
प्रमुख उत्तरदायित्व थे। (१) कर देना (२) सैनिक सहायता देना और (३) प्रान्त में शान्ति एवं व्यवस्था कायम रखना। जब तक क्षत्रप इन तीन उत्तरदायित्वों का उत्साहपूर्वक पालन करता रहता था तब तक सम्राज्य उसके आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप न करता था। सम्राट की भाँति क्षत्रप अपने प्रान्त में अपनी प्रजा से कर एकत्र करता था। ये कर आंशिक रूप से धन और आंशिक रूप से अन्न के रूप में दिये जाते थे। प्रत्येक क्षत्रप सम्राट को निश्चित कर देने के पश्चात् शेष का स्वयं उपभोग करता था। जब तक वह सम्राट द्वारा निर्धारित रकम दिये जाता था तब तक सम्राट को यह जानने की चिन्ता न होती थी कि क्षत्रप प्रजा से कर कितना और कैसे लेता है। क्षत्रप के आन्तरिक विषय सम्राट की शिरोव्यथा न थे। ऐसे विषयों में हस्तक्षेप करके सम्राट प्रान्तीय स्वतन्त्रता का हनन न करना चाहता था। परिणामतः प्रान्तों में बहुधा प्रजा का शोषण होता रहता था। क्षत्रप प्रजा से मनमानी रकम वसूल करते थे। उनके वसूली के तरीके भी अपने थे जो प्रायः अत्यन्त कठोर होते थे। सम्राट को कर देने के साथ-साथ क्षत्रप युद्धकाल अथवा अन्य आपत्काल में उसे सैनिक सहायता देता था। इसके लिए उसे प्रान्त में अनिवार्य भर्ती लागू करने का अधिकार था। प्रान्तीय भर्ती, केन्द्रीय भर्ती के समान ही कठोर अनिवार्यता पर आधारित थी। इसी प्रकार की भर्ती से क्षत्रप स्वयं अपने लिए भी सेना संगठित करवाता था। प्रजा से धन-जन लेने के बदले में क्षत्रप अपने प्रान्त में उसके धन-जन का संरक्षण करता था और स्थानीय कलहों, चोरी, लूट और हत्याओं आदि के अभियुक्तों को दण्डित करता था। सारांशतः ये क्षत्रप 'प्रान्तीय राजा' थे।

सेनापति का प्रमुख कार्य सैनिक था। परन्तु क्षत्रप अपनी इच्छा के अनुसार उसकी सेवाओं का उपभोग न कर सकता था। सेनापति सम्राट के द्वारा नियुक्त था और उसकी हित-साधना में क्षत्रप का विरोध भी कर सकता था। शासन के अर्थ-व्यय और अन्य प्रकार की लिखा-पढ़ी का काम लेखक के अधीन था। यह पदाधिकारी सदैव प्रान्त का सम्पूर्ण ब्योरा सम्राट के पास भेजता रहता था।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्रोह की सम्भावना को पुनः निर्मूल करने के लिये अन्य उपायों की भी व्यवस्था की गई। समय-समय पर सम्राट प्रत्येक प्रान्त में आकस्मिक रूप से दल-बल के साथ अपने निरीक्षकों (Inspectors) को भेजता था। इन्हें सम्राट की ओर से विपुल अधिकार प्राप्त थे। प्रान्त में जाकर ये किसी भी पदाधिकारी के कार्यों का निरीक्षण कर सकते थे। इनके माध्यम के द्वारा सम्राट को प्रान्तों की वास्तविक स्थिति का सम्यक् ज्ञान हो जाता था। ये सम्राट के 'नेत्र और कान' थे। इनके ऊपर उसे पूर्ण विश्वास था। इनकी सिफारिश पर वह किसी प्रान्तीय पदाधिकारी को पद्च्युत, स्थानान्तरित अथवा कठोरतापूर्वक दण्डित कर सकता था। वास्तव में पर्सियन शासन व्यवस्था प्राचीन इतिहास में सबसे अधिक सफल थी। केवल रोम ही उसकी तुलना में आ सकता था। यही नहीं आधुनिक शासन प्रणाली में भी पर्सियन सभ्यता के अनेकों विशिष्ट अंग देखे जा सकते हैं जैसे राजा की उपाधि, गुप्तचर व्यवस्था, तथा न्यायालयों का विभाजन इत्यादि। इसी प्रकार प्रान्तों की स्वायत्त-शासन प्रणाली भी अपनी दृष्टि में अपूर्व है।[१]

राजमार्ग—विशाल साम्राज्य में यातायात एवं गमनागमन की सुविधायें परमावश्यक हैं। इन्हीं के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर सैनिक सहायता आवश्यक सूचनायें एवं रसद इत्यादि भेजी जाती थी। यही व्यापार-व्यवसाय की भी शिरायें हैं। पारसीक नरेश इनके महत्व से अपरिचित न थे। उन्होंने अपने सुविशाल साम्राज्य में यत्र-तत्र मार्गों का निर्माण किया। संवाहकों, व्यापारियों एवं पथिकों की संरक्षा और सुविधा के निमित्त इन पर प्रति तीन मील के अन्तर पर सरायों और चौकियों की व्यवस्था की गई। दारा-महान् के द्वारा निर्मित

---

१. "On the whole Persian administration was the most successful experiment in imperial government that the mediterranean world knew before rome—which was destined to inherit mnch of the earlier empire's political structures and administrative forms."

—Emerson.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजमार्ग सबसे अधिक उल्लेखनीय है। यह सूसा से सार्डिस तक जाता था। द्रुतगामी अश्वारोही इस अन्तर को एक सप्ताह के भीतर ही तय कर लेते थे। स्थलमार्ग के साथ-साथ दारा ने जल-मार्गों की ओर भी ध्यान दिया। उसने एक नहर बनवाकर लाल सागर और नील नदी को जोड़ दिया। एक अत्यन्त महत्व-पूर्ण निर्माण-कार्य था। अब भारतवर्ष से मिस्र तक सीधे जल-मार्ग के द्वारा यात्रा की जा सकती थी। साम्राज्य के अन्य विभिन्न क्षेत्रों के गमनागमन को सुगम बनाने के लिए अनेक सरिताओं पर पुलों का भी निर्माण हुआ।

समाज—पारसीक समाज में कुटुम्ब पवित्रतम संस्था थी। प्राचीन भारतीय की भाँति पारसीक भी बहुपुत्रता को श्रेयस्कर समझता था। पुत्र जन्म सर्वत्र मंगलकर माना जाता था। यही नहीं, सम्राट बहुधा बहुपुत्रवान् पिता को पारितोषिक भी देता था। बहुपुत्रता की महत्ता को स्वीकार करते हुए ही पारसीक व्यवस्था में भ्रूण-हत्या अक्षम्य अपराध समझी जाती थी। अतः स्वाभाविक ही था कि इस प्रकार के समाज में अविवाहित जीवन हतोत्साह किया जाय। पारसीक समाज अविवाहित स्त्री-पुरुषों को निन्दा की दृष्टि से देखता था। विवाह प्रायः वयस्कता आने पर ही होते थे। इनका आयोजन माता-पिता अथवा संरक्षकों के द्वारा ही होता था। इस समाज में कभी-कभी भाई-बहन, पिता-पुत्री और माता-पिता के परस्पर-विवाहों के भी उदाहरण उपलब्ध होते हैं। परन्तु इन्हें अपवादरूप में ही ग्रहण करना चाहिए।

दारा महान् के समय तक फारस में महिला समाज की दशा सन्तोषजनक थी। उस समय तक उनमें न तो पृथक् रहने की भावना थी और न पर्दे का प्रचलन। पुरुषों की भाँति ही वे स्वच्छन्दतापूर्वक आती-जाती थीं और सार्व-जनिक कार्यों में भाग लेती थीं। उन्हें साम्पत्तिक अधिकार भी प्राप्त थे। परन्तु दारा के पश्चात् उनकी दशा उत्तरोत्तर हीन होती गई। उनमें पर्दे की प्रथा व्यवस्थित हो गई और उनके सार्वजनिक जीवन पर प्रतिबन्ध लग गया। किसी-किसी कुटुम्ब में तो पर्दे की प्रथा इतनी प्रबल हो गई थी कि विवाहित स्त्री अपने पिता और भाई से भी स्वच्छन्दतापूर्वक न मिल सकती थी। पारसीक कलाकृतियों में एक भी चित्र स्त्री का नहीं। उनके अभिलेखों में स्त्री का कहीं पर भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नामोल्लेख उपलब्ध नहीं होता।

स्त्री का पद माता के रूप में अधिक प्रतिष्ठित था। पाँच वर्ष की आयु तक शिशु माता के संरक्षण में रहता था और उसके पश्चत् सात वर्ष की आयु पाने तक पिता के संरक्षण में। तदुपरान्त पाठशालाओं में विद्यार्थी जीवन प्रारम्भ होता था।

पारसीक जीवन साधारणतया शिष्ट और विनीत था। युवक सदैव अपने गुरुजनों को अभिवादन करते थे। उदारता तथा आतिथ्य उनके प्रधान चारित्रिक गुण थे। इस दम्बन्ध में हेरोडोटस एक घटना का उल्लेख करता है। यूनानियों और पारसीकों का भयंकर युद्ध हो रहा था। एक यूनानी ने अन्त तक पारसीक सेना से जलपोत की रक्षा की। अन्त में वह क्षत-विक्षत होकर संज्ञाहीन अवस्था में गिर पड़ा और पारसीकों के हाथ पड़ गया। पारसीकों के लिये ऐसा वीर पुरुष पहले अतिथि था और बाद को शत्रु। उन्होंने मरहम पट्टी करके उसकी रक्षा की।

इस समाज में शुद्धता-पवित्रता का विशेष महत्व था। मार्ग में खाना-पीना अथवा थूकना निन्दनीय समझा जाता था। संक्रामक रोगों को फैलाने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था। शुद्धता की यह भावना उनके नैतिक जीवन में भी परिलक्षित होती है। इसी के अन्तर्गत व्यभिचार और वेश्यागमन समाज में अत्यन्त निन्द्य कार्य समझे जाते थे।

शिक्षा—जैसा की पीछे कहा है, सात वर्ष की अवस्था में बालक विद्याध्ययन के हेतु पाठशाला में भेजा जाता था। पाठशालाएँ प्रायः देवालयों अथवा पुरोहित-गृहों में होती थी। शिक्षा का पाठ्य-क्रम भी धार्मिक था। बहुधा बालकों को जेन्द-अवेस्ता ही कंठस्थ कराई जाती थी। अध्ययन-अध्यापनविधि मौखिक थी। साधारणतया शिक्षा समाज में अभिजात वर्ग तक ही सीमित थी। सर्वोच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिये २४ वर्ष तक की अवस्था पर्याप्त समझी जाती थी। पारसीक समाज में पुस्तकीय शिक्षा की अपेक्षा युद्ध-शिक्षा को अधिक महत्व दिया जाता था। पारसीक राष्ट्र युद्धकर्मा शूरों का राष्ट्र था। अतः उसके युवकों को धनुष-बाण, बरछी-भाले और अश्वारोहण की शिक्षा ही अधिक प्रिय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवं लाभकर प्रतीत होती थी। साहित्य कला आदि की शिक्षा को तो वे विलासिता का उपकरण समझते थे।

साहित्य—साम्राज्यवादिता के अनुसरण में पारसीक राष्ट्र ने युद्ध-कर्मों में दक्षता तो प्राप्त करने की महती चेष्टा की, परन्तु शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में वे उदासीन ही रहे। साहित्य ऐसे विषय के लिये इन कठोरकर्मा पारसीकों के पास न तो हृदय था और न समय ही। इसे तो वे जीवन की अनावश्यक विलासिता समझते थे। परिणामतः सामान्य पारसीक तो निरक्षर रहा और उच्चवर्गीय पारसीक साक्षर होते हुए भी साहित्य-शून्य। काव्य का जो थोड़ा-बहुत विकास हुआ वह गीतों के रूप में ही। ये गीत भी धर्म-प्रधान होने के कारण एक पक्षीय हो गये हैं। इनका आभास हमें जेन्दअवेस्ता से मिल सकता है। पारसीकों ने कदाचित् गल्प-साहित्य का भी न्यूनाधिक मात्रा में सृजन किया था। कुछ विद्वानों का मत है कि अरेबियन नाइट्स में इनकी कुछ कथायें संकलित हैं। परन्तु यह मत पूर्ण रूप से असन्दिग्ध नहीं।

भाषा और लिपि—साखामनीष अभिलेखों से तीन प्रकार की भाषाओं का पता लगता है—(१) प्राचीन फारसी (२) अंशनाइट अथवा सूसियन और (३) बैबिलोनियन। इनमें प्राचीन फारसी अन्य दो भाषाओं से अधिक सरल थी। इसी की दो शाखायें जेन्द और पहलवी के नाम से प्रख्यात हुई। जेन्द में पारसिक धर्म-ग्रन्थ अवेस्ता लिखा गया और पहलवी से आधुनिक फारसी निकली। साखामनीषों की राजभाषा यही प्राचीन फारसी थी जो वैदिक संस्कृति से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। उपर्युक्त तीनों भाषायें क्यूनी फार्म (Cuneiform) अक्षरों में लिखी जाती थीं जो बैबिलोनिया से ग्रहण किये गये थे। अन्तर केवल इतना था कि जहाँ बैबिलोनिया की लिपि में ३०० अक्षर थे वहाँ पारसीक लिपि में उनकी संख्या उत्तरोत्तर कम होती गई और अन्त में वह ३६ रह गई।

चिकित्सा शास्त्र—प्रारम्भ में पारसीक चिकित्साशास्त्र पुरोहितों का शास्त्र था। उनका विश्वास था कि संसार को दानवी शक्ति ने ६६,६६६ रोगों की उत्पत्ति की है जो जन्त्र-मन्त्र के द्वारा नष्ट किये जा सकते हैं। अतः प्रारम्भ में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फारस का चिकित्सा शास्त्र जन्त्र-मन्त्र प्रधान था जिसके प्रयोग से रोग की अपेक्षा रोगी का ही विनाश अधिक होता था। परन्तु कालान्तर में फारस ने वैज्ञानिक चिकित्साशास्त्र का शनैः-शनै विकास किया। आर्टेक्जेरीज द्वितीय (Artaxerxes II) के समय तक यह पर्याप्त रूप से विकसित हो चुका था। देश के चिकित्सक समूहों (Guilds) के अन्तर्गत संगठित हो चुके थे। उनके निश्चित शुल्क एवं परिश्रमिक थे। समाज में पुरोहित-वर्ग सबसे अधिक समादृत था। अतः देश के चिकित्सक उनकी निःशुल्क चिकित्सा करते थे।

कला—पारसीक साम्राज्य विभिन्न देशों का समुदाय था। परिणामतः इसके अन्तर्गत विभिन्न संस्कृतियों एवं सभ्यताओं का सम्मिश्रण होता रहा। कालान्तर में फारस अनेक सांस्कृतिक धाराओं का संगम बन गया। भिन्न-भिन्न देशों के विभिन्न विचारों ने पारसीक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है विदेशों का यह प्रभाव पारसीक कला में स्पष्टतया परिलक्षित होता है।

(१) फारस की समस्त समाधियाँ (मकबरे) दो कोटियों में विभक्त की जा सकती हैं। प्रथम कोटि में वे समाधियाँ हैं जो पृथ्वी के ऊपर ईंट-पत्थर की सहायता से बनाई गई थीं। साइरस की समाधि इसी प्रकार की है। इन समाधियों को देखने से प्रतीत होता है कि ये लीडिया देश की एवं विधि समाधियों की अनुकृति हैं। द्वितीय कोटि में वे समाधियाँ आती हैं जो पर्वतों के बीच में शिलायें काट कर बनाई गई थीं। दारा महान् तथा उसके उत्तराधिकारियों की समाधियाँ प्रायः ऐसी ही हैं। इनके ऊपर मिस्र की भूगर्भनिर्मित समाधियों का प्रभाव प्रतीत होता है।

(२) डिओडोरस नामक विद्वान का कथन है कि मिस्र के कलाकारों ने पर्सीपोलिस और सूसा के भवनों का निर्माण किया था। इस कथन की आंशिक पुष्टि पारसीक कला-कृतियों पर दृष्टिगत मिस्री प्रभाव से होती है। फारस के राजप्रासादों की अलंकरण-प्रणाली और दरवाजे तथा खिड़कियों के चारों ओर की कार्निस (Cornice) मिस्र के अनुकरण पर है। मिस्र के विशालकाय स्तम्भों को देख कर ही कदाचित् फारस के विशाल स्तम्भों का निर्माण हुआ था।

(३) फारस के कृत्रिम चबूतरों, ऊँची विशाल सीढ़ियों और जीनों तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
द्वार-रक्षकों की परम्परा कदाचित असीरिया से आई ।

(४) मेसोपोटामिया का प्राचीन परम्परा के अनुसार पारसीक साम्राटों ने भी दजला-फरात की अन्तर्वेदी में ईंटों का प्रयोग करवाया । यद्यपि पर्सीपोलिस के द्वारों के चौखट, नींवें और स्तम्भ पाषाणनिर्मित हैं तथाकि साधारण प्राचीर ईंट-मिट्टी के ही हैं ।

(५) पारसीक स्थापत्य एवं स्तम्भों के शीर्ष के अधोभाग का अलङ्करण यूनानी प्रभाव से अनुप्राणित है । प्लिनी नामक विद्वान् का कथन है कि यूनानी कलाकार फारस के राजाओं की अधीनता में कार्य करते थे । ऐसी अवस्था में पारसीक कला पर यूनानी प्रभाव अवश्यम्भावी था । इन विदेशीय प्रभावों के होते हुए भी पारसीक कला में एक विचित्र एकात्मकता दृष्टिगत होती है । यह एकात्मकता उसकी सामञ्जस्यशीलता का परिणाम है । विदेशीय अंशों को इस संतुलन के साथ ग्रहण किया गया है, उनका इस समन्वय के साथ संगठन किया गया है कि सम्पूर्ण में एकात्मकता आ गई है; वह कला राष्ट्रीय बन गई है । इस पारसीक कला की प्रमुख विशेषता उसकी असाम्प्रदायिकता है । कला का विकास धर्म की छत्रच्छाया में न होकर राजा की छत्रच्छाया में हुआ था । पारसीक कलाकारों की प्रतिभा देवालयों पर नहीं वरन् राजप्रासादों पर उन्मुख हुई थी । परंतु इस 'राजकीयता' का कला पर एक दुष्प्रभाव भी पड़ा । राजाओं के संरक्षण में निर्माण करने वाले कलाकारों में अपनी कृतियों का सृजन अपने अन्तर के स्वच्छन्द उद्भास के अनुकूल नहीं वरन् अपने संरक्षकों की अभिरुचि के अनुकूल किया था । इससे कला का विकास निगड़ित हो गया है । हुआर्ट महोदय ने पारसीक कला का वर्णन इस प्रकार किया है —

"पारसीक कला एक संमिश्र—पूर्ण—(Composite) कला थी । उसका उद्भव राजा की कल्पना से हुआ था—उस कल्पना से, जिसने, साम्राज्य की भाँति ही, आसीरिया, मिस्र और एशियायी यूनान में प्राप्त अपने कों प्रभावित करने वाली प्रत्येक कला-शैली को एक कृत्रिम सबल एकता के सूत्र में संग्रथित कर दिया था । वह विशालता के अनुरागी एक सर्वशक्तिमान सम्राट की आसक्ति का प्रतिरूप थी ।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पेसारगेडाय और पर्सिपोलिस में पारसीक कला के कुछ भग्नावशेष उपलब्ध हुए हैं। इन्हें देखने से उसकी उपर्युक्त विशेषतायें बहुत-कुछ स्पष्ट हो जाती हैं।

पेसारगेडाय प्राचीन पर्शा की राजधानी था। इसमें प्राप्त तख्ते सुलेमान और मशहदे-मदरे-सुलेमान के भग्नावशेष विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रथम 'सुलेमान का सिंहासन' है। वास्तव में यह एक पर्वत को काट कर बनाया गया चबूतरा है। आकृति में यह समानान्तर चतुर्भुज के समान है और श्वेत पाषाण-खण्डों की सहायता से निर्मित है। ये पाषाण-खण्ड धातु की कड़ियों के द्वारा एक-दूसरे से सम्बद्ध थे। इसी के समीप एकाश्मीय स्तम्भ है जिस पर पक्षधारी साइरस का चित्र है। द्वितीय 'सुलेमान की माता की समाधि' है। यह एक छोटा सा कमरा है। इसकी भी दीवारें और छत बड़े-बड़े पाषाण-खण्डों की सहायता से बनाई गई थीं। इन्हें जोड़ने के लिये धातु की कड़ियों का प्रयोग किया गया था।

कला की दृष्टि से पर्सिपोलिस अधिक प्रसिद्ध है। यह पारसीक साम्राज्य की राजधानी थी और किसी समय बहुसंख्यक कला-कृतियों से अलंकृत था। आज वहाँ कतिपय अवशेष ही दृष्टिगत होते हैं। इनमें प्रमुख हैं 'तख्ते जमशेद' अथवा जमशेद का सिंहासन। यह चूनाप्रस्तर (Limestone) के विशाल खण्डों की सहायता से निर्मित एक विशालकाय चबूतरा है। इसकी लम्बाई १५०० फीट और चौड़ाई ६०० फीट है। पृथ्वी से यह ४० फीट ऊँचा है। इसके ऊपर जरक्सीज़ (Xerxes) का बैठका है जिसके मुख्य द्वार पर सुन्दर पक्षधारी साँड़ खड़े हैं। इस बैठके से होकर हम एक हाल में प्रविष्ट होते हैं। यह हॉल जरक्सीज़ (Xerxes) का हॉल कहलाता है। इस हॉल में एक सीढ़ी से होकर जाना पड़ता है। इस सीढ़ी पर बाईं ओर एक प्रस्थानकारिणी वाहिनी का प्रदर्शन है। यह वाहिनी के रथ, घोड़े और शस्त्रधारी सैनिकों की आकृतियाँ अति भव्य हैं। दाहिनी ओर भिन्न-भिन्न आकृतियों के मनुष्य सम्राट के लिये विभिन्न उपहार लिये जा रहे हैं। ये उपहारवाहक मनुष्य विशाल पारसीक साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों के निवासी हैं।

जरक्सीज (Xerxes) का हाल १५० फीट लम्बा और इतना ही चौड़ा एक वर्ग है। इसमें दीवारें थीं अथवा नहीं, एक विवादग्रस्त विषय है। कदाचित्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
इसकी दो दिशाओं में दीवारें थीं और अन्य दो दिशाओं में पर्दों का प्रयोग किया जाता था। किसी समय इसमें बहत्तर स्तम्भ थे, परन्तु अब केवल बारह शेष हैं।

इसके पीछे शतस्तम्भीय हाल है। इसकी छत सौ स्तम्भों पर टिकी हुई थी। इस हाल की विशेषता है इसमें रिलीफ-चित्र। इसके सिंहासनासीन राजा का प्रजापरिवृत्त रूप में प्रदर्शन किया गया है। उसके ऊपर मँडराते हुए देवता का चित्र है।

मक़बरे—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दारा और उसके उत्तराधिकारियों के मक़बरे पर्वतों को काटकर बनाये गये थे। उनके कुछ उदाहरण अब भी अवशिष्ट हैं। विशेष उल्लेखनीय सम्राट दारा का मक़बरा है, जो ६० फुट लम्बा और २० फुट चौड़ा है। इसके भीतर एक सिंहासन है। सम्राट अपने दाहिने हाथ में धनुष लिये खड़ा है। उसका बाँया हाथ अहुरमज्दा (देवता) के अभिवादन में ऊपर उठा है। देवता ऊपर मँडराते हुए प्रदर्शित किया गया है। मकबरे के द्वार पर चार स्तम्भ हैं। प्रवेश मार्ग इन्हीं के बीच से होकर जाता है। प्राय: समस्त मकबरों की सामान्य रचना इसी प्रकार की है।

धर्म—प्राचीन पारसीक धर्म बहुदेववाद, यज्ञवाद और अंधविश्वास के ऊपर आधारित था। जनता मिथ् (सूर्य), अनाहित (सृष्टि देवी), सोम पितृ-समुदाय और अनेकानेक पशुओं आदि की उपासना करती थी। इन्हें सन्तुष्ट करने के लिये वह हिंसात्मक यज्ञ करती थो और मादक सोमरस पीती थी। यज्ञकर्मा व्यक्तियों को 'देवो जुस्तो' (देव-प्रिय) समझा जाता था। साधारण मनुष्य का जीवन अन्धविश्वासपूर्ण था। उसकी कल्पना के अनुसार संसार अनेकानेक दानवी शक्तियों से आक्रान्त था जो सदैव उसके जीवन को नियम बनाने का कुप्रयास किया करती थी। अत: उनसे आत्मरक्षा के लिये उसने नाना प्रकार के जन्तर-मन्तरों की व्यवस्था कर रक्खी थी। अन्धविश्वास के उदाहरण के रूप में पारसीक अपने-नखों को काटकर पृथ्वी के भीतर गाड़ देता था। उनका विश्वास था कि वह ऐसा न करे तो नख बाण, बरछे और चाकू बन जायँ और उसी का संहार कर डालें। परन्तु ईसा पूर्व छठीं शताब्दी के लगभग फारस में एक-पुरुष का अवतरण हुआ जो इतिहास में जरथुस्त्र अथवा जोरेस्टर के नाम के प्रख्यात

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। यह एक विचारवान व्यक्ति था। इसकी स्वतन्त्र भावना अन्धविश्वास-मूलक बहुदेववादिता और यज्ञवादिता के विरुद्ध विद्रोह कर बैठी। इनके विरोध में उसने जिस नवीन विचार धारा का प्रतिपादन किया वह कालान्तर में जरथुस्त्र-धर्म (Zoroastrinaism) के रूप में संगठित हुई।

वास्तव में यह काल समस्त मानव-जाति के लिये एक बौद्धिक क्रान्ति काल था। संसार के अनेक देशों में धार्मिक उथल-पुथल मची हुई थी युगों के अन्ध-विश्वासों एवं रूढ़ियों की धूम्रराशि से आच्छन्न दीपशिखा अपना विकास चाहती थी। शतियों को जड़ता से बोझिल मानवी आत्मा अपना स्वरूप चाहती थी। वह उन समस्त शृङ्खलाओं का उन्मोचन करना चाहती थी जो उसकी असीमता और अनन्तता को सीमित किये हुए थीं। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ईरान ने जरथुस्त्र, भारत ने तथागत और चीन ने कन्फ्यूशियस को जन्म दिया जिनकी सत्यान्वेषणकारिणी प्रतिभा ने नवीन मतों का प्रादुर्भाव किया।

जरथुस्त्र का जीवन-चरित्र अंधकारपूर्ण है। परन्तु अधिकांश विद्वानों का मत है कि उसकी जन्मभूमि अजरबैजान अथवा मीडिया थी। वह (Powm-shaspa नामक) पुरोहित और (Dughedha नामक) राजवंशीय कन्या की सन्तान था। वह प्रारम्भ से ही विलक्षण शक्तियों से सम्पन्न था। दीर्घ अट्टहास के द्वारा उसने अपने जन्म का स्वागत किया जिसे सुनकर उसके चारों ओर की दानवी शक्तियाँ भाग खड़ी हुई। उसकी विचित्र शक्तियों को देखकर देश के पुजारियों ने उसे नष्ट करने की चेष्टा की, परन्तु वे असफल रहे। वह प्रारम्भ से ही गम्भीर और विचारशील व्यक्ति था। बीस वर्ष की अवस्था में उसने संसार त्याग कर दिया और एक पर्वत-कन्दरा में आश्रम लेकर कन्द-मूल-फल के अल्पा-हार पर आत्म-निर्वाह करता हुआ वह जीवन-मरण, इहलोक और परलोक के के गहन विषयों पर विचार करने लगा। दैवी शक्ति ने उसे अपदस्थ करना चाहा। तलवार से उसका वक्षस्थल भेद दिया गया। उसके कर्ण कुहरों में गर्म धातु-द्रव भर दिया गया। परन्तु वह अविचल रहा।

युग-पुरुष की आत्मा ऐहिक द्वन्द्वों का अतिक्रमण कर अनन्त और असीम से साक्षात्कार कर रही थी। दस वर्ष की अनवरत साधना के पश्चात् जब एक दिन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
वह अवेतक नामक सरिता के तट पर बैठा था तो उसके समक्ष (Vohumanah) नामक देवदूत उपस्थित हुआ और वह जरथुस्त्र को अहुरमज्दा के समीप ले गया। देवता ने साधक को अवेस्ता दी और उसकी शिक्षाओं के प्रसार की आज्ञा।

प्रचार-कार्य प्रारम्भ हुआ। परन्तु संसार के अन्य धर्म-प्रचारकों के समान उसे भी, प्रारम्भ में सफलता न मिली। निराशा-निपीड़ित जरथुस्त्र अनेक वर्षों तक निरुद्देश्य इतस्तः विचरण करता रहा। अन्त में अहुरमज्दा ने उसे (Vishtasp) नामक एक ईरानी नरेश की राजसभा में जाने की आज्ञा दी। बहुत सम्भव है कि यह नरेश दारा का पिता रहा हो। प्रारम्भिक असफलता के पश्चात् जरथुस्त्र उसका धर्म-परिवर्तन करने में समर्थ हुआ। संसार के अनेक महान् धर्मों का प्रस्फुटन, विकास और प्रसार राजकीय छत्रच्छाया में हुआ है। इस पारसीक धर्म का भी प्रसार इसी प्रकार हुआ। राजकीय संरक्षण में वह ईरान और वाह्य देशों में प्रसारित हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि इस नवीन धर्म की महती अभ्युन्नति से क्षुब्ध होकर मध्य एशिया की तूरानी जातियों ने ईरान पर आक्रमण किया। इनके विरुद्ध जरथुस्त्र दूसरे धर्म-युद्ध में मारा गया। मृत्यु के समय उसकी अवस्था सतहत्तर वर्ष की थी।

जनथुस्त्र की मृत्यु के पश्चात् भी उसका धर्म उसकी अमर कीर्ति के रूप में जीवित रहा। साखामनीष सम्राटों का वह राजधर्म बना। ये सम्राट् इस धर्म में प्रतिष्ठित देवता अहुर-मज्दा के प्रतिनिधि के रूप में शासन करते हैं। दारा महान् के समय यह धर्म अपनी उन्नति की चरम-सीमा पर पहुँच गया। परन्तु राजनीति के साथ सम्बद्ध होने से धर्म को जहाँ अनेक लाभ होते हैं वहाँ उसे अनेक हानियाँ भी होती हैं। विशुद्ध जरथुस्त्र-धर्म साखामनीष साम्राज्य के साथ प्रसारित हुआ और उसी के साथ तिरोहित भी। मरेथान 'सालमीज' प्लेटा और माइकेल के युद्धों में पारसीक साम्राज्य विक्षत हुआ और उसके साथ-साथ उसका धर्म भी। यदि इन युद्धों में पारसीक पराजित न हुए होते तो उनका धर्म कदाचित् यूरोप में भी विकसित होता।

साम्राज्यवादिता का आधार शस्त्रबल था। अतः उसके नष्ट हो जाने पर सारा प्रासाद भी धराशायी हो गया। धर्म का आधार मानव की अन्तस्चेतना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। अतः वह क्षत-विक्षत होने के पश्चात् भी जीवित रहा। परन्तु यह जीवन उसका दूसरा जीवन था। क्षति के पश्चात् उसका स्वरूप विकृत हो गया—उसकी रूपरेखा परिवर्तित हो गई। दारा महान् के पश्चात् का जरथुस्त्र-धर्म विशुद्ध न था। दारा तृतीय आरबेला के युद्ध में मारा गया। सिकन्दर की सेना ने पर्सिपोलिस को ध्वस्त किया और साथ में अवेस्ता की प्रतियाँ भी। इसके पश्चात् जरथुस्त्र-धर्म का अधःपतन हो गया। परन्तु ससैनियन साम्राज्य (२२६ ई०-६५१ ई०) मे वह फिर उठा और उसकी राज्य में प्रतिष्ठा हुई। परन्तु वह धर्म अपने मालिक रूप से नितान्त भिन्न था। यह उसकी विकृति थी। इसमें याज्ञिक कर्मकाण्डों और रूढ़िवादिता का समावेश हो गया था। सातवीं शताब्दी तक यह किसी प्रकार अपने अस्तित्व के दुर्वह भार का वहन करता रहा। परन्तु अन्त में मुहम्मद साहब की सेनाओं ने इसे नष्ट कर दिया।

आज बौद्ध धर्म की भाँति यह धर्म अपनी जन्मभूमि से ही विलुप्तप्राय हो गया है। फारस में अब इसके १०,००० से अधिक अनुयायी नहीं। परन्तु मुसलमान आक्रमण के समय बहुसंख्यक पारसीक ऐसे थे जिन्हें धर्म-परिवर्तन की अपेक्षा पलायन अधिक अभीष्ठ था। ये भारतवर्ष में भाग आये जो सदैव त्रस्त मानवता का शरणार्थि-केन्द्र रहा है। आज भारतवर्ष में इन पारसीकों की संख्या सवा लाख है जो अहुरमज्दा की उपासना करते हैं।

धर्मग्रन्थ—ज़ेन्द-अवेस्ता पारसीकों का धर्म-ग्रन्थ है। इसके चार भाग हैं—

(१) **यस्न** (Yasna) **और गाथा**—इसमें पुरोहितों के मन्त्रों एवं जरथुस्त्र के सिद्धान्तों का संकलन है।

(२) **विस्पेरेद** (Vispered)—इसमें देव-वन्दनायें हैं।

(३) **वेन्दीदाद** (Vendidad)—इसमें धार्मिक विधि-निषेध संग्रहीत हैं।

(४) **यष्ट** (Yashta)—यह देवदूतों के प्रति वन्दना-मन्त्रों का संकलन है। इन समस्त भागों में गाथा प्राचीनतम है। पारसीकों का विश्वास है कि इसमें स्वयं जरथुस्त्र एवं उसके प्रमुख अनुयायियों के मुख-निस्सृत सिद्धान्तों का संग्रह है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जरथुस्त्र-धर्म के सिद्धान्त

(१) एकेश्वरवाद (Monotheism)—जरथुस्त्र ने फारस में प्रचलित बहुदेववाद का विरोध किया और उसके स्थान पर एक देवता की प्रतिष्ठा की। यह प्राचीन देवता था। कदाचित् यह आर्यों का देवता प्राचीन वरुण था। साखामनीष लेखों में अहुरमज्दा को सब देवताओं से बड़ा कहा गया है। इसका तात्पर्य है कि इस धर्म में अन्य देवताओं की भी कल्पना की गई है। परन्तु ये समस्त देवता अहुरमज्दा के अधीन थे। अथवा उनकी शक्तियों के दैवीकरण थे। इस प्रकार जरथुस्त्र धर्म में एकेश्वरवाद की ही प्रतिष्ठा है। यह धर्म इतना अधिक अहुर-मज्दा प्रधान है कि अनेक विद्वान् इस धर्म को जोरास्ट्रिइज्म न कह कर Mazdaism के नाम से पुकारते हैं। इस धर्म के अधिष्ठाता देवता में छः प्रमुख विशेषतायें हैं : (१) सद्भावना (२) सदाचारिता (३) शक्ति (४) पवित्रता (५) स्वास्थ्य (६) अमरता। कालान्तर में इनका दैवीकरण कर दिया गया है। ये छः अमर पवित्रात्माओं (Immortal Holy Ones) के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इनकी पृथक् पूजा होने लगी। इस प्रकार धर्म में फिर से बहुदेववाद आ गया। अहुरमज्दा सर्वज्ञाता तथा सृष्टिकर्ता था। नक्शे रुस्तम के अभिलेख में दारा का कथन है कि—'अहुरमज्दा महान् देवता है जिसने पृथ्वी और स्वर्ग की रचना की, जिसने मनुष्य का निर्माण किया और उसके लिये गृह-सुख की व्यवस्था की, जिसने अकेले दारा को बहुसंख्यक मनुष्यों का राजा बनाया। मैं अहुरमज्दा की अनुकम्पा से राजा हुआ हूँ। ऐ मनुष्यों! अहुरमज्दा का आदेश है कि बुरी बात न सोचो, सद्मार्ग न छोड़ो, पाप न करो।'

इस प्रकार राजा अहुरमज्दा का प्रतिनिधि था और उसका शासन दैवी-अभिलाषा। प्रारम्भ में अहुरमज्दा का मानवीकरण न हुआ। उनमें मानवी गुणों का आरोप न किया गया था। वह निराकार एवं अव्यक्त था।

(२) द्वन्द्वात्मकता (Dualism)—इस धर्म ने संसार में दो शक्तियों की कल्पना की है—(१) दैवी और (२) दानवी। अहुरमज्दा समस्त दैवी शक्तियों का पुंजीभूत प्रतीक है। संसार का प्रत्येक सत्कार्य उसी के द्वारा संपादित होता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। वह प्रकाशवान् है। उसका निवास-स्थान उत्तर दिशा में है। इसी प्रकार समस्त दानवी शक्तियों का पुंजीभूत प्रतीक अहिरमन है। वह अहुरमज्दा के नितान्त प्रतिकूल है। वह उसका शत्रु है। वह संसार में दुष्कर्मों, रोगों इत्यादि का सृजन करता है। वह अहुरमज्दा के सत्कर्मों को अल्पकाल के लिये नष्ट कर देता है। वह अन्धकार है और दक्षिण दिशा में रहता है। कालान्तर में जब अहुरमज्दा की सहायता के लिये अनेक देवदूतों की कल्पना हुई तो दानव-दूतों की भी। इस प्रकार दल-बल के साथ दोनों दलों में निरंतर युद्ध चलता रहता है। कभी अहुरमज्दा की विजय होती है और कभी अहिरमन की। परन्तु जरथुस्त्र-धर्म के अनुसार अन्तिम विजय अहुरमज्दा की ही होगी। इस प्रकार यह द्वैतवाद आशावादिता का द्वैतवाद है। दानवी शक्तियों के विरुद्ध युद्ध करने में मनुष्यों को नेतृत्व की आवश्यकता है। यह नेतृत्व उन्हें राजा के रूप में मिलता है। राजा इस संसार में अहुरमज्दा का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपने एक अभिलेख में घोषणा करता है कि मैं अहुरमज्दा की अनुकम्पा से इस प्रकार का हूँ। मुझे न्याय से प्रेम है और अन्याय से घृणा।

(३) **आशावादिता**—जरथुस्त्र धर्म आशावादी धर्म है। इसके अनुसार अन्त में मानव का भविष्य उज्ज्वल है। धर्म के अनुसार संसार की अवधि १२००० वर्ष है। ९००० वर्ष के पश्चात् जरथुस्त्र का पुनर्जन्म होगा और उनकी शिक्षाओं के परिणाम-स्वरूप विश्व में सत् का विकास होगा। तत्पश्चात् साओश्यान्त का जन्म होगा जो असत् का विनाश करेगा। उसकी सहायता से अहुरमज्दा अहिरमन को सदैव के लिये जीत लेगा और उसे नरक की विभीषिका में डाल देगा। मृतकों का न्याय होगा। पुण्यात्माओं को स्वर्ग और दुरात्माओं को नरक मिलेगा। संसार में एक नवीन व्यवस्था होगी जिसके अंतर्गत चतुर्दिक अमरत्व, सुख, समृद्धि और सत्य का साम्राज्य होगा। मृत्यु, दुःख, रोग, असत्य आदि सदैव के लिये तिरोहित हो जायेंगे।

(४ **सदाचारिता**—जरथुस्त्र का धर्मकाण्ड एवं बाह्य आडम्बरों से मुक्त था। उसमें प्रधानता दीं गई थी सदाचारिता को। मनुष्य को उदारता, सत्यता, दानशीलता, मितव्ययिता, श्रमशीलता, कृषिकर्मता आदि गुणों का विकास करना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहिए। यह तो था धर्म का कर्तव्य-पक्ष। उसके अकर्तव्य-पक्ष के अन्तर्गत वे अवगुण आते हैं जिनका मनुष्य को सतत् दमन करना चाहिए। यथा रोष, लोलुपता, व्यभिचार इत्यादि। इस प्रकार वह धर्म यांत्रिक न होकर व्यवहारिक ही था। कार्टर के अनुसार 'जरथुस्त्र का धर्म संस्कृति एवं आध्यात्मिक तथा नैतिक प्रगति का धर्म है; यह गतिशीलता एवं सक्रियता का धर्म है, मितव्ययिता का धर्म है।'[१]

(५) प्रवृत्तिमार्गीयता—यह धर्म नितान्त प्रवृत्तिमार्गी है। अतः इसमें संसार-त्याग तथा काया-क्लेश के लिये कोई स्थान नहीं है। जरथुस्त्र ने वैवाहिक जीवन की महत्ता का प्रतिपादन किया है तथा कृषि-कर्म, पशु-पालन आदि के द्वारा उसे सुखी एवं समृद्धिशील बनाने की शिक्षा दी है।

(६) आगामी जीवन—जरथुस्त्र-धर्म मृत्यु के पश्चात् मनुष्य के आगामी जीवन में विश्वास करता है। इसके कथानक के अनुसार आत्मा तीन दिन तक मृतक के शव के चतुर्दिक घूमा करती है। यदि मृतक व्यक्ति पुण्यात्मा हुआ तो चौथे दिन एक रूपवती स्त्री उसे अपने साथ ले जाती है। इस स्त्री के साथ आत्मा के एक पुल (Chinvat Bridge) के ऊपर से होकर जाना पड़ता है। पुण्यात्मा के आवागमन पर यह पुल चौड़ा हो जाता है और वह आत्मा बड़ी सुगमता से पुल के उस ओर पहुँच जाती है जहाँ अहुरमज्दा का सुख-समृद्धिशाली लोक है। इसके विपरीत दुरात्मा का भविष्य दुःखपूर्ण है। मृत्यु के पश्चात् चौथे दिन उसे ले जाने के लिये एक अत्यन्त कुरूपा स्त्री उपस्थिति होती है जो उस भयाक्रान्त दुरात्मा से कहती है कि मैं तुम्हारे कुकर्मों का साकार रूप हूँ। यह स्त्री जब दुरात्मा को चिन्वत पुल के ऊपर से ले जाती है तो वह पुल संकीर्ण होने लगता है। अन्त में दुरात्मा उसके नीचे गिर पड़ता है जहाँ अहिरमन (Ahriman) का रौरव नरक है। इस कथानक से स्पष्ट हो जाता है कि जरथुस्त्र-धर्मानुयायी शरीर की नश्वरता, आत्मा की अमरता तथा सुख-दुःखानुभूति की क्षमता, कर्म-

---

[१] 'The religion of Zoroaster is a religion of culture, of spiritual and moral progress; it is a religion of energy and action, a religion of thrift.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाद, स्वर्ग और नरक के अस्तित्व आदि में विश्वास करता था। कर्मवादी होने के कारण जरथुस्त्र ने भाग्यवाद का विरोध किया है। इस जगती-तल पर प्रत्येक मनुष्य स्वेच्छानुसार कर्म करने के हेतु पूर्ण स्वतन्त्र है। अपने कर्मों के अनुकूल ही उसे फल भी मिलता है। **'कर्मप्रधान विश्व करि राखा। जो जस करहिं सो तस फल चखा।'** का सिद्धान्त पारसीक धर्म में भी अपनी गरिमा रखता है। यह धर्म यद्यपि सत्कर्मा मनुष्यों के प्रति अत्यन्त उदार है और उनके प्रति परोपकारिता, सहकारिता और सहायता का उपदेश देता है परन्तु दुष्कर्मा मनुष्यों के प्रति यह अत्यन्त कठोर है और उनके विरुद्ध अनवरत युद्ध की घोषणा करता है।

(७) शरीर और आत्मा—इस धर्म के अनुसार मनुष्य के दो भाग हैं : (१) शारीरिक और (२) आध्यात्मिक। पुनः मनुष्य का आध्यात्मिक भाग भावना तर्क, अन्तःकरण, चेतना और फ्रवशी (शरीर की अधिष्ठात्री देवी) का संगठन है। मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का शारीरिक पक्ष तो नष्ट हो जाता है, परन्तु आध्यात्मिक पक्ष अक्षय रहता है।

(८) सृष्टि-रचना के तत्व—सृष्टि का निर्माण चार तत्वों—क्षिति, जल पावक और समीर—की सहायता से होता है। संसार में जो कुछ भी है सब इन्हीं तत्वों के संगठन से उदित और विघटन से विलीन होता है। जरथुस्त्र मतानुयायी इन तत्वों को अत्यन्त पवित्र मानते हैं और इनकी पवित्रता को अक्षुण्ण रखने के लिये सदैव सचिन्त और सचेष्ट रहते हैं। कभी-कभी उनकी इस चिन्ता और चेष्टा ने उपहासास्पद रूप धारण कर लिया है। उदाहरणार्थ, पारसीक अपने शवों को पृथ्वी के नीचे गाड़ते या जलाते नहीं थे, क्योंकि उनका विचार था कि शव के सम्पर्क से पृथ्वी अपवित्र हो जायगी। अतः वे शवों को बहुधा ऊँचे-ऊँचे मीनारों पर रख देते थे जहाँ पक्षी उन्हें खा जायँ।

(९) उपासना—प्रारम्भ में अहुर-मज्दा की कल्पना निराकार रूप में की गई थी। अतः उसकी पूजा सांकेतिक रूप से की जाती थी। पारसीकों ने अग्नि को अहुर-मज्दा की पवित्रता और ओजस्विता का प्रतीक माना और उसकी पूजा प्रारम्भ की। पारसीक-कल्पना में अग्नि अत्यन्त पवित्र मानी गई है। इसी से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रत्येक के घर में अनवरतरूप से जलती हुई अग्नि रखने की व्यवस्था की गई थी। इसके अस्तित्व के परिणाम-स्वरूप घर की दानवी शक्तियाँ पलायन-कर जाती हैं। प्रारम्भ में अग्नि-अर्चना फल-फूल एवं सामान्य खाद्यान्न से होती थी, परन्तु कालान्तर में कर्मकाण्ड की प्रतिष्ठा के साथ-साथ उसमें विशिष्ट धार्मिक क्रियाओं का समावेश हो गया। अग्नि पूजा में ही क्या, पारसीक जीवन के अन्यान्य अंगों में भी इन क्रियाओं का समावेश हो गया। शरीर, वस्त्र, भाण्डादि के विशुद्धीकरण के निमित्त अनेक प्रकार के मन्त्रों की रचना की गई। इस प्रकार कालान्तर में सामान्य उपासना के स्थान पर यान्त्रिक उपासना की प्रतिष्ठा होने लगी।

अन्ततः जरथुस्त्र धर्म एक दयापूर्ण एवं युद्ध-विरोधी मार्ग था। इसमें मूर्ति-पूजा एवं अंधविश्वासों का कोई नाम-निशान नहीं था जिस कारण से यह समाज के सभी वर्गों का प्रिय बन सका। आहुरमज्दा आज भी असंख्य व्यक्तियों के शान्ति प्रदाता हैं तथा उनकी शिक्षायें लोगों की सफलता के रहस्य प्रस्तुत करती हैं।[१]

———

१. "All in all it was a splendid religion less warlike and bloody, less idolatrous and superstitions than the other religious of its time and did not deserve to die so soon."

—Maspero.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १२

यूनानी सभ्यता

प्राचीन विश्व की सभी सभ्यताओं में यूनानी सभ्यता ही ऐसी थी जिसे बहुत कुछ आधुनिक अर्थ में पाश्चात्य सभ्यता कहा जा सकता है। यूनान की अपेक्षा किसी भी देश के नागरिक ने स्वतंत्रता एवं मानव उन्नति के लिए अमर संदेश नहीं दिया है। इनका यह उद्देश्य आज भी कला, शासन, धर्म एवं संस्कृति में विद्यमान है। वे आज भी अपनी धर्म निरपेक्ष नीति एवं राष्ट्रीय भावनाओं के लिए उद्धृत किये जाते हैं। इनकी कुछ प्राथमिक विशेषताएँ निम्न थीं—

(१) यूनानी प्रतिभा सर्वतोन्मुखी थी। वह कला, विज्ञान और साहित्य, तन्त्र सब में समान रूप से चमत्कृत हुई है। इन क्षेत्रों में योरोप के प्रत्येक देश ने उससे अल्पाधिक मात्रा में शिक्षा ग्रहण की है। आज योरोपीय सभ्यता का कोई भी अंग ऐसा नहीं जो यूनानी प्रभाव से अस्पृष्ट रहा हो। यूनान योरोपीय सभ्यता का उद्गम है। यूनानी सभ्यता योरोपीय सभ्यता की जननी है। यूनान उस ज्योतिखंड के समान है जिसके स्फुलिंग दूरस्थ प्रदेशों में गिरकर प्रकाश करते हैं।

(२) यूनानी प्रतिभा अपेक्षाकृत निरंकुश थी। उसकी स्वच्छन्दता ने स्वतन्त्र विचारशीलता को जन्म दिया। अतः यूनान में श्रद्धा के स्थान तक की प्रतिष्ठा हुई।

(३) ईजियन सभ्यता के आधार पर देश में व्यक्तिवाद की स्थापना हुई। राज्य का ध्येय समिष्ट की नहीं वरन् प्रत्येक व्यवित की हित-साधना था। अभी तक समाज की इकाई किसी न किसी रूप में कोई न कोई वर्ग—(Clan, Tribe, Family इत्यादि) हुआ करती थी परन्तु अब व्यक्ति ही समाज की इकाई बन गया। उसी के चतुर्दिक राज्य एवं समाज के समस्त कार्य-कलाप केन्द्रित थे।

(४) यूनान में ही सर्वप्रथम जनतन्त्रात्मक शासन प्रणाली का सफलतापूर्वक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
प्रयोग किया गया। अभी तक संसार अधिकांशतः राजतन्त्र से ही परिचित था। अब एक दूसरे तन्त्र का उदय हुआ। इन दोनों तन्त्रों के पारस्परिक द्वन्द्व ने संसार की अनेक शासन-प्रणालियों को जन्म दिया।

(५) यूनान, यूरोप और एशिया की दो शृंखलाओं को जोड़ने वाली एक कड़ी है। यह दोनों महाद्वीपों के बीच में स्थित है। यहाँ पूर्व और पश्चिम दिशाओं से आने वाली अनेक सांस्कृतिक धाराओं का मेल हुआ है। इस पारस्परिक आदान-प्रदान ने यूनान तथा अनेक अन्य देशों की सभ्यताओं को प्रचुर मात्रा में प्रभावित किया। सिकन्दर की दिग्विजय ने पूर्व और पश्चिम के बीच अनेक मार्ग खोल दिये। इन्हीं मार्गों से होकर पूर्व और पश्चिम की धारा और प्रतिधारा प्रवाहित हुई। ये दोनों यूनान में मिलीं और उनके संघर्षण से एक नवीन विचारधारा उद्भूत हुई जिसे हेलेनेस्टिक विचारधारा कहते हैं।

(६) यूनान ने एशियाई प्रभुत्व से यूरोप की रक्षा की। यदि मरेथान, सालमीज़, प्लेटा, माईकेल के युद्धों में पारसीक पराजित न हुए होते तो वे कदाचित् समस्त योरप पर अपनी सभ्यता का आरोप करते।

प्रत्येक देश का राजनीतिक इतिहास किसी न किसी मात्रा में भूगोल के प्रभाव में रहता है; परन्तु यूनान में भूगोल ने अत्यधिक प्रभाव डाला है।

(१) **भौगोलिक अवस्था**—यूनान एक प्रायद्वीप है जो तीन ओर भूमध्य-सागरीय जल से प्रक्षालित होता है। यह तीनों ओर का समुद्र तट अत्यधिक कटा-फटा है। इन तटों पर अनेक खाड़ियाँ हैं जिनके द्वारा जल देश के भीतर बहुत दूर तक प्रवेश कर गया है। पुनः उत्तरी और दक्षिणी यूनान के बीच में कोरिन्थ की खाड़ी है। इन कारणों से देश का प्रत्येक भाग समुद्र से अत्यधिक समीप है। इन सब सुविधाओं का सामूहिक प्रभाव यह हुआ कि इस समुद्र-तट पर अनेक बन्दरगाह बन गये और देश में सामुद्रिक भावना का उदय हुआ। लोग नाविक बने और व्यापार तथा औपनिवेशीकरण की ओर अग्रसर हुए।

(२) यूनान और एशिया माइनर के बीच ईजियन सागर है। इस सागर में अनेक छोटे-छोटे द्वीप हैं जो इन देशों के बीच पुल का कार्य करते हैं। इसी पुल के द्वारा—इन्हीं लघुद्वीपों के द्वारा—यूनान और एशिया में विचारधाराओं का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदान-प्रदान हुआ ।

(३) यूनान का पूर्वी समुद्र तट अधिक उत्तम है। इस पर बन्दरगाह भी अधिक हैं। अतः ईजियन सागर के द्वीपों और एशिया माइनर के साथ इसी का व्यापारिक सम्पक अधिक हुआ । अतः इस सम्पर्क के परिणाम-स्वरूप यूनान के पूर्वी प्रदेश पहले सभ्य हुए। पश्चिमी प्रदेश सम्पर्क से दूर रहने के कारण देर में सभ्य हुए। वहाँ सभ्यता का उदय बाद को हुआ ।

(४) यूनान चारों ओर से प्राचीन देशों से घिरा हुआ है । अतः उनके साथ इसका प्राचीन सम्पर्क रहा है। इस सम्पर्क ने यूनानी इतिहास को प्रभावित किया।

(क) अफ्रीका—यूनान के पश्चिम में अफ्रीका था जिसके उत्तरीय समुद्रतट पर कार्थेज का विशाल व्यापारिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र था । कालान्तर में जिस प्रकार पूर्व में फारस ने यूनानी अभ्युदय को रोकने की चेष्टा की उसी प्रकार पश्चिम में कार्थेज ने ।

(ख) कार्थेज के पूर्व में मिस्र-देश था । इसके साथ यूनान का सम्बन्ध प्राचीन है। यूनानी संस्कृति के अनेक क्षेत्र मिस्र की सभ्यता के ऋणी हैं। हेरोडोटस और प्लूटार्क के मतानुसार 'महान्याय' का सिद्धान्त यूनान में मिस्र से ही आया। मिस्र के देश से ही कदाचित् यूनानियों ने रेखागणित सीखी । यूनानी मृण्भाण्डों, धातुकृतियों, हस्तिदन्तकृतियों और वस्त्रों के ऊपर भी मिस्री प्रभाव हैं ।

(ग) फोनेशिया से यूनानियों ने जलपोत-निर्माण-कला, रँगरेजी आदि सीखी ।

(घ) असीरिया ने उनकी स्थापत्य-कला को प्रभावित किया । यूनानी मूर्तियों के चौड़े चेहरे, तिरछी आँखें, बन्द मुट्ठियाँ और कठोर मुद्रा असीरिया के ही प्रभाव-स्वरूप हैं ।

(ङ) बैबिलोनिया ने यूनान के ज्योतिर्ज्ञान, माप और तौल के सिद्धान्तों को प्रभावित किया ।

(च) लीडिया ने उसकी मुद्रा-नीति को प्रभावित किया ।

(छ) मैसोडोनिया ने उसके ऊपर अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ज) यूनान के ऊपर सबसे अधिक प्रभाव इजिप्ट का है। इसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है।

ये समस्त प्रभाव देशों की भौगोलिक स्थिति के सामीप्य के कारण ही सम्भव हो सके।

(५) आन्तरिक पर्वतों और पठारों के कारण यूनान छोटे-छोटे अनेक प्रदेशों में विभक्त हो गया है। इन पर्वतों-पठारों के कारण इन प्रदेशों का पारस्परिक सम्बन्ध दुरूह हो गया है। ऐसी अवस्था में यूनान में पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र नगर-राज्यों का उदय हुआ। यूनान का इतिहास एक देश का नहीं वरन् भिन्न-भिन्न नगर-राज्यों का इतिहास है। बहुधा ये नगर-राज्य परस्पर-द्वेषी थे। अतः बाह्य आक्रमण के समक्ष बहुधा ये पूर्णरूप से परस्पर-सहायक न हो सके। भौगोलिक विभिन्नता ने राजनीतिक एकता असम्भव कर दी। परन्तु इस विभिन्नता ने कुछ सुपरिणाम भी दिखाये। पर-सहायता से विरक्त होने के कारण प्रत्येक नगर-राज्य ने आत्म-निर्भर बनने को चेष्टा की। पुनः लघुराज्यों का वातावरण जनतन्त्र के विकास के लिये अधिक उपयुक्त होता है। यही कारण है कि यूनान में स्वातन्त्र्य-भावना एवं जनतन्त्रात्मक शासनप्रणाली अधिक पनपी।

(६) यूनान में पार्वतीय प्रदेश अधिक हैं। अतः वह कृषि-कर्म के लिए अधिक उर्वर नहीं। परिणामस्वरूप यूनान कभी भी कृषि-प्रधान देश न हो सका। उसने अपनी जीविका और समृद्धि के लिये व्यापारिक एवं औपनिवेशिक प्रसार को अपना अवलम्ब बनाया।

(७) पार्वतीय प्रदेश होने के कारण यूनान में प्रस्तर की अधिकता रही है। अतः यूनानी वास्तुकार एवं स्थापत्यकार को अपने कला प्रदर्शन के हेतु उपयुक्त सामग्री उपलब्ध हो गई। कठोर प्रस्तर-खण्डों के ऊपर यूनान की कला का इतिहास उत्कीर्ण है।

(८) यूनान की जलवायु सम है। ऐसी जलवायु न आलस्य उत्पन्न करती है और न खेद। यह शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम के लिये अधिक उपयुक्त होती है। इसने यूनानी को अध्यवसायशील और बुद्धशील होने की सहायता दी। परिणामतः उसने संस्कृति-सभ्यता के विविध क्षेत्रों में ऐसी उत्कृष्टता प्राप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की जो आज भी स्पृहणीय है।

(६) यूनान की भौगोलिक परिस्थिति एवं उसका नैसर्गिक वातावरण प्रकृति-सुषमा से अनुप्राणित है। ऊपर शुभ्र आकाश, नीचे फेनिल पारावार, इतस्ततः पर्वत-शृंखलायें और हरीतिमच्छादित चरागाह—सम्पूर्ण वातावरण कवि की कल्पना और कलाकार की मूर्च्छना को उन्मुख करनेवाला था। अतः स्वाभाविक ही था कि प्रकृति की रम्यस्थली में काव्य एवं ललित कलायें उन्मुक्त भाव से विहार करतीं।

प्राकृतिक विभाजन—यूनान तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) **उत्तरी यूनान**—इसमें थेसली और एपिरस के दो प्रमुख प्रान्त थे।

(२) **मध्य यूनान**—इनमें नौ राज्य थे। परन्तु सर्वप्रमुख था एटिका जिसकी राजधानी एथेन्स थी।

यूनानियों का नामकरण तथा आगमन—

(३) **दक्षिणी यूनान**—इसको पेलोपोनेसस भी कहते हैं। इसमें सात राज्य थे। परन्तु सर्वप्रमुख था लकोनिया जिसका प्रमुख नगर स्पार्टा था। जनश्रुति के आधार पर हमें ज्ञात होता है कि यूनानियों का आदि-पुरुष हेलेन था। उसी के नाम पर ये हेलेनीज कहलाये और इनका देश हेलाज के नाम से प्रख्यात हुआ।

यूनानियों का आदि निवास-स्थान बाल्कन प्रायद्वीप के उत्तर-पश्चिम के किसी स्थान पर था। भाषा के आधार पर कहा जा सकता है कि ये आर्य जाति के थे। प्रोफेसर ब्यूरी का मत है कि ये आर्यों और अनार्यों की सम्मिश्रित जाति थे। परन्तु उन सब की भाषा आर्य थी। बाहर से आने वाले इन यूनानियों ने समस्त ईजियन संसार और यूनान के ऊपर अपना अधिकार स्थापित कर लिया परन्तु इन्होंने विजित जातियों का बध नहीं किया वरन् उनका यूनानिकरण करके उन्हें आत्मसात् कर लिया।

यूनानी सभ्यता की उत्पत्ति—इस विषय में मुख्य तीन धारायें प्रचलित हैं—

(१) **मिश्र सम्बन्धी विचारधारा**—कुछ विद्वानों के अनुसार यूनानी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
सभ्यता के स्रोत मिश्र सभ्यता में खोजे जा सकते हैं। यहाँ का दर्शन एवं विज्ञान यूनान से मिलता है। कहीं-कहीं मूल वाक्य भी एक समान हैं परन्तु यह मत पूर्णतया मान्य नहीं है।

(२) एजियन सम्बन्धी विचारधारा—कुछ विद्वानों ने एजियन सभ्यता के आधुनिक खोजों के आधार पर यूनानी सभ्यता का सम्बन्ध बताया है। विशेषतया सौन्दर्य सम्बन्धी आदर्श एवं सामाजिक प्रथायें दोनों की समान हैं। परन्तु इतने छोटे तथ्य के आधार पर उपयुक्त विचार असमीचीन प्रतीत होता है क्योंकि आदर्श प्रायः सभी सभ्यताओं के एक समान होते हैं।

(३) फोनीशियन सम्बन्धी विचारधारा—इसकी एकमात्र आधार फोनीशियन शब्दावली एवं लेखन शैली है जिसके आधार कुछ आधुनिक विद्वानों में इसका सम्बन्ध यूनान से निश्चित किया है। परन्तु एक वृहद शब्द होने के नाते एकाङ्गिक नहीं समझी जानी चाहिए। अतएव यह मत भी ठीक नहीं है।

अन्ततः हम इतना ही कह सकते है कि यूनानी सभ्यता का स्रोत कहीं एक जगह से नहीं वरन् अनेकों स्रोतों के सम्मिलन में था· जिसमें यूनानियों की कुछ अपनी भी देने थी । यही वृहद सरिता आगे चलकर यूनानो सभ्यता कहलायी जिसने पुनः अनेकों छोटी-छोटी धाराओं को जन्म दिया। इनकी जातीयता से भी इस बात का परिचय प्राप्त हो जाता है क्योंकि ये लोग किसी विशेषवर्ग के नहीं वरन् आयोनियन, अकेइयन एवं डोरियन इत्यादि जाति वर्गों के समूह से निर्मित थे।

यूनानियों की उपशाखायें—यूनानी चार प्रमुख शाखाओं में विभक्त थे (१) एकीअन (२) आयोसिअन (३) आयोनिअन (४) डोरिअन । इनमें विशेष महत्वपूर्ण थीं अन्तिम दो शाखायें। यूनान के ऐतिहासिक काल में इन्हीं शाखाओं की प्रधानता और प्रभुता रही।

होमर-काल (१२०० ई० पू०-८०० ई० पू०)—यूनान के इतिहास को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं–(१) पूर्वैतिहासिक और (२) ऐतिहासिक। पूर्वैतिहासिक काल का निर्माण यूनान के प्राचीनतम महाकाव्यों 'इलिअड' और 'ओडेसी' के आधार पर हुआ है। ये यूनान के पूर्वजों की वीरगाथायें हैं। इसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से हम इस काल को वीरगाथा काल के नाम से पुकारते हैं। इनकी रचना होमर नामक यूनानी आदि-कवि ने की थी। अतः यह काल होमर-काल के नाम से भी प्रख्यात है।

महाकाव्य—महाकाव्य-वर्णित कथानक के अनुसार प्रियम ट्राय का राजा था और मेनेलास (Menelaus) स्पार्टा नरेश की पत्नी हेलेन यूनान की सर्व-सुन्दरी नारी थी। ट्राय नरेश के पुत्र पेरी (Paris) ने उसका अपहरण किया। यह स्पार्टा का ही नहीं समस्त यूनान का अपमान था। अतः यूनानियों ने ट्राय पर आक्रमण किया और दीर्घकालीन युद्ध के पश्चात् उसे ध्वस्त कर दिया।

महाकाव्यों में ऐतिहासिकता और अनैतिहासिकता के अंश कितने-कितने हैं, यह कहना कठिन है। परन्तु जहाँ तक इनकी ऐतिहासिक एवं राष्ट्रीय उपयोगिताओं का प्रश्न है उसमें कोई सन्देह नहीं। प्रथमतः इससे पूर्वैतिहासिक यूनान की सामाजिक, राजनीति एवं धार्मिक अवस्था का ज्ञान होता है। द्वितीयतः ये दोनों ग्रन्थ यूनान के राष्ट्रीय ग्रन्थ बन गये। यूनान से समस्य नगर- राज्यों ने अपने आदि-पुरुषों का सम्बन्ध-ट्राय-युद्ध के वीरकर्मा मनुष्यों से स्थापति किया है। अतः उन्हों राष्ट्रीय एकता की भावना के प्रसार में योग दिया।

महाकाव्यों का रूप—वीरगाथा-काल के यूनान को लेख-ज्ञान था। इस समाज में केवल चारण-साहित्य अथवा लोक-साहित्य का उदय हुआ था। ये चारण लोक-रंजन के लिये वीर-पुरुषों के गीतों की स्थान-स्थान पर गाते थे। अन्त में कदाचित् होमर ने ६०० ई० पू० के लगभग इन्हीं गीतों का महाकाव्यों के रूप में सम्पादन किया। वर्तमान रूप में महाकाव्य किसी एक व्यक्ति को रचना ही प्रतीत होते।

होमरकालीन यूनान

राजा—वीरगाथा काल की ईकाई समूह (Clan) थी। समूह उन मनुष्यों के समुदाय को कहते हैं जो किसी एक पूर्वज से उद्भूत हों और जो किसी एक राजा के अधीन हो। इस प्रकार प्रत्येक समूह का एक सामन्त होता था। ये सामन्त सबसे अधिक शक्तिशाली सामन्त को अपना राजा समझते थे। व्यावहा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
रिक रूप में उसका पद वंशानुगत था। उसे शासन-कार्य में सहायता देने के लिये राज्य में दो सभायें थीं—(१) ब्यूल और (२) एगोरा। ब्यूल सामन्त-सभा थी। इसमें देश के बड़े-बड़े सामन्त रहते थे। एगोरा स्वतन्त्र नागरिकों की सभा थी। कालान्तर में इन्हीं सभाओं ने क्रमशः अभिजाततन्त्र (Aristrocracy) और प्रजातंत्र (Democracy) को जन्म दिया। ये दोनों सभायें राजा के समस्त कार्यों पर विचार कर सकती थीं। इनमें प्रत्येक सदस्य स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विचार व्यक्त कर सकता था। परन्तु इनका संगठन नितान्त शिथिल था। न तो इनके सदस्यों की संख्या निचिश्त थी और न योग्यता। इनके अधिकार-कर्त्तव्य भी संदिग्ध थे। राजनीतिक चेतनाविहीन होने के कारण होमरकालीन यूनानी न तो राज्य का विकास कर सका था और न सरकार अथवा अन्य राजनीतिक संस्थाओं का ही। देश में कोई निश्चित संविधान न था। बहुधा राज सामाजिक परम्पराओं और कौटुम्बिक प्रथाओं के आधार पर ही शासन-संचालन करता। किसी निश्चित कर व्यवस्था के अभाव में राजकीय आय उपहारों और सैनिक लूटमार पर ही निर्भर रहती थी। अध्ययन की सुविधा के लिये हम राजा के समस्त कार्यों को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) सैद्धान्तिक दृष्टि से वह देश का सर्वोच्च न्यायालय था। परन्तु इस समय तक यूनान में सुसंगठित विधान का उदय न हुआ था। देश में किसी प्रकार की स्पष्ट न्याय-व्यवस्था न थी। न तो सम्यक् रूप से मुकदमे चलते थे और न वकील-जैसी किसी संस्था के द्वारा बहस होती थी। न्यायाधीश के रूप में राजा परम्पराओं तथा प्रथाओं के आधार पर ही निर्णय करता था। बहुधा वह न्यायाधीश के रूप में नहीं वरन् मध्यस्थ के रूप में ही कार्य करता था। बहुधा कुटुम्ब उसके प्रति नितान्त निरपेक्ष रहते थे। वे युद्ध और हत्याओं के द्वारा स्वयं ही अपने झगड़ों का निर्णय कर लेते थे।

(२) वह देश का सर्वोच्च सेनापति था। होमर-काल युद्ध और हिंसा का काल था। अतः राजा का अस्तित्व उसकी सैनिक शक्ति पर निर्भर था। अतः वह सैनिक संगठन की ओर विशेष दत्तचित्त था। सैनिकों के लिये राज्य में विविध अस्त्र-शस्त्रों एवं वाहनों—धनुष-बाण, बरछे, भाले, कवच, शिरस्त्राण,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ढाल, रथ आदि—का निर्माण होता था। राज्य की ओर से ही उनके शिक्षण, निवास, वस्त्र एवं भोजन आदि की व्यवस्था थी। युद्ध-काल में राजा अपनी सेना का नेतृत्व करता था। आपत्काल में उसे सामन्तों से भी सैनिक सहायता मिलती थी।

(३) राजा का सर्वोच्च पुरोहित था। अनेक प्राचीन देशों के नरेशों की भाँति उसके कार्य भी राजनीतिक और धार्मिक दोनों थे। देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिये वह समय-समय पर याज्ञिक कार्य करता था।

होमरकालीन राजनीतिक परिस्थिति पर विचार करते हुए बर्न महोदय लिखते हैं कि 'होमरकालीन यूनानियों की राजनीतिक संस्थायें अत्यन्त प्रारम्भिक दशा में थीं। ग्रामों का प्रत्येक लघु समुदाय बाह्य नियन्त्रण से मुक्त था, परन्तु राजनीतिक सत्ता इतनी शिथिल थी कि यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि राज्य का प्रायः अस्तित्व ही न था।'[१]

समाज—होमर-कालीन की समाज की इकाई परिवार थी। कभी-कभी अनेक परिवार एक समूह में संगठित हो जाते थे। इस समूह को फ्रैट्रा कहते थे। प्रत्येक परिवार का सर्वोच्च पदाधिकारी उसका पिता होता था। उसके अधिकार असीम थे। परिवार के समस्त सदस्यों का जीवन उसी के अधीन था। वह अपने पुत्रों का वहिःक्षेप कर सकता था, उन्हें कठोर से कठोर शारीरिक दण्ड दे सकता था। यही नहीं, देवताओं की की संतुष्टि के लिए उनकी बलि भी कर सकता था। परन्तु उसके ये समस्त कार्य अपवाद-रूप में ही ग्रहण करना चाहिए। साधारणतया उसे अपनी संतान से अनुराग था। परिवार का सुख-दुःख उसका सुख-दुःख था। पारिवारिक विषयों में वह सर्वसम्मति से कार्य करता था।

---

१ The political institutions of the Homeric Greeks were exceedingly primitive. Each little community of villages was independent of external control, but Political authority was so tenuous that it would not be too much to say that the State scarcely existed at all. —Burn.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समाज में स्त्री की दशा अत्यन्त सन्तोषजनक थी। उसे पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे। पुरुषों की भाँति ही वह सार्वजनिक कार्यों में भाग लेती थी। परन्तु उसका सर्वोच्च गौरव मातृपद में ही निहित था। विवाह के पश्चात् वह गृह-लक्ष्मी के रूप में प्रतिष्ठित होती थी। गृह-कर्म उसके विशेष उत्तरदायित्व थे। गृहिणी के रूप में वह अनाज पीसती, सूत कातती और कपड़ा बुनती थी। परन्तु खाना बनाने का कार्य प्रायः पुरुष का विशेषाधिकार था। माता के रूप में वह अपनी सन्तान का पालन-पोषण करती थी तथा उन्हें अपने वंशीय गुणों एवं परम्पराओं की शिक्षा देती थी।

नारी होमर-काल की चेतना है। वह पुरुषों को प्रेरणा देती है। उसकी सन्तुष्टि के लिये पुरुष युद्ध का आह्वान करता, हिंसा का ताण्डव रचता तथा आग और धुएँ के खेल-खेलता। उसकी स्निग्धता के समक्ष पुरुष की कठोरता और उग्रता आर्द्र हो जाती। उसके प्रति आत्मसमर्पण में पुरुष शिष्टता और विनम्रता के उच्च आदर्शों को अंकित करता। होमरकालीन समाज की जड़ता बहुत-कुछ नारी के कोप और सौन्दर्य से तरल हो गई है।

विवाह का आधार क्रय-विक्रय था। युवक को किसी युवती के साथ विवाह करने के लिये उसके पिता को धन देना पड़ता था। यह धन बहुधा पशु-धन के रूप में दिया जाता था। इस धन प्राप्ति के बदले पिता अपनी पुत्री को 'दहेज' के रूप में धन देता था। यह धन उस पुत्री की व्यक्तिगत सम्पत्ति समझा जाता था।

समाज में विद्या, कला अथवा साहित्य की मान्यता न थी। कठोरकर्मा यूनानी के मत में ये अनावश्यक विलासिता के अंग थे। इसीलिए वह अपने बालकों को जो शिक्षा देता था वह एकमात्र व्यावहारिक और व्यावसायिक होती थी। उन्हें कृषि-कर्म, पशु-पालन, आखेट और युद्ध की ही शिक्षा मिलती थी। हाँ, बालिकाओं की गृह-कर्म सम्बन्धी शिक्षा में ललित कलाओं के लिए भी न्यूनाधिक स्थान था।

होमरकालीन समाज ग्राम्य एवं स्थानीय था।[१] इस समय विशाल नगरों

१. Homeric society is rural and local.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की स्थापना न हुई थी। लोग छोटे-छोटे ग्रामों में ही बसे थे जहाँ वे अपनी अल्प एवं सीमित आवश्यकताओं को समस्त वस्तुएँ स्वयं उत्पन्न कर लेते थे। हाँ, रथकार, कुम्भकार और स्वर्णकार के उद्योगों का विशिष्टीकरण प्रारम्भ हो गया था। ये अपनी दूकानों में एकमात्र किसी एक ही उद्योग का अनुसरण करते थे। इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये यूनान अन्य देशों से धातुओं का आयात करता था। यूनानी धातु-खनन के प्रति निरपेक्ष थे। ग्रामीणों का प्रमुख उद्यम कृषि था। कृषि-भूमि परिवार की सम्मिलित निधि समझी जाती थी। इसके अतिरिक्त वे गाय, बैल, भेंड़, बकरी, सुअर, घोड़ा आदि पशुओं का पालन भी करते थे। आखेट मनोरञ्जन के साथ-साथ उनके भोजन के लिये मांस और अनेक आवश्यकताओं के लिये चर्म देता था। यह वन्य पशुओं का नाश कर उनके खेतों की भी रक्षा करता था।

मनुष्यों का जीवन सरल और साधारण था। वे प्रायः शरीर के ऊपर बिना सिला हुआ एक वस्त्र धारण करते थे। पिन की सहायता से इसी के एक भाग को कंधों के चारों ओर लपेट कर वे अपने ऊर्ध्वभाग को ढकते थे और इसी का दूसरा भाग उनके अधोभाग को ढकता था। कभी-कभी वे अधोभाग में लंगोट अथवा जाँघिये के समान एक अन्य वस्त्र भी धारण करते थे। घर में मनुष्य प्रायः नंगे पैर रहते थे, परन्तु बाहर जाते समय कभी-कभी वे जूतों का भी प्रयोग करते। स्त्री और पुरुष समान रूप से आभूषण धारण करते थे। धनी वर्ग के वस्त्र-भूषण अधिक मूल्यवान् और आकर्षक होते थे। पुरुषों में बड़े-बड़े केश और दाढ़ी-मूंछ रखने की प्रथा थी।

समाज का सामान्य भोजन अन्न, तरकारियाँ और मछली था। परन्तु धनी मनुष्य विविध मांसों और मदिरा का भी प्रयोग करते थे।

समाज में श्रम-कार्य का आदर था। राजा, सामन्त तथा धनी व्यक्ति, सभी सामान्य मनुष्यों की भाँति अपने हाथों से अपना कार्य कर लेते थे। अभिजात एवं धनी वर्ग की महिलायें भी अपना गृह-कार्य स्वयं करती थीं। भूमिपति कभी-कभी अपने कृषि-कर्म में सहायता देने के हेतु अवश्य ही श्रमजीवियों को नियुक्त करते थे। परन्तु उनके साथ पारिवारिक सदस्यों के समान ही व्यवहार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया जाता था।

साहित्य और कला—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, होमरकालीन यूनान कठोरकर्मा मनुष्यों का राष्ट्र था। युद्ध के कठोर उद्घोषों और बर्बर कृत्यों के बीच में पनपने वाली जाति के लिये साहित्य और कला की उपयोगिता ही क्या ? अतः तत्कालीन समाज में न लेख था और न लिखित साहित्य अलिखित चारण गीत ही उनका काव्य और उनका इतिहास था। होमर के महाकाव्यों में स्थापत्य और चित्रकला का भी कोई उल्लेख नहीं मिलता। हाँ, उनमें वस्तुकला के सामान्य संकेत हैं।

भवनों के प्रचीर धूप में सूखी ईंटों से बनाये जाते थे और फर्श तथा छत क्रमशः मिट्टी और बाँस-लकड़ी की होती थी। मकानों के आधार बहुधा पाषाण-निर्मित हुआ करते थे। भवनों की रूपरेखा में न कोई संगठन था, न अनुपात और न स्वास्थ्य एवं शुद्ध वायु-सम्बन्धी नियमों के प्रति कोई अभिरुचि। यही कारण है कि उनमें बहुधा वातायनों तथा धूम्रद्वारों का सर्वथा अभाव रहता था। कभी-कभी उनमें पृथक रूप से पाकशाला और स्नानागार का भी अभाव दृष्टिगोचर होता है। परन्तु वास्तुकार की प्रतिभा राजप्रासादों के निर्माण में अधिक चमकी है। ये राजप्रासाद साधारण भवनों की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित और सुन्दर हैं। इनमें स्नानागार, पाकशाला, वातायान हाल और स्तम्भ आदि का निर्माण किया जाता था। परन्तु इनकी संख्या अत्यल्प रही होगी।

इस प्रकार 'होमर कालीन जीवन कला की दृष्टि से हीन, परन्तु सक्रियता की दृष्टि से उत्कृष्ट है। यह कल्पनाहीन, उल्लासमय द्रुतगामी है। शिष्टाचार और दर्शन के विशेष चिन्तन के लिये यह अति अल्पायु और कठोर है।'[१]

धर्म—होमरकालीन यूनानी स्वाभावतः सांसारिक, प्रवृत्तिमार्गी, सुखार्थी और आशावादी था। अतः उसका धर्म नितान्त व्यावहारिक एवं स्वार्थमूलक

---

१. Homeric life is poor in art, rich in action, it is unmeditative, buoyant, swift, it is too young and strong to bother much about manners and philosophy.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। उसमें परलौकिक विषयों, आत्मा-परमात्मा के गहन विवेचनों काया-क्लेश के सिद्धान्तों, आत्मोत्सर्ग, आत्मभाण्डता आदि आचार-नियमों के लिये कोई स्थान न था। उनमें न रहस्य था और न संस्कार; न पवित्र दिवस और न पाप-पुण्य की धारणा। उसने देवताओं की कल्पना की थी, परन्तु उसके लिये ये देवता भी प्रकृत्या मानवी थे। उनमें ऐहिक मनुष्य के समान ही गुण-दोष थे। मनुष्यों की भाँति ही उनमें काम, क्रोध, मद आदि की दुर्बलतायें थीं। मनुष्यों की भाँति ही वे कलह करते, प्रसन्न और अप्रसन्न होते थे। मनुष्य की भाँति उन्हें खाद्य और पेय की आवश्यकता होती थी। उनमें और ऐहिक मनुष्यों में यदि कोई अन्तर था तो वह केवल एक बात का। मनुष्यों की भाँति देवता मर्त्य न थे, नश्वर न थे। अमृत-पान करने के कारण उन्होंने अमरतत्व प्राप्त कर लिया था। उनका निवास स्थान आलिम्पस पर्वत था। यूनानियों का बहुदेववाद प्रकृति की भिन्न-भिन्न शक्तियों के मानवीकरण का परिणाम था। प्रकृति के विभिन्न रूप ही उसके देवता थे। आकाश को उसने जियस देवता की संज्ञा दी, सूर्य को अपोलो की। एथेना उसकी युद्ध-देवी थी।

अपने इन देवताओं के साथ यूनानी उपासक का सम्बन्ध आदान-प्रदान के सिद्धान्त पर अवलम्बित था। दीर्घायु, सुख और समृद्धि आदि की इच्छा से वह इनकी उपासना करता था, इन्हें सन्तुष्ट करने के लिये यज्ञ करता था, उपहार चढ़ाता था। इनके बदले में प्रसन्न होकर देवता अपने आराधकों को अभीष्ट-दान करता था। पूजा का लक्ष्य न पाप-मोचन था और पुण्य-लाभ; उसमें न सदाचारिता की आवश्यकता थी और न आन्तरिक पवित्रता की। वह पूर्णरूपेण यान्त्रिक थीं, बाह्य थी। देवताओं के प्रत्यर्पण के पीछे स्वार्थपूर्ति की आकांक्षा थी। इस प्रकार के अनुष्ठानविहीन यज्ञों के हेतु पुजारियों की आवश्यकता न थी। यही कारण है कि होमरकालीन यूनान में पुजारी-वर्ग का आविर्भाव न हुआ था। पिता ही अपने परिवार की ओर से पूजा एवं यज्ञादि करने के हेतु समर्थ था।

पारलौकिक जीवन के प्रति उदासीनता होने के कारण यूनानियों ने स्वर्ग और नरक तथा मरणोपरान्त पुरस्कार और दण्ड की कल्पना न की थी। यद्यपि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होमर ने हेड्स नामक देवता के अन्धकारमय पाताल-लोक का उल्लेख किया है जहाँ प्रेतात्मा जो जाना पड़ता है तथापि उसने नरक के रूप में इसका विकास नहीं किया। मृत्यु के पश्चात् प्रेतात्मा के जीवित रहने के संकेत अवश्य मिलते हैं, परन्तु उसका यह जीवन ऐहिक जीवन से भिन्न नहीं। प्रेतात्मा के भावी जीवन के प्रति निरपेक्ष के कारण ही यूनानी न तो मृतक के शव की रक्षा करते थे और न उसके साथ उसके जीवन की प्रिय सामग्री ही समाधिस्थ करते थे। बहुधा तो वे अपने मृतकों के शवों को दग्ध भी कर देते थे।

यूनानी धर्म में नैतिकता थी, परन्तु एक सीमित रूप में। यूनानी अपने माता-पिता के प्रति आज्ञाकारी, गुरुजन के प्रति विनम्र तथा स्वजन के प्रति उदार था। उसे अपने देवी-देवताओं में श्रद्धा-भक्ति थी। समाज वृद्धों, नारियों और अतिथियों के प्रति विशेष ध्यान देता था। वह आत्मसंयम, देश भक्ति आदि गुणों का प्रतिपादन करता था। परन्तु इतना होते हुए भी यूनानी नैतिकता मूलतः कठोरकर्मा राष्ट्र की नैतिकता थी। उसमें शत्रुओं के लिये कोई स्थान न था। **'जो ताको काँटा बुवै ताहि बोइ तू फूल'** के सिद्धान्त को सुनकर होमरकालीन यूनानी कदाचित् क्षोभ से खिन्न हो उठता। उसकी नैतिकता तो सुहृद् के लिये थी। शत्रु के प्रति तो वह नितान्त उग्र था। पुनः परोपकारिता ऐसे गुणों की भी वह सीमित अर्थ ही में ग्रहण करता था। वह परोपकार करेगा, यदि ऐसा करने में उसकी विपुल हानि न हो। अपने अस्तित्व की कुटिया जलाकर लोक-कल्याण की रागिनी अलापने में उसे कोई रुचि न थी। परोपकार के लिये वह आत्म-विनाश में विश्वास करता था।

नगर-राज्यों का उदय—होमर-काल के राजनीतिक एवं सामाजिक संगठन ग्राम्य था। समाज की इकाई समूह थी। इन्हीं के ऊपर राजनीतिक संगठन भी निर्भर था। परन्तु ८०० ई० पू० के लगभग वह इकाई बृहत्तर होने लगी और यूनान का संगठन ग्राम्य न रहकर उत्तरोत्तर नागरिक होने लगा। बात यह थी कि लोग उत्तोरत्तर अरक्षित अनुभव करने लगे। अपनी रक्षा के लिये उन्होंने किसी उच्च स्थान पर एक दुर्ग बनाना आरम्भ किया। इसी दुर्ग में जाति का शासन-केन्द्र होता था और इसी के चतुर्दिक लोग रहने लगे थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार दुर्ग को केन्द्र बनाकर नगर का उदय हुआ। इस प्रकार के नगर-राज्यों में एथेंस, थेबीज़, मेगारा,स्पार्टा, कोरिन्थ और मिलिटस विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार नगर राज्यों का उदय राजकीय छत्रच्छाया में सैनिक आवश्यकताओं के परिणाम-स्वरूप हुआ था।

एक-आध नगर-राज्यों के अतिरिक्त प्रायः समस्त नगर-राज्यों का वैधानिक विकास समान रूप से हुआ। ८०० ई० पू० के पूर्व वे राजतन्त्र थे। ८०० ई० पू० लगभग वे ओलीगार्की हुए। लगभग १०० वर्षों के पश्चात् (लगभग ७०० ई० पू०)। ओलीगार्की का नाश कर टिर्रिस ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया। अन्त में ६०० ई० पू० और ५०० ई० पू० जनतन्त्रात्मक शासन का उदय हुआ।

प्रारम्भ में राजा था। राजा का शासन सामन्तवाद पर निर्भर था। इन सामन्तों की शक्ति बढ़ी। इनके पास बड़े-बड़े विशाल भूखण्ड आये। ये लघु-राजा हो गये। राजनीति में इनका सहयोग अनिवार्य हो गया। राजा की शक्ति का ह्रास हुआ। और उसकी शक्ति इसी सामन्त-वर्ग में हस्तान्तरित हो गई। इन्होंने राजतन्त्र का अन्त कर दिया और ओलीगार्की की सत्ता घोषित की।

अभी तक देश की सम्पत्ति का आधार भूमि थी। जिसके पास अधिक भूमि होती थी वही प्रभावशाली होता था। परन्तु देश का व्यापार-व्यवसाय बढ़ रहा था। अनेक कारणों से उपनिवेश हुआ। ईजियन, आयोनियन, काले और भूमध्य सागर में दूर-दूर तक उपनिवेशों की स्थापना हुई। इस व्यापारिक प्रसार ने मध्य वर्ग को जन्म दिया। अब ये भी राजनीतिक अधिकारों की माँग करने लगे। अभिजात वर्ग और मध्य-वर्ग के इस संघर्ष ने अशान्ति को जन्म दिया, अशान्ति काल ने तानाशाही को। ओलीगार्की को नष्ट कर किसी न किसी साहसी एवं महत्वाकांक्षी तानाशाह ने शस्त्रबल से सम्पूर्ण सत्ता अपने हाथ में कर ली। उसने शान्ति स्थापित की। अतः साधारणतः जनता ने अपनी सुरक्षा लिए उसे सहयोग दिया। सामूहिक स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाकर जनता ने सामूहिक सुरक्षा प्राप्त की। देश में तानाशाही आई।

परन्तु तानाशाही की अनीति और अत्याचार बढ़ रहे थे। आर्थिक अभ्युदय के साथ जनसाधारण में राजनीतिक चेतना आ रही थी। इसी चेतना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने तानाशाही का नाशकर जनतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली को जन्म दिया।

नगर-राज्य (पोलिस)—यूनानी शब्द 'पोलिस' का हिन्दी अनुवाद है—'नगर-राज्य'। परन्तु यह भ्रमात्मक है। पोलिस किसी भी नगर के समान न था। इसकी रूप-रेखा नगर से भिन्न थी; और न यह राज्य (State) ही था। इसके कार्य राज्य (State) से अधिक थे। परन्तु किसी अन्य उपयुक्त शब्द के अभाव में यही शब्द व्यवहृत होता है। यूनानियों के लिये पोलिस का अर्थ राज्य था, राष्ट्र था, लोकमत था तथा जीवन-यापन की एक विशिष्ट प्रणाली था। पोलिस यूनानी की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन था।

नगर-राज्यों का लघुत्व—इन नगर-राज्यों की प्रमुख विशेषता थी इनका लघुत्व। इस लघुत्व के अनेक कारण थे (१) जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, यूनान के पर्वतों और पठारों ने इस देश को अनेक छोटे-छोटे क्षेत्रों में विभक्त कर दिया था। इस भौगोलिक परिस्थिति ने उन छोटे-छोटे क्षेत्रों में छोटे-छोटे नगर-राज्यों के उदय में योग दिया। (२) पार्वतीय प्रदेश होने के कारण यूनान में यातायात एवं गमनागमन के साधन अल्प एवं अरक्षित थे। अतः ऐसे देश में किसी विशाल राज्य की स्थापना दुष्कर थी। यहाँ लघु नगर-राज्यों का होना ही स्वाभाविक प्रतीत होता है। (३) यूनानी जीवन अत्यन्त सरल एवं साधारण था। उसकी आवश्यकतायें अल्प और सीमित थीं। अतः इनकी पूर्ति लघु नगरों राज्यों के उत्पादन के द्वारा ही हो जाती थी। जीवन की बहुल आवश्यकतायें कभी-कभी राज-विस्तार की अपेक्षा करती हैं। परन्तु यूनान में इस सिद्धांत के अनुकूल परिस्थिति न थी। (४) यूनानी मनोवृत्ति जनतंत्रात्मक थी। जनतंत्रात्मक शासन-प्रणाली का सफल प्रदर्शन लघु प्रयोगशालाओं में ही अधिक सुचारु रूप से होता है। अतः यूनानियों ने लघु राज्यों को ही हितकर समझा। (५) यूनानी राज्यों का लघुत्व बहुत-कुछ उनकी 'नागरिक' की संकीर्ण परिभाषा का भी परिणाम है। यूनानी धारणा के अनुसार सफल नागरिकता के अन्तर्गत राज्य के प्रत्येक नागरिक को व्यक्तिगत रूप से परस्पर-परिचित होना चाहिए। पुनः, यूनानी परिभाषा के अन्तर्गत नागरिक का संबंध एकमात्र करदान और मता-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धिकार से न था। इस समय तक यूनान में 'प्रतिनिधि-प्रणाली' का उदय न हुआ था। अतः यूनानी परिभाषा के अनुसार प्रत्येक नागरिक व्यक्तिगत रूप से राज्य की सभा अथवा समिति का सदस्य था। व्यक्तिगत रूप से उसे सार्वजनिक कार्यों में भाग लेना पड़ता था। ये बातें तभी सम्भव थीं जब राज्य लघु हों और उनके नागरिकों की संख्या सीमित हो।

स्पार्टा (Sparta)—यह नगर-राज्य जनतन्त्रवादी एवं स्वातन्त्र्यपोषक यूनान में अपवाद-स्वरूप था। जहाँ यूनान के अन्य राज्यों ने जनतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली की ओर क्रमशः विकास किया वहाँ स्पार्टा के नगर-राज्य ने कठोर सैनिकवाद और निरंकुशवाद को जन्म दिया जिसके अन्तर्गत न विचार स्वतन्त्रता थी और न व्यक्तिगत इच्छा-अनिच्छा का महत्व। इस विस्मयकारी अपवाद के कुछ कारण थे—

(१) स्पार्टा उत्तर-पूर्व और पश्चिम में पर्वतों से घिरा हुआ था अतः वह अन्य भू-भागों से पृथक् हो गया था, उसमें एकाकिता आ गई थी। परिणामतः वह बाह्य संसार की प्रगति से अस्पृष्ट रहा।

(२) इस राज्य में कोई भी अच्छा बन्दरगाह न था। इससे व्यापारिक प्रगति अवरुद्ध हो गई। परिणामस्वरूप देश में सबल व्यापारी वर्ग अथवा व्यावसायी वर्ग का उदय न हो सका। इन्हीं वर्गों के द्वारा प्रारम्भ में जनतन्त्रात्मक अधिकारों की माँग की जाती है। स्पार्टा इससे वंचित रहा।

(३) स्पार्टन डोरियन जाति के थे। इन्होंने बाहर से आकर स्पार्टा के मूल निवासियों को पराजित किया था और उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया परन्तु विजेताओं की अपेक्षा विजित जाति की संख्या कहीं अधिक थी। अतः डोरियन विजेताओं को स्पार्टा की इस अतिसंख्यक मूल जाति से सदैव विद्रोह की आशंका रहती थी। विद्रोह की इस आशंका का निराकरण करने के हेतु विजेताओं ने देश के ऊपर साभिप्राय एक अति कठोर सैनिकवादी निरंकुश शासन का आरोपण किया था।

लाइकर्गस स्पार्टा का विधान—८२५ ई० पू० के लगभग स्पार्टा में लाइकर्गस नामक एक व्यक्ति का जन्म हुआ। इस समय देश में अशान्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्याप्त थी। उसे बाह्य आक्रमण का भय था। अतः इन संकटों से घबड़ाकर स्पार्टा के पदाधिकारियों ने लाइकर्गस को आमन्त्रित किया कि वह देश को ऐसा संविधान दे जो उसकी संरक्षा को अक्षय रक्खे। अस्तु, लाइकर्गस ने जो संविधान निर्मित किया वह अनेक दोषों से पूर्ण होने पर भी स्पर्टा को सैनिक दृष्टिकोण से अत्यधिक सबल बनाने में सफल हो सका। उसके आधार पर शासित यह नगर-राज्य कुछ समय के लिये यूनान-संसार का सर्वशक्तिशाली एवं अनुशासनशील राज्य बना रहा।

लाइकर्गस-द्वारा निर्मित इस संविधान के चार प्रमुख अंग थे—(१) राजा (२) सीनेट (३) असेम्बली और (४) डायरेक्टरी।

१. राजा—स्पार्टा में द्विराजता की कल्पना हुई। एक ही साथ दो राजा सिंहासनासीन होते थे। दोनों के पद वंशानुगत थे। ये राज्य के सर्वोच्च सेनापति न्यायाधीश एवं पुरोहित होते थे। दोनों ही सीनेट के अधीन थे। परन्तु दो राजाओं के होने के कारण राजसत्ता शिथिल हो गई थी।

२. सीनेट—इसका यूनानी नाम जेरुसिया (Gerusia) था। इसमें २८ सदस्य थे जिनका निर्वाचन असेम्बली के द्वारा होता था। ये सब अभिजात वर्ग के प्रतिनिधि होते थे और इनकी आयु आठ वर्ष से ऊपर होती थी। कदाचित् व्यवस्थाकार की दृष्टि में इससे अल्पायु व्यक्ति शासन-कार्य के लिये अपरिपक्व था। जेरुसिया के इन सदस्यों की कार्यावधि आजीवन होती थी। यह सभा देश की सर्वोच्च न्यायालय थी। गम्भीर अभियोग इसी के सम्मुख प्रस्तुत होते थे। यही व्यवस्था कार्य भी करती थी। इसके द्वारा प्रस्तावित बिल असेम्बली में प्रस्तुत किया जाता था।

३. असेम्बली—यह लोक-सभा थी। यूनानी इसे अपेला (Apella) कहते थे। इसके सदस्यों की संख्या लगभग ८००० होती थी, क्योंकि स्पर्टा-राज्य का प्रत्येक स्वतन्त्र नागरिक जो तीस वर्ष या इससे अधिक अवस्था का होता था, इस सभा कब स्वतः सदस्य समझा जाता था। यह सभा जेरुसिया तथा डायरेक्टरी के सदस्यों का सिर्वाचन करती थी। जेरुसिया में प्रस्तावित प्रत्येक बिल इस सभा में आता था। इसकी सम्मति के बिना वह अधिनियम न बन सकता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४. डायरेक्टरी—इसमें पाँच 'एफ़र' (Ephors) होते थे। यह प्रति वर्ष असेम्बली के द्वारा निर्वाचित होते थे। कालान्तर में इन एफ़रों की शक्ति बहुत बढ़ गई। प्रायः राज्य की सम्पूर्ण शक्ति इन्हीं में हस्तान्तरित हो गई। यही देश के सर्वोच्च सेनापति, न्यायाधीश और व्यवस्थापक बन बैठे। परिणामतः स्पार्टा का शासन पाँच व्यक्तियों की ओलिगार्की के समान हो गया।

इस प्रकार लाइकर्गस द्वारा निर्मित संविधान राजतन्त्र, अभिजाततंत्र, कुलीन-तंत्र और प्रजातंत्र (Democracy) का सम्मिश्रण था। एक विद्वान् ने इसकी विवेचना करते हुए कहा है कि 'स्पार्टा की सरकार रूपरेखा में राजतंत्र, सिद्धान्तों में गणतंत्र और वास्तविकता ने कुलीनतंत्र (ओलिगार्की) थी।[१]

संविधान की अन्य विशेषताएँ—यह संविधान रूढ़िवाद, समष्टिवाद, निरंकुशवाद और सैनिकवाद के सिद्धान्तों पर आधारित था। देश में शारीरिक प्रौढ़ता समस्त मानवी गुणों के ऊपर समझी जाती थी। निर्बल तथा अङ्गहीन शिशुओं को जीवित रहने का अधिकार न था। इनकी हत्या कर दी जाती थी। स्वस्थता और प्रौढ़ता की महत्ता इस सीमा तक पहुँच गई थी कि उसने दाम्पत्य-जीवन की पवित्रता को भी कलंकित कर दिया था। स्वस्थ पुत्र की कामना से कोई भी नारी पर-पुरुष के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकती थी। सात वर्ष की आयु के पश्चात् बालक का पालन-पोषण राजकीय शिविर में होता था। वहाँ उसे शारीरिक व्यायाम, कठोर क्रीड़ाओं एवं अनुशासन की शिक्षा दी जाती थी। उसके पाठ्य-क्रम में साहित्य, कला आदि के लिए कोई स्थान न था। ये अनावश्यक विलासिता के अङ्ग समझे जाते थे। राजकीय शिविरों का जीवन अति क्लिष्ट और कठोर था। वहाँ दैनिक स्नान वर्जित था, क्योंकि स्पार्टा के निवासी की धारणा में वह पुरुष-शरीर में स्त्रैणता एवं मार्दव उत्पन्न करता है। इसी विनाशकारिणी आशंका का निराकरण करने के हेतु बालक को प्रत्येक ऋतु में घास-फूस के विस्तरों पर सदैव बाहर सोना पड़ता था। बारह वर्ष की अवस्था के पश्चात् उसे शरीर रक्षा के हेतु केवल एक वस्त्र दिया जाता था जिस

[१] 'Spartan Government was in form a moanrchy, in theory a republic and in reality an oligarchy.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर उसे आजीवन निर्भर रहना पड़ता था। इस प्रकार की दुःसह साधना के पश्चात् यदि युवक जीवित रहा तो तीस वर्ष की आयु में उसे स्पार्टा-राज्य की नागरिकता प्रदान होती थी।

स्पार्टा के प्रत्येक नागरिक को सार्वजनिक भोजनालयों में भोजन करना पड़ता था। यह भोजन अल्प एवं साधारण होता था। उसके लिए प्रत्येक नागरिक को भोजनालय में खाद्यान्न के रूप में चन्दा देना पड़ता था। न देने पर उसकी नागरिकता का अपहरण हो जाता था।

बीस वर्ष से साठ वर्ष की आयु के प्रत्येक नागरिक को देश की अनिवार्य सैनिक सेवा करनी होती थी। सैनिकों का सर्वोच्च गुण वीरता तथा देश-प्रेम था। युद्ध से भागे हुए सैनिकों का सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था। समर-भूमि में मृत्यु स्पृहणीय थी।

देश में विवाह अनिवार्य था। अविवाहित पुरुष मताधिकार से वंचित कर दिया जाता था। सन्तानहीन विवाहित स्त्री-पुरुष भी अवज्ञा की दृष्टि से देखे जाते थे। राज्य की ओर से विवाह की आयु निर्धारित थी—पुरुष के लिए तीस वर्ष और स्त्री के लिए बीस वर्ष की।

स्वतन्त्र नागरिकों के लिये व्यापार-व्यवसाय का अनुसरण वर्जित था। लाइकर्गस को भय था कि धनार्जन के चक्कर में पड़ कर वे अर्थप्रेमी, विलासी और युद्ध विमुख न हो जायँ। विदेशियों के आगमन एवं स्वदेशियों के बहिर्गमन पर भी नियन्त्रण कर दिया गया। देश में सोने-चाँदी के आयात के ऊपर भी निषेध लग गया। इनके पीछे उद्देश्य यही था कि कही विदेशी मनुष्यों और वस्तुओं के साथ-साथ देश में परिवर्तनशील विचारों का भी आयात न होने लगे। लाइकर्गस ने केवल लौह—मुद्रा का निर्माण किया जिससे लोग अधिक धन-संचय करके भ्रष्ट न हो जायँ।

इस संविधान के अन्तर्गत स्पार्टा की नारियाँ भी पौरुषशालिनी होती थीं। उन्हें भी शारीरिक व्यायाम, कठोर क्रीड़ाओं, भाग-दौड़, मल्लयुद्ध आदि की शिक्षा दी जाती थी। वे प्रत्येक सार्वजनिक विषय पर स्वच्छन्दतापूर्वक वाद-विवाद कर सकती थीं। उन्हें साम्पत्तिक अधिकार भी थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्पार्टा के संविधान की आलोचना—इस संविधान की धाराओं से स्पष्ट हो जाता है कि यह जड़ एवं कृत्रिम था। उसमें न विचारों की स्वतन्त्रता थी और न जीवन की प्रफुल्लता। सारा देश एक सैनिक शिविर की भाँति हो गया था। शरीर की वृद्धि के हेतु मस्तिष्क को सुखा दिया गया था। शारीरिक स्वस्थता नीरस पाशविकता में परिणत हो गई थी। मनुष्य का जीवन यान्त्रिक हो गया था। अति कठोर एवं कृत्रिम व्यवस्था के अन्तर्गत मनुष्य के अन्तर का वह रसात्मक उद्गम शुष्क हो गया था जिससे काव्य और कला की निस्सृति होती है। आज स्पार्टा के ध्वंसावशेषों में कोई भी कण ऐसा नहीं जो उसकी संस्कृति अथवा कला का परिचायक हो स्पार्टा ने एकमात्र सैनिक उत्पन्न किये और कुछ भी नहीं। ५५० ई० पू० के पश्चात् स्पार्टा में एक भी कवि, कलाकार अथवा वैज्ञानिक का नाम सुनाई नहीं पड़ता। देश में संगीत और नृत्य अवश्य रहे; परन्तु कला की दृष्टि से नहीं, वरन् इसलिये कि उनसे शारीरिक एवं चारित्रिक विकास होता था।

'नागरिक राज्य के लिये है, राज्य नागरिक के लिये नहीं' इस सिद्धान्त का अनुसरण करने वाले यूनानी व्यवस्थाकार ने समष्टि की वेदी पर व्यक्ति की हत्या कर डाली। व्यक्ति स्वेच्छानुसार न व्यापार कर सकता था और न व्यवसाय, न उसे अपनी मनोनीत शिक्षा का अधिकार था और न जीवनयापन की प्रणाली का। वह वात्सल्य एवं दाम्पत्य दोनों के सुखों से प्रायः वंचित था। यात्रा एवं विदेशीय सम्पर्क से विरत स्पार्टा-निवासी कूप-मंडूक बन गये। अपनी इसी सैनिक वादिता, गुह्य-संवाद एवं कूप-मंडूकता के लिये आज भी उसकी तुलना जर्मनी के नाजी एवं चीन के साम्यवादी दलों से की जाती है।[१]

महती शक्ति ने स्पार्टा-निवासी को दम्भी बना दिया। देश में साम्पत्तिक

---

१. "With its militarism, secret policy, minority rule and closed economy, Spartan system resembled fascism more then comniusm."

—Momsen.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
संग्रह निषिद्ध था। अतः अब वे प्रच्छन्नरूप से विदेशीय बैंकों में धन-संग्रह करने लगे। अब कृत्रिम कठोरता के अन्तर्गत उनमें भ्रटाचार बढ़ने लगा। वे लोभी, लालची और कामुक हो गये।

कालान्तर में सैनिकवादी स्पार्टा अपने पड़ोसी राज्यों के प्रति उग्र हो गया। उसने उन्हें आत्मसात् करने की चेष्टा करना प्रारम्भ किया। परिणामतः वे स्पार्टा से भयत्रस्त हो गये और उसके पतन की कामना करने लगे। जिस समय सैनिकवादी शक्तिशाली स्पार्टा का पतन हुआ उस समय प्रत्येक राज्य को विस्मय हुआ, परन्तु दुःख किसी को भी नहीं। सब उसके पराभव से हर्षित थे।

अनेकानेक दोषों एवं त्रुटियों के होते हुए भी संविधान ने स्पार्टा को अनेक लाभ पहुँचाये। इसके अन्तर्गत वहाँ का निवासी अत्यन्त संयत और अनुशासनशील बन गया। उसकी शारीरिक उत्कृष्टता स्पृहणीय थी। देश में निर्बल, अङ्गहीन अथवा तोंदवाले व्यक्तियों का अभाव था। यहाँ औषधियों का अभाव था। प्रत्येक नागरिक स्वदेशाभिमान से ओत-प्रोत था। अपने देश की रक्षा में वह हँसते-हँसते आत्मोत्सर्ग कर देता था। इसी भावना का यह परिणाम था कि थर्मापोली के युद्ध में ३०० स्पार्टा-सैनिकों ने अन्त तक विशाल पारसीक वाहिनी का सामना किया और जब तक उनमें एक भी सैनिक जीवित रहा, तब तक पारसीक सेना एक इंच भी आगे न बढ़ सकी। स्पार्टा-निवासी नितान्त आज्ञाकारी था। उसके हृदय में अपने संविधान के प्रति असीम श्रद्धा थी। उसे उचित-अनुचित का सदैव ज्ञान रहता था। एक व्यक्ति का कथन है कि 'सब यूनानी यह जानते हैं कि उचित क्या है, परन्तु एकमात्र स्पार्टा निवासी ही उसे करते हैं।' यह कथन स्पार्टा-निवासी के उच्च व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धांजलि है। स्पार्टा ने कला-प्रदर्शन किया था—शब्दों और पाषाण-खण्डों पर नहीं वरन् मनुष्यों पर। उसके सैनिक ही उसकी सर्वोत्तम कला-कृति हैं।

उत्थान-पतन—अपनी भूमि-क्षुधा को शान्त करने के हेतु स्पार्टा ने मेसेनिया पर आक्रमण किया। यह युद्ध ७४३ ई० पू० से लेकर ७२४ ई० पू० तक चलता रहा। अन्त में स्पार्टा विजयी हुआ। पराजित जनता दास बना ली गई। सैनिक बल ने स्पार्टा को छठीं शताब्दी ई० पू० पेलोपोनेसस में सर्वशक्ति-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
शाली बना दिया। उसने आर्गोज और आर्केडिया पर आक्रमण किया। यद्यपि वह इन्हें अपने अधीन न कर सका तथापि उसकी सत्ता की धाक सर्वत्र जम गई। लीडिया के राजा क्रोसस ने आतङ्कित होकर उससे मैत्री-संधि कर ली। आयोनिया के यूनानियों ने पारसीक आक्रमण के विरुद्ध उससे सहायता माँगी। स्पार्टा की व्यवस्था कुलीनतंत्र (ओलिगार्किक) थी। अतः जहाँ कहीं भी टिरेनी दृष्टिगत होती थी वह उसके विरुद्ध हो जाता था। उदाहरणार्थ कोरिंथ की टिरेनी को उसने उच्छेदित कर दिया।

अन्त में अनेक कारणों से उसका एथेंस नामक अन्य महत्वपूर्ण नगर-राज्य से युद्ध हुआ। स्पार्टा की सेना ने उसे पूर्णरूप से परास्त किया। एथेंस ने आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार स्पार्टा सर्वशक्तिमान् हो गया। परन्तु उसके भाग्य ने इस तिथि के पश्चात् करवट ली। ३७१ ई० पू० थेबीज़ ने उसकी सेना को ल्यूक्ट्रा के युद्ध में पराजित किया। कुछ समय के लिये स्पार्टा पुनः स्वतन्त्र हो गया परन्तु सिकन्दर के साम्राज्य में वह पुनः निमज्जित हो गया।

स्पार्टा के पतन के कारण

(१) स्पार्टा की उग्र नीति—प्रारम्भ में स्पार्टा यूनानी नगर-राज्यों की स्वतन्त्रता का संरक्षक था। जिस समय एथेंस ने समीपवर्ती नगर-राज्यों को आत्मसात् करना चाहा उस समय स्पार्टा ने उनकी रक्षा की और युद्ध में एथेंस को पराजित किया। परन्तु एथेंस के पतन के पश्चात् वह स्वयं साम्राज्यवादी हो गया। उसने विभिन्न नगर-राज्यों की आन्तरिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया और एक-एक करके सबके ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित करना प्रारम्भ किया। अतः यूनानी नगर-राज्य उसके विरोधी हो गये। उन्होंने विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया।

(२) फारस और स्पार्टा का युद्ध—स्पार्टा ने विद्रोही यूनानियों की सहायता की थी। अतः फारस उसका विरोधी हो गया। फारस ने उसके विरुद्ध नगर-राज्यों को उत्तेजित करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार स्पार्टा को एक ओर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
फारस से युद्ध करना पड़ा और दूसरी ओर नगर-राज्यों से । इससे उसके सीमित साधनों का ह्रास हो गया ।

(३) **अविश्वास की भावना**—स्पार्टा राज्य अत्यन्त सङ्कुचित एवं स्वार्थी मनोवृत्ति का राज्य था । उसे केवल अपने हित का ध्यान था । पारसीकों ने एथेंस के ऊपर आक्रमण किया । एथेंस निवासियों ने स्पार्टा से सहायता मांगी । परन्तु वे न आये । एथेंस निवासियों को केवल अपने बल पर मरेथान का युद्ध लड़ना पड़ा । स्पार्टा-निवासी तो बाद को प्लेटा और माइकेल के युद्धों में सम्मिलित हुए । थर्मापली के युद्ध में एथेंस निवासी अकेले लड़े । पारसीकों ने उन्हें पराजित किया और एथेंस पर आक्रमण किया । नगर जला दिया गया परन्तु स्पार्टा निवासी उसकी सहायता के लिये न आये । प्लेटा के युद्ध में भी स्पार्टा निवासी बड़ी कठिनाई से आये । माइकेल के युद्ध के पश्चात् पुनः वे वापस चले गये । उन्हें अन्य नगरों की स्वतन्त्रता का ध्यान न था । इस प्रकार के स्वार्थपूर्ण कार्यों ने उनके प्रति अविश्वास उत्पन्न कर दिया ।

(४) **हस्तक्षेप-नीति**—स्पार्टा में ओलोगार्की थी । अतः वह अन्य प्रकार की व्यवस्थाओं का मूलोच्छेदन करने के लिये तत्पर रहता था । कोरिंथ का उदाहरण इसका साक्षी है । परिणामतः अनेक राज्य उसके शत्रु बन गये ।

(५) **थेबीज़ से युद्ध**—स्पार्टा के लिये यह युद्ध विनाशकारी सिद्ध हुआ । सर्वप्रथम स्पार्टा की सेना ल्यूक्ट्रा के युद्ध में पराजित हुई । उसकी अजेयता नष्ट हो गई । उसके गौरव को भारी धक्का लगा । इसके पश्चात् उत्तरोत्तर उसकी अवनति होती गई ।

(६) **मेसीडन का उदय**—यह उसके लिये घातक सिद्ध हुआ । सिकन्दर के समय मेसीडन ने स्पार्टा पर अधिकार कर लिया ।

(७) **विलासिता**—समृद्धि के साथ लोग लाइकर्गस के कठोर सिद्धान्तों को भूल गये । देश के सेनापति एवं राजनीतिज्ञ सुखाकांक्षी हो गये अपने नगर में धन संचय नहीं हो सकता था । अतः उन्होंने विदेशों में संग्रह करना प्रारम्भ किया ।

(८) **नागरिकता की हानि**—युद्ध में उत्कृष्ट नागरिक मारे गये । जो

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बचे उनके पास इतना धन न था कि वे सामूहिक भोजनालय के लिये चन्दा दे सकें। अतः उनसे नागरिकता छीन ली गई। इस प्रकार युद्धों एवं मताधिकार के अपहरण के कारण नागरिक संख्या उत्तोरत्तर क्षीण होती गई।

(६) **स्पार्टा**—स्पार्टा निवासी संकीर्ण मनोवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्होंने विजित जातियों को आत्मसात् करने का कभी भी प्रयास न किया। अतः वे सदैव अल्प-संख्यक रहे। उनके चारों ओर बहुसंख्यक विजातियों का समुदाय था जो सदैव विद्रोह करने के हेतु अवसर की प्रतीक्षा किया करता।

(१०) **स्पार्टा का शासन अनुदार था**—पराजित जनता को नागरिकता न थी। उन्हें दास बनाया जाता था। उन्हें भूमि अधिकार न था। उनसे बेगार ली जाती थी। उनके पीछे गुप्तचर लगे रहते थे। इससे वे सदैव विजेताओं के विरोधी रहे।

(११) **विधान की कठोरता**—स्पार्टा विधान इतना कठोर था कि वह अधिक समय तक न चल सकता था। वह नितान्त कृत्रिम था।

(१२) **व्यापार-विहीनता**—स्पार्टा में व्यापार को हतोत्साह किया गया। अतः समृद्धि के लिये सैनिक वृत्ति ही उसका एक मात्र सहारा था।

एथेन्स—जनश्रुतियों के आधार पर ज्ञात होता हैं एटिका बारह स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त था जिनमें प्रायः पारस्परिक युद्ध हुआ करते थे। कालान्तर में एथेन्स राज्य की सत्ता बढ़ी और उनसे अन्य राज्यों को जीतकर इस प्रदेश में राजनीतिक एकता स्थापित की।

प्रारम्भ में एथेन्स में राजतन्त्र था। कोड्रस इसका अन्तिम शासक था। उसकी मृत्यु के पश्चात् राजसत्ता नौ संरक्षकों—आर्कन्स—के हाथ में आ गई। इस प्रकार ओलीगार्की आई। ये आर्कन प्रति वर्ष सामन्त वर्ग के निर्वाचित होते थे। राजकीय कार्य इन्हीं में विभक्त थे।

इन नौ आर्कनों के अतिरिक्त नगर में एक समिति थी जिसे एरिओपेगस की कांउसिल कहते थे। यह भूतपूर्व आर्कन की समिति थी। यह एक प्रभावशाली संस्था थी। इसे आर्कन के कार्यों पर अङ्कुश रखने का अधिकार था। हत्या, विद्रोह आदि के गम्भीर मुकदमें भी यही तय करती थी। अनुशासनहीन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
नागरिकों को यह दण्ड भी दे सकती थी।

ड्रैको के अधिनियम—अभी तक देश में लिखित न्याय-व्यवस्था न थी। सर्वप्रथम उसे लिखित रूप देने का कार्य ड्रैको नामक व्यक्ति ने किया। उसने अति कठोर संविधान का प्रतिपादन किया। इसका एक मात्र उद्देश्य अभिजात वर्ग के अधिकारों का संरक्षण एवं निम्न वर्गों के जनतन्त्रात्मक आन्दोलन का दमन था।

असन्तोष—परन्तु जनसाधारण का दमन न हो सका। इस समय देश में तीन वर्ग थे—(१) सामन्तवर्ग (Eupatridae) (२) कृषकवर्ग (Georgi) (३) व्यापारी एवं व्यवसायीवर्ग (Demiurgi) ओलीगार्की में अभिजात सामन्तवर्ग अन्य वर्गों का शोषण कर रहा था। निम्नतर वर्गों की दशा हीन होती जा रहा थी। सम्पत्ति प्रथम वर्ग के हाथ में सीमित थी। अन्य निर्धन थे। वे बहुधा धनिकों से ऋण लिया करते थे। परन्तु ऋण-सम्बन्धी नियमों ने इनकी दशा और भी असन्तोषजनक कर दी। ऋणदाता को अधिकार था कि ऋण न देने पर वह ऋणी की सम्पत्ति का अपहरण कर ले और उसे तथा उसके परिवार को भी दास बना ले। व्याज की दर इतनी अधिक थी कि ऋणी उत्तरोत्तर भूमि-हीन होते जाते थे। बहुत से दास भी हो गये थे।

सोलन—इसी अशान्ति के समय एथेन्स में एक सुधारक का उदय हुआ जिसने अपनी प्रतिभा से गृह-युद्ध का निवारण किया और एक ऐसी व्यवस्था का सृजन किया जिसके अन्तर्गत धनी और निर्धन दोनों सन्तोषपूर्वक रह सकें। इस सुधारक का नाम था सोलन।

यह कोड्रस के राजवंश का था। यह विद्वान् एवं कवि था। व्यापार का अनुसरण कर इसने ख्याति एवं धन पाया था। ५६४ ई० पू० में यह आर्कन चुना गया। सामन्तों ने जब परिस्थिति बिगड़ती देखी तो इसी को उसे शान्त करने के लिए चुना।

सोलन के राजनीतिक सुधार—सोलन ने ड्रैको का संविधान रद्द कर दिया और उसके स्थान पर अपनी व्यवस्था चलाई जो धनी-निर्धन सभी स्वतन्त्र नागरिकों के ऊपर समानरूप से लागू होती थी। आर्थिक आधार पर समाज

का चार भागों में विभाजन किया गया—(१) ५०० बुशेल से अधिक आय के व्यक्ति (२) ५०० से ३०० बुशेल की आय के मनुष्य (३) ३०० से २०० बुशेल की आय के मनुष्य और (४) स्वतन्त्र श्रमजीवी। प्रथम से आर्कन और सेनापति की, द्वितीय से अन्य उच्च पदों और अश्वारोहियों की तृतीय से पदातियों और चतुर्थ से सामान्य सैनिकों की नियुक्ति होने लगी।

इसके पश्चात् उसने शासन-समितियों के अधिकार-कर्त्तव्य निर्धारित किये—

(१) ऐरिओपेगस पूर्ववत् रही, परन्तु अब प्रथम वर्ग का कोई भी व्यक्ति उसका सदस्य हो सकता था।

(२) ब्यूल (Boule) नामक एक अन्य समिति का निर्माण किया गया। इसमें चारों वर्गों के १००-१०० प्रतिनिधि थे। यह असेम्बली के लिये कार्यक्रम निर्धारित करती थी।

(३) असेम्बली का यूनानी नाम एक्लेसिया था। अभी तक आर्कन का निर्वाचन एरिओपेगस के द्वारा होता था। परन्तु नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत यह निर्वाचन एक्लेसिया करने लगी। प्रति वर्ष आर्कन के कार्यों की जाँच करने का अधिकार भी इस सभा को मिल गया।

आर्थिक सुधार—निर्धन वर्गों की स्थिति सुधारने के लक्ष्य से सोलह ने पुराने ऋणों को रद्द कर दिया तथा उनके आधार पर दास बने मनुष्यों को स्वतन्त्र कर दिया। गिरवी रक्खे हुए भूमिखण्ड भी स्वतन्त्र कर दिये गये। मुद्रा-नीति में सुधार किया गया और उनके मूल्य वही कर दिये गये जो आयोनिया के अन्य नगरों में थे। इससे विदेशीय व्यापार सुगम हो गया। विदेशीय व्यापारियों को नागरिकता का प्रोत्साहन देकर देश में आमन्त्रित किया गया। स्वदेश में जैतून और अंगूर के उत्पादन एवं निर्यात को प्रोत्साहन दिया गया। एक अन्य नियम के अनुसार यदि कोई पिता अपने पुत्र को किसी न किसी व्यवसाय की शिक्षा न दे तो वह वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण से वंचित हो सकता था। सोलन ने सर्वप्रथम एथेन्स में वसीयतनामा का प्रारम्भ किया।

अन्य सुधार—बालकों को शारीरिक व्यायाम के साथ-साथ काव्य-संगीत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की शिक्षा देने का आयोजन किया गया। युद्ध में मारे गये व्यक्तियों की सन्तानों का पालन-पोषण राज्य का उत्तरदायित्व बन गया। राज्य के निरीक्षण में वेश्यावृत्ति वैध घोषित कर दी गई। सोलन ने यह कहकर कि 'स्त्री एक दुर्वह भार है' अविवाहित जीवन अधिनियम बनाने से इनकार कर दिया। बलात्कार एक जघन्य अपराध माना गया। उसके अभियुक्तों का वध करना विहित था। देश में अपव्ययात्मक धार्मिक अनुष्ठानों का हतोत्साह किया गया।

यूनानी इतिहास में सोलन के सुधार विशेष महत्वपूर्ण हैं। उसने एथेन्स में जनतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली का बीजारोपण किया, मताधिकार का विस्तार किया और संविधान की मान्यता स्थापित की। उससे एक बार पूछा गया कि राज्य की स्थिरता कब रहती है तो उसने उत्तर दिया कि 'जब जनता शासकों की और शासक अधिनियमों की आज्ञा का पालन करते हैं।'[१]

सोलन मध्यमार्गी था। वामपक्षियों के मतानुसार न तो उसने भूमि का समविभाजन किया क्योंकि ऐसा करने से गृह-युद्ध की आशंका थी और न दक्षिण-पक्षियों के मतानुसार उसने जनसाधारण को राजनीतिक अधिकारों से वंचित रक्खा, क्योंकि ऐसा करने से विप्लव की आशंका थी। उसने मध्यमार्गी सुधारों के द्वारा समाज के प्रत्येक वर्ग को सन्तुष्ट करने की चेष्टा की और इसमें किसी सीमा तक वह सफल भी रहा।

लाइकर्गस और सोलन—कहा जाता है कि 'लाइकर्गस ने यन्त्र बनाये, सोलन ने मनुष्य।'[२] यह कथन नितान्त सत्य प्रतीत होता है। लाइकर्गस की कृत्रिम व्यवस्था तथा लौह-अनुशासन में निगड़ित सैनिक नागरिक का जीवन वास्तव में यन्त्र के समान हो गया था। स्पार्टा-निवासी नितान्त रूढ़िवादी हो गया था। उसमें न कला के लिये हृदय था और न साहित्य के लिए व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास पूर्णरूप से अवरुद्ध हो गया था।

इसके विरुद्ध सोलन प्रगतिवादी था। उसने अपने सुधारों से जनतन्त्रात्मक

---

१ 'When the people obey the rulers and the rulers obey the laws.'

२. Lycurgus made machines, Solon made men.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शासन-प्रणाली के विकास को योग दिया। उसकी दृष्टि में मनुष्य का शारीरिक विकाश उतना ही आवश्यक था जितना कि बौद्धिक विकास। इसी ध्येय से उसने शारीरिक व्यायाम के साथ-साथ नृत्य-संगीत और काव्यादि ललित कलाओं को भी अपनी शिक्षा-योजना में स्थान दिया। उसके संरक्षण में एथेंस की स्थापत्यकला एवं वास्तुकला ने भी अभ्युन्नति की। सारांश में सोलन के सुधारों ने एथेंस में स्वर्णयुग के आगमन के हेतु मार्ग प्रशस्त किया।

क्लीस्थेनीज़—सोलन के पश्चात् एथेंस में कुछ दिनों तक 'टाएरेन्ट्स' का निरंकुशवादी शासन रहा। परन्तु शीघ्र ही उसका अन्त हो गया और एथेंस में पुनः एक सुधारक का आविर्भाव हुआ जो क्लीस्थेनीज़ के नाम से प्रख्यात है। इसके सुधारों ने जनतन्त्रवाद के विकास को और भी अधिक अग्रसर किया।

क्लीस्थेनीज़ (Cleistnens) ने प्राचीन सामन्तवर्ग की सत्ता को शिथिल करने के लिये समाज का नवीन विभाजन किया। उसने समाज को दस प्रादेशिक जातियों में बाँट दिया। प्रत्येक नवीन जाति को स्थैर्य देने के लिये जातीय त्योहारों की कल्पना की गई और उनका प्रमुख पूर्वज जाति-देवता बनाया गया।

(२) ब्यूल का पुनः संगठन हुआ। इसके सदस्यों की संख्या ४०० से ५०० हो गई। प्रत्येक जाति इसमें ५०-५० सदस्य भेजती थी। यह सभा सर्व-सत्ताधारी हो गई। इसी के हाथ में देश का अर्थ-विभाग और वैदेशिक नीति थी। यह सभा बहुत बड़ी थी। अतः ५०-५० की दस कमेटियों में विभक्त कर दी गई। प्रत्येक कमेटी के हाथ में देश का शासन दस मास तक रहता था।

(३) असेम्बली के अधिकार बढ़े। काउंसिल द्वारा प्रस्तावित किसी भी बिल को वह परिवर्तित, परिवर्द्धित अथवा अस्वीकृत कर सकती थी। यह युद्ध घोषित कर सकती थी। आर्थिक विषयों का निरीक्षण कर सकती थी।

(४) आस्ट्रेसिज्म (Ostracism) का नियम जारी किया गया। किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध यदि ६००० व्यक्ति हस्ताक्षर करके यह घोषित कर दें कि उनका अस्तित्व देश के लिये घातक है तो उसे निर्वासित कर दिया जायेगा।

(५) दस जातियों को अपना-अपना सेनापति मनोनीत करने का अधिकार था। ये क्रम से देश की सेना के सेनापति होते थे। इस प्रकार देश की सेना के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऊपर जनसाधारण का प्रभुत्व हो गया ।

इस प्रकार जनतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली का और अधिक विकास हुआ। यह पेरिक्लीज़ के समय (४६१ ई० पू०—४२६ ई० पू०) में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। इसका उल्लेख 'स्वर्ण युग' के अन्तर्गत किया जायगा।

अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के अन्तिम चरण में एथेंस को दो युद्ध करने पड़े-—(१) पारसीक युद्ध (ई० पू० ४९३-४७९ ई० पू०) जिसका वर्णन पीछे किया जा चुका है और (२) पेलोपोनेसस-युद्ध (ई० पू० ४३१-४०४ ई० पू०) जो एथेंस के विनाश का कारण हुआ।

पेलोपोनेसस-युद्ध ई० पू० ४३१-४०४ ई० पू०—यह युद्ध स्पार्टा और एथेंस के बीच हुआ था। इन दोनों देशों में इतनी अधिक प्रतिकूलता थी कि युद्ध अवश्यम्भावी था। स्पार्टा में अभिजात वर्ग की सत्ता थी, एथेंस में जनतन्त्र की। स्पार्टा रूढ़िवादी तथा कृषि प्रधान देश था। इसके विरुद्ध एथेंस प्रगतिवादी और व्यापार-व्यवसाय-प्रधान था। स्पार्टा काव्य, साहित्य एवं ललित कलाओं को निरर्थक विलासिता के अंग समझता था; परन्तु एथेंस में यही संस्कृति एवं सभ्यता के प्रधान अंग समझे जाते थे। स्पार्टा की दृष्टि में एथेंस निवासी विलासी था और एथेंस की दृष्टि में स्पार्टा निवासी बर्बर। स्पार्टा पहले से ही सैनिकवादी था। इधर एथेंस भी पेरीक्लीज़ की अध्यक्षता में साम्राज्यवादी हो गया था। अतः दोनों एक दूसरे से सशंकित थे। इस प्रकार की परस्पर-विरोधी धारणाओं के होते हुए दोनों के बीच-मैत्री-भाव का होना असम्भव था। युद्ध के लिये किसी कारण की आवश्यकता थी। वह शीघ्र ही प्रस्तुत हो गया। एथेंस ने कोरिन्थ के ऊपर अधिकार करना चाहा। यह स्पार्टा का मित्र था। अतः दोनों में युद्ध छिड़ गया। इसमें एथेंस की भारी क्षति हुई। उसका व्यापार नष्ट हो गया। जनतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली विच्छृंखल हो गई। जनसंख्या का ह्रास हो गया। देश में भ्रष्टाचारिता और अशान्ति छा गई। अन्त में विवश होकर एथेंस को आत्म-समर्पण करना पड़ा।

यूनान का स्वर्णयुग (पेरिक्लीज काल)

पेरिक्लीज़—संसार की उन महती विभूतियों में से है जिनका अवतरण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युगान्तर की सूचना देता है। एक निश्चित काल तक यह युग-पुरुष यूनान के रंगमंच पर प्रमुख चरित्रनायक की भाँति समस्त यूनानी कार्य-कलापों का केन्द्र-बिन्दु बना रहा। इसका व्यक्तित्व दीर्घकाल तक यूनानी विचार-धारा को प्रभावित, प्रेरित, परिवर्तित और संवर्द्धित करता रहा। यूनानी इतिहास पर इसने अपनी अमिट छाप डाली है। यही कारण हैं कि यह काल इसी युग-पुरुष के नाम पर पेरिक्लीज-काल कहलाता है।

पेरिक्लीज़ के पिता का नाम जैन्थिपस (Xanthipus) था जो फारस के विरुद्ध सालमीज़ (Salamis) और माइकेल (Mycale) के युद्धों में अपना शौर्य-प्रदर्शन कर चुका था। उसकी माता प्रसिद्ध सुधारक क्लीस्थेनीज़ की पौत्री थी। इस प्रकार पेरिक्लीज़ के व्यक्तित्व में माता-पिता दोनों के पक्षों के दो सहज गुणों—शौर्य और सुधार—का समावेश हो गया था।

पेरिक्लीज़ ने अपने समय के प्रख्यात विद्वानों एवं कलाकारों से शिक्षा पाई थी। इनके सम्पर्क एवं साहचर्य ने उसके मृदुल मस्तिष्क पर जिन संस्कार रेखाओं का निर्माण किया था उनमें यूनान का इतिहास अन्तर्निहित था। पाइथोक्लीडीज़ नामक विद्वान् उसका साहित्य-गुरु था। डैमन (Damon) ऐसे प्रसिद्ध संगीतज्ञ से उसने संगीत की शिक्षा पाई थी। दार्शनिक एनैक्ज़ागोरस उसका मित्र था। इनके प्रभाव से पेरिक्लीज़ के व्यक्तित्व में संस्कृति के आवश्यक अंगोपांग समाविष्ट हो गये थे।

वह विशुद्ध व्यक्ति उदार शासक, जनतन्त्रवादी, सुधारक, प्रख्यात कलानुरागी और कलाविदों का उन्मुक्त आश्रयदाता था। जो एथेन्स पारसीक यूनानी युद्ध में क्षत-विक्षत हो गया था। वह पेरिक्लीज़ के शासन काल में पुनरुजीवित हो उठा। पेरिक्लीज़ ने भव्य भवनों तथा ललित कलाकृतियों के द्वारा उन जीर्ण नगरों का कायाकल्प कर डाला। जनता के मनोविनोद एवं शिक्षण के निमित्त उसने नगर की नाट्यशालायें निःशुल्क खोल दीं।

अपने कूटनीतिक जीवन में पेरिक्लीज़ सिद्धान्तवादी अथवा आचारवादी न न था। उनकी धारणा में राजनीति साधु-सन्तों की पावन कन्दरा नहीं है जिसमें प्रविष्ट हो राजनीतिज्ञ एकमात्र सत्य और साधुता की ही धुन लगाये। यह तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक रंगमंच है जिसके ऊपर उसे सामूहिक कल्याण के लिये सत्य-असत्य, साधुता-असाधुता दोनों का अभिनय करना पड़ता है। लोक-संग्रह के लिये उसे अपने अन्तःकरण का हनन भी करना पड़ता है। परन्तु अपने व्यक्तिगत जीवन में पेरिक्लीज़ भ्रष्टाचारादि से परे थे। जिस समय यूनान के अन्य नगर-राज्यों में सोने और चाँदी के बाजारों में स्वाभिमान और देश प्रेम का क्रय-विक्रय हो रहा था उस समय पेरिक्लीज़ अपने व्यक्तिगत जीवन की शुद्धता से एथेन्स-निवासियों का मार्ग-प्रदर्शन कर रहा था।

वह गम्भीर और मितभाषी था। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उसका मुख आग और धुँआ भी उगलता था। समय-समय पर उसके मुखद्वार से प्रबल वक्तृता भी उद्वेलित होने लगती थी। यद्यपि वह अभिजात वर्ग का था तथापि अपनी बौद्धिक विकासात्मकता एवं विस्तीर्णता के कारण उसने राजनीतिक अन्तर्वर्गीय संघर्ष में जनतन्त्रात्मक आन्दोलन का साथ दिया और अपने तीस वर्ष के दीर्घ प्रभाव-काल में एथेन्स में जनतन्त्रवाद का विकास किया।

पेरिक्लीज़ का साम्राज्यवाद—पेरिक्लीज साम्रज्यवादी था। वह राज्य-विस्तार एवं प्रभाव-विस्तार के द्वारा एथेन्स को समस्त यूनानी संसार की रानी (Queen of the Hellas) बनावा चाहता था। वह जानता था कि प्रभुत्व की इस दौड़ में स्पार्टा उसके देश का प्रतिद्वन्द्वी होगा। अतः उसने प्रारम्भ से ही स्पार्टा को राजनीतिक क्षेत्र में एकाकी कर देने की योजना बनाई। यह योजना मैत्री-पूर्ण सन्धियों के द्वारा कार्यान्वित की गई। एथेन्स ने आर्गोज, थेसली, मेगारा आदि नगरों से मित्रता कर ली। शक्ति-संवर्धन के लिये एथेन्स ने 'डेलोस-संघ' को भी अपने प्रभुत्व में कर लिया। इतिहासकार विल ड्यूरेन्ट का कहना है कि इतिहास में शायद ही ऐसा कोई युग हो जिसमें इतनी अधिक मात्रा में सांस्कृतिक एवं आर्थिक उन्नति हुई हो।[१]

---

१ "History affords no parallel to the wealth and variety of creative genius that Athens in this century produced to herself from all quarters of Greece."

—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फारस का सामना करने के हेतु ईजियन तथा यूनानी संसार के नगर-राज्यों ने यह संघ बनाया था। इसका नेता एथेंस था। इसके लिये चन्दा एथेंस पदाधिकारियों के द्वारा ही संग्रहीत होता था। सम्मिलित जहाजी बेड़े का नेतृत्व भी एथेंस ही करता था। पेरिक्लीज़ ने अपने देश के इन विशिष्ट अधिकारों का स्वार्थपूर्ण उपयोग करना प्रारम्भ किया —

(१) फारस की पराजय के पश्चात् इस संघ का प्रयोजन समाप्त हो चुका था। अतः अनेक नगर-राज्यों ने इसे छोड़ना चाहा। परन्तु एथेंस ने बलात् उन्हें ऐसा करने से रोका। Naxos और Thasos ऐसे ही नगर थे। उन्हें एथेंस ने बलात् अपने अधीन कर लिया। अभी तक Carystus नामक नगर इस संघ से पृथक था। पेरिक्लीज़ ने उसे संघ में सम्मिलित होने के लिये विवश किया।

(२) कालान्तर में नगर-राज्य जहाज देने के स्थान पर धन देने लगे। इसे उनकी सक्रिया अभिरुचि के अभाव में संघ पर एक मात्र एथेंस की प्रभुता स्थापित हो गई।

(३) अन्त में पेरिक्लीज़ ने संघ के कोष को डेलोस से हटाकर एथेंस में स्थापित किया। इन समस्त कार्यों से यह एथेंस की अधीनता में हो गया।

पेरिक्लीज़ ने इस संघ की सामुद्रिक शक्ति एवं उसके कोष का उपयोग एथेंस की प्रभुता-संवर्धन के हेतु किया। उसकी उग्र नीति से संक्षुब्ध होकर कोरिन्थ, Aegina और Boeotia के नगरों ने उसके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। परन्तु एथेंस ने सबको पराजित कर दिया। पेरिक्लीज़ के नेतृत्व में एथेंस का नगर-राज्य ४५० ई० पू० तक अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। डेलोस-संघ उसके सामुद्रिक मार्गों की रक्षा करता था। स्थलीय मार्गों से आक्रमण की सम्भावना का निराकरण करने के हेतु पेरिक्लीज़ ने एथेंस के दो ओर सुदृढ़-प्राचीर बनवाये। कोसिस, लोक्रिस, आर्गोस और थेसली के नगर उसके मित्र थे और Boeotia Megara और Aegina के नगर उसके अधीन। अधीन राज्यों में एथेंस के उपनिवेशों की स्थापना की गई, उनके ऊपर कर बढ़ा दिये गये तथा उनके गम्भीर अभियोग निर्णयार्थ एथेंस में आने लगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एथेंस का पतन—इस प्रकार पेरिक्लीज़ ने अपनी अग्रगामी नीति के द्वारा एथेंस का अपूर्व उत्थान किया। परन्तु उसकी यह नीति अन्त में असफल रही। ४४७ ई० पू० Boeotia ने एथेंस के विरुद्ध विद्रोह किया और कारोनिया के युद्ध में उसे पराजित किया। इस पराजय से लाभ उठाकर फोसिस, लोक्रिस और मेगारा आदि नगरों ने एथेंस के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। अन्त में एथेंस की स्पार्टा के साथ विनाशकारी पेलोपोनेसस का युद्ध लड़ना पड़ा। इसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। इसमें एथेंस की भीषण हानि हुई। इस युद्धकाल के बीच में ही ४२९ ई० पू० पेरिक्लीज़ की प्लेग से मृत्यु हो गई।

यद्यपि पेरिक्लीज़ द्वारा अनुसृत अग्रगामी एवं साम्राज्यवादी नीति अन्त में असफल रही तथापि कुछ काल के लिये उसने एथेंस को यूनानी संसार में सर्वप्रथम एवं सर्वोन्नत राज्य बना दिया था। एथेंस के चतुर्दिक विकास में पेरिक्लीज का योग चिरस्मरणीय है।

पेरिक्लीज़कालीन प्रशासन

जिस समय पेरिक्लीज़ एथेंस के रंगमंच पर अवतरित हुआ उस समय वह नगर-राज्य प्रधानतः दो परस्पर-विरोधी वर्गों में विभक्त था—

जनतन्त्रात्मक विकास—(१) रूढ़िवादी इसमें सामन्त एवं अभिजातवर्ग के व्यक्ति सम्मिलित थे यद्यपि इसकी संख्या स्वल्प थी तथापि देश के आर्थिक साधन एवं राजनीतिक अधिकार प्रमुखतया इसी के हाथ में थे। जनसाधारण के शोषण में ही यह वर्ग अपने वैभव की संरक्षा देखता था। इसकी प्रतिनिधि संस्था थी एरिओपेगस। अतः यह वर्ग इसी सभा के द्वारा देश का शासन संचालन करना चाहता था। (२) प्रगतिवादी वर्ग—इसमें देश के अपेक्षाकृत अधिकारहीन, धनहीन एवं प्रतिष्ठाहीन व्यक्ति सम्मिलित थे। इसकी संख्या प्रथम वर्ग की अपेक्षा कहीं अधिक थी। इसमें राजनीतिक चेतना का विकास हो चुका था और यह अपने अधिकारों के लिये सतत् आन्दोलन कर रहा था। इसकी प्रतिनिधि-संस्था थी असेम्बली (लोक-सभा)। अतः यह एरिओपेगस के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजनीतिक अधिकारों का अपहरण कर उन्हें असेम्बली में हस्तान्तरित करना चाहता था।

दीर्घकाल से इन दोनों में अन्तरवर्गीय संघर्ष चल रहा था। पेरिक्लीज़ ने प्रगतिवादी दल का साथ दिया। उसके सहयोग एवं सुधार से जनतन्त्रात्मक शक्तियों को बल मिला और देश में जनतन्त्रवादी प्रशासन का आधार अपूर्व-रूप से विस्तृत हो गया। पेरिक्लीज़-काल में एथेंस के जनतन्त्र का पूर्व विकास हो गया।[१]

असेम्बली—यह लोक-सभा थी, अतः जनसाधारण की प्रतिनिधि-सभा भी। पेरिक्लीज़ के समय में एथेंस का प्रत्येक स्वतन्त्र नागरिक इस सभा का सदस्य होने लगा। छोटे-बड़े, धनी-निर्धन सभी सदस्यों को समानरूप से सभा में भाषण एवं मत का अधिकार था। सभा में जहाँ अभिजात और सामन्त वर्ग के व्यक्ति थे वहाँ निम्नवर्गीय, व्यापारी, कृषक, लुहार, सुनार, मोची इत्यादि भी। इस सभा का अधिवेशन मास में चार बार होता था। इसका कोई भी सदस्य अपने नाम पर बिल प्रस्तुत करके उसे अधिनियम बनवा सकता था। परन्तु एक वर्ष के अनुभव के पश्चात् यदि वह अधिनियम दोषपूर्ण निकलता था तो उसके प्रस्तावक को दण्डित किया जा सकता था। इसका परिणाम यह हुआ कि कोई भी व्यक्ति जल्दबाजी में बिल पेश नहीं करता था। असेम्बली में पास होने के पश्चात् बिल विचारार्थ व्यूल में भेजा जाता था। यद्यपि यह द्वितीय सभा बिल को अस्वीकृत न कर सकती थी तथापि अपनी सम्मति के साथ इसे पुनर्विचार के निमित्त लोक-सभा के पास भेज सकती थी। लोक-सभा में मत-विभाजन हाथ उठाकर होता था।

व्यूल—इसमें प्रत्येक फिरके (Tribe) से पचास सदस्य आते थे। इस प्रकार इसके सदस्यों की संख्या ५०० थी। इन सदस्यों की कार्यावधि एक वर्ष की होती थी। जब तक फिरके का प्रत्येक सदस्य एक बार सदस्यता का अवसर प्राप्त न कर ले तब तक किसी भी व्यक्ति को पुनर्निर्वाचन का अधिकार न था। प्रत्येक

[१] 'The Athenian democracy attained its full perfection in the Age of Pericles'—Burns.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सदस्य बारी-बारी से इसका सभापति होता था। प्रशासन के विभिन्न कार्यों के हेतु यह सभा ५०-५० सदस्यों की दस उपसमितियों में विभक्त थी। ब्यूल के प्रमुख कार्य थे सार्वजनिक निर्माण, अर्थ-परीक्षा, पदाधिकारियों का आचरण-निरीक्षण, विदेशी नीति पर विचार इत्यादि।

एरिओपेगस—अभी तक एरिओपेगस ही देश का प्रमुख न्यायालय था। परन्तु पेरीक्लीज़ ने इसके समस्त महत्वपूर्ण अधिकार छीन लिये। और उन्हें हेलीयाय (Heliaea) नामक एक नवस्थापित न्यायालय में हस्तान्तरित कर दिये। यह सार्वजनिक न्यायालय था। इसमें ६००० जूरर थे। जूरर-पद पर प्रत्येक नागरिक बारी-बारी से नियुक्त होता था। ये जूरर ५००-५०० की दस समितियों में विभक्त थे। शेष १००० आपत्काल के लिए रिजर्व थे। प्रशासन में जनता के सक्रिय सहयोग की अभिलाषा से पेरिक्लीज़ ने जूरर-पद वैतनिक कर दिया। इनके अतिरिक्त तीस भ्रमणशील न्यायाधीश होते थे। ये विभिन्न प्रदेशों में दौरा करके न्याय-वितरण करते थे। इस नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत एरिओपेगस के हाथ में एकमात्र हत्या और हिंसा के अभियोग का न्याय रह गया। एरिओपेगस के अन्तर्गत नीचे चार न्यायालय और थे।

एथेंस में दीवानी और फौजदारी के कानूनों में कोई अन्तर न था। बहुधा नागरिक को साम्पत्तिक और दास को शारीरिक दण्ड मिलते थे। न्याय-व्यवस्था में मृत्यु, निर्वास, कारावास, सम्पत्ति-अपहरण, नागरिकता-अपहरण, अर्थ और कोड़े मारने के विभिन्न दण्ड थे। प्रत्येक नागरिक अपनी चरित्रहीन माता, स्त्री, बहन अथवा पुत्री की हत्या कर सकता था। दीवानी मामलों में वादी न्यायालय से प्राप्त अपनी डिग्री को स्वयं कार्यान्वित करता था, उसका प्रतिवादी से पालन करवाता था।

आर्कन—अभी तक सामन्तवर्ग के व्यक्ति ही आर्कन-पद पर नियुक्त होते थे। परन्तु पेरिक्लीज़ की नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत एथेंस का कोई भी स्वतन्त्र नागरिक इस पद की प्राप्ति कर सकता था। आर्कन का पद वैतनिक होता था और निर्वाचन जनता-द्वारा।

प्रशासन की समालोचना—उपर्युक्त प्रशासन की रूपरेखा से स्पष्ट हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता है कि उनमें योग्यता की अवहेलना कर समानता के ऊपर ही विशेष महत्व दिया गया था। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह योग्य हो अथवा अयोग्य, एकमात्र एथेंस के नागरिक होने के नाते ही देश की उच्चतम संस्थाओं—असेम्बली, ब्यूल और हेलीयाय आदि—का सदस्य हो सकता था। राज्य का प्रत्येक पद भी उसके लिए खुला था। बारी-बारी से पद-नियुक्ति की प्रथा एक विलक्षण प्रयोग था। इसने देश जनतन्त्रात्मक विकास तो किया, परन्तु योग्यता की हानि करके। इसके अन्तर्गत अनेक अवसरों पर देश के उच्चातिउच्च पदों पर नितान्त अयोग्य एवं अकर्मण्य व्यक्तियों की नियुक्ति हो जाती थी। वास्तव में एथेंस निवासी विशेषज्ञों द्वारा संचालित सरकार में विश्वास न करते।[१] प्रत्येक नागरिक के समानाधिकारों की पुष्टि के हेतु वे निरक्षरों, अल्पज्ञों एवं अनुभवहीन व्यक्तियों द्वारा संचालित शासन को भी सहन कर सकते।[२] कभी-कभी उत्साह का अतिरेक लक्ष्य का ही विस्मरण करा बैठता है।

'बहुमत की मान्यता' का सिद्धान्त सर्वत्र प्रयुक्त किया गया। जहाँ तक राजनीतिक प्रतिनिधि-संस्थाओं—असेम्बली, ब्यूल आदि—का प्रश्न है वहाँ इसका प्रयोग उचित था। परन्तु न्याय-विभाग में जूररों द्वारा हाथ उठाकर बहुमत से अभियोग के निर्णय करने की प्रणाली अहितकर थी। पुनः अधिकांश सार्वजनिक पदाधिकारियों की कार्यविधि केवल एक वर्ष होती थी। तत्पश्चात् पुनर्निर्वाचन होता था। इस नियम के पीछे प्रत्येक स्वतंत्र नागरिक को प्रत्येक पद को प्राप्त करने के हेतु अवसर-दान की भावना थी। इससे समानाधिकार की पुष्टि तो हुई परन्तु पुनः-पुनः पदाधिकारियों के वर्षिक परिवर्तन से उनकी कार्यकुशलता एवं कार्याभिरुचि की हत्या कर दी गई। एथेंस के प्रशासन का आधारभूत दोष था प्रतिनिधि प्रणाली का अनुभव। यदि देश प्रत्येक नागरिक के स्थान पर उसके प्रतिनिधियों के हाथ में सत्ता सौंपता तो परिणाम अधिक अनुकूल होता।

---

१. 'Athenians do not believe in government by experts.'
—Will Durant.

२. 'In a word, their ideal was not efficiency in government but democracy.
—Burns.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनतंत्रवाद का यह व्यापक प्रयोग राज्य की केवल सप्तांश जनता के हित के लिए ही किया गया था। दास पूर्णरूप से और विदेशीय तथा स्त्रियाँ आंशिक-रूप से उसके प्रसाद से वंचित थे। दास राज्य के नागरिक न थे। अतः न तो वे शासन-समितियों के सदस्य निर्वाचित हो सकते थे और न राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त ही हो सकते थे। उनके लिए न्याय-विधान अति कठोर था। बहुधा छोटे-छोटे अपराधों के लिये भी उन्हें मृत्यु दण्ड मिलता था। शारीरिक दण्ड तो सामान्य बात थी। स्वतंत्र स्त्रियों और विदेशियों को भी न्याय-समता न थी। वे निर्वाचनाधिकार से भी वंचित थे।

पुनः एथेंस का विचार-स्वातन्त्र्य धर्म-निपीड़ित था। देवताओं, निश्चित धार्मिक परम्पराओं एवं सामाजिक प्रथाओं के विरुद्ध विचार-प्रकाशन अक्षम्य अपराध समझा जाता था। इसी प्रकार के अपराधों पर सुकरात को प्राणदण्ड तथा एनैक्जागोरस को मृत्यु-दण्ड दिया गया था, यद्यपि उनके भाग जाने से कार्यान्वित न हो सका। धर्म की ये शृङ्खलायें इतनी सबल थीं कि स्वयं पेरिक्लीज़ भी इनके बन्धन से अपने मित्र एनैक्जागोरस को न छुड़ा सका। उसने ईश्वरीय व्यवस्था में हस्तक्षेप किया था। अतः वह दण्डनीय था। पेरिक्लीज़ विवश हो गया।

परन्तु इन दोषों के होते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पेरिक्लीज़ के समय में एथेंस ने जनतंत्रवाद का अत्यधिक विकास किया। राजनीतिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित सामन्त के वही अधिकार थे जो सायास जीविकोपार्जन करने वाले स्वतंत्र नागरिक के। एथेंस के अनेक लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति समाज के निम्न वर्ग से आविर्भूत हुए थे। उदाहरणार्थ क्लियन मोची था और हाइपरबोलस लालटेन-विक्रेता। प्रत्येक अपने विचार व्यक्त कर सकता था। वह राज्य के उच्चातिउच्च पदाधिकारी की कटु आलोचना कर सकता था। स्वयं पेरिक्लीज़ पर भ्रष्टाचार का मिथ्या आरोप लगाया गया था। एरिस्टाफेनीज़ ने तो सरकार-द्वारा संचालित युद्ध-नीति की उस समय निन्दा की जब एथेंस के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन चुका था। आज का संसार कदाचित् इस विरोध को युद्ध प्रयास पर कुठाराघात समझता और युद्ध-विरोधी को राष्ट्र-द्रोही। एथेंस के पड़ोसी राज्य स्पार्टा के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिए इस प्रकार की विचार-स्वतन्त्रता अनर्गल एवं प्रमादात्मक स्वेच्छाचारिता से कम न थी। विलड्यूरेण्ट का यह कथन कि 'स्पार्टा से एथेंस आने वाले व्यक्ति को ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह किसी सैनिक शिविर से क्रीड़ास्थल पर आ गया हो,' पूर्णरूपेण सार्थक है। स्पार्टा कठोर नियंत्रण का गहन गह्वर था और एथेंस था स्वच्छन्द विहार की अभिरामवीथिका। प्रसिद्ध इतिहासकार टावनवी के अनुसार विश्व-इतिहास में इस तरह की पूर्ण प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था असंभव है।[१]

यूनानी कला—यूनानी कला की परिभाषा वर्तमान परिभाषा से भिन्न है। वर्तमान कला पूर्णरूप से स्वतन्त्र एवं एकवर्ती है। उसका धर्म राजनीति, सदाचारिता आदि से कोई सम्बन्ध नहीं। वह इनमें से किसी की अनुगामिनी अथवा सहकारिणी नहीं है। उसका अपना अस्तित्व है, स्वतन्त्र, स्वच्छन्द एवं निरपेक्ष। (१) वर्तमान कला का जीवन स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष है। (२) उसका विषय सौन्दर्य है। (३) वह अपेक्षाकृत निरुद्देश्य है। यदि उसका कोई उद्देश्य है तो एक मात्र कला-प्रदर्शन ही है। (४) यह कला आत्मापेक्षिणी (Subjective) है—कलाकार किसी बाह्य लक्ष्य की पूर्ति के लिये नहीं, वरन् अपने अन्तर की आकुलता, हृदय के उच्छ्वास के अनुकूल कला का सृजन करता है। कलाकार ही अपनी कला का माप-दण्ड है—बाहर का कोई नियम नहीं। विषय गौण है, उसका प्रदर्शन प्रधान। कला के लिये कोई भी विषय अच्छा और बुरा नहीं होता। वह केवल सुन्दर और असुन्दर होता है। कलाकार की मनोवृत्ति स्वच्छन्द विहग के चित्रण में उतनी ही रमती है जितनी किसी विशालकाय भवन के निर्माण में। इस प्रकार की आधुनिक विचारधारा का मूल कारण हमारे समाज की भौतिकता है। सारांश में वर्तमान कला में अराजकता है, निरंकुशता है और न्यूनाधिक उद्देश्यहीनता है। रसात्मकता ही उसका लक्ष्य है। वह आदर्शवादिता एवं सदाचारिता से परे है।

यूनानी कलाकार स्वतन्त्र है, स्वच्छन्द है। परन्तु उसने अपनी स्वतन्त्रता एवं

१. "It would be difficult to imagine a system more thoroughly democratic."

—A. Toynbee.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वच्छन्दता का प्रयोग एक आदर्श की प्राप्ति के हेतु नियोजित किया। यह आदर्श था—राष्ट्रीय गुणों का पूर्ण एवं सर्वोत्तम रूप में प्रदर्शन। उसकी प्रतिभा ने शिव और सुन्दर का समीकरण कर दिया।[१] इस परिभाषा के अन्तर्गत वही यूनानी कलाकृति उत्तम समझी जाती थी जो अपने बाह्य-सौंदर्य से नयन-सुख कर्ण-सुख दे और दूसरी ओर अपनी अन्तर्निहित शिव की भावना से अपनी आन्तरिक उच्च लक्ष्यशीलिता से आत्मा का स्पर्श करती हुई मानव को पूर्ण की ओर प्रेरित करे। यूनानी कलाकार अन्य कलाकारों की भाँति ही सौन्दर्य प्रेमी है। परन्तु उसके सौन्दर्य-प्रदर्शन में उच्छृङ्खलता नहीं है, अतिवादिता नहीं है। यह तथ्य थ्यूसीडाइडीज नामक इतिहासकार के इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि 'विच्छृङ्खलताविहीन सौन्दर्य से हमें अनुराग है।'[२] दूसरे शब्दों में यूनानी सौंदर्य प्रदर्शनवादिता से सन्तुलित है। अतः ऐसी कला का लक्ष्य केवल रस-दान नहीं है, आदर्श-दान भी है। परन्तु आदर्श के प्रदर्शन में कला एकमात्र उपदेशात्मक नहीं होने पाई। सदाचारिता एवं आदर्शवादिता को इतना आगे नहीं बढ़ाया गया कि कला की रसात्मकता सूख जाय। यूनानियों ने उपदेशात्मकता से हटकर एकमात्र उपयोगितात्मक दृष्टि से भी अनेकानेक कृतियों का सृजन किया है—उनके गृह-भाण्ड, सामान्य पात्र, आदि संसार की सर्वोच्च कला के उदाहरण हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि अधिकांशतः उनकी कला निरुद्देश्य नहीं है। कहीं वह उपदेशात्मक है, कहीं उपयोगितात्मक, परन्तु बहुधा दोनों का समन्वित रूप। उनकी कला में विशुद्ध प्रकृति-चित्रण की प्रधानता का अभाव है। प्रकृति-चित्रण है, परन्तु आलम्बन के रूप में वे मानवीचित्रण दैवी विचार की पृष्ठ भूमि में दिखाये गये हैं। आदर्शयुक्त होने के कारण यूनानी कला का विषय प्रकृति नहीं वरन् मानव और देव है, इतिहास और धर्म है। सम्पूर्णतः यूनानी कला सरल और संयत है। उसमें न रूपों की अराजकता है और न भावना का परिप्लावन; न

१. "It reflected true character of hellenic civilization and simbolised humanism—the glorification of man in the universe."

—Toynbee.

२. We love beauty without extravgance.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आश्रयदाता का दम्भ है और न कलाकार का प्रलोभन। वह एकमात्र जीवन की पूर्णता की संदेशवाहिनी है।

स्थापत्य—यूनानी कलाकार की प्रतिभा सबसे अधिक स्थापत्य के क्षेत्र में विकसित हुई है। उसकी बहुसंख्यक मूर्तियों ने तत्कालीन भवनों, मन्दिरों, मकबरों और प्राचीरों को अप्लावित-सा कर दिया है। ये मूर्तियाँ तीनों लोकों-देवलोक, मनुष्य लोक तथा पशु-पक्षी लोक—की प्रतिनिधि हैं। इनका निर्माण पाषाण, संगमरमर, हाथीदाँत, हड्डी, लकड़ी तथा धातु आदि विविध सामग्री से हुआ है। यूनानी स्थापत्य की कतिपय प्रमुख विशेषतायें हैं—

(१) यह कला यूनान के राष्ट्रीय जीवन का प्रकाशन करती है। इसके अन्तर्गत राष्ट्र के श्रद्धा, भक्ति और प्रशंसा के केन्द्र-विन्दु यूनानी देवी-देवताओं एवं वीर-पुरुषों की मूर्तियों का निर्माण हुआ है। डिकिन्सन महोदय ने इसी विशेषता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'यूनानी स्थापत्य प्रमुखतया राष्ट्रीय धर्म की अभिव्यक्ति था और इसलिये राष्ट्रीय जीवन की भी।'[१]

(२) यूनानी मूर्तियाँ अपनी सुडौलता के लिये सर्वत्र प्रख्यात हैं। 'यूनानी स्थापत्य समविक्तता (Symmetry) की उपासना है।'[२] इसकी सुडौलता ने मूर्तिसौष्ठव को अत्यधिक उत्कृष्ट कर दिया है।

(३) शरीर-सौष्ठव को वास्तविक रूप में प्रदर्शित करने के उत्साह में यूनानी कलाकारों ने अधिकांश मूर्तियाँ नग्नरूप में प्रदर्शित की हैं। यह नैतिकता का हनन न होकर नैसर्गिकता तथा परम्परा का पोषण ही अधिक है।

यूनान का सर्वप्रमुख स्थापत्यकार फीडिअस था। इसके द्वारा निर्मित मूर्तियों में विशेष उल्लेखनीय है ओलम्पिया की जियस (Zues) देवता की मूर्ति। यह साठ फुट ऊँची है। क्रिसोस्टम ने इसे संसार की सर्वोत्कृष्ट मूर्ति बताया है। इसकी गणना संसार के सात आश्चर्यों में होती है। डिकिन्सन महोदय के शब्दों में 'यह एकमात्र सौन्दर्य का ही प्रदर्शन नहीं वरन् आचरण का भी है, एकमात्र आचरण का

---

[१] Greek sculpture was primarily an expression of the national religion and therefore of national life.

[२] 'Greek sculpture is a worship of symmetry.'—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही नहीं वरन् आदर्श रूप आचरण का प्रदर्शन है।'[१] इसकी अन्य मूर्तियों में अधिक प्रसिद्ध मूर्ति एथेना देवी की है। यह देवी वीरभूषा धारण किये हुए एथेन्स नगर की रक्षा करते हुए प्रदर्शित की गई है। यह कांस्य-निर्मित मूर्ति है तथा इसकी ऊँचाई ७० फुट है। इसमें शक्ति और सौन्दर्य का अद्भुत परिपाक है।

अन्य प्रसिद्ध यूनानी स्थापत्यकार प्राक्ज़िटिलीज़ था। इसके द्वारा निर्मित मूर्तियाँ अपने शरीर-शौष्ठव और शान्त मुद्रा के लिये प्रख्यात हैं। इसकी सबसे सुन्दर कृति 'शिशु डिम्रानिसस के साथ हर्मीज़' की है।

माइरन यूनान का तृतीय प्रसिद्ध स्थापत्यकार था। यह कलाकार गतिशील व्यक्तियों के प्रदर्शन में अति कुशल था। इसकी 'डिस्कस फेंकने वाले' (Discuss Thrower) की मूर्ति अपने क्षेत्र में अद्वितीय है। मांसपेशियाँ आयास के कारण खिची हुई है। हाथ-पैरों की व्यवस्था क्रीड़ा की विशिष्ट प्रणाली के अनुसार है।

वास्तुकला—यूनानी वास्तुकला का उत्कर्ष प्रमुखतया धर्म के चतुर्दिक हुआ। वास्तुकार ने प्रायः देवालयों के निर्माण में ही अपनी अभिरुचि एवं दक्षता प्रदर्शित की हैं। ये देवालय रूप-रेखा में साधारण होते थे। इनमें जटिलता का सर्वत्र अभाव है। आयताकार आधार, स्तम्भों की बहुलता, आर्च और वॉल्ट का अभाव तथा मूर्तियों की अतिसंख्या कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो प्रायः प्रत्येक यूनानी देवालय में दृष्टिगत होती हैं।

यूनानी वास्तुकार की सर्वोत्तम कृति एथेना देवी का पार्थेनन नामक मन्दिर है। इसका निर्माण इक्टिनस नामक प्रसिद्ध यूनानी वास्तुकार के निरीक्षण में हुआ था। यह सम्पूर्णतः संगमरमर से निर्मित किया गया था। इसकी लम्बाई २२८ फुट, चौड़ाई १०१ फुट और ६५ फुट थी। आधार आयताकार था। मन्दिर के भीतर फीडिग्रस द्वारा निर्मित एथेना देवी की मूर्ति है। देवी सैनिक वेशभूषा में है और शिरस्त्राण एवं थाल धारण किये हैं। मन्दिर के अलंकरण के निमित्त बहुसंख्यक अन्य मूर्तियों की स्थापना की गई थी। इन मूर्ति-पूजों में

---

[१] 'It is a representation not only of beauty but of character, not only of character but of character idealised.—Dickinson.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एथेना देवी का जन्म, आइरिस का सौन्दर्य, थिसिअस दैत्य का बल आदि बड़ी कुशलता से प्रदर्शित किये गये हैं। मन्दिर का अन्तःकक्ष अपने रिलीफ-अलंकरण के लिये प्रख्यात है। यह रिलीफ ५२५ फुट लम्बी है। इसमें एक विशाल जलूस प्रदर्शित है जो कदाचित् एथेना-देवी के पूजनार्थ जा रहा है। अश्वारोहियों एवं रथारोहियों के संरक्षण में सामान्य जन, भृत्य-गण एवं महिला-वृन्द विविध उपहार लिये जा रहे हैं। थालियाँ, कलश, पात्रादि, खाद्य-पेय एवं पूजा-सामग्री से परिपूरित हैं। कदाचित् उत्सव की गम्भीरता से मौन श्रद्धालुता से नतमस्तक बलि-पशु अपने जीवन की अन्तिम यात्रा कर रहे हैं। सम्पूर्ण वातावरण संगीत की मधुर ध्वनि से अनुप्राणित है। इस प्रकार का सांगोपाङ्ग प्रदर्शन कला के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। इन समस्त विशेषताओं ने मन्दिर को दर्शनीय भव्यता प्रदान की है। विल ड्यूरेण्ट के शब्दों में यह मन्दिर 'सौन्दर्यानुसरण में प्रतिभा का उत्कृष्ट प्रयास है।'[१]

यूनानी वास्तुकार ने तीन प्रकार के स्तम्भों का प्रयोग किया है—
(१) **डोरिक**—यह भारी और सरल होता है। (२) **आयोनिक**—यह पतला हलका और अधिक अलंकृत होता है। (३) **कोरिन्थियन**—यह सबसे अधिक लम्बा होता है और इसमें अलंकरण का प्रदर्शन भी सर्वाधिक होता है। पेरिक्लीज़ काल में प्रथम शैली के स्तम्भ का प्रयोग ही सबसे अधिक मिलता है।

पेरिक्लीज़ ने देवालय-निर्माण के अतिरिक्त कुछ असाम्प्रदाय निर्माण भी कराये। इनमें विशेष उल्लेखनीय है एथेन्स नगर का पुनर्निर्माण। यह नगर पारसीक-यूनानी युद्ध में क्षत-विक्षत हो गया था। पुनर्निर्माण के फलस्वरूप यह पहले से कहीं अधिक सुव्यवस्थित एवं सुन्दर हो गया। पक्की, चौड़ी और अनेक स्थानों पर एक दूसरे को समकोण पर काटती हुई सीधी सड़कें तथा उनके दोनों ओर भव्य नगरों की पंक्तियाँ देखते ही बनती थीं। इस नगर की रक्षा के निमित्त पेरिक्लीज़ ने दो ओर भित्तियाँ निर्मित कराईं तथा व्यापारिक विकास के हेतु नगर में एक नवीन बन्दरगाह की स्थापना की। इनके अतिरिक्त इस नव-

---

१. This temple is the supreme effort of genius in persual of beauty.—Will Durant.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्मित नगर में नवीन सभा-भवन तथा संगीतगृह (Odeum) का निर्माण कर पेरिक्लीज़ ने अपने व्यक्तित्व के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पक्षों के सम्यक् सन्तुलन का परिचय दिया था। जहाँ सभा-भवन उसकी उद्दाम वक्तृता से प्रतिध्वनित हुआ करता था। वहाँ संगीतगृह उसकी अध्यक्षता में संगीत-नृत्य की मधुर प्रतियोगिताओं का आयोजन करता था।

चित्रकला—यूनानी चित्रकला भी आदर्शवादिता और रसात्मकता के परिपाक से परिपूरित है। स्थापत्य की भाँति उसका विषय भी धर्म और इतिहास है। चित्र प्रायः धार्मिक और ऐतिहासिक हैं। यूनानी चित्रकार अपने देवी-देवताओं एवं वीर पुरुषों का चित्रांकन मानवी गुणों के विकास-परिष्कार के हेतु करता था। उसका उद्देश्य राष्ट्रीय था और दृष्टिकोण आदर्शवादी। जहाँ कहीं सामान्य व्यक्तियों का चित्रण हुआ है, वहाँ भी उनके द्वारा किसी आदर्श की स्थापना करने की ही चेष्टा की गई है। एकमात्र कला-प्रदर्शन के हेतु निर्मित चित्र अत्यल्प हैं।

यूनान में तीन प्रकार की चित्रण-प्रणालियाँ विकसित हुई थीं—

(१) **फ्रेस्को**—इसके अन्तर्गत चित्रकार ताजे प्लास्टर से आलिप्त प्राचीर की भीगी सतह पर अपनी तूलिका से विभिन्न रंगों से चित्रण करता है।

(२) **एन्कास्टिक**—इसमें चित्रण भीगी सतह पर तो होता है, परन्तु रंगों और मोम के सम्मिश्रण से।

(३) **टेम्पेरा**—इसके अन्तर्गत रंगों और अण्डों की सफेदी के सम्मिश्रण का उपयोग किया जाता है।

पेरिक्लीज़-काल के अधिकांश चित्र फ्रेस्को-प्रणाली पर निर्मित हैं तथा बहुधा वास्तुकला के उद्दीपन-स्वरूप हैं। इस काल में चित्रकला वास्तुकला के अलंकरण के निमित्त ही अधिक प्रयुक्त हुई है। स्वतन्त्र रूप में चित्रों का निर्माण अत्यल्प है। दूसरे शब्दों में पेरिक्लीज़-कालीन चित्रकला स्वतन्त्र कला की अपेक्षा सहायक कला ही अधिक है।

यूनान का सर्वप्रसिद्ध चित्रकार पालिग्नोटस था। इसका 'ट्राय का विनाश' नामक चित्र जगत्प्रसिद्ध है। इसमें युद्धभूमि की नीरवता अपनी पथराई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुई आँखों से मानव की उस नृशंसात्मक क्रीड़ा की ओर इंगित कर रही है जिसका अग्रभाग विजय और पृष्ठभाग पराजय के नाम से सम्बोधित होते हैं —दोनों ही बहुधा समान रूप से हिंसापूर्ण और क्षतिपूर्ण।

इसके अतिरिक्त ज्यूक्सिज और परासिअस नामक दो अन्य चित्रकार भी अपनी कला-कुशलता के लिये संसार में प्रसिद्ध हैं। इनका हस्तलाघव एक कथा-नक से स्पष्ट हो जायेगा। कहते हैं कि एक बार दोनों कलाविदों में प्रतियोगिता हुई। ज्यूक्सिज ने अंगूरों का गुच्छा चित्रित किया। वह इतना स्वाभाविक था कि पक्षी उसे खाने के लिये आने लगे। न्यायाधीशों तथा दर्शकों को विश्वास हो गया कि पारितोषिक ज्यूक्सिज को ही मिलेगा। अब परासिअस की बारी आई। उसने अपना चित्र सामने रक्खा और अपने प्रतिद्वन्दी ज्यूक्सिज से प्रार्थना की कि वह चित्र पर पड़े हुए आवरण को हटाकर उसका प्रदर्शन करे। ज्यूक्सिज आवरण उठाने गया। उसका हाथ चित्र से टकरा गया और वह नतमस्तक होकर वापस चला आया। चित्र पर पड़ा हुआ आवरण वास्तविक आवरण न था। वह आवरण का चित्रमात्र था, चित्र का ही एक अङ्ग। अपनी इस अनुपम कृति के फलस्वरूप परासिअस विजयी हुआ। परंतु इससे ज्यूक्सिज की मान्यता घटती नहीं। वह भी एक उच्चकोटि का लब्धप्रतिष्ठ चित्रकार था। यूनान की सर्वसुन्दरी नारी हेलेन को चित्रांकित करने के निमित्त उसने अपने देश की पाँच सुन्दरतम नारियों को प्रत्यक्ष रूप से देखा और उनके सुन्दरम् अवयवों के संगठन से अपने चित्र का सृजन किया था। इसी प्रकार परासिअस भी एक बार बाजार से एक दास खरीद लाया और उसे इतना पीटा कि उसका शरीर क्षत-विक्षत हो गया। कारण यह था कि अपने चित्र में दास को क्षत-विक्षत रूप में ही अंकित करना चाहता था। वास्तविकता लाने के लिये प्रत्यक्षानुभूति आवश्-यक थी।

धर्म—यूनानी कला की भाँति यूनानी धर्म की परिभाषा भी आधुनिक परिभाषा से भिन्न थी। आधुनिक भाषा में 'धर्म एक विशिष्ट मत के रूप में प्रतिपादित एवं राज्येतर एक अन्य संस्था द्वारा परिपालित कुछ सिद्धान्तों का समुदाय है जो बहुधा मेटाफिजिक्स संबंधी होते हैं।' राज्येतर संस्था चर्च-संग-

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ठन के रूप में होती है अथवा पुरोहित-संगठन के रूप में, परन्तु यूनानी धर्म में न कोई मत था, न कोई चर्च। पुरोहित अवश्य थे, परन्तु धार्मिक क्रियाओं को कराने के लिये वे अधिकारी-मात्र थे। किसी धार्मिक संस्था के रूप में संगठित न हुए थे।

बाह्य जगत् से सम्बन्ध-स्थापना—अनेक देशों की भाँति यूनान में भी धर्म का उदय मनुष्य एवं बाह्य जगत् के बीच सम्बन्ध-स्थापना से हुआ। यूनानी ने प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों को देखा और समझा और उनको देवी-देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित किया। आकाश को जियस, सूर्य को अपालो, समुद्र को पोसीडन और पृथ्वी को डेमिटर की संज्ञा दी गई। यह संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती रही और इस प्रकार यूनान में बहुदेववाद का उदय हुआ।

अन्तर्जगत् से सम्बन्ध-स्थापना—बाह्य जगत् के पश्चात् यूनानी ने अन्तर्जगत् के साथ सम्बन्ध-स्थापना की। उसने देखा कि जिस प्रकार उसके बाहर अनेक शक्तियाँ हैं उसी प्रकार उसके भीतर भी अन्तर्जगत् की ये शक्तियाँ मनुष्य की मनोवृत्तियाँ और सहज गुण हैं जो काम, क्रोध, मद, लोभ, घृणा, अनुराग आदि के रूप में मनुष्य के कार्य कलापों को प्रभावित करती रहती हैं। यूनानियों ने इन आन्तरिक शक्तियों को भी देवी-देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया। उसकी काम-भावना एफ्रोडाइट देवी बन गई। क्रोध अथवा तज्जनित युद्ध का भी एक देवता माना गया। उसे एरिस की संज्ञा दी गई। मनुष्य की बुद्धि एथीज़ देवा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इस प्रकार यूनान में बहुदेववाद सुदृढ़ होता चला गया।

धर्म का व्यापक रूप—यूनानी धर्म अत्यन्त विशद एवं व्यापक था। उसका व्यावहारिक रूप था। यूनानी कल्पना में उसकी मान्यता इतनी अधिक थी कि उसी की शपथ पर व्यक्तियों में धन-धान्य का आदान-प्रदान होता और राज्यों में संधियाँ होती थीं। देव-वंदना के पश्चात् ही सैनिक अभियान होते और राजसभाओं के अधिवेशन। बाह्य आक्रमण के अवसर पर समान धर्म पारस्परिक वैमनस्य का विलय कर विभिन्न नगरों के संघ का निर्माण करता। यूनान की प्रमुख जातियाँ अपने को किसी न किसी देवता की संतान बताती थी। उदाहर-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

णार्थ आयोनियन जाति अपोलो के पुत्र आयन से उद्भूत थी। इसी प्रकार जियस के पुत्र हेरावलीज़ से डोरियन जाति उत्पन्न हुई थी। यही नहीं, देश के नगर भी देवी-देवताओं से संरक्षित थे। एथेन्स के भव्य नगर की रक्षा स्वयं एथेना देवी की प्रचण्ड तलवार कर रही थी। इस प्रकार धर्म ज़ीवन से घुल-मिल गया था, दोनों का अविच्छेद्य सम्बन्ध हो गया था। ऐसी स्थिति में धर्म का पृथक् अस्तित्व न था। यही कारण है कि यूनानियों को कभी चर्च जैसी किसी पृथक धार्मिक संस्था की स्थापना की आवश्यकता न पड़ी।

देवी-देवता—जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, यूनानी देवी-देवता प्रकृत्या मानवी थे। मनुष्यों की भाँति वे खाते-पीते, प्रेम और घृणा करते, सन्धिविग्रह करते, सन्तुष्ट होने पर पर-कार्यों में सहायता देते और असन्तुष्ट होने पर विघ्न बाधा डालते। मनुष्यों से वे एक मात्र सौन्दर्य और अमरता के कारण श्रेष्ठ थे। यूनानी देवी-देवताओं की इन समस्त विशेषताओं एवं उनके साथ यूनानियों के सम्बन्ध के विषय में होमरकालीन धर्म के अन्तर्गत विचार किया जा चुका है।

धर्म का विकास एवं उसकी विकृति--शनैः-शनैः यूनानी प्रकृति-धर्म का अनुष्ठानमूलक पक्ष सबल होता गया। परिणामतः धर्म अनेकानेक यज्ञिक क्रियाओं, धार्मिक अन्धविश्वासों, भविष्य-वाणियों, शकुन-अपशकुनों एवं अद्भुत कथानकों का समावेश हो गया। दैवी शक्ति की सन्तुष्टि के हेतु पशु बलि सामान्य हो गई। देवी-देवताओं की व्यक्तिगत उपासना के स्थान पर समष्टि के अतिरंजन-निमित्ति धार्मिक उत्सवों की प्रतिष्ठा की गई। जियस के सम्मान में ओलिम्पिक तथा नेमियन, अपोलो के सम्मान में पीथियन और पोसीडन के सम्मान में इथमियन नामक धार्मिक उत्सवों की सृष्टि हुई जिनमें रास-रंग, नृत्य-संगीत, खेल-कूद, आमोद-प्रमोद, खाना-पीना, मल्ल-युद्ध, पशु-मानव-युद्ध, कला-प्रदर्शन तथा विविध प्रतियोगितायें सम्मिलित थीं। इन्होंने धर्म के बाह्य एवं लौकिक पक्ष को बल दिया। उत्सवों के तुमुलनाद में धर्म के चिन्तन-शील एवं दार्शनिक पक्ष की क्षीण स्वर निमज्जित हो गया।

देश में स्थान-स्थान पर मन्दिरों का निर्माण हुआ। इनमें डेल्फी और डेलास में अपोलो के मन्दिर विशेष उल्लेखनीय थे। ये जनता की श्रद्धा-भक्ति के केन्द्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। समय-समय पर बहुसंख्यक उपासक एवं प्रार्थी यहाँ आते और उपहार-दानादि से अपने देवता को प्रसन्न कर अभीष्ट-प्राप्ति की कामना करते। ये मन्दिर ओरेकल (भविष्यवाणी) से भी जनता की हित-साधना करते थे। यहाँ के पुजारी ईश्वरेच्छा के ज्ञाता थे। ये विविध दैवी संकेतों एवं शकुनापशकुन के अर्थबोधक थे। नक्षत्रों की स्थति, पक्षियों के उड़ने की दिशा, आगन्तुक के आकस्मिक कथन, बलि-पशु के अन्तर्भाग मोहात्मा मनुज के लिये निरर्थक थे, परन्तु धर्म-प्राण, त्याग-मूर्ति, अन्तर्द्रष्टा मठाधीशों की त्रिकाल-भेदिनी दृष्टि उनमें अपने श्रद्धालु भक्तों के भाग्य-चक्र के चिरपरिवर्तनों का रहस्यमय लेखा देखती और द्रवित होकर बहुधा उन्हें भावी संकटों के निराकरण के निमित्त अपने अमूल्य गुरुमन्त्र निस्पृहभाव से स्वल्पमूल्य पर ही देती। ये वाक्य व्यंगात्मक हैं। इनमें मठाधीशों की कटु आलोचना समझना चाहिए। इन ओरेकल तथा शकुनापशकुन की मान्यता इतनी बढ़ी कि प्राकृत, जन ही नहीं वरन् यूनान के बड़े-बड़े नरेश, विजेता, योद्धा विद्वान एवं राजनीतिज्ञ भी इनसे अस्पष्ट न रहे। स्वयं सिकन्दर महान् ने अपने विभिन्न अभियानों के समय ओरेकल से लाभ उठाया था। स्पार्टा-निवासी एथेन्स की सहायता में मरेथान के युद्ध में उचित समय पर न पहुँच सके, क्योंकि पूर्णिमा के पूर्व उनका प्रस्थान ओरेकल की दृष्टि में अशुभ था। पूर्णिमा का उदय हुआ, स्पार्टा-सैन्य ने प्रस्थान भी किया, परन्तु तब तक एथेंस के भाग्य का निर्माण हो चुका था।

देश में विभिन्न धार्मिक कथानकों की सृष्टि हुई। इनमें अनेक कथानक निन्द्य एवं हेय थे। उदाहरणार्थ, ज्यूस अपने पिता क्रोनोस के विरुद्ध विद्रोह करता है, अपोलो क्यूसा नामक नारी को प्रलोभित करके उसे पथ-भ्रष्ट करता है। ओरेस्टीज़ की माता अपने पति की हत्या कर डालती है। पुत्र इस जघन्य कार्य से क्षुब्ध होकर प्रतिशोध लेना चाहता है। अतः वह अपोलो देवता से सम्मति लेता है और देवाज्ञा के अनुसार पितृघातिनी अपनी माता की हत्या कर डालता है। परन्तु तत्पश्चात् वह कोप-देवियों के द्वारा स्वयं दण्डित किया जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि ओरेस्टीज़ का प्रतिशोध कर्म अनुचित था तो अपोलो ने उसे करने की सम्मति क्यों दी और यदि वह उचित था तो कोप-

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवियों ने उसे दण्डित क्यों किया। इस प्रकार के कथानक क्या दैवी न्याय की सन्दिग्धता, अनेकरूपता और अराजकता प्रकट नहीं करते ?

धार्मिक आन्दोलन—इस पृष्ठभूमि पर देश में एक ऐसे विचारशील वर्ग का उदय हुआ जो धर्म के इन परिवर्तनों, इन नवीन अंशों को विकास-स्वरूप नहीं वरन् विकार समझता था। अतः उसने धर्म के विशुद्धीकरण के हेतु आवाज़ उठाई और यूनान में धार्मिक आन्दोलन का श्रीगणेश किया। यह आन्दोलन उस विश्वव्यापी बौद्धिक क्रान्ति का उपशाखा था जो ई० पू० ७००-६०० भारत, चीन, ईरान आदि देशों में उत्पन्न हुई थी। इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप यूनान में भी श्रद्धाकाल का अन्त हुआ और तर्ककाल का उदय। यूनानी ने अद्यावधि-प्रचलित अपनी धार्मिक भावनाओं और परम्पराओं की विवेचना की और उसमें बहुत परिमाण में अवांछनीय अंश पाये। उनके उन्मूलनार्थ जो धारा ६०० ई० पू० के लगभग निस्सृत हुई थी वह पेरिक्लीज के समय तक सवेग हो गई। इसमें स्वतन्त्र विचारकों, साहित्यिकों, कवियों, दार्शनिकों सभी ने जीवन-दान दिया।

सर्वप्रथम साहित्यिक विस्फोट पिण्डर ने किया। इलियड के वर्णनानुसार एक सामान्य नारी के हेतु देवताओं में पारस्परिक युद्ध हो, यह उसकी विशुद्ध बुद्धि के लिये अग्राह्य था। यूनानियों के देवता, उनकी असीम श्रद्धा-भक्ति के प्रतीक, ऐसा निम्न कार्य नहीं कर सकते। अतः उसने ऐसी धार्मिक कथाओं को अविश्वसनीय घोषित किया। अपने मुख को सम्बोधित करते हुए वह कहता है कि 'मेरे मुख ! इस कथानक से विरत हो जाओ, क्योंकि देवताओं, के विषय में अकथ्य कथन घृणास्पद बुद्धिमत्ता है।[१]

इसी प्रकार प्रसिद्ध नाटककार यूरीपिडीज 'ओरेंस्टीज-कांड' पर विचार करते हुए धार्मिक कथाओं में वर्णित दैवी न्याय की आराजकता पर क्षोभ प्रकट करता है।

एस्कोइलस एवं साफोक्लीज नामक साहित्यकार यूनानी बहुदेववाद पर

१. 'O my mouth, fling tois tale from thee, for to speak evil of Gods is a hateful wisdom.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आक्रमण करते हैं और उसके स्थान पर एकेश्वरवाद का प्रतिपादन। जियस देवातिदेव के रूप में प्रतिष्ठित होता है। उसी में शक्ति, सौन्दर्य और न्याय के आदर्शरूप की कल्पना की जाती है।

दर्शन एवं विज्ञान—परन्तु स्वतन्त्र विचारधारा को सबसे अधिक प्रोत्साहन, दर्शन एवं विज्ञान से मिला। इसने धर्म-प्रतिष्ठित विश्वासों के स्थान पर तर्क-प्रतिष्ठित सत्यों का प्रतिपादन किया। यूनानी दर्शन का अंकुरण ६०० ई० पू० के लगभग मिलेटस में हुआ। मिलेसियन दर्शन का उद्भव विकास प्रधानतः मिलेटस के तीन दार्शनिकों—थेलीज़, एनैग्जीमैण्डर और एनैग्जीमिनीज़ के द्वारा हुआ। इन सब ने सृष्टि-निर्माण पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि संसार का प्रत्येक पदार्थ किसी एक तत्व के द्वारा ही निर्मित है। वह पदार्थ थेलीज के अनुसार जल, एनैजीमैण्डर के अनुसार 'निस्सीम' और एनैग्जीमिनीज़ के अनुसार वायु था। यद्यपि यह दर्शन भ्रान्तिपूर्ण था और इसके अधिकांश सिद्धान्त आग्राह्य थे तथापि इसने देश में स्वतन्त्र चिन्तन एवं निर्भीक मत-प्रकाशन को बल दिया।

लगभग ५३० ई० पू० पाइथागोरस का उदय होता है। उसकी जिज्ञासा एवं अन्वेषणशीलता स्वतन्त्र चिन्तन और वैज्ञानिक विचारधारा को द्रुतगति से अग्रसर करती है। पाइथागोरस अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति था। सर्वप्रथम उसी ने पृथ्वी, सूर्य और चन्द्र को गोलाकार बताया। उसके मतानुसार अनेक स्वर्गीय ग्रह गतिशील हैं और उनकी गति का केन्द्र-विन्दु एक महान् अग्निपुंज है। इसी अग्निपुंज के चतुर्दिक वे घूमते हैं। पाइथागोरस ने भी एक तत्वनिर्मित सृष्टि की कल्पना की। परन्तु उसकी धारणा में यह तत्व भौतिक पदार्थ नहीं हो सकता वह कोई सूक्ष्म सिद्धान्त ही होगा। उसके मतानुसार यह सूक्ष्म सिद्धान्त 'संख्या' था। पाइथागोरस गणितज्ञ था। अतः उसने सृष्टि का विवेचन गणित के सिद्धान्त के आधार पर किया। इस प्रसिद्ध वैज्ञानिक के धार्मिक एवं नैतिक विचार भी महत्वपूर्ण थे। इसने मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन में आचरण-शुद्धता का प्रतिपादन किया। इसके बिना मनुष्य का आदर्श बौद्धिक जीवन असम्भव है। आचरण-शुद्धता के लिये मनुष्य को अपनी इच्छाओं का दमन करना होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाइथागोरिन दर्शन किसी सीमा तक कायाक्लेश और निवृत्ति के सिद्धान्तों को प्रोत्साहन देता है। मनुष्य का जीवन द्वन्द्वों का संगठन है। उसमें आत्मा भी है और शरीर भी; सत् भी है और असत् भी। मनुष्य को सुख की प्राप्ति सामंजस्य से होती है और उसके अभाव में दुःख की।

पेरिक्लीज-कालीन दर्शन—इस पृष्ठभूमि पर यूनान में पेरिक्लीज़-काल का आविर्भाव होता है। इस काल की सर्वस्पर्शिणी बौद्धिक चेतना एवं क्रियात्मक गवेषणा हमें दर्शन के क्षेत्र में भी दृष्टिगत होती है। इस समय यूनानी प्रतिभा श्रद्धा-विश्वास की जर्जरित शृंखलाओं को भंग कर जीवन की पुरातन मान्यताओं की आलोचनात्मक ढंग से परीक्षा करती है और तर्कविहित समीक्षा के पश्चात् उनमें से अनेक को अग्राह्य, अन्य को अंशतः ग्राह्य तथा कुछ को सम्यक् ग्राह्य घोषित करती है। जीवन के विविध अंगोपांगों का पुनः मूल्यांकन होता है। तर्कवितर्क की कसौटी पर जीवन का कलुष उमड़ आता है। यूनानी उसका परित्याग कर जीवन के पुनः संगठन का सतत प्रयास करना प्रारम्भ करता है। कहीं वह सफल होता है और कहीं असफल। पर उसका प्रयास चलता रहता है। पेरिक्लीज़ काल के इस बौद्धिक प्रसार का इतिहास अति महत्वपूर्ण है। विल डयूरैण्ट के मतानुसार योरप की पुनर्जागृति के पूर्व किसी भी काल ने इतने उत्साह का प्रदर्शन नहीं किया है।[१]

नित्यता-अनित्यता—पेरिक्लीज़-काल का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण बौद्धिक विवाद संसार की नित्यता-अनित्यता के प्रश्न पर होता है। पारमेनिडिज़ ने नित्यता का पक्ष ग्रहण किया। उसके मतानुसार संसार का प्रत्येक पदार्थ अनश्वर है; नश्वरता अथवा परिवर्तन माया है, भ्रम है।

हेराक्लीटस ने विरोध किया और संसार के प्रत्येक पदार्थ की नश्वरता अथवा परिवर्तनशीलता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। संसार की कोई भी वस्तु स्थिर, स्थायी अथवा परिवर्तन विहीन नहीं। सर्वत्र सतत परिवर्तन, चिर-विकास का साम्राज्य है। जो वृक्ष दिखाई देता है वह इस रूप में कल न

---

[१] No age until the Renaissance would know such enthusiasm again.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहेगा। कल उसका परिवर्तित रूप होगा। यही सत्य प्रत्येक पदार्थ में लागू होता है।

अणुवादी—ईसा-पूर्व पाँचवीं शताब्दी के दूसरे चरण में डेमॉक्रिटस नामक दार्शनिक का उदय हुआ। इसने संसार की नित्यता-अनित्यता के प्रश्न को हल करने के निमित्त 'अणुवाद' प्रस्तुत किया। इसके अनुसार समस्त विश्व असंख्य, अनश्वर और अविभाज्य अणुओं से निर्मित है। ये गतिशील हैं। इनका संगठन वस्तुओं के उदय और विघटन उनके विलय का कारण होता है। संसार में समस्त पदार्थ एक-से नहीं, क्योंकि उनके निर्माणकर्ता अणुओं की संख्या एक-सी नहीं, उनकी संगठन-विधि एक-सा नहीं।

सॉफिस्ट-सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय का उदय लगभग ४५० ई० पू० हुआ। प्रारम्भ में 'सॉफिस्ट' का अर्थ था 'बुद्धिमान' परन्तु कालान्तर में उसका प्रयोग 'तर्कवादी' के अर्थ में होने लगा। काल-क्रम से इनकी तर्कवादिता बढ़ती गई और अन्त में नितान्त उपहासास्पद हो गई। सॉफिस्ट ने अपनी कुशाग्रबुद्धि, प्रभावोत्पादक वक्तृता एवं तर्कशैली का प्रयोग सत्य निरूपण के हेतु नहीं वरन् खोखले वाद-विवादों में एकमात्र विजय पाने के हेतु करना प्रारम्भ किया। सत्य को असत्य और असत्य को सत्य सिद्ध करना इनके लिये कौतूहलकारिणी क्रीड़ा बन गया। प्रतिभा का एक ऐसा दुरुपयोग इतिहास में कम मिलेगा।

सॉफिस्ट सम्प्रदाय का सर्वप्रमुख दार्शनिक प्रोटागोरस था। इसके मतानुसार संसार में कोई भी चिर-शाश्वत सत्य नहीं है। काल और स्थान के परिवर्तन के साथ सत्य का भी रूप परिवर्तित होता रहता है। सम्भव है कि जो वस्तु आज सत्य समझी जाती हो वह कल सत्य न रहे अथवा जो एक स्थान पर सत्य है वह दूसरे स्थान पर असत्य हो। ऐसी दशा में न तो मनुष्य के जीवन के मूल्य शाश्वत हैं और न न्याय की धारायें। अतः प्रत्येक स्थिति में निर्णायक प्रत्येक व्यक्ति है। वही सत्-असत्, सत्कर्म-दुष्कर्म, न्याय-अन्याय का वास्तविक मापदण्ड है।

प्रोटागोरस के पश्चात् गॉर्गिअस का काल आया। इसका सिद्धान्त था कि मनुष्य को किसी भी वस्तु का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सका। संसार में किसी भी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वस्तु का अस्तित्व नहीं है और यदि है भी तो मनुष्य उसका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता; यदि ज्ञान प्राप्त भी कर ले तो भी वह एक रहस्य ही रहेगा और मनुष्य कभी भी उसका प्रकाशन नहीं कर सकता ।

अन्य प्रसिद्ध सॉफिस्ट थै सीमैकस था । इसके विचारानुसार बुद्धिमान व्यक्ति नितान्त अन्यायी व्यक्ति है, क्योंकि उसने अपने बुद्धि-बल से जिस राजनीतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक संगठन की स्थापना की है, वह एकमात्र उसी के हितों की रक्षा करता है । उसके अन्तर्गत शक्तिहीन तथा धनहीन व्यक्तियों का उत्पीड़न और शोषण होता है । अतः वह प्रत्येक मनुष्य के लिये न्यायदृष्टि से मान्य नहीं ।

सॉफिस्ट-सम्प्रदाय के विचारों से अवगत होने के पश्चात् इस कथन में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि इसके अनुयायी प्रगतिवादी थे और स्वतंत्र चिंतन एवं विचार-प्रकाशन में दृढ़ता के साथ विश्वास करते थे । अतः उन्होंने विशिष्ट वर्गों के विशेषाधिकारों एवं दास-प्रथा का घोर विरोध कर मानव-जाति के समानाधिकारों का प्रतिपादन किया । इनका चिन्तन एवं विचार-प्रकाशन असंयत था । उनमें अराजकता थी । शाश्वत सत्य, पूर्ण ज्ञान और न्याय की मान्यता को स्वीकार करके उन्होंने राज्य, धर्म, नीति, आधार आदि सभी की नींव हिला दी थी । राज्य और समाज को शृङ्खलाबद्ध रखने के लिये यह आवश्यक था कि इनकी मान्यताओं की फ़िर से स्थापना होती । यह कार्य सुकरात, प्लेटो और अरस्तू नामक नवीन विचारकों के द्वारा सम्पादित हुआ ।

सुकरात—यूनान में सुकरात का उद्भव सॉफिस्ट विचार-धारा के विरुद्ध प्रतिक्रिया-स्वरूप हुआ था । उसका जन्म ४६९ ई० पू० एथेन्स में हुआ था । उसका पिता एक स्थापत्यकार था । परन्तु उसकी प्रारम्भिक अभिरुचि कदाचित् सैनिक वृत्ति में थी । उसने तीन बार एथेन्स की ओर से युद्ध में भाग लिया । ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध के भीषण रक्तपात ने उसकी अंतश्चेतना पर सबल रूप से प्रभाव डाला । उसने सैनिक वृत्ति छोड़ दी थी और वह दार्शनिक बन गया ।

सुकरात नितान्त व्यावहारिक था । वह कहा करता था कि हमारे समक्ष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐहिक प्रश्न ही इतने अधिक हैं कि स्वर्ग की बातों में हस्तक्षेप करने के लिये न तो हमारे पास समय है और न आवश्यकता। अतः सृष्टि निर्माण-विषयक तथा देवता विषयक वादविवादों को उसने निरर्थक समझा। 'देवताओं के विषय में हम कुछ नहीं जानते।'[१]—यही कह कर वह जिज्ञासुओं की उत्कण्ठा को शान्त कर देता था। यही कारण है कि उसका दर्शन पुराणवादिता (Theology) और तत्वज्ञान (Metaphysics) की अपेक्षा आचारनीति (Ethics) और राजनीति ही अधिक था।

वह आत्मा की अमरता, ज्ञान की सत्यता और सत्य की शाश्वता का पोषक था। ज्ञान मनुष्य का सर्वोच्च गुण है और अज्ञान सर्वनिन्द्य अवगुण। ज्ञान की प्राप्ति विचारों के आदान-प्रदान तथा सदाचारानुसरण से सम्भव है।

विचार-स्वातन्त्र्य का पोषक होने के कारण सुकरात भी पुरातन परम्पराओं की अन्ध-मान्यता को अस्वीकार करता था। उसकी दृष्टि में कोई भी मूल्य तब तक ग्राह्य नहीं हो सकता जब तक उसका सत्यरूप प्रतिष्ठित न हो जाय। सदाचारिता राज्यनिरूपित अधिनियम नहीं वरं अंतःकरण इंगित आदेश है। एकमात्र आयु मनुष्य को आदरणीयता प्रदान नहीं करतीं। हमारी श्रद्धाभक्ति का पात्र वृद्ध नहीं वरन् बुद्धिमान् होना चाहिए। मनुष्य का मूल्यांकन योग्यता के आधार पर होना चाहिए। राजकार्य जनसाधारण का नहीं वरन् असाधारण जन का उत्तरदायित्व होना चाहिये। इसी सिद्धान्त पर सुकरात ने एथेन्स में जनतन्त्र का विरोध कर राज्यतंत्र की स्थापना का समर्थन किया। उसने योग्यता का ध्यान रक्खे बिना ही बारी-बारी से राज्याधिकारियों की पदनियुक्ति को भी अहितकर बताया। उसकी प्रवृत्ति सार्वभौम थी। अतः उसने एथेन्स की नागरिक संकीर्णता का भी विरोध किया।

सुकरात के ये समस्त विचार आधुनिक दृष्टिकोण से नितान्त प्रगतिशील और उदार थे। परन्तु शासकों की दृष्टि में उनका अव्याहत प्रचार एथेन्स की संरक्षा के लिये घातक थे।

उनके मतानुसार वे एथेन्स की आस्तिकता, परम्परागत सदाचारिता, जन-

---

१. Of the Gods we know nothing.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तंत्रवादिता, नागरिकता और गुरुजन-सम्मान्यता के विरोधी थे। यही कारण है कि सुकरात पर नवयुवकों को भ्रष्ट करने का आरोप लगाया गया और विषपान के द्वारा ३९९ ई० पू० उसे मृत्यु-दण्ड दिया गया। इस प्रकार इस महती विभूति का कारुणिक अंत हुआ। सुकरात की हत्या यूनान की कलंक कालिमा है जिसे स्वर्ण-युग की स्वर्णिम-रश्मियाँ भी धवलित न कर सकीं। ई० पू० ३९९ एथेंस के इतिहास में 'काला वर्ष' है। इसमें उसने अपने सर्वोच्चसत्पुरुष को खोया और साथ ही सर्वोच्च राजनीतिज्ञ को भी। पेरिक्लीज़ की मृत्यु भी इसी वर्ष हुई।

सुकरात के व्यक्तित्व की महत्ता के विषय में कोई सन्देह नहीं। फीडो के शब्दों में वह 'सर्वाधिक श्रीमान, न्यायनिष्ठ एवं सत्पुरुष' था। 'सुकरात से अधिक उत्तम मनुष्य नहीं हुआ है, तथापि उसके आरोपकों का कार्य उचित था।'[1] इस उद्धरण की आंशिक पुष्टि हम एथेन्स के शासकों के दृष्टिकोण में पाते हैं। ये शासक न तो नृशंस थे और न सुकरात के सहज द्रोही। वे वास्तव में यही अनुभव करते थे कि यदि सुकरात को अबाधरूप से अपने विचार-प्रकाशन की स्वतन्त्रता दे दी गयी तो उसमें एथेन्स की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्था पर भीषण आघात पहुँचेगा। इसी अनिष्ट-निवारण के हेतु उन्होंने समष्टि के हित में व्यक्ति की हत्या की थी।

प्लेटो[2]—इसका जन्म ४२७ ई० पू० हुआ था। यह सुकरात का सर्व-प्रमुख अनुयायी था। परन्तु विचारक होने के साथ-साथ प्लेटो लेखक भी था। इसने एपोलोजी, प्रोटागोरस, रिपब्लिक और लॉज आदि पुस्तकों की रचना की। लॉज अपूर्ण है। इसे समाप्त करने के पूर्व ही प्लेटो की ३४९ ई० पू० मृत्यु हो गई। इसके अनुसार मनुष्य में तीन गुण होते हैं—(१) सद्गुण, (२) रजोगुण और (३) तमोगुण। प्रथम गुण-प्रधान व्यक्तियों को राजकर्म, द्वितीय गुण-

---

१. There has been no better man than Socrates yet his accusers were perfectly right.

२. प्लेटो और अरस्तू का काल पेरिक्लीज काल के पश्चात् आता है। परन्तु इतिहास को सक्रम रखने के हेतु इन दोनों का उल्लेख सुकरात के साथ कर देना ही समीचीन प्रतीत होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रधान व्यक्तियों को सैनिक कर्म तथा तृतीय गुण-प्रधान व्यक्तियों को कृषि एवं व्यवसायिक कर्म करना चाहिए। इस प्रकार की व्यवस्था के अन्तर्गत प्लेटो ने एक ऐसे आदर्श जनतन्त्रात्मक राज्य की कल्पना की है जिसमें राजनीतिक सत्ता दार्शनिक राजाओं के हाथ में हो और समाज के अन्य दो वर्ग अपनी सहज योग्यताओं के आधार पर व्यवसायों का अनुसरण करते हुए उन्हें पूर्ण सहयोग दें। इस प्रकार प्लेटो का राजनीतिक संगठन सामंजस्य और सुगमता के अतिरंजित मनोवैज्ञानिक निष्कर्षों पर अवलम्बित है।

इस दार्शनिक ने दो जगत् की कल्पना की है—भौतिक और आध्यात्मिक। भौतिक जगत् निम्न है, परिवर्तनशील है, और इन्द्रियग्राह्य है। इसके विरुद्ध आध्यात्मिक जगत् उच्च है, शाश्वत है और एकमात्र विशुद्ध बुद्धि की सहायता से ही ग्राह्य है। यह जगत् 'विचारों' का जगत् है। समस्त विचारों में ईश्वर का 'विचार' ही सर्वोच्च है। ईश्वर सद्रूप है। भौतिक जगत् में इन्द्रियों द्वारा हम जितने पदार्थों को देखते अथवा अनुभव करते हैं वे आध्यात्मिक जगत् के पूर्ण 'विचारों' की अपूर्ण प्रतिकृति हैं। ऐसी दशा में सच्चा ज्ञान विचारों का ज्ञान है जो बुद्धि के द्वारा प्राप्य है। आध्यात्मिक विकास के लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने भौतिक शरीर का दमन करे। अपने इन विचारों का प्रसार करने के हेतु प्लेटो ने एथेन्स में एक एकेडेमी स्थापित की जिसने बौद्धिक विकास में महत्वपूर्ण योग दिया।

अरस्तू—इसका जन्म ३८४ ई० पू० हुआ था। यह प्लेटो का शिष्य और सिकन्दर महान् का गुरु था। वह अपने युग का उद्भट विद्वान था। दर्शन के अतिरिक्त उसने राजनीति, अर्थशास्त्र, आचारशास्त्र, काव्यशास्त्र, भौतिक शास्त्र आदि विद्याओं का भी गहन अध्ययन एवं मनन किया था। लिविस्टन के मतानुसार ज्ञान के इतने क्षेत्रों में गति रखने वाला व्यक्ति न तो उसके पूर्व हुआ और न पश्चात्। अरस्तू ने मनुष्य को राजनीतिक जीव माना है। उसकी धारणा में राजनीतिक संगठन के बाहर सभ्य जीवन सम्भव नहीं। उसने आदर्श राजनीतिक संगठन को 'पॉलिटी' (Polity) के नाम से पुकारा जो वास्तव में अभिजाततंत्र (Aristocracy) और प्रजातन्त्र के बीच की स्थिति है। इसके

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्तर्गत राजसत्ता मध्यवर्ग के हाथ में रक्खी गई।

अरस्तू ने भी संसार में दो तत्वों की कल्पना की है—फॉर्म (form) या रूप और भौतिक तत्व (Matter) परन्तु प्लेटो की भाँति उसने इन दोनों को परस्पर विरोधी न मान कर अन्योन्याश्रित माना है। दोनों में अविच्छेद्य सम्बन्ध है। ये एक-दूसरे से पृथक् नहीं रह सकते। दोनों ही शाश्वत हैं। दोनों के सम्मिश्रण से ही सृष्टि होती है। फार्म प्रत्येक वस्तु के उद्भव का कारण है। यही भौतिक तत्व का भिन्न-भिन्न रूप देता है। मनुष्य के विकास के हेतु आध्यात्मिक और भौतिक दोनों पक्षों का विकास आवश्यक है। यही कारण है कि अरस्तू ने संसार-त्याग और काया क्लेश की निन्दा की है। उसने मध्यमार्ग का अनुसरण किया है औचित्यपूर्ण जीवन (Life of Reason) व्यतीत करने की शिक्षा दी है। समस्त विश्व पर अपने अतुल पाण्डित्य की छाप डाल कर अरस्तू ३२२ ई० पू० में मर गया।

विज्ञान—पेरिक्लीज़-काल में दर्शन की भाँति विज्ञान सम्बन्धी अन्यान्य विद्याओं में भी प्रचुर उन्नति हुई। पाइथागोरस के पश्चात् भी रेखागणित का विकास होता रहा। ४४० ई० पू० हिपोक्रेटीज़ ने रेखागणित की प्रथम पुस्तक लिखी। उसके पश्चात् हिपिअस (ई० पू० ४२०) और डेमाक्रिटस (४१० ई० पू०) ने अपने अनुसन्धानों से इस विद्या के विकास को और भी अग्रसर किया।

एम्पोडोक्लीज़ ने ज्योतिविद्या की उन्नति की। उसने ही सर्वप्रथम यह मत प्रतिपादित किया कि प्रकाश एक विन्दु से दूसरे विन्दु तक पहुँचने में समय लेता है और समस्त विश्व चार तत्वों—क्षिति, जल, पावक और समीर—से निर्मित है। तत्पश्चात् पार्मेनिडीज का उदय हुआ। उसने घोषित किया कि पृथ्वी गोलकार है और चन्द्रमा सूर्य से प्रकाशित होता है। परन्तु पेरिक्लीज़-काल का सर्वप्रमुख वैज्ञानिक एनैक्जागोरस था। इतिहासकार इसे तत्कालीन कोपर्निकस कहते हैं। इसके मत में भी चन्द्र स्वतः प्रकाशहीन है। उसके भीतर मैदान, पर्वतादि हैं। अन्य ग्रहों की अपेक्षा वह पृथ्वी के निकटतम है। उसे सूर्य से प्रकाश मिलता है। एनैक्जागोरस ने सूर्य-ग्रहण और चन्द्र-ग्रहण के

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारणों का भी पता लगाया। इसका विश्वास था कि पृथ्वी की भाँति अन्य ग्रहों में भी कदाचित् मनुष्य रहते हैं। इनसे क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर नामक पाँच तत्वों की प्रतिष्ठा की। डार्विन के शतियों पूर्व इस वैज्ञानिक ने घोषणा की थी कि मनुष्य का विकास पशुओं से हुआ है।

परन्तु अपने इन विद्वतापूर्ण वैज्ञानिक अनुसन्धानों के पश्चात् भी एनैक्जागोरस को सुफल न मिला। ईश्वरीय व्यवस्था में हस्तक्षेप करने के अपराध में उस पर अभियोग चलाया गया। पेरिक्लीज़ उसका परम मित्र था। अतः उसने उसे बचाने की यथाशक्ति चेष्टा की परन्तु वह असफल रहा। एनैक्जागोरस को मृत्यु-दण्ड मिला। रक्षा का अन्य मार्ग न देखकर वह देश छोड़कर भाग गया।

चिकित्सा-शास्त्र—पेरिक्लीज़-काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता चिकित्सा-शास्त्र का उदय भी है। इसके पूर्व चिकित्सा का आधार जन्त्र-मन्त्र था। परन्तु अब वह वैज्ञानिक हो गया। यूनानी चिकित्सा-शास्त्र का जन्मदाता Alcmaeon था जो इटली में अविर्भूत हुआ था। उसने On Nature नामक पुस्तक लिखी। तत्पश्चात् एशिया माइनर में यूरीफ़न ने प्लूरिसी को फेफड़ों की बीमारी घोषित किया। उनका मत था कि अनेक रोग मन्दाग्नि के कारण होते हैं। परन्तु इस काल का सबसे बड़ा चिकित्सक हिपौक्रेटीज था। वह एशिया माइनर के कॉस नामक नगर में उत्पन्न हुआ था। इसमें पूर्णरूप से चिकित्साशास्त्र को को धर्म और दर्शन से पृथक कर दिया। उसके विचार से रोग दैवी कोष के कारण नहीं वरन् शारीरिक एवं प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न होते हैं। शरीर में वात, पित्त और कफ होते हैं। इनके सन्तुलित रहने से ही स्वास्थ्य ठीक रहता है। इसने संक्रामक रोगों का भी पता लगाया। इसके द्वारा प्रतिपादित व्यवसाय-शपथ आज तक सामान्य है।

काव्य—रूढ़िवादिता एवं सुधार का जो संघर्ष हमें धर्म एवं दर्शन में दृष्टिगत होता है वही काव्य में भी। यूनानी कवि दार्शनिक भी था। बौद्धिक क्रान्ति का यह अग्रदूत था। इसकी वाणी सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक भित्तियों को भङ्ग अवश्य करती है परन्तु न तो वह कोरी कल्पना है और न जीवन का कुरूप सत्य। उसकी कविता जीवन के गूढ़तम तत्वों को सरलतम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप में रखने का माध्यम है। वह व्यावहारिक बुद्धि की संवाहिका है, जीवन का संकेत है और है उनके पुरातन संचित अनुभव का प्रभाव रूप। यूनानी के लिए कविता वह सत्य है जो स्वप्न से भी अधिक उज्जवल है। यूनानी दार्शनिक के रूप में सत्य का पुजारी है और कवि के रूप में कला का आराधक। यही कारण है कि उसकी कविता जीवन के तत्व को वहन करने में कुरूप नहीं होने पाती। यूनानी कविता मनोविनोद का एकमात्र साधन नहीं है, वह आदर्श का उज्जीवन है, उद्दीपन है। यूनानी अपने कथन की पुष्टि कविता-पंक्ति से करता था, अपनी सम्मति काव्य रूप में देता था। कविता की पंक्तियाँ उसके लिए सिद्धांत वाक्य थी। यही कारण है कि कवि के अन्तःकरण की शुद्धि के ऊपर भी यूनानी की दृष्टि थी। स्ट्रैबो का कथन है कि सत्कवि होने के लिये सत्पुरुष होना आवश्यक है। दुर्जन सत्कवि नहीं हो सकता। कवि कलाकार के साथ-साथ जीवन का विश्लेषक भी है। अरस्तू का मत है कि कोटि-विभाजन आचरण के आधार पर होना चाहिए। एरिस्टोफेनीज का कथन है कि कवि मानव का उपदेशक है। इस प्रकार यूनानी अन्तश्चेतना में कविता भी कला थी जो अपने शब्द-चयन के द्वारा नागरिकता, व्यक्तित्व, समाज एवं संगठन में आदर्श की स्थापना करती थी।

पेरिक्लीज़-काल के पूर्व का साहित्य—जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, होमर-काल युद्ध-काल था। अनवरत युद्धों में पनपने वाली जाति के लिये शौर्य और साहस ही जीवन के उच्चतम मूल्य थे। कठोरकर्मा वीरों की मनोवृत्ति जितनी तलवार की झनझनाहट में रमती है उतनी नूपुरों की मधुर ध्वनि में भी। युद्ध और प्रणय बहुधा सहगामी होते हैं। इतिहास में आदि-युगों में अनेक युद्ध नारी के लिए लड़े गये हैं। उसका प्रणय पुरुष की अनेक विनाशात्मक क्रीड़ाओं का कारण और परिणाम दोनों रहा है। इस प्रकार युद्ध और प्रणय का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इन दोनों का सम्बन्ध एक अन्य रूप में भी परिलक्षित होता है। युद्ध के कठोर कर्मों से विरत होने के पश्चात् योद्धाओं को मनोविनोद की आवश्यकता होती थी। अतः युद्ध काल के ये शान्तिप्रद लघु अन्तराल वीरों की उद्दाम प्रणय-क्रीड़ा से अनुप्राणित हो उठते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साहित्य समाज का दर्पण होता है। परिणामतः होमरकालीन समरोद्घोष तत्कालीन साहित्य में भी प्रतिध्वनि हो उठे। होमरकालीन रासरंग तत्कालीन साहित्य में भी निनादित हो उठे। सारांशतः होमरकालीन साहित्य वीरगाथा-प्रधान है। उसमें प्रणय का भी स्थान है, परन्तु शौर्य के उद्दीपन अथवा अभिरंजन के निमित्त ही। शौर्य-प्रदर्शन प्रधान है, प्रणय-निवेदन गौण। परन्तु अस्तित्व दोनों का ही है। इन समस्त तथ्यों की पुष्टि इस काल के प्रधान महाकाव्यों—इलियड और ओडेसी से होती है। एक ओर जहाँ वीरकर्मा हेक्टर और एक्लिीज़ रणचण्डो के वरद पुत्रों के रूप में प्रदर्शित किये गये हैं वहाँ प्रोषित-पतिका पेनोलोप कठोर वियोग के दुर्वह भार का कथंचित् वहन करती हुई किसी आदर्श विरहिणी का स्मरण दिलाती है जिसका अव्याहत प्रणय अनेकानेक याचकों के आत्म-निवेदन की उपेक्षा करता हुआ अपने जीवन-धन की आतुर प्रतीक्षा में आत्मविभोर हैं। इन विशेषताओं के अतिरिक्त ये महाकाव्य अपने सुसम्बद्ध कथानक, उन्मुक्त कल्पना-विहार, उदार चरित्र-चित्रण और संगीतमयी कविता के लिए प्रख्यात हैं। ये यूनानियों के राष्ट्रीय महाकाव्य हैं, उनके देश की बाइबिल हैं।

ई० पू० ९०० से लेकर ई० पू० ६०० तक के ३०० वर्ष यूनानी इतिहास में अनेकानेक परिवर्तनों के वर्ष हैं। देश ग्राम्य जीवन की सरलता का परित्याग कर नागरीय जीवन की जटिलता धारण करता है। कृषिकर्म के स्थान पर व्यापार-व्यवसाय जी प्रधानता प्रतिष्ठित होती है जिसके परिणामस्वरूप मानवी जीवन में अधिकाधिक समृद्धि एवं कार्यसंकुलता का उदय होता है। व्यावसायिक प्रसार के साथ देश में मध्यवर्ग का आविर्भाव होता है और मध्यवर्ग के साथ व्यक्तिवाद एवं राजनीतिक चेतना का। फलस्वरूप समाज में राजनीतिक एवं आर्थिक हितों के संघर्ष प्रारम्भ होता है।

सारांशतः समाज की आविर्भूत जटिलता, कार्य-संकुलता और संघर्षशीलता मनुष्य के जीवन में अशान्ति घोल देती हैं। प्राचीन व्यवस्थायें भंग हो चुकी हैं, परन्तु नवीन अभी तक प्रतिष्ठित नहीं हुई है। जीवन के पुरातन मूल्य नष्ट हो चुके हैं, परन्तु नवीन मूल्य अभी तक निर्धारित नहीं हो सके हैं। अतः चतुर्दिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संक्रान्ति-काल की अराजकता है और है तज्जनित असन्तोष। यही असन्तोष तत्कालीन साहित्य में भी परिलक्षित होता है। इस समय का साहित्य उल्लासपूर्ण न होकर विषादपूर्ण ही अधिक है। प्राचीन व्यवस्था के विनाश के साथ विनष्ट हुए बहुसंख्यक प्राचीन कुलों का हाहाकार तथा नवीन व्यवस्था की अराजकता-जनित हिंसा, विश्वासघात, शोषण, उत्पीड़न आदि से आहत अनेकानेक कुलों का आर्तनाद जैसा विषाद-गीतों में प्रतिध्वनित होता है वैसा साहित्य के किसी अन्य प्रकार में नहीं। यह काल प्रधानतः विषाद-गीतों का काल है। इसके प्रधान रचयिता थे सोलन, मिम्नेर्मस और थिअॉग्निस। परन्तु सबसे अधिक है आर्चीलोकस। इसके गीतों में जो करुणा-प्रवाह है वह यूनानी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। उसकी तुलना बर्न्स से की गई है।

६०० ई० पू० तक आते-आते यूनान में गीति-काव्य का उदय हो जाता है। अँग्रेजी में इसे 'लीरिकल पोयट्री' के नाम से पुकारते हैं, क्योंकि ये बाँसुरी (Lyre) की सहायता से गाये जाते थे। इस गीति-काव्य के विषय विविध थे। इसमें कहीं उद्दाम प्रणय-निवेदन रहता था तो कहीं दुर्धर्ष घृणा-विस्फूर्जन। कहीं संयोग की लालिमा रहती थी तो कहीं वियोग की कालिमा। कभी कवि उन्मुक्त हृदय से अरुणोदय का वर्णन करता था तो कहीं सन्तप्त हृदय से भास्कर-विलय का। यह काव्य सम्पूर्णतः भावना-प्रधान होता था।

इस क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय है सैफ़ो नामक कवियित्री जिसके गीतों में कल्पना स्वच्छन्द विहग की भाँति विचरण करती है और भावना दीर्घ आप्लावन की भाँति उद्वेलित होती है। शब्द-चयन, वाक्य-संगठन एवं भावाभिव्यक्ति कवियित्री की सहज कवित्व-शक्ति का परिचय देते हैं। उसका प्रणय-वर्णन उतना ही मर्मस्पर्शी है जितना प्रकृति-चित्रण। उसकी लेखनी जिन विषय का वर्णन करती है। उसका छाया-चित्र-सा अंकित कर देती है। उसकी प्रतिभा पर मुग्ध होकर प्लेटो ने उसे 'दशम-कवित्व-शक्ति' (Tenth Muse) की उपाधि दी थी।

पेरिक्लीज-काल का साहित्य—गीति-काव्य की परम्परा पेरिक्लीज-काल में भी चलती रही। देवातिदेव जियस की गरिमा, धनदाता की कीर्ति, पुरुष के शौर्य, नारी के सौन्दर्य, जीवन की अभिराम वीथिकाओं, मृत्यु के बीहड़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खण्डहरों आदि विषयों को लेकर पेरिक्लीज-काल के कवियों ने बहुसंख्यक गीतों के रूप में अपनी भावाभिव्यक्ति की। उनमें युग की सबलतायें हैं और निर्बलतायें भी; जीवन का हर्ष है और विषाद भी; समाज का उज्ज्वलांश है और हीनांश भी।

ये समस्त विशेषतायें युग के सर्वश्रेष्ठ गीतिकार पिण्डर (ई० पू० ५२०-ई० पू० ४४०) की रचनाओं से स्पष्ट हो जाती हैं। जहाँ उसने अर्थकारी कविता के द्वारा अपने आश्रयदाताओं का जय-जयकार किया है वहाँ उसकी अनेक रचनाओं में कविहृदय की सहज आकुलता का हाहाकार भी है। काव्य के माध्यम-द्वारा वह कभी हमारे समक्ष परमदेव जियस के धर्मनिष्ठ आराधक के रूप में आता है और कभी राष्ट्रीय गौरव से उन्नतमना देशभक्त के रूप में। व्यक्ति के रूप में कभी वह आत्मानुभूति का प्रदर्शन करता है तो कभी समष्टि के कल्याण के लिये उपदेशक बन बैठता है। उसका वर्णन सर्वत्र सक्रम और द्रुतगामी है। भाषा में प्रवाह है और अभिव्यक्ति में सरलता और सत्यता। अपने इन्हीं गुणों के कारण पिण्डर ने यूनान में आशातीत ख्याति प्राप्त की। यूनानियों की दृष्टि में वह 'सबसे अधिक महान्' कवि और रोम-निवासियों की दृष्टि में वह 'अपॉलो का किरीट-होने योग्य' था।

पर विशुद्ध काव्य की दृष्टि से पिण्डर के काव्य में कुछ दोष भी हैं। अनेक स्थलों पर उसके गीत-विषय शुष्क हो गये हैं। भाव-प्रदर्शन के हेतु उसने विविध एवं दीर्घ छन्दों का प्रयोग किया है जिनमें बहुधा नीरसता आ गई है। भाषा भी अधिकांशतः पुरातन तथा प्रादेशिक है। पिण्डर का काव्य गेय था। परन्तु आज का संसार उसकी संगीतशीलता से परिचित नहीं रहा। अतः कभी-कभी उसका अधिकांश काव्य उसे शुष्क प्रतीत होता है। इसी से कभी-कभी उसे 'नीरसतम' की उपाधि भी दी जाती है।[१]

नाटक—यूनानी साहित्य प्रमुखतया अपने नाटकों के लिये प्रख्यात है। उनमें यूनानी प्रतिभा का सबसे अधिक उन्नयन हुआ है। परन्तु अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण यूनानी नाटक प्रायः प्रत्येक देश के नाटकों से भिन्न

१ Drearist outpost in the classical landscape.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतीत होते हैं—

(१) यूनानी नाटक अपनी उद्देश्यशीलता से सीमित हैं। उनमें जीवन का विश्लेषण है, उद्दीपन है, राष्ट्रीय परम्पराओं का प्रतिपादन है और एक उच्च आदर्श का संस्थापन है। अतः वे यथार्थवादी न होकर आदर्शवादी ही अधिक हैं। यही उद्देश्यशीलता उन्हें शेक्सपियर के नाटकों के नितान्त पृथक् कर देती है। इस अंग्रेजी नाटककार पर न धर्म का अंकुश था और न परम्परा का। उसने जो कुछ देखा उसे उसी में प्रदर्शित किया। अतः उसके नाटकों में पुण्य भी है और पाप भी, सत्य भी है और असत्य भी। प्रकाश भी है और अन्धकार भी। इसके विरुद्ध यूनानी नाटककार ने जो कुछ देखा उसे आदर्श रूप में परिवर्तित, परिवर्तित, परिवर्धित अथवा कल्पित किया। यही कारण है कि उसकी कृतियों में अन्ततोगत्वा पाप, असत्य अथवा अन्धकार का उन्नयन नहीं मिलता।

(२) यूनानी आदर्शवादिता ने नाटकों के विषय को भी सीमित कर दिया है। कुकर्मा व्यक्ति सुखान्त नाटक का क्या, दुखान्त नाटक का भी चरित्र नायक नहीं हो सकता। वह सदैव सत्कर्मा व्यक्ति ही होगा जो परिस्थिति में पड़कर विपथ हो गया हो। या तो वह अपने कर्मों के लिये दण्ड भुगतेगा या कालान्तर में उसका उज्जीवन होगा। इस प्रकार पाप एवं यातना से प्रच्छन्न मानवी आत्मा सदैव किसी आदर्श-लक्ष्य की ओर अग्रसर होगी। इस प्रकार की धारणा धारणाओं के समक्ष शेक्सपियर के चरित्रनायक रिचर्ड तृतीय के लिये यूनानी नाटकों में कोई स्थान नहीं।

यूनानी परम्परा के अन्तर्गत नाटकों में नारी-प्रणयन प्रदर्शन वर्जित था। यही कारण है कि यूनानी नाटकों के बहुसंख्यक पात्रों में प्रणयिनी नारी ने स्थान नहीं पाया। इसी यूनानी परम्परा की पुष्टि करते हुए एस्काइलस् ने बड़े गर्व से कहा है कि मेरे समस्त नाटकों में एक भी उदाहरण ऐसा नहीं जहाँ नारी-प्रेम प्रदर्शित किया हो।

(३) आदर्शवादिता ने यूनानी नाटकों के घटना-प्रदर्शन को भी सीमित कर दिया है। उनमें पुण्य को पुरस्कृत और पाप को दण्डित करने की परिपाटी थी। विरुद्ध प्रदर्शन मानव के निम्नांश को उत्तेजित करेगा और उसके उज्ज्वलांश को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपदस्थ। अतः यूनानी व्यवस्था में उसके लिये कोई स्थान नहीं। यदि यूनानी शेक्सपियर के लियर-जैसे सत्पात्र को नितान्त दीन-हीन अवस्था में कलपते-बिलखते देखते तो उनके मन-मस्तिष्क अपनी समस्त शक्ति के साथ इस अन्याय-पूर्ण प्रदर्शन के विरुद्ध विद्रोह कर बैठते। उनकी दृष्टि में यह प्रदर्शन दैवी व्यवस्था के विरुद्ध होता, मानव की न्याय-बुद्धि के विरुद्ध होता और होता जीवन की उन समस्त मान्यताओं के विरुद्ध जिनके लिये वे जीते और मरते थे।

(४) यूनानी नाटकों में व्यक्तिगत विशेषताओं की अपेक्षा सार्वभौम सिद्धान्तों का अंकन ही अधिक मिलेगा। व्यक्तिगत विशेषतायें उच्च भी हो सकती हैं और हीन भी। परन्तु सार्वभौम सिद्धान्तों में तो चिर-शाश्वत सत्य रहता है। उनके प्रदर्शन में राष्ट्र के उन्नयन की आशा थी। यही कारण है कि यूनानी नाटककार मानव का चित्रण करते हैं जब कि वर्तमान नाटककार किसी भी ऐरे-गैरे व्यक्ति का।[१]

(५) यूनानी नाटक वार्ता, कविता, नृत्य संगीत, स्थापत्य कला एवं चित्र-कला आदि के सम्मिश्रण हैं।[२] मूलतः दो परस्पर-विरोधी मतों के पोषक पात्रों में वार्ता चलती है। बीच-बीच में गेय काव्य के द्वारा नाटककार अपना मत-प्रदर्शन करता जाता है, कभी किसी की स्तुति करता है तो कभी किसी की निन्दा। इस गेय काव्य में संगीत और नृत्य दोनों रहता है। उद्दीपन एवं आलम्बन के हेतु नाटकों में स्थापत्य कला एवं चित्रकला की सहायता ली जाती है।

सुखान्त नाटक—यूनानी सुखान्त नाटककारों में सर्वप्रसिद्ध है एरिस्टो-फेनीज (ई० पू० ४४८ ई० पू० ३८५)। इसने ४२ नाटकों की रचना की, परन्तु अब केवल ११ अवशिष्ट हैं। जीवन की सामान्य घटनाओं को लेकर

---

१ The subject of the Greek drama is man whereas in mod drama it is Tom and Dick.—Diekinson

२. 'The Greek drama combined the various branches of art employing not only music but poetry, sculpture, painting and dance.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
नाटककार ने विविध रूपों में हास विलास का सृजन किया है। उसकी कृतियाँ बहुधा प्रहसनरूप हैं। उनके द्वारा उसने राज्य, समाज और धर्म की कुरीतियों एवं त्रुटियों पर हासोत्पादक ढंग से आक्रमण किया है। वह व्यक्तिगत जीवन में में स्वयं अति चरित्रहीन था, परन्तु फिर अपने सार्वजनिक जीवन में चरित्रहीनता का घोर विरोध करता था। उसकी रचनाओं में तत्कालीन एथेन्स प्रतिबिम्बित हो उठा है। उनमें सुन्दरता भी है और वीभत्सता भी। नाटककार की लेखनी ने कहीं भ्रष्ट राजनीतिज्ञ का कार्टून बनाया है तो कहीं अहंमन्य दार्शनिक का। कहीं पर सभाओं का अनाचार है तो कहीं देवालयों का अन्धविश्वास। इस प्रकार ये रचनाएँ एथेन्स निवासी के जीवन की झाँकी हैं। इसी विशेषता का लक्ष्य करते हुए एक विद्वान् का कथन है कि 'एरिस्टो-फेनीज का अध्ययन किये बिना कोई भी एथेन्स निवासी से परिचित नहीं हो सकता।[१] 'इसकी प्रसिद्ध रचनाओं में दि फ्रॉग्ज, दि बर्ड्स और दि क्लाउड्ज विशेष उल्लेखनीय हैं।

परन्तु अनेक गुणों के होते हुए भी इस नाटककार में एक प्रमुख दोष है। कहीं-कहीं पर उसका हास-विनोद अति निम्नकोटि का हो गया है। वह भद्रता की सीमाओं का उल्लंघन कर गया है। उसमें अश्लीलता आ गई है। यत्र-तत्र आलोचना अत्यधिक व्यक्तिगत हो गई है जिससे लेखक की दुर्भावना प्रकट होती है।

दुःखान्त नाटक—परन्तु दुःखान्त नाटकों में यूनानी प्रतिभा सबसे अधिक विकसित हुई है। यूनानी दुःखान्त नाटक का संस्थापक एस्काइलस (ई० पू० ५२५—ई० पू० ४५६) था। इसने भी अपनी समस्त कृतियों में दुष्कर्म को दण्डित करके दैवी न्याय की स्थापना की है। उसने लगभग अस्सी नाटकों की रचना की थी, परन्तु अब केवल सात उपलब्ध होते हैं। इसमें ओरेस्टीआ और प्रामेथियस बाउण्ड विशेष प्रसिद्ध हैं। प्रथम अपने प्रभावोत्पादक चरित्र-चित्रण एवं भाव-कर्म के समन्वय के हेतु संसार भर में प्रसिद्ध है। कर्मवाद के सिद्धान्त को प्रतिपादित करती हुई यह रचना अन्ततोगत्वा दुष्कर्मा को यातनाभिशाप तथा

---

१. 'No one who has not read Aristophanes can know the Athenian.'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सत्कर्मा को मङ्गलमय प्रसाद का वितरण करती है। होमरकृत महाकाव्यों के पश्चात् ओरेस्टीआ यूनानी साहित्य की सर्वोत्तम कृति है। द्वितीय कृति प्रमेथियस बाउण्ड अपनी कारुणिकता के लिये विश्व-प्रख्यात है। प्रामेथियस की विवश यातना को देखकर अनायास ही हमारी सहानुभूति उसकी ओर आकृष्ट हो जाती है। वह अपने को निरपराध समझता है और दैवी व्यवस्था की अनीति पर धिक्कार करता है। परन्तु सर्वशक्तिशालिनी नियति की विकट माया के समक्ष वह असहाय है, निरुपाय है। मानव और भाग्य का यह संघर्ष एस्काइलस की लेखनी से अति प्रखर हो उठा है। इस रचना के कारुणिक वेग से प्रभावित होकर एक विद्वान् का कथन है कि यूनानी नाटककारों की अन्य कृतियाँ दुःखान्त नाटक मात्र हैं, परन्तु यह दुःखान्त नाटक का साक्षात् स्वरूप है।[१] अपने नाटकों के लालित्य के फलस्वरूप एस्काइलस अनेक बार यूनान में पुरस्कृत हुआ था।

द्वितीय प्रमुख दुःखान्त नाटककार साफोक्लीज (ई० पू० ४९६—ई० पू० ४०६) था। इसने ११३ नाटकों की रचना की, परन्तु अब केवल सात अवशिष्ट हैं। इनमें प्रमुख हैं ओयडिपस टिरैनस, एण्टिगोने और एलेक्ट्रा। इनमें साफोक्लीज का परिष्कृत मस्तिष्क, उदार हृदय, मध्यमार्गी स्वभाव दार्शनिक एवं उपदेशात्मक दृष्टिकोण, व्यंगात्मक शैली तथा आदर्शवादी लक्ष्य भली-भाँति परिलक्षित हुआ है। एस्काइलस की अपेक्षा इस नाटककार की शैली अधिक परिमार्जित, चरित्र-चित्रण अधिक सुन्दर एवं मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक दृष्टिकोण अधिक गम्भीर है। अपनी इन विशेषताओं के कारण उसने अठारह बार पुरस्कार प्राप्त किये और लगभग तीस वर्ष तक वह नाटकीय रंगमंच पर अद्वितीय नाटककार रहा। अनेक विद्वान् उसकी तुलना महाकवि मिल्टन से करते हैं।

दुःखान्त नाटकों का तृतीय प्रधान रचयिता यूरीपिडीज़ था। कहते हैं, इसने लगभग पचहत्तर नाटकों की रचना की जिनमें मेडिया, ओरेस्टीज़ हिपोलिटस और दि ट्रोजन वीमेन विशेष उल्लेखनीय है। यूरीपिडीज़ की रचनायें अपनी भाव प्रबलता, मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मकता और गम्भीर दार्शनिकता के लिये

१. 'The other Productions of the Greek tragedians are so many tragedies, but this is tragedy herself.'—Schlegel.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रसिद्ध हैं। वह यूनानी बौद्धिक क्रान्ति का वाल्टेअर है। देश की गर्हित धार्मिक कुरीतियों, निन्द्य सामाजिक कुप्रथाओं एवं अनैतिक परम्पराओं को ध्वस्त कर वह एक ऐसे जगत् के निर्माण की कल्पना करता है जहाँ नीति, न्याय, उदारता और सहिष्णुता के आधार पर जीवन की नवीन मान्यतायें प्रतिष्ठित की जा सकें, जहाँ न दास की व्यथा हो और न नारी परवशता, न राजनीति में भ्रष्टाचार हो और न देवालयों में प्रवंचना।

नारी का प्रणय पुरुष की चेतना है। फिर आखिर उसके नाटकीय प्रदर्शन पर प्रतिबंध क्यों? देवी-देवताओं के अनेक धार्मिक कथानक अनैतिक हैं। तो फिर उनकी मान्यता कैसी? युद्ध मनुष्य की पशुता का प्रकाशन एवं उत्तेजन है। फिर उसके लिये राष्ट्र का तुमुल आयोजन क्यों? इस प्रकार के उसके स्वतंत्र विचारों से यूनान की चिर-पूजित परम्पराओं की नींव हिला दी। रूढ़िवादिनी जनता उसकी क्रान्ति का विरोध करती थी। फिर भी उसके नाटकों को देखने जाती थी। महान् नाटककार के प्रति यह सबसे बड़ी श्रद्धांजलि थी। अपने शंकावादी व्यक्तित्व को लिये-दिये यह क्रान्तिदूत रूढ़िवाद के दाह में मानव के कल्याण का मार्ग देखता था। मानव की मूल व्यथा को सुनकर, उसकी करुण दशा को देखकर यूरीपिडीज़ का हृदय शतधा विदीर्ण हो जाता था और उसकी सदयता काव्य के रूप में चूने लगती थी। विषाद एवं मानवीयता के प्रदर्शन में यह नाटककार अद्वितीय है।

परन्तु यूरीपिडीज़ दार्शनिक और सुधारक पहले था, नाटककार तत्पश्चात्। हिन्दी भाषा के महाकवि जयशंकर प्रसाद की भाँति उसकी दार्शनिकता एवं उपदेशात्मकता काव्य में बाधक हुई है। स्थान-स्थान पर नाटक का प्रवाह स्थगित हो जाता है, क्योंकि नाटककार कार्य का परित्याग कर मनन और चिंतन करने लगता है। कथानकों के बीच में हठात् संरोपित गीत अप्रासंगिक प्रतीत होते हैं। कवि यूरीपिडीज़ की भावुकता नाटककार यूरीपिडीज़ को अपदस्थ कर देती है। परिणामतः नाटकीय दृष्टि से उसकी रचनायें एस्काइलस और साफोक्लीज़ की रचनाओं की अपेक्षाहीन कोटि की हैं। वस्तुतः यूरीपिडीज़ का ध्येय नाटकीय शास्त्र का विकास नहीं वरन् दार्शनिक अन्वेषण एवं समाज-सुधार था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास—स्वर्णयुग अपने इतिहासकारों के लिये भी प्रसिद्ध है। सबसे अधिक उल्लेखनीय हैं हेरोडोटस (ई० पू०) ४८४-४२५ ई० पू०) जो 'इतिहास का जन्मदाता' कहलाता है। इसने मिस्र, यूनान, इटली, पारसीक साम्राज्य एवं अनेक पूर्वी देशों का परिभ्रमण किया था और उसने उनको राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का उल्लेख किया है। परन्तु उसके वर्णनों में अनेक स्थलों पर जनश्रुतियों एवं कपोल गल्पों ने इतिहास का स्थान ले लिया है।

दूसरा प्रमुख इतिहासकार थ्यूसीडाइडीज़ (ई० पू० ४६०-४०० ई० पू०) था। प्रसिद्ध विद्वान् मेकाले उसे सबसे बड़ा इतिहासकार मानता है। थ्यूसीडाइडीज़ ने अपने ग्रन्थ में स्पार्टा और एथेन्स के युद्ध का वर्णन किया है। वह स्वयं अपने इतिहास-ग्रन्थ को 'चिरस्थायी निधि' कहता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ग्रन्थ की प्रामाणिकता को देखते हुए यह आत्मश्लाघा अनुचित नहीं। पर थ्यूसीडाइडीज़ की दृष्टि राजनीतिक घटनाओं के साथ-साथ यदि सामाजिक एवं आर्थिक घटनाओं पर भी होती तो यह इतिहास-ग्रन्थ संसार के लिये और भी उपयोगी होता।

समाज—एथेन्स का सम्पूर्ण समाज तीन भागों में विभक्त किया जा सकता—(१) नागरिक (२) विदेशीय (३) दास। पेरिक्लीज़ कालीन एथेन्स में राजनीतिक क्षेत्र सब नागरिकों को समान थे, सबको मताधिकार था और सब उच्चातिउच्च पदों के अधिकारी थे। बारी-बारी से पदनियुक्ति ने उन्हें अनेक शासनाधिकार भी दे दिये थे। विदेशियों को न राजनीतिक अधिकार थे और न भूमि-अधिकार। उनसे अधिक कर लिये जाते थे परन्तु यह कथन असंगत है कि उनकी दशा दयनीय थी। अनेक क्षेत्रों में उनके अधिकार स्वतन्त्र नागरिकों के समान थे। देश के अधिकांश उद्योग-धंधे उनके हाथ में थे। वे स्वतन्त्रता-पूर्वक सामाजिक उत्सवों में भाग ले सकते थे। दास अपने स्वामियों के अधीन थे। प्रसन्न होने पर ये स्वामी उन्हें स्वतन्त्र भी कर देते थे। दास रूप में ये राजनीतिक, सामाजिक एवं साम्पत्तिक अधिकारों से वंचित थे। वे अनेक प्रकार से उन्हें शारीरिक यन्त्रणायें दे सकते थे। परन्तु व्यवहाररूप में एथेन्स का सामान्य नागरिक अपने दासों के साथ उदारता का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बर्ताव करता था। वहाँ वे छोटे-मोटे पद भी ग्रहण कर सकते थे और सीमित रूप में धन-संग्रह भी कर सकते थे।

देश में स्त्रियों की दशा ठीक थी। दासों की भाँति वे भी नागरिक अधिकारों से वंचित थीं। उनमें पर्दा की प्रथा थी। एथेन्स-निवासी के दृष्टिकोण में नारी का गुरुत्व माता और पत्नी के रूप में था। अतः इन्हीं रूपों में अपने उत्तरदायित्वों का वहन करती हुई वह गृहिणी के रूप में प्रतिष्ठित थी। घर के दैनिक कार्य, शिशु-पालन तथा पतिनिष्ठा में ही वह संलग्न रहती थी। हाँ, धार्मिक उत्सवों में सम्मिलित होने की उसे अवश्य अनुमति थी। राज्य में कुछ विदेशीय महिलायें भी थीं। इनका जीवन स्वतन्त्र था। ये अबाधरूप से बाहर आती-जाती थीं।

देश का औद्योगीकरण न हुआ था। प्रायः मनुष्यों की जीविका का साधन कृषिकर्म अथवा व्यापार था। उद्योगों में मृण्भाण्ड-निर्माण और आयुध-निर्माण के कार्य ही विशेष उल्लेखनीय हैं। देश में धातु-खनन-कार्य एक मात्र राज्य का उत्तरदायित्व था। एथेन्स-निवासी श्रम का आदर करता था। वह बहुधा अपने कार्य स्वयं अपने हाथों से कर लेता था। हाँ अपने खेतों और अपनी दूकानों पर कार्य में सहायता देने के हेतु वह श्रमजीविकों को अवश्य रखता था परन्तु इनके साथ उसका व्यवहार अत्यन्त उदार होता था।

एथेन्स-निवासी का जीवन सरल था। देश में निर्धन अधिक थे, परन्तु धनी अत्यल्प। स्त्री-पुरुष दोनों ही के वस्त्र साधारण होते थे। वे प्रायः दो वस्त्र पहनते थे—एक ऊर्ध्वभाग पर और दूसरा अधोभाग पर। उनमें चप्पल पहनने की भी प्रथा थी। उनका भोजन भी सरल था। प्रायः जौ की रोटी, शाक और मछली साधारण मनुष्य का खाद्य था। धनी मनुष्य मांस-मदिरा का भी प्रयोग करते थे। परन्तु उनका जीवन आमोद-प्रमोदमय था। वे नाना प्रकार की क्रीड़ाओं, नृत्य-संगीत-समारोहों, नाटकीय प्रदर्शनों, धार्मिक उत्सवों एवं कला-प्रतियोगिताओं में भाग लेते थे। यूनान में प्रति चौथे वर्ष आलिम्पिक क्रीड़ायें होती थीं जिनमें सभी नगरों के प्रतियोगी भाग लेते थे।

देश में नैतिकता और सदाचारिता का स्तर ऊँचा था। वहाँ हिंसा और

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हत्या के उदाहरण कम मिलेंगे। नैतिक भ्रष्टाचार के दृष्टान्त भी अपवाद-स्वरूप ही ग्रहण किये जाने चाहिए। सामान्यतया मनुष्यों का दाम्पत्य-जीवन पवित्र था, यद्यपि देश में विदेशीय स्त्रियों एवं वेश्याओं का अस्तित्व कभी-कभी सदाचारिता के लिये बाधक था।

यूनानी संस्कृति की देन

राजनीतिक दृष्टि से यूनान का पतन हो गया, परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से वह अमर रहा। यूनान की संस्कृति के प्रभाव एक ओर तो प्रत्यक्षरूप से विभिन्न देशों में पहुँचे और दूसरी ओर वे अप्रत्यक्षरूप से—रोम के माध्यम के द्वारा—वहाँ पहुँचे। सर्वप्रथम रोमन निवासी ने यूनानी संस्कृति के साथ अपनी संस्कृति का समावेश किया और तत्पश्चात् संस्कृति की उस सम्मिलित निधि को योरप के महाद्वीप में हस्तान्तरित कर दिया। यही कारण है कि वर्तमान योरप की बहुसंख्यक संस्थाओं पर यूनानी प्रभाव दृष्टिगत होता है।[१] प्रसिद्ध कवि शेली का तो यहाँ तक कथन है कि 'हम सब यूनानी हैं, हमारे कानूनों; हमारे साहित्य, हमारे धर्म और हमारी कलाओं का मूल यूनान में है।' इसी प्रकार हेनरी मेन का मत है कि 'प्रकृति की शक्तियों को छोड़कर इस संसार में कोई भी चेतन पदार्थ ऐसा नहीं जिसका उद्भव यूनान में न हुआ हो।' इन कथनों को अत्युक्ति-पूर्ण घोषित करने के पश्चात् भी कोई विद्वान् योरोपीय संस्कृति के यूनानी आभार को स्वीकार नहीं कर सकता।

यूनान योरप की राजनीति चेतना का सर्वप्रथम प्रसूति-गृह है। इसी देश का शोषित वर्ग सर्वप्रथम अपनी अधिकारहीनता और शोषक वर्ग की विशेषाधिकार-शीलता से अवगत हुआ। देश में अन्तर्वर्गीय संघर्ष प्रारम्भ हुआ। परन्तु संयत एवं अनुशासनशील राष्ट्र होने के कारण इस संघर्ष ने कभी भी हिंसात्मकरूप नहीं

---

१. For the Greeks were the founders of nearly all those ideals which we commonly think of as peculiar to the west.
—Burns.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धारण किया। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप देश में जनतन्त्रात्मक शासन की स्थापना हुई। योरप में यूनान जनतन्त्र की प्रथम प्रयोगशाला थी। इसने जनतन्त्र के विविध उपकरणों—प्रतिनिधि-सभाओं, उनके पारस्परिक सम्बन्ध, निर्वाचन, मताधिकार, कार्यकारिणी, व्यवस्थापिका और न्याय की शाखाओं का विभाजन, रोटेशन का सिद्धान्त आदि—का प्रचुर विकास किया था। वहीं शासन की विभिन्न पद्धतियों का उदय हुआ और जनतन्त्र की सबलताओं-निर्बलताओं तथा एकतन्त्र की एक-मात्र निर्बलताओं का प्रकाशन हुआ। यूनान के ये अनुभव समस्त संसार की अक्षय निधि बन गये।

यूनानी स्वतन्त्रता-प्राण था। उसका समस्त जीवन स्वतन्त्रता की भावना से अनुप्राणित था। परतन्त्रता की स्थिति उसके लिये असह्य थी। इसीलिए पारसीक यूनानी युद्ध उसके लिये जीवन-मरण का विषय बन गया था। यूनानी ने यह युद्ध 'अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये, सन्तान और भार्या की स्वतन्त्रता के लिये, पूजा की स्वतन्त्रता के लिये और अपने पूर्वजों की समाधियों की स्वतन्त्रता के लिये' लड़ा था। वह जानता था कि इस युद्ध में हमारी पराजय हुई तो हमारी संस्कृति, हमारा धर्म, हमारी कलायें, हमारा सभी कुछ पारसीक साम्राज्यवाद के गुरु भार से विचूर्ण हो जायेगा। इसीलिये वह युद्ध उसके लिये प्राण-प्रण था और था उसकी उन समस्त मान्यताओं के लिये भीषण चुनौती जिनके लिये वह जी रहा था।

यूनानियों ने ही योरप के समक्ष संविधान-सम्मान्यता की आवश्यकता का प्रतिपादन किया। उनकी दृष्टि में वैधानिक संगठन के बाहर मनुष्य का सभ्य जीवन असम्भव है। जर्ज़ीज़ से एक बार उसके राजवैद्य ने कहा था कि स्पार्टा का नागरिक जितना अपने देश के कानूनों से डरता है उतना आपकी प्रजा आप से भी नहीं। संविधान-सम्मान्यता यूनान के सबसे अधिक उन्नत नगर-राज्य एथेन्स में भी प्रतिष्ठित थी। सोलन के मतानुसार राज्य-स्थिरता तभी आती है 'जब प्रजा अपने शासकों की आज्ञाओं का पालन करती है और शासक अपने कानूनों का।' अरस्तू की धारणा में मनुष्य राजनीतिक जीव है, राजनीतिक संगठन के बाहर उसका विकास नहीं हो सकता और संविधान ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य है। इस दार्शनिक की यह विचार-धारा यूनानी मनोवृत्ति को प्रतिबिम्बित करती है।

यूनानियों की स्वातंत्र्य-भावना उनके चिन्तन, दर्शन और विचार-प्रकाशन में स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती है। एक ओर भौतिकवाद की परीक्षा की गई तो दूसरी ओर अध्यात्मवाद की। किसी ने शरीर को आत्मा की कारा बताया तो किसी ने उसे आत्मा के विकास का साधन। कहीं श्रद्धा का अभिरंजन है तो कहीं शंका का तीव्र तर्जन। किसी ने बहुदेववाद की प्रतिष्ठा की है तो किसी ने एकेश्वरवाद को इसी प्रकार जीवन विविध क्षेत्र में यूनानी की प्रतिभा ने स्वच्छन्द विहार किया है।

यूनानी प्रतिभा प्रवृत्तिमार्गी, सांसारिक एवं व्यावहारिक थी। उसने आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक एवं जन्म-मरण के रहस्यमय विषयों पर वादविवाद निष्प्रयोजन समझा। अतः उसने ऐहिक जीवन को ही अभिराम बनाने की सुमहती चेष्टा की। उसने देवी-देवताओं की कल्पना अवश्य की, परन्तु मानव-रूप में। उसने धर्म की प्रतिष्ठा की, परन्तु एकमात्र लौकिक सुख, समृद्धि और सफलता की प्राप्ति के लिये। उसकी कला की भाषा भी रहस्यमयी न होकर प्राकृत ही थी। सारांशतः यूनानी की गवेषणा एवं अभिरुचि का विषय उसका ऐहिक जीवन था।

यूनानी जीवन में अनुशासन था। उसमें सामंजस्य और समन्वय था। उसने व्यक्ति और समष्टि में सन्तुलतन स्थापित किया था। यद्यपि व्यक्ति की प्रतिष्ठा थी, उसे राज्य की संस्थाओं में स्थान तथा उच्च पदों पर नियुक्ति प्राप्य थी, वह स्वतन्त्रापूर्वक यूनानी व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक धार्मिक एवं सामाजिक समारोह में भाग ले सकता था, तथापि समष्टि के हित में उसका व्यक्तित्व बाधक न था। समष्टि का बहुमत सर्वमान्य था। उसके समक्ष स्वयं पेरिक्लीज़ भी नतमस्तक था। समष्टि के तथाकथित हित में ही सुकरात को विषपान कराया गया था और एनैग्जागोरस को स्वदेश का परित्याग करना पड़ा था। यूनानी का राजनीतिक जीवन, उसकी राष्ट्रीय-संस्थायें, उसके धार्मिक उत्सव, सामाजिक समारोह, सभी समष्टि के कार्य थे, पर फिर भी उनके अन्तर्गत व्यक्ति का

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वच्छन्द विकास था।

इसी प्रकार यूनानी ने यथार्थवाद और आदर्शवाद में समन्वय स्थापित किया था। यह समन्वय उसकी ललित कलाओं एवं साहित्यिक रचनाओं में सम्यक् रूप से प्रतिष्ठित है। उनमें न तो एकमात्र जड़ वास्तविकता है और न एकमात्र तरल स्वप्निलता। यूनानी जीवन की वास्तविकता का विश्लेषण एवं परिमार्जन करता हुआ संसार में सदैव किसी आदर्श की ओर इंगित करता है।

यही सन्तुलन की भावना उसके आर्थिक जीवन में भी मिलती है। उसमें न तो अभावों की शून्यता थी और न अतिरेकता का उन्माद। वह बहुलता विहीन था पर उसमें सरलता की गरिमा थी। यूनान में अधिकांश मनुष्य निर्धन थे, परन्तु धनी मनुष्य भी अधिक न थे। इस परिस्थिति ने आर्थिक संतुलन सक्षम रखने में सहयोग दिया।

यूनान की इन समस्त विचार-धाराओं ने मानव-जाति के सांस्कृतिक एवं बौद्धिक विकास में जीवन-दान दिया है। विभिन्न योरोपीय देशों ने उन्हें ग्रहण किया, संवर्द्धित किया, परिवर्तित किया और अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल उनका रूप-निर्धारण किया। संक्षेप में यूनानी सभ्यता का आधार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, आशावादिता, धर्म-निरपेक्षता एवं मानवता के आदर्शों में निहित है जिसमें मस्तिष्क का विश्वास तथा विज्ञान का अंध-विश्वास के ऊपर पूर्ण साम्राज्य है।[१]

योरप के ऊपर यूनान का प्रत्यक्ष प्रभाव विज्ञान, दर्शन और साहित्य के

---

[१] "Their foundation was on ideals of freedom, optimism, seularism rationalism; glorification of body and mind higher regard for dignity and worth of individual mind—and the scientific quest. To an extent never before realised mind was supreme over faith logic and science over superstition."

—A. Toynbee.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षेत्र में सबसे अधिक प्रतिफलित हुआ है। यूनानी वैज्ञानिकों के अनुसंधान वर्तमान विज्ञान की आधार-पीठिका हैं। उदाहरणार्थ जब तक विश्व में गणित का अध्ययन होगा तब तक पाइथागोरस और यूक्लिड के नाम स्मरणीय रहेंगे। एनैग्जागोरस यूनान का कापर्निकस और डार्विन था। इसके अनुसंधान आधुनिक ज्योतिर्विद्या और विज्ञान की अमोल निधि हैं। और बायोलाजी के क्षेत्र में संसार एनैग्जमेण्डर का कम अभारी नहीं है। उसने ही सर्वप्रथम मानवी शरीर के विकास की क्रमिक स्थितियों पर विचार किया था। अरस्तू ने जीवों की शरीर-रचना पर जो अनुसंधान किये वे वर्तमान अनाटोमी को अग्रसर करने में सहायक हुए। इसी प्रकार चिकित्साशास्त्र के इतिहास में हिपोक्रिटीज़ का नाम स्वर्णाक्षरों में अङ्कित किया जायेगा। यूनान के इतिहासकार पर्यटनकर्ता भी थे। अतः उनके परिभ्रमण ने हमारे मानचित्र के निर्माण में योग दिया। सारांशतः विज्ञान के विविध क्षेत्रों पर यूनानी प्रभाव है।

संसार के दर्शन पर तो यूनानी प्रभाव सर्वस्वीकृत हैं। पूर्वोल्लिखित यूनानी दार्शनिकों के सिद्धान्त आज भी समस्त विश्वविद्यालयों में अधीत होते हैं। यूनानी दर्शन एकाङ्गीय नहीं। वह बहुमुखी है। उसके अन्तर्गत भौतिकवाद, आध्यात्मवाद, शंकावाद, प्रकृतिवाद, अज्ञानवाद, आदर्शवाद, आत्म-दर्शन, आचार-शास्त्र, समाज-शास्त्र, मनोविज्ञान आदि पर समानरूप से अन्वेषण कार्य हुआ। इसके सुफल आज भी संसार के समक्ष हैं।

पाश्चात्य देशों पर यूनानी साहित्य का प्रभाव भी व्यापक है। गद्य पर तो नहीं, पर पद्य पर यह प्रभाव निर्विवाद है। यूनानी 'महाकाव्य' गीतिकाव्य और नाटक, विशेषतया दुःखान्त, ने योरोपीय साहित्यों के इन्हीं क्षेत्रों के विषय, शैली, रूप-रेखा आदि को प्रभावित किया है। प्रायः संसार के समस्त साहित्यकारों ने पूर्वगामी यूनानियों से प्रेरणा ली है। यूनानियों के धार्मिक कथानकों, उनके दर्शन और उनकी भावुकता एवं कलात्मकता को बहुसंख्यक पाश्चात्य लेखकों ने ग्रहण किया है। पाश्चात्य देशों के साहित्य का समालोचनात्मक अध्ययन करने के लिये तो यूनानी साहित्य का अध्ययन आवश्यक समझा जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शब्दों के आधार पर भी पाश्चात्य देशों पर यूनानी प्रभाव दृष्टिगत होता है। एपिक, ड्रामा, कामेडी, ट्रेजेडी, ओड, लिरिक, थियेटर, पोयेट, पालिटिक्स आदि यूनानी शब्द आज संसार की निधि बन चुके हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh